Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकुमार वर्मा एकांकी रचनावली

संपादक
डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा

डॉ० रामकुमार वर्मा छायावादी काव्य युग के प्रमुख हस्ताक्षर होने के साथ-साथ एक प्रख्यात नाटककार, साहित्येतिहास लेखक, निबंधकार और संस्मरण-लेखक भी थे। किन्तु उनकी विशेष पहचान हिन्दी-एकांकी के रचनाकार के रूप में है। एकांकी के तो वे जनक ही माने जाते हैं।··एकांकियों की रचना करने वाले डॉ० वर्मा ने इस क्षेत्र में अनेक सफल और स्तुत्य प्रयोग किए हैं। उनके एकांकियों की लोकप्रियता का यही प्रमाण है कि उनके अनेक एकांकियों का मंचन शताधिक बार हो चुका है। गुजराती, मराठी, तेलुगु, बंगला, कन्नड़, अंग्रेजी, कोंकणी तथा संस्कृत आदि भाषाओं में भी उनके एकांकियों का अनुवाद हुआ है। भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत अनेक एकांकी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्वीकृत हैं।

डॉ० वर्मा ने ऐतिहासिक, पौराणिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक और रेडियो एकांकियों की रचना की है। उन्होंने चित्र और विचित्र एकांकी भी रचे हैं। उनके एकांकियों में व्यंग्य, विनोद और हास्य का पुट है। उनके सभी एकांकियों का संपादन करके सामान्य पाठकों, अनुसंधित्सुओं, चिन्तकों और रंगकर्मियों के लिए **रामकुमार वर्मा एकांकी रचनावली** के चार खंडों में उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISBN—81-7016-126-6

मूल्य : 1000.00 (4 खंड)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकुमार वर्मा एकांकी रचनावली

2

उत्तर प्रदेश भाषा निधि
के सौजन्य से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकुमार वर्मा एकांकी रचनावली

खण्ड : दो

सम्पादक
डॉ० चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा
वरिष्ठ प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
साकेत पोस्ट-ग्रेजुएट कॉलेज
(अवध विश्वविद्यालय) फैजाबाद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासवदत्ता

पात्र-परिचय

वासवदत्ता : जन-पद-कल्याणी नर्तकी
पूर्णिका : वासवदत्ता की अंतरंग सखी
सुलोचना : वासवदत्ता की सहचरी
मदयंतिका : एक नर्तकी
जयसेन : वेरंजा के नगर-श्रेष्ठि
सुदर्शी : जयसेन का सखा
उपगुप्त : आचार्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान : वेरंजा नगर   समय : रात्रि का प्रथम पहर
काल : ईस्वी पूर्व 261

[वासवदत्ता के सप्तभूमि-प्रासाद का एक बहुत सुसज्जित कक्ष। पुष्परागजटित सुन्दर गवाक्षों से शुक्ल पक्ष की एकादशी का चन्द्र दीख रहा है। उसकी ज्योत्स्ना कक्ष में बिखर रही है। स्फटिक के दीपाधारों पर सुगन्धित तैल से परिपूर्ण दीपक जगमगा रहे हैं। पीत और हरित पाट वस्त्रों से द्वार सुसज्जित हैं। स्थान-स्थान पर वासवदत्ता की नृत्य-भंगिमाओं के आकर्षक चित्र हैं, जिन पर मणि-मालाएँ झूल रही हैं। कक्ष में दर्पण इस कोण से लगे हुए हैं कि वे चित्र उनमें अनेक होकर प्रतिविम्बित हो रहे हैं। दुग्ध-फेन की भाँति आसन्दियों पर श्वेत कंचुक पड़े हुए हैं। उत्तर की ओर एक लम्बी पीठिका है जिस पर कोमल उपधान रक्खे हुए हैं। स्थान-स्थान पर अगरु-पात्र से धूम उठ रहा है। दक्षिण की ओर काष्ठ-स्तम्भ पर एक विशाल वीणा रक्खी हुई है। भूमि पर कौशेय धुस्स विछे हुए हैं। इसी प्रासाद के अलिंद से दूरागत ध्वनि में एक दूसरी नर्तकी मदयंतिका मन्द स्वरों में श्यामकल्याण के स्वरों से अलाप ले रही है।

वासवदत्ता अपना शृंगार कर चुकी है। वह वासन्ती परिधान धारण किए हुए है। मस्तक पर चन्द्र-कला का किरीट जिसमें राशि-राशि नीलमों की जगमगाहट है। पुष्पराग के कुण्डल जो उसकी अलकों के साथ झूल उठते हैं। गौर वर्ण, चतुर्थी के चन्द्र की भाँति मस्तक, कुंचित भ्रू जो कटाक्ष का अनुसरण करती है, जिसके मध्य में केसर से बनी हुई पुष्पित वल्लरी अंकित है। प्रस्फुटित कमल-दल की भाँति नयन-कोरक जिनमें अंजन भ्रमर का रंग और गूँज लेकर समाया हुआ है। कपोलों और चिवुक पर पत्रावली।

वह स्वर्ण तारों की कंचुकी कसे हुए है जैसे उत्तान शृंगार के दो घनाक्षरी छन्द पढ़े जाने से वर्जित कर दिए गए हैं। शरदकालीन आकाश के रंग का दुकूल। रत्न-जटित किंकिणी। पैरों में जावक और नूपुर। जैसे वह स्वर्ग से उतरी हुई इन्द्रधनुषी रश्मि हो।

वासवदत्ता इस समय पीठिका पर अर्द्ध-शयित अवस्था में नेपथ्य से आने वाली रागिनी पर वंशी-वादन कर रही है। समीप ही उसकी सहचरी पूर्णिका एक पुष्पमाला गूँथ रही है।

कुछ देर वंशी-वादन के उपरान्त वासवदत्ता मुस्कराते हुए वंशी ओंठों से हटाती है और मधुर स्वर से हँसती है, जैसे नूपुरों की घंटिकाएँ बिखर गई हों।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[वासवदत्ता की मधुर हँसी ।]

पूर्णिका : स्वामिनी !

[वासवदत्ता की मधुरतर हँसी]

पूर्णिका : स्वामिनी !

वासवदत्ता : पूर्णिके ! वृद्धा के सिकुड़े हुए शरीर पर अंगराग ! (पुनः हँसती है) वृद्धा के शरीर पर (हँसती है) अंगराग ! (हँसती है) उसी तरह दूर से आती हुई दुर्बल रागिनी के स्वरों पर मेरा वंशी-वादन ! (हँसती है) वंशी के स्वरों का अंगराग !

पूर्णिका : नगर-लक्ष्मी वासवदत्ता का वंशी-वादन अंगराग ही तो है।

वासवदत्ता : कौन गा रही है ?

पूर्णिका : मदयन्तिका, स्वामिनी !

वासवदत्ता : हाँ, मदयन्तिका ही होगी। हाय री, मदयन्तिका ! मेरे कक्ष की ओर मुख करके ही स्वरालाप करती है। कहती तो यही है कि मैं वासवदत्ता के प्रासाद का वातावरण संगीतमय करने के लिए ही स्वरालाप करती हूँ किन्तु इसमें एक रहस्य हैं। जानती है ?

पूर्णिका : नहीं जानती, स्वामिनी !

वासवदत्ता : ओ हो ! मदयन्तिका को इतने दिनों से जानकर भी नहीं जानती ? अच्छा, पहले द्वार पर जाकर संकेत से उसे विश्राम करने के लिए कह दे ! उसका मुख मेरे कक्ष की ओर ही होगा !

पूर्णिका : जैसी आज्ञा ! (प्रस्थान)

वासवदत्ता : (गहरी साँस लेकर) बेचारी मदयन्तिका ! (गवाक्ष से चन्द्र की ओर देखती है) एकादशी का चन्द्र ! खण्डित होकर भी कितना मनोहर और दिव्य है ! कितनी शीतल किरणें हैं ! जैसे ये भी किसी वंशी के कोमल स्वर हैं। (नेपथ्य में संगीत बन्द हो जाता है) संगीत समाप्त। मदयन्तिका मौन हो गई।

[पूर्णिका का प्रवेश।]

पूर्णिका : स्वामिनी प्रसन्न हों ! मदयन्तिका ने स्वरालाप समाप्त कर दिया।

वासवदत्ता : मदयन्तिका बड़ी सौम्य है। मुझ पर श्रद्धा रखती है। उसे कुछ पुरस्कार दूंगी।

पूर्णिका : यही क्या कम पुरस्कार है स्वामिनी कि उसे आपने अपने प्रासाद में स्थान दे दिया है !

वासवदत्ता : पूर्णिके ! मैंने मुक्त हृदय से अन्य नर्तकियों को अपने प्रासाद में निवास करने की अनुमति दे दी है। भय हो सकता है कि वे मेरे वसन्त में वर्षा के मेघ उठा सकती हैं किन्तु मैं समझती हूँ कि उन्हें भी अपनी कला-कादम्बिनी की कमनीयता दिखलाने का अवसर मिलना चाहिए।

पूर्णिका : इन्द्रधनुष को मेघमाला का भय नहीं होता, स्वामिनी !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासवदत्ता : (हँसकर) ओ हो ! कविता की किरण फैला दी तूने ?

पूर्णिका : स्वामिनी ! मैंने मदयन्तिका को जैसे ही संकेत किया, उसका स्वर किसी नगर-श्रेष्ठि की भाँति उसके कण्ठ में ही रह गया। स्वामिनी ! किसी रहस्य की बात कह रही थीं।

वासवदत्ता : रहस्य ! (सोचते हुए) हाँ, स्मरण आया। मदयन्तिका है तो बहुत सौम्य ···किन्तु···कहूँ ?

पूर्णिका : हाँ, स्वामिनी !

वासवदत्ता : मदयन्तिका सदैव प्रयत्न करती रहती है कि उसका स्वरालाप इतना मधुर हो···इतना मधुर हो कि नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन···समझी !

पूर्णिका : नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन ! (हँसती है) स्वामिनी ! नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन की रुचि समस्त वेरंजा नगर जानता है। वे पाटल और जूही का भेद जानते हैं और जानते हैं मेरी स्वामिनी नगर-लक्ष्मी वासवदत्ता के कक्ष का पथ। मदयन्तिका के कक्ष का नहीं, भले ही वह मेरी स्वामिनी के प्रासाद में निवास कर मधुर से मधुर स्वरालाप करे।

वासवदत्ता : मेरे प्रति तेरा पक्षपात है, पूर्णिके !

पूर्णिका : ये वाक्य तो स्वयं आर्य जयसेन ने कहे थे। कहते थे, आकाश के सौध-सदन में चन्द्र ने अपने साथ तारकों को भी स्थान दे दिया है।

वासवदत्ता : आर्य जयसेन प्रेमी हैं। उनके मुख की रेखाएँ और हृदय के भाव दोनों ही सौन्दर्य के ढाँचे में ढले हुए हैं। तुझे एक सूचना दूँ !

पूर्णिका : आज्ञा, स्वामिनी !

वासवदत्ता : आर्य जयसेन आज इस कक्ष में आ रहे हैं।

पूर्णिका : (प्रसन्नता की उमंग में) आ रहे हैं ?

वासवदत्ता : मेरा शृंगार देखकर तूने कुछ अनुमान नहीं किया ?

पूर्णिका : किया स्वामिनी ! किन्तु चन्द्र तो चन्द्र है। कलाएँ स्वयं उसके मस्तक पर आकर धन्य हो जाती हैं।

वासवदत्ता : (मुस्कराकर) कलाएँ धन्य हो जाती हैं। और यदि कलाएँ घट जाएँ ! अमावस्या हो जाए ! पूर्णिके, अमावस्या !

पूर्णिका : ऐसी बात न कहें स्वामिनी ! (कराह के स्वर में) भविष्य के बोझ से वर्तमान के कन्धे दुखने लगते हैं।

वासवदत्ता : तू तो ऐसे स्वर में कह रही है, जैसे तेरे ही कन्धे दुख रहे हैं। (मधुर हँसी) पूर्णिके ! अपनी वाणी में रूपक और उपमाओं से अधिक काम न लिया कर। समझी !

पूर्णिका : मेरी वाणी में अलंकार उसी भाँति आ जाते हैं जिस भाँति स्वामिनी के कक्ष में नगर-श्रेष्ठि जयसेन।

वासवदत्ता : तो जयसेन मेरे कक्ष के अलंकार हैं ? पूर्णिके ! तेरे अलंकार अच्छे हैं जो कभी पुराने नहीं होते किन्तु मेरे अलंकार वासना में धुलकर छोटे होते जाते हैं और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन समाप्त हो जाते हैं। पूर्णिके! ये तो सेज पर सजे हुए फूल हैं जो सुगन्धि की वात कहते-कहते मुरझा जाते हैं।

पूर्णिका : इस आत्म-बलिदान में भी शोभा है, स्वामिनी!

वासवदत्ता : इसी शोभा से मैं खेलती हूँ, अभिनय करती हूँ। दुःख तो यह है कि संसार इस अभिनय को ही सत्य समझता है।

पूर्णिका : किन्तु कभी-कभी अभिनय भी सत्य हो जाता है, स्वामिनी!

वासवदत्ता : जब उस अभिनय के मंच पर हिमश्रृंग की भाँति अचल पुरुष प्रवेश करता है। वह वाणी से नहीं, आत्मा से कहता है कि मैं तुम्हें कृतार्थ कर सकता हूँ। उसमें आकांक्षा नहीं, आकांक्षा की पूर्ति पर विरक्ति नहीं। वह अलंकार है और रस भी है। वह फूल है, उसकी सुगन्धि भी है।

पूर्णिका : तो नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन का प्रेम···

वासवदत्ता : वह इस दीपक में जलने वाला सुगन्धित तेल है जो कुछ ही समय में समाप्त हो जाएगा। किन्तु उससे मेरे कक्ष की शोभा है। इसलिए इस दीपक को मणि-जटित स्तम्भ पर रखती हूँ, कंचुक की ओट में सजाती हूँ, जिससे वह बुझ न जाए।

पूर्णिका : किन्तु आर्य जयसेन के आगमन से तो आप बहुत प्रसन्न हो उठती हैं।

वासवदत्ता : क्योंकि वे मेरे अभिनय को सार्थक करते हैं। उनकी सम्पत्ति में मेरे नूपुरों की झंकार है। उनके हृदय की धड़कन में मेरे नृत्य की ताल है और उनके अनुराग में मेरे चरणों की लालिमा।

पूर्णिका : (मुस्कराकर) और उनके बाहु-पाश में···

वासवदत्ता : (तीव्रता से) : सावधान, पूर्णिके! तू मेरी सखी है, तुझे क्षमा करती हूँ। वासवदत्ता ने आज तक आत्मसमर्पण नहीं किया। वह आनन्द और विलास की सूत्र-धारिणी है—पात्र नहीं। वह वसन्त-सुषमा की भाँति प्रत्येक फूल खिलाती है, फूल नहीं बन जाती। वह अभिनय का सत्य है, सत्य का अभिनय नहीं।

पूर्णिका : क्षमा करें, स्वामिनी!

वासवदत्ता : क्षमा किया! प्रसन्न हो जा! आज नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन यहाँ आकर कृतार्थ होंगे। इस श्रृंगार-गृह को तू और भी सुसज्जित कर दे। उनके आने में अब अधिक विलम्ब न होगा।

पूर्णिका : माध्वीक मदिरा का सुरा-भाँड भी उपस्थित करूँ।

वासवदत्ता : उसमें चम्पक की सुगन्धि भी मिला दे। दासियों से कह दे, वे गन्ध-द्रव्य स्वर्ण-कलशों में सुसज्जित कर दें। स्फटिक प्रतिमाओं में स्वर्ण और मणि-मालाओं के आभरण सजा दें। समस्त कक्ष सुगन्धित और आलोक से सुरभित और उज्ज्वल हो उठे। आज आर्य जयसेन का उसी भाँति स्वागत होना चाहिए जैसे शरीर में यौवन का होता है, वसन्त में कामदेव का होता है।

पूर्णिका : (गम्भीर स्वर से) जैसी आज्ञा।

वासवदत्ता : बुरा मान गई! हँसकर कह न 'जैसी आज्ञा'। तेरी वाणी के सारे अलंकार कहाँ गए? (पूर्णिका कुछ नहीं बोलती) नहीं बोलेगी! अच्छा, तो मैंने नगर-

CC-0 ... Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठि श्री आर्य जयसेन को आत्म-समर्पण किया। स्वीकार है ?

पूर्णिका : कहीं चन्द्रकला भी अन्धकार को आत्म-समर्पण कर सकती है ?

वासवदत्ता : वाणी में अलंकार तो आ गया। अब हँसी भी आएगी···

[दोनों हँस पड़ती हैं।]

वासवदत्ता : तू वास्तव में वासवदत्ता की पूर्णिका है। अब वह वीणा मेरे हाथ में दे दे। (पूर्णिका वीणा उठाने के लिए जाती है) आज ऐसी रागिनी का अलाप हो कि दूर-दूर तक स्वरों का बन्दनवार लग जाए। और राग का स्थायी तोरण की भाँति सुसज्जित हो! यह राग तूने सुना ? (वीणा में जयजयवन्ती का राग कुछ देर बजाती है) कैसा रहा ?

पूर्णिका : यह तो आपकी जय-जय का स्वर लेकर जयजयवन्ती बन गई !

वासवदत्ता : तब तो आज मैं संसार-विजयिनी बन गई हूँ।

[दासी सुलोचना का प्रवेश।]

सुलोचना : जन-पद-कल्याणी की जय ! आर्य सुदर्शी दर्शन करना चाहते हैं।

वासवदत्ता : (देखकर) सुलोचना ! आर्य सुदर्शी या नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन ? तूने अपने सुलोचनों से उन्हें ठीक प्रकार तो देखा है न !

सुलोचना : दासी नगर-श्रेष्ठि जयसेन को पहचानती हैं। आर्य जयसेन नहीं हैं, आर्य सुदर्शी हैं।

वासवदत्ता : (सोचते हुए) जयसेन नहीं आए ! सुदर्शी हैं। (सुलोचना से) दर्शनीय हैं ?

सुलोचना : (लज्जित होकर) मैं क्या कहूँ, स्वामिनी !

वासवदत्ता : कह दे, दूसरे कक्ष में मदयन्तिका उनकी प्रतीक्षा कर रही है।

सुलोचना : स्वामिनी ! वे आपकी सेवा में कुछ निवेदन करना चाहते हैं।

वासवदत्ता : मैं इस समय कोई निवेदन नहीं सुनना चाहती।

पूर्णिका : सम्भव है, स्वामिनी ! कोई राजकीय सूचना हो !

वासवदत्ता : राजकीय सूचनाएँ तो मेरे चरणों में जावक की पंक्तियाँ बनकर शयन करती हैं। किन्तु सुन लूँगी यह सूचना। सुलोचने ! तू आर्य सुदर्शी को कक्ष में भेज दे।

सुलोचना : जैसी आज्ञा।

पूर्णिका : इस बीच मैं दासियों को प्रबन्ध-सज्जा की आज्ञा दे दूँ ?

वासवदत्ता : वे सावधानी से कार्य में तत्पर हों।

पूर्णिका : अत्यन्त सावधानी से। (प्रस्थान)

[वासवदत्ता वीणा के तारों पर उँगलियाँ फेरती हुई कुछ सोचती है। सुदर्शी का प्रवेश।]

सुदर्शी : जन-कल्याणी देवि वासवदत्ता को प्रणाम !

वासवदत्ता : स्वागत, आर्य !

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदर्शी : मुझे आपकी सेवा में एक सूचना निवेदन करनी है।

वासवदत्ता : परिचय !

सुदर्शी : मेरा नाम सुदर्शी है। मैं नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन का मित्र हूँ।

वासवदत्ता : सुनकर प्रसन्न हूँ।

सुदर्शी : नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन इस समय आपकी सेवा में उपस्थित होने वाले थे।

वासवदत्ता : नहीं होंगे ?

सुदर्शी : उनके आने में कुछ विलम्ब होगा।

वासवदत्ता : कारण !

सुदर्शी : आज उन्होंने मधुवन में आपके अभिसार की व्यवस्था की है। माधवी और यूथिका की मालाओं से समस्त भूमि सुसज्जित की है। आम्र-कुंज के मध्य में विविध लताओं के बीच दुग्ध-धवल धुस्स विछाए गए हैं। उसके चारों ओर पाट-वस्त्रों के झीने आवरण हैं। सुगन्धि की मन्द लहरें चारों ओर वह रही हैं, चन्द्र की शुभ्र किरणों में वह चन्द्रलोक का उपवन ज्ञात होता है। वहीं चलने की व्यवस्था है।

वासवदत्ता : कवि मत वनो, आर्य ! इसकी सूचना उन्होंने पहले नहीं दी।

सुदर्शी : देवि ! क्षमा करें। कुतूहल में वे जीवन को कला समझते हैं। उन्होंने कहा था कि नगर की अपेक्षा प्रकृति की सुरम्य भूमि में ही देवि वासवदत्ता का सौन्दर्य वन-कुसुमों की भाँति सुसज्जित हो सकेगा।

वासवदत्ता : मैं सुनकर प्रसन्न हुई। आज मेरा अभिसार होगा। आर्य जयसेन समस्त सौन्दर्य पर जय प्राप्त करके ही रहेंगे।

सुदर्शी : आपको चलने में कोई कष्ट न हो, इसलिए उन्होंने विविध पुष्पों से सुसज्जित श्वेत कौशेय का मन्दघोष रथ आपकी सेवा में भेजा है।

वासवदत्ता : साधु ! उस रथ में मैं आर्य जयसेन के साथ ही आसन ग्रहण करूंगी।

सुदर्शी : यह आर्य जयसेन का सौभाग्य है।

वासवदत्ता : तो मुझे कितनी देर प्रतीक्षा करनी होगी ?

सुदर्शी : आपके अभिसार की व्यवस्था करने में ही उन्हें कुछ विलम्ब हुआ। यदि आपको कुछ प्रतीक्षा करनी पड़े तो क्षमा करें।

वासवदत्ता : सुख की प्रतीक्षा सुख से अधिक सुखदायक है।

सुदर्शी : आपकी जय, देवि ! उन्होंने एक प्रार्थना और की है।

वासवदत्ता : सुनूंगी।

सुदर्शी : आपकी वीणा भी अभिसार में साथ रहेगी।

वासवदत्ता : (मुस्कराकर) मेरे कण्ठ की वीणा पर्याप्त नहीं है ?

सुदर्शी : आपके कण्ठ का अनुकरण करने के लिए वीणा की आवश्यकता है।

वासवदत्ता : बड़े मधुर-भाषी हो, आर्य ! तो मैं प्रस्तुत रहूँगी।

सुदर्शी : मुझे भी आपके शृंगार के लिए जूही की पुष्प-मालाओं की व्यवस्था करनी है। आज्ञा चाहता हूँ।

वासवदत्ता : जाओ, आर्य ! सामन्त-कुमारों से भी कह दो, वे भी आज चन्द्र की ज्योत्स्ना

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मेरा नृत्य देखें। आर्य जयसेन को सूचना देना कि मेरे साथ मेरे गवाक्ष में झाँकने वाला यह चन्द्र भी उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।

सुदर्शी : जैसी आज्ञा, देवि ! (प्रस्थान)

वासवदत्ता : तो अभिसार की सज्जा है। (देखकर) दीपकों की शिखाएँ मन्द हो रही हैं। अब तुम्हें तेल नहीं चाहिए। दीपको ! तुम विश्राम करो। बुझ जाओ। आज तो चन्द्र की ज्योत्स्ना का ही राज्य रहेगा। उसकी किरण-मणियों के दीपक जलेंगे। मणिदीप। और उन्हें शरीर पर सजाकर नृत्य करेगी—नगर-लक्ष्मी वासवदत्ता। (वीणा के तारों को झनझना देती हैं।)

[पूर्णिका का प्रवेश।]

वासवदत्ता : पूर्णिके ! तू आ गई। तू भी मेरे साथ चलेगी ?

पूर्णिका : कहाँ, स्वामिनी ?

वासवदत्ता : मधुवन के अभिसार में।

पूर्णिका : कब चलना होगा, देवि ?

वासवदत्ता : आज ही, आज की ज्योत्स्ना में ही, इसी समय !

पूर्णिका : और आर्य जयसेन की स्वागत-सज्जा ! सब प्रबन्ध कर आई हूँ।

वासवदत्ता : मेरी स्वागत-सज्जा की है उन्होंने ! बड़े कौतुक-प्रिय हैं वे। दिन भर मेरे अभिसार के प्रबन्ध में रहे होंगे वे। मुझे प्रसन्न करने की कितनी चेष्टा करते हैं।

पूर्णिका : फिर उनके आगमन की सूचना असत्य थी।

वासवदत्ता : तू कुछ नहीं जानती, पूर्णिके ! उन्होंने सूचना इसलिए भिजवा दी थी कि मैं उनकी ही प्रतीक्षा में रहूँ, किसी अन्य सामन्त कुमार का स्वागत न करूँ। सन्ध्या-समय सूर्यमुखी पश्चिम की ओर ही घूमकर सूर्य को देखें।

पूर्णिका : आप बहुत प्रसन्न हैं, देवि !

वासवदत्ता : आर्य जयसेन बड़े कुशल प्रेमी हैं। यह जानकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तू कुशल प्रेमी की परिभाषा जानती है ?

पूर्णिका : मैं नहीं जानती, स्वामिनी !

वासवदत्ता : (हँसकर) तेरी पूर्णिमा के दिन जितने दूर हों, उतना ही अच्छा। सभी कुशल प्रेमी नहीं होते। पूर्णिके ! कुशल प्रेमी वह है जो शरीर से दूर रहकर हृदय के समीप आ जाए। (मन्द हँसी)

[शीघ्रता से मदयन्तिका का प्रवेश।]

मदयन्तिका : क्षमा करें, अय्या ! मैं बिना सूचना दिए ही आ गई।

वासवदत्ता : मदयन्तिका ! आज बिना सूचना दिए ही सब कार्य हो रहे हैं। कोई विशेष वार्ता ?

मदयन्तिका : आज आप अभिसार के लिए जा रही हैं ?

वासवदत्ता : नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन की प्रार्थना है। किसी दिन तुम भी अभिसार करोगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदयन्तिका : यह मेरा सौभाग्य नहीं है, अय्या !

वासवदत्ता : इतनी निराश मत बनो, मदयन्तिका। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम भी इस अभिसार की नक्षत्रमालिनी बनो।

मदयन्तिका : नहीं अय्या ! मैं एक प्रार्थना करने आई हूँ। **(पूर्णिका की ओर देखकर)** पूर्णिके सखी ! मेरी प्रार्थना में सहायिका बनो।

पूर्णिका : कैसी प्रार्थना ?

मदयन्तिका : अय्या ! नगर-श्रेष्ठि ने जो श्वेत कौशेय का रथ आपकी सेवा में भेजा है, उसे देखने मैं गई थी। बड़ा सुन्दर रथ है ! स्वर्ण-कलश से मण्डित, सुगन्धित पुष्प-मालाओं से सुसज्जित। उसमें चार श्वेत सैन्धव अश्व, जो स्वर्ण और मणियों से अलंकृत हैं, रथ ले जाने के लिए चंचल हो रहे हैं। ज्योत्स्ना में उनकी कलगी जल की उठी हुई फुहार जैसी ज्ञात होती है। यह सब देखकर जैसे ही मैं लौट रही थी वैसे ही···

पूर्णिका : नगर-श्रेष्ठि आर्य जयसेन···

मदयन्तिका : नहीं, पूर्णिके ! मैंने देखा, पास ही के शाल्मली वृक्ष के नीचे आचार्य उपगुप्त ! उन्हें मेरे पैर की ठोकर लगी।

वासवदत्ता : (आश्चर्य से) ठोकर ! आचार्य उपगुप्त को !

मदयन्तिका : हाँ, अय्या ! आचार्य उपगुप्त शयन कर रहे हैं। नग्न भूमि पर। कोई शैया नहीं, कठोर भूमि पर, जिस पर शाल्मली काष्ठ-शुक्तियाँ पड़ी हुई हैं वे शयन कर रहे हैं। कुश-कंटकों पर चलने के कारण उनके चरण क्षत-विक्षत हो रहे हैं। इस-लिए वे आज भिक्षा के लिए भी नहीं निकले।

वासवदत्ता : तो आचार्य उपगुप्त ने आज भोजन नहीं किया ?

मदयन्तिका : नहीं, अय्या ! उन्होंने कल से भोजन नहीं किया।

वासवदत्ता : पूर्णिके ! तू आचार्य उपगुप्त को मधुकरी दे आ।

पूर्णिका : जो आज्ञा।

मदयन्तिका : अय्या ! मैंने निवेदन किया कि मैं आचार्य के लिए यहीं मधुकरी ले आती हूँ किन्तु उन्होंने निवेदन स्वीकार नहीं किया।

वासवदत्ता : कारण !

मदयन्तिका : उन्होंने कहा कि भिक्षु द्वार पर ही मधुकरी ग्रहण करता है; अन्यत्र नहीं।

वासवदत्ता : तो वे द्वार पर कैसे आ सकेंगे ?

मदयन्तिका : मैंने उनसे प्रार्थना की। वे कठिनाई से खड़े हुए। मैंने सहायता देनी चाही। उन्होंने स्वीकार नहीं की। चलकर वे द्वार तक आ गए हैं।

वासवदत्ता : द्वार तक आ गए हैं ! तो मैं उनका स्वागत करूँगी !

पूर्णिका : आज आपका अभिसार है, स्वामिनी !

वासवदत्ता : हाँ, अभिसार है तभी तो जा रही हूँ। पूर्णिके ! तू आसन ठीक कर, मैं उन्हें कक्ष में लाऊँगी !

पूर्णिका : नगर-श्रेष्ठि जयसेन यदि इसी समय आए तो वे निराश होंगे, स्वामिनी !

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासवदत्ता : मेरे स्थान की पूर्ति मदयन्तिका करेगी। मेरे पास अब अधिक समय नहीं है। (प्रस्थान)

पूर्णिका : मदयन्तिका, मैं नहीं जानती थी कि तुम में इतनी ईर्ष्या है।

मदयन्तिका : तुम्हें मेरी आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं है, पूर्णिके !

पूर्णिका : स्पष्ट बात करने का सबको अधिकार है, मदयन्तिका ! जब तुमने देखा कि नगर-श्रेष्ठि ने अभिसार का प्रबन्ध किया है तो तुम इसे सहन नहीं कर सकीं। आचार्य उपगुप्त का प्रसंग ले आईं। उस प्रसंग का यह समय नहीं था। तुम उपगुप्त को स्वयं अपने कक्ष में ले जा सकती थीं, स्वामिनी से कहने की क्या आवश्यकता थी ?

मदयन्तिका : इसलिए कि अय्या को इस बात की सूचना होनी चाहिए।

पूर्णिका : किन-किन बातों की सूचना तुम स्वामिनी को देती हो ! मैं तुम्हारी नीति समझती हूँ। स्वामिनी को उपगुप्त की सेवा में छोड़कर तुम नगर-श्रेष्ठि के साथ अभिसार करतीं।

मदयन्तिका : तुम चुप रहो, पूर्णिके !

[आचार्य उपगुप्त के साथ वासवदत्ता का प्रवेश।]

वासवदत्ता : भन्ते ! दासी पर आपने बड़ी कृपा की ! आप किसी के कक्ष में नहीं जाते किन्तु मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर आपने यह कृपा की।

मदयन्तिका : वास्तव में बड़ी कृपा की, अय्या ! आचार्य मानव-मात्र पर एक-सी कृपा करते हैं। उनके समक्ष न कोई छोटा है, न बड़ा। उनकी गति सर्वत्र है।

वासवदत्ता : मैं आचार्य का उपदेश ग्रहण करूँगी ! पूर्णिके ! आचार्य के लिए आसन बिछा दे और तू जा।

पूर्णिका : जो आज्ञा !

[आसन बिछाकर आचार्य उपगुप्त को 'भन्ते, प्रणाम' कहकर चली जाती है।]

मदयन्तिका : मैं भी अय्या से जाने की आज्ञा चाहती हूँ ?

वासवदत्ता : हाँ, नगर-श्रेष्ठि से मेरा नमस्कार कहना !

मदयन्तिका : उन्होंने मिलने की कृपा की तो कह दूँगी। भन्ते, प्रणाम करती हूँ। (प्रस्थान)

वासवदत्ता : मैं मदयन्तिका का आभार मानती हूँ कि उसने आपकी सूचना मुझे दी। आपके नाम से तो मेरे कान अनेक बार पवित्र हो चुके हैं, किन्तु नेत्रों को आज ही दर्शनों का वरदान प्राप्त हुआ।

उपगुप्त : देवि ! आरोग्य लाभ करो ! नेत्रों द्वारा जो रंजनीय रूप देखा जाता है, वह हिंसक है और उसके सामने तुम्हारे नेत्र हरिण के समान हैं। रंजनीय रूप के जाल में बँधकर नेत्र इच्छानुसार विहार नहीं कर सकेंगे, उन्हें बन्धन में मत डालो, स्वाधीन रहने दो !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासवदत्ता : भन्ते ! आपकी वाणी अमर है। आपकी मनोहर कान्ति में नेत्र के हरिण यदि सदा के लिए उलझ जाएँ तो इससे अधिक नेत्रों का क्या भौभाग्य होगा ? भन्ते ! विराजिए, आसन प्रस्तुत है।

उपगुप्त : देवि ! तृणों का आसन ही मेरा आसन है। सुख का ध्यान महाताप और महा-दाह उत्पन्न करता है। आनन्दमय जीवन का सिंहासन ही इस तृण के आसन पर है। इसलिए मैं इसी में समर्पित हूँ।

वासवदत्ता : आप धन्य हैं, भन्ते ! मदयन्तिका ने कहा था कि आप भूमि पर शयन कर रहे थे। क्या आपके शरीर की गौर कान्ति भूमि पर लुंठित होने योग्य है ? भन्ते ! यदि आपकी यह गौर कान्ति भूमि से मैली होती है, तो इन कौशेय वस्त्रों को अग्नि में होम कर देना चाहिए।

उपगुप्त : देवि ! आरोग्य दृष्टि से देखो। जल पर जब किरण पड़ती है तो जल भी रजत रूप धारण करता है, उसी भाँति इस शरीर पर जब यौवन की किरण पड़ती है तो शरीर में कान्ति उत्पन्न हो जाती है। किन्तु किरण जब अस्त हो जाती है तो शरीर पर श्याम रेखाएँ पड़ जाती हैं। तो शरीर में कान्ति नहीं है, वह तो अवस्था की कान्ति है और अवस्था परिवर्तनशील है। तब शरीर का महत्त्व कैसा ? चाहे वह गौर हो, चाहे श्याम। वह भी जीवन का एक आसन है। सुख में यदि तुम्हारी आसक्ति नहीं है तो शरीर का आसन सर्वोत्तम है।

वासवदत्ता : सत्य है भन्ते !

उपगुप्त : और भूमि ! वह तो इस शरीर की माता है। यह महापृथ्वी गम्भीर है। पृथ्वी छोड़कर यह कोई दूसरी वस्तु नहीं हो सकती। कोई पुरुष हाथ में कुदाल लेकर आए और मैं इस पृथ्वी को अ-पृथ्वी करूँगा तो क्या वह पृथ्वी को अ-पृथ्वी कर सकता है ? वह यहाँ खोदे, वहाँ खोदे, मिट्टी को यहाँ फेंके, वहाँ रक्खे और कहे, घोषणा करे कि मैंने पृथ्वी को मिटा दिया तो क्या देवि ! उस पुरुष ने इस महा-पृथ्वी को मिटा दिया ?

वासवदत्ता : नहीं, भन्ते !

उपगुप्त : इसलिए यह महापृथ्वी गम्भीर है। इसे कोई मिटा नहीं सकता। उस पृथ्वी से शरीर का निर्माण है, उसी पृथ्वी में शरीर का विनाश है। जब शरीर पृथ्वी का अंग है तो पृथ्वी पर शयन करने में शरीर को कष्ट कैसा ? अशान्ति कैसी ? पृथ्वी पर तो शयन करना वैसा ही है जैसा शिशु का माता के हृदय पर सो जाना।

वासवदत्ता : किन्तु भन्ते ! मुझे कष्ट होता है कि इतना सुन्दर और दृढ़ शरीर पृथ्वी का होकर पृथ्वी के वैभव पर नहीं, उसकी भस्म पर विश्वास रखता है ! मैं तो निवेदन करती हूँ कि यदि अवस्थाओं के अनुसार शरीर का उपयोग नहीं है तो अवस्थाओं की सृष्टि ही क्यों की गई ! भन्ते ! आपके ज्ञान-सूर्य के सामने मैं अन्धकार की बातें भले ही करूँ, किन्तु भगवान् सूर्य भी सन्ध्या-समय अन्धकार में निवास करने चले जाते हैं। आज आप इस कक्ष में निवास कीजिए।

उपगुप्त : मैं एक होकर अनेक कैसे हो जाऊँ, देवि ? आविर्भाव और तिरोभाव में एक

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ कैसे विचरण करूँ ? असन्तोष में सन्तोष कैसे प्राप्त करूँ ? यदि मैं कहूँ कि इस कक्ष को शालमली वृक्ष की भूमि बना दो । बनाओगी ? नहीं, देवि ! वस्तुओं में वासनाओं के केन्द्र हैं। मैं उन्हें अपने चित्त से देखकर जानता हूँ । आकाश में पक्षी उड़ते हैं तो पृथ्वी पर मनुष्य क्यों नहीं उड़ते ? प्रत्येक का धर्म और स्वभाव गुणों पर निर्भर है । अग्नि-मुख में पड़े हुए स्वर्ण में अन्य-अन्य धातुएँ मिलानी नहीं चाहिए, अन्य धातुएँ निकालनी चाहिए ।

वासवदत्ता : तो भन्ते ! ऐसे स्वर्ण का आभूषण कितना दिव्य होगा ! उस स्वर्ण के आभूषण से मेरा जीवन धन्य हो उठेगा । आपके वचनों में कितना आकर्षण, आपके नेत्रों में कितनी ज्योति, आपकी दृष्टि में कितनी करुणा है ! फिर-फिर···वह करुणा मेरे लिए क्यों नहीं है, देव ? वह ज्योति मेरे प्राणों के समीप क्यों नहीं आती ?

उपगुप्त : यह ज्योति किसी समय आ जाएगी । इस समय यदि कष्ट न हो, तो केवल मधुकरी, एक बार की मधुकरी से ही मेरा सत्कार हो ।

वासवदत्ता : जैसी आज्ञा, भन्ते ! इस रात्रि में जाने से आपको कष्ट होगा ।

उपगुप्त : जिस भाँति देवी को अभिसार में जाते समय कष्ट नहीं होगा । उसी भाँति मुझे भी कोई कष्ट नहीं होगा ।

वासवदत्ता : किन्तु भन्ते ! आपके चरणों पर अपना अभिसार निछावर करती हूँ । मेरी प्रार्थना है कि इस समय आप ठहर जाएँ ।

उपगुप्त : अभी मेरे ठहरने का समय नहीं आया, देवि ! जिस दिन समय आएगा उस दिन मैं स्वयं तुम्हारे समीप पहुँच जाऊँगा ।

वासवदत्ता : वह समय कब होगा, प्रभु !

उपगुप्त : प्रतीक्षा में आकर्षण होता है, देवि ! अपने सुख में मेरी प्रतीक्षा न करना । तुम्हारे अभिसार में विलम्ब हो रहा है । इस समय जहाँ तुम्हें जाना है, वहीं जाओ ।

वासवदत्ता : (शिथिल स्वरों में) जैसी आज्ञा ! मधुकरी समर्पित कर दूँ । (पुकारकर) पूर्णिके !

[नेपथ्य से : 'आई स्वामिनी !']

वासवदत्ता : भन्ते ! कभी-कभी इस चरण-सेविका का स्मरण करें। आपके आने का दिन जितने शीघ्र होगा, उतने ही निकट मेरा सौभाग्य होगा ।

[पूर्णिका का प्रवेश ।]

पूर्णिका : आज्ञा, स्वामिनी !

वासवदत्ता : भन्ते की सेवा में मधुकरी !

पूर्णिका : मैं मधुकरी ले आई हूँ, स्वामिनी ।

वासवदत्ता : भन्ते की झोली में डाल दे और इन्हें शालमली वृक्ष तक पहुँचा दे ।

पूर्णिका : जैसी आज्ञा !

वासवदत्ता : भन्ते के श्री चरणों में प्रणाम ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपगुप्त : कल्याण हो !

[उपगुप्त और पूर्णिका का प्रस्थान ।]

वासवदत्ता : हिम-शृंग की भाँति अचल पुरुष ! उपगुप्त !! वाणी से नहीं—आत्मा से साक्षात्कार करते हैं, कितने आकर्षक—कितने सौम्य ! शुभ्र ललाट पर चन्द्र के समान स्निग्ध शान्ति ! आज तक वासवदत्ता नर्तकी थी—आज उसने अपने को नारी अनुभव किया । नारी ! मुझे पराजित कर वे चले गए ! आज मेरा सतीत्व तरल होकर उनके चरणों को धोने के लिए उमड़ पड़ा ! कुसुम से भी अधिक कोमल और वज्र से भी अधिक कठिन ? आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ !

किन्तु···किन्तु मेरे यौवन और सौन्दर्य का इतना अपमान ! कितने नगर-श्रेष्ठि और सामन्त-पुत्र मेरे चरणों से टकराए और मैंने उन्हें ठोकर मार दी ! किन्तु आज···आचार्य उपगुप्त···ओह ! यह शरीर जल रहा है ! मस्तक में क्रान्ति विखर गई है । मैं इस पुरुष-जाति से पूरा बदला लूंगी । जितने पुरुष हैं उन्हें चरणों के नीचे पीस दूंगी । वासवदत्ता नारी की समाधि पर विश्व-विजयिनी नर्तकी बनकर नृत्य करेगी ।

[पूर्णिका का प्रवेश ।]

पूर्णिका : स्वामिनी ! आचार्य को पहुँचाने नीचे गई तो नगर-श्रेष्ठि जयसेन आपके कक्ष में आने को उत्सुक थे। सुलोचना ने उनसे कह दिया था कि आचार्य ऊपर हैं । वे नीचे प्रतीक्षा कर रहे हैं।

वासवदत्ता : और मदयन्तिका कहाँ है ? वे उसे अभिसार के लिए नहीं ले गए ?

पूर्णिका : मैंने यह भी नगर-श्रेष्ठि से पूछा था। उन्होंने कहा कि मैंने मदयन्तिका की प्रार्थना ठुकरा दी । यदि अभिसार होगा तो एकमात्र नगर-लक्ष्मी वासवदत्ता का !

वासवदत्ता : साधु जयसेन ! साधु ! पूर्णिके, शीघ्र ही आर्य जयसेन को कक्ष में आने दे। आज मेरा ही अभिसार होगा ।

पूर्णिका : जैसी आज्ञा, स्वामिनी ! (प्रस्थान)

वासवदत्ता : आज यह वीणा इस प्रकार गुंजित हो कि आचार्य उपगुप्त का सौन्दर्य और यौवन इसमें बुलबुले की भाँति बह जाए। सदैव के लिए बह जाए ! (वीणा के तारों की ध्वनि) मैं विलासिनी हूँ तो मेरा विलास संगीत से दिशाओं को झकझोर दे और सारी दिशाएँ मेरे संगीत के स्वर में गूँजकर एक हो जाएँ । एक—केवल—एक··· (वीणा के तारों की झंकार)

[जयसेन का प्रवेश ।]

जयसेन : वासवदत्ते !

वासवदत्ता : स्वागत, आर्य ! अधिक प्रतीक्षा करनी पड़ी !

जयसेन : तुम्हारी छोटी प्रतीक्षा भी अधिक ज्ञात होती है, वासव ! किन्तु तुम्हारे वाक्य मुझे स्मरण हैं—सुख की प्रतीक्षा सुख से अधिक सुखदायक है । (हल्की हंसी)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासवदत्ता : कृतार्थ हुई, किन्तु आचार्य उपगुप्त तो कहते हैं कि प्रतीक्षा करनी ही नहीं चाहिए।

जयसेन : आचार्य के उपदेश बौद्ध भिक्षुओं के लिए हैं, वासव ! जन-कल्याणी वासवदत्ता के लिए नहीं। इधर देखो, वासव ! तुम्हारे कंठ के लिए मैंने यह जूही की माला अपने हाथों से गूँथी है।

वासवदत्ता : मैं कृतार्थ हुई, आर्य !

जयसेन : तो इसे भी अपने कण्ठ की कमनीयता से कृतार्थ करो।

वासवदत्ता : इसे अपने हाथों से ही कण्ठ में पहिना दें।

जयसेन : किसी समय कामदेव ने भी रति को अपने हाथों से माला पहिनाई थी। यह लो, कण्ठ में समर्पित है।

[माला पहिनाते हैं। पहिनाते समय कंठ का स्पर्श।]

वासवदत्ता : ओह ! माला पहिनाने में भी कला ! आर्य जयसेन कामदेव का कौशल भी सीखे हुए हैं !

जयसेन : क्योंकि तुम आज अभिसार की रति हो, महामाया हो !

वासवदत्ता : महामाया ! (हँसती है) किन्तु ये फूल तो इतने छोटे हैं ! देखिए, जुही के ये फूल ! महा और लघु का विचित्र संयोग है। किन्तु देखिए—ये फूल इतने छोटे होते हुए भी अपने प्राणों में कितनी मादक सुगन्धि लिए हुए हैं !

जयसेन : सत्य है, तभी तो मैंने जान-बूझकर यह माला बनाई।

वासवदत्ता : जान-बूझकर !

जयसेन : हाँ, वासव ! तुम्हारे सुरभित कण्ठ में पड़कर जुही के ये पुष्प और भी कितने छोटे हो गए हैं !

वासवदत्ता : साधु, आर्य ! साधु, आप वास्तव में सौन्दर्य के पारखी हैं। आज अभिसार में मदयन्तिका साथ नहीं रहेगी ?

जयसेन : उसका अभिमान तो देखो, वासव ! वह तुम्हारे बिना मेरे अभिसार में भाग लेना चाहती है ! मैंने उसका तिरस्कार कर दिया।

वासवदत्ता : तिरस्कार कर दिया ! हाय ! उसी बेचारी ने तो उपगुप्त को मेरे कक्ष में लाकर अपने एकाकी अभिसार की भूमिका रची थी और आपने उसका तिरस्कार कर दिया ! जाने दीजिए, आर्य ! वह कलापारखी आर्य जयसेन के तिरस्कार के योग्य भी नहीं है।

जयसेन : नहीं मैं इसकी व्यवस्था करूँगा। लघु होकर महान् होने का दंभ जीवन में अनर्थ उत्पन्न कर सकता है।

वासवदत्ता : भूल जाइए, आर्य ! वह लघु है और आप इतने महान् हैं और यह चन्द्र भी महान् है जिसने अपनी चाँदनी से मेरे अभिसार को अमृत से नहला दिया है।

जयसेन : (मुस्कराकर) : तुम बातें बहुत अच्छी करती हो, वासव ! मैं भी एक बात कहूँ ! आकाश में तो एकादशी का चन्द्र है किन्तु मेरे समीप सोलह कलाओं से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पन्न पूर्ण चन्द्र! (दोनों की मधुर हँसी)

वासवदत्ता : प्रेम का पुरस्कार पाने वाली बातें कहते हो, आर्य ! तुम्हारे इस मधुर कण्ठ को माध्वीक सुरा का चषक उपहार में दूं ?

जयसेन : मधुवन में तो अनेक मधु-द्रव्यों के चषक तुम्हारे अधरों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यदि कष्ट न हो तो ! हम चलें !

वासवदत्ता : आह, मैं तो मधुर बातों में ही उलझ गई थी। (पुकारकर) पूर्णिके !

[नेपथ्य से : 'आई स्वामिनी !']

वासवदत्ता : अभिसार में पूर्णिका मेरी सहचरी रहेगी। आपको कोई आपत्ति तो न होगी ?

जयसेन : तुम्हारी इच्छा सर्वोपरि है, वासव !

[पूर्णिका का प्रवेश।]

पूर्णिका : आज्ञा, स्वामिनी !

वासवदत्ता : तू बाहर ही रह गई थी !

पूर्णिका : स्वामिनी ! आपके अभिसार की वस्तुएँ रथ पर सुसज्जित कर रही थी।

वासवदत्ता : और अपनी वस्तुएँ सुसज्जित कर लीं ?

पूर्णिका : मेरी वस्तुएँ कौन सी हैं ! मेरी तो एकमात्र वस्तु आप हैं।

वासवदत्ता : मैं वस्तु हूं ! (अट्टहास)

जयसेन : बाहर सामन्त-कुमार और अन्य नगर-श्रेष्ठि प्रतीक्षा में होंगे। मैं गगन-तूर्य का आदेश दे रहा हूँ।

वासवदत्ता : जैसी आर्य की इच्छा !

जयसेन : तुम मेरे साथ ही नीचे चलोगी, वासव ! मैं अभी आया। (प्रस्थान)

वासवदत्ता : पूर्णिके ! अभिसार में मैं और मेरी वीणा दोनों ही तेरे हाथों में रहेंगी। तू समझी ?

पूर्णिका : समझती हूँ, देवि !

वासवदत्ता : माध्वीक सुरा के चषक से मेरे कण्ठ का सौभाग्य जगा दे।

पूर्णिका : जैसी आज्ञा।

वासवदत्ता : एक चषक आर्य जयसेन के लिए भी। वे आ रहे होंगे। हम दोनों साथ ही साथ चलेंगे।

[नेपथ्य में जन-कल्याणी वासवदत्ता की जय !]

[तूर्य-नाद]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

(तीस वर्ष के बाद)

स्थान : नगर-प्राचीर के बाहर **समय : अर्धरात्रि**

[भयानक सन्नाटा। बीच-बीच में कुत्ते और सियारों के शब्द। कभी वायु जोर से चलकर वृक्षों को झकझोर देती है, जिससे निस्तब्धता और बढ़ जाती है। बीच-बीच में दूर से आता हुआ बाँसुरी का मन्द स्वर। सियारों के शब्द के बाद कराहने की आवाज आती है। एक पेड़ के नीचे वृद्धा वासवदत्ता जर्जर-शरीर पड़ी है। उसके अंग पर विषाक्त व्रण निकले हुए हैं और पीड़ा से वह कराह रही है। उसका समस्त शरीर काला पड़ गया है।]

वासवदत्ता : **(सिसकी लेकर कराहते हुए)** आह ! दारुण पीड़ा है। अंगों के भीतर ज्वाला ! भयानक विष की ज्वाला जल रही है ! फोड़ों से सारा अंग भर गया है। मैंने कितने पाप किए हैं, प्रभु ! कितने पाप···आह ! आज मेरे समीप कोई नहीं है ! ···मुझे नागरिकों ने प्राचीर के बाहर लाकर डाल दिया है जिससे मेरा विष किसी को न लगे ! विष-विष···। तुम में विष नहीं है, नागरिको ? तुम्हारी वाणी का विष मेरे विष से भयानक है ! भयानक···हलाहल से भयानक। **(वंशी की तान सुन पड़ती है)** और यह अमृत की वर्षा कौन कर रहा है ! ···मैंने भी अमृत की वर्षा की थी। मदयन्तिका···मदयन्तिका की दुर्बल रागिनी पर वंशी **(कराह-भरी हँसी हँसकर)** वंशी के स्वर मैं बजा रही हूँ—मैं ही बजा रही हूँ। **(चौंककर)** ऐं, यह किसकी छाया है—पूर्णिके ! ···तू वहाँ खड़ी क्या कर रही है ? मेरे समीप आ···**(जोर से कराहते हुए)** पूर्णिके ! **(शिथिल स्वर से)** कोई नहीं है। पेड़ की झुकी हुई डाल है। यह पूर्णिका नहीं बन सकती···नहीं बन सकती··· मैंने तुझसे एक बार कहा था—कहीं मेरी कलाएँ घट जाएँ ! पूर्णिके ! अमावस्या हो जाए ! और आज अमावस्या हो गई, पूर्णिके ! अमावस्या ! घोर अमावस्या !! **(सिसकियाँ लेने लगती है)** वासवदत्ता अब कहाँ है, वासवदत्ता ! जन-कल्याणी वासवदत्ता ! उसकी मधुयामिनी···अभिसार। नहीं, नहीं। **(सुनते हुए)** ऐं, तूर्य का नाद सुन पड़ता है।···वह हुआ तूर्य-नाद। मेरे श्वेत-कौशेय का···रथ···फूलों की मालाएं···शीघ्र लाओ, जयसेन ! **(आदेश के स्वरों में)** शीघ्र लाओ ! **(रुककर)** हाय ! ···मैं किससे कह रही हूँ ! मेरे चारों ओर सूखी लताएँ झूल रही हैं ! जर्जर वासवदत्ता के गले में इन्हें ही डाल दो **(जोर से चीखकर)** डाल दो··· नहीं तो मर जाऊँगी। **(स्वर धीमा होता जाता है)** मर···जाऊँगी···मर जाऊँगी। मरने से पहले आचार्य उपगुप्त से क्षमा नहीं माँग सकी। भन्ते ! तुमने कहा था किरण जब अस्त हो जाती है तो शरीर पर श्याम रेखाएँ पड़ जाती हैं। हाँ, पड़ जाती हैं। देखो मेरा शरीर कितना काला हो गया ! सोने की भाँति चमकता हुआ वासवदत्ता का शरीर जली हुई लकड़ी की भाँति हो गया। देव !

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अधजले शरीर को अब तुम्हीं जला दो ! आह, कितनी पीड़ा है ! विलासी शरीर का अन्त···आज शृगालों के बीच में··· (सिसकती है । पदचाप की ध्वनि) मेरा रुदन सुनने के लिए कोई आ रहा है । जी भर कर सुन लो—आज वासवदत्ता रुदन कर रही है ! (सिसकी)

[आचार्य उपगुप्त का प्रवेश ।]

उपगुप्त : वासवदत्ता !

वासवदत्ता : (स्वर सँभालते हुए) कौन पुकारता है ? मुझे कोई नहीं पहिचानता !

उपगुप्त : मैं पहिचानता हूँ, देवि !

वासवदत्ता : देवि ! 'देवि' कहकर कौन पुकारता है ? परिहास न करो, नागरिक !

उपगुप्त : मैं उपगुप्त हूँ !

वासवदत्ता : आचार्य ! (सिसककर रोने लगती है) आचार्य ! आप कहाँ ? प्रभु ! प्रभु ! आज आपकी वासवदत्ता को वृक्ष के नीचे···वृक्ष के नीचे··· (सिसकती है ।)

उपगुप्त : मेरी गोद में अपना सिर रख लो, देवि ! मेरे कमंडल से शीतल जल पी लो।

वासवदत्ता : आपकी शीतल वाणी से ही सब कष्ट दूर हो गए, प्रभु ! आज दासी ने आपको पा लिया है ! अब वह अपने आचार्य को नहीं छोड़ेगी···नहीं छोड़ेगी ।

उपगुप्त : तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा, देवि ! नागरिकों से पता पाया कि तुम किसी वृक्ष के नीचे डाल दी गई हो । खोजते-खोजते तुम्हें यहाँ पाया ।

वासवदत्ता : प्रभु ! देखो मैं क्या हो गई हूँ ! सारा शरीर···

उपगुप्त : ओह ! सारे शरीर पर फोड़े उठ आए हैं । लाओ, इस शीतल चन्दन का लेप कर दूँ । तुम्हारी इस दशा की सूचना मुझे मिल गई थी ।

वासवदत्ता : प्रभु ! वासवदत्ता पापिनी है । तुम दयामय हो प्रभु ! तुम मेरे समीप आ गए···

उपगुप्त : तुम्हारे अभिसार की रात, मैं तुम्हारे समीप नहीं रुक सका था, देवि ! मैंने कहा था जिस दिन समय आएगा, उस दिन मैं स्वयं तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा ।

वासवदत्ता : (करुण स्वर में) और मेरे प्रभु आ गए ! ओह प्रभु ! तुम्हारे हाथ का स्पर्श चन्दन से भी अधिक शीतल है । अब मुझे अपने साथ ले चलो, प्रभु !

उपगुप्त : अवश्य ले चलूँगा । मेरे साथ कहो ।

[वासवदत्ता कराहते स्वरों से दुहराती है—]

बुद्धं सरणं गच्छामि
धम्मं सरणं गच्छामि
संघं सरणं गच्छामि ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यश्री

पात्र-परिचय

पुरुष :

सम्राट हर्षवर्द्धन : स्थाण्वीश्वर के सम्राट्

दिवाकर : विन्ध्याटवी आश्रम के आचार्य

माधव : सम्राट् हर्षवर्द्धन का सेवक

सुबन्धु, तारक : आचार्य दिवाकर के शिष्य

भिक्षु, शिष्य, सैनिक आदि

स्त्री :

राज्यश्री : सम्राट् हर्षवर्द्धन की बहिन

मेनका, विराजिका : राज्यश्री की सहचरियाँ

शिप्रा : चित्रक की पत्नी

समय : प्रभात

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय : प्रभात

[विन्ध्याटवी में दिवाकर मित्र का आश्रम । प्रभात की अनुपम शोभा-श्री । पक्षियों का कलरव । तारक मन्द स्वर में पाठ करते हुए]

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

(धीरे-धीरे) इस लोक में कर्म करते हुए भी सौ वर्षों तक जीने इच्छा करे । अतः तेरे लिए इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है कि तू कर्म में लिप्त न हो ।

सुबन्धु : (समीप आते हुए) आयुष्मन् !

तारक : क्या है, सुबन्धु ?

सुबन्धु : एक बात कहना चाहता हूँ ।

तारक : कहो !

सुबन्धु : तुम मंत्र-पाठ करते हो । अग्निहोत्र करने जा रहे हो, पर तुम्हें इस बात का दुःख नहीं है कि रात्रि में विन्ध्याटवी की पूर्वी सीमा पर इतनी बड़ी आग लगी थी ?

तारक : आग लगी थी ? यदि मैं इन्द्र होता तो पर्जन्यों से धारासार वृष्टि करता ।

सुबन्धु : किन्तु जब तुम इन्द्र नहीं बन सके तो मनुष्यत्व का अभिमान रखने वाले तारक ! तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं रहा ?

तारक : कर्तव्य ? वन में जब आग लग जाए तो मनुष्य किस कर्त्तव्य का पालन करे ?

सुबन्धु : तुम भूल करते हो, तारक ! मनुष्य का कर्त्तव्य जीवन की रक्षा करना है । तुम वन की आग नहीं बुझा सकते; किन्तु आग में जलते हुए प्राणियों की रक्षा तो कर सकते हो ।

तारक : किस तरह ? भगवान् की प्रार्थना करते हुए ?

सुबन्धु : नहीं ! पेड़ पर न जाने कितने पक्षि-शावक होंगे जो उड़ना नहीं जानते । अपने नीड़ों में ही वे जलकर मर जाएँगे । उन्हें तुम नीड़ समेत बचा सकते हो ! चारों दिशाओं में आग लगने पर एक दिशा की आग को फैलने से रोका जा सकता है, जिससे उसी दिशा से जीव-जन्तु भाग सकें ।

तारक : (हँसकर) तुम बौद्ध हो न, सुबन्धु !

सुबन्धु : बौद्ध होना जीवन का सत्य है । तथागत ने आर्य सत्य का आख्यान किया है । दुःख, दुःख-समुाय, दुःख-निरोध, दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा । इन्हीं से चार आर्य सत्यों का आख्यान तथागत ने किया ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

तारक : शास्त्रार्थ न करो, सुबन्धु ! मुझे अग्निहोत्र के लिए देर हो रही है ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबन्धु : मुझे क्षमा करना, तारक ! तुम्हारे अग्निहोत्र में बाधक हुआ। वह तो आचार्य दिवाकर मित्र अभी विन्ध्याटवी से लौटे, तो उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा कि आज की अग्नि भयानक थी। उन्होंने न जाने कितने पक्षि-शावकों के प्राणों की रक्षा की।

तारक : अच्छा, यह बात थी ! हाँ, आचार्य तो संध्या को ही लौटने को थे। हम सब उनके सम्बन्ध में चिंतित थे।

सुबन्धु : वे उषाकाल में आए। उन्होंने कहा कि रात भर वे चारों शिष्यों के साथ अग्नि का मार्ग रोकते रहे और अग्नि-शून्य दिशा से जीव-जन्तुओं को भागने की सुविधा देते रहे।

तारक : वे आश्रम में सूचना भिजवा देते तो अनेक शिष्य पहुँच जाते।

सुबन्धु : मैंने भी उनसे यही निवेदन किया; किन्तु उन्होंने कहा कि उनके चार शिष्य पर्याप्त थे। फिर जब तक एक शिष्य समाचार देता और अन्य शिष्य आते, तब तक न जाने कितने जीवों की हानि हो जाती।

तारक : तो आचार्य को बहुत कष्ट हुआ।

सुबन्धु : वे कहते हैं कि यही मेरा जीवन-यज्ञ है।

तारक : तो इस जीवन-यज्ञ के सम्बन्ध में···

[एक भिक्षु के साथ एक स्त्री का प्रवेश।]

स्त्री : (करुण स्वर में) नहीं ! नहीं ! मैं किसी को कष्ट नहीं देना चाहती !

भिक्षु : कष्ट कैसा, देवि ! आचार्य दिवाकर मित्र के आश्रम में कष्ट नहीं है। यहाँ आकर तुम्हारा कष्ट भी दूर हो जाएगा।

स्त्री : मेरे हाथ में यह कृपाणी और मेरे वस्त्र में रक्त के धब्बे देखकर इस पवित्र आश्रम में कोई क्या कहेगा !

तारक : यही कि आप साक्षात् दुर्गा हैं, देवि। आपका शुभ नाम क्या है ?

भिक्षु : इनका शुभ नाम शिप्रा है। एक डाकू का आक्रमण निष्फल बनाकर इन्होंने उसी पर आक्रमण किया। उसके शरीर का रक्त तो इनकी कृपाणी और वस्त्र पर रह गया; पर वह भाग गया।

तारक : आप वास्तव में दुर्गा हैं। वह डाकू कौन था, देवि ?

शिप्रा : मेरे पतिदेव विदेश गए हुए हैं। मैं अकेली वनग्रामक में रहती थी। एक दस्यु ने मेरे एकाकीपन का लाभ उठाकर मेरा धन चुराने के लिए रात्रि में मेरे घर में प्रवेश किया।

सुबन्धु : विन्ध्याटवी में भी दस्यु हैं !

शिप्रा : मैं जाग रही थी। मुझे जागते देखकर दस्यु ने मुझ पर प्रहार किया, किन्तु सिरहाने रखी हुई पति की तलवार से मैंने आक्रमण रोक लिया।

तारक : साधु-साधु, देवि !

शिप्रा : मैंने उसे घर से निकल जाने को कहा। जब वह नहीं हटा तो मैंने उस पर प्रहार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। उसके शरीर से रक्त की धारा वह निकली; किन्तु वह भाग गया।

तारक : तुम धन्य हो, देवि ! तुम्हें तो कोई चोट नहीं लगी ?

शिप्रा : मेरे पैरों में कुछ चोटें अवश्य लगी हैं; किन्तु अधिक नहीं ! मेरे वस्त्र उसके रक्त से अवश्य भीग गए हैं। मैं इसकी सूचना अटवी-सामंत व्याघ्रकेतु को देने के लिए जा रही थी कि महात्मा भिक्षु मुझे यहाँ ले आए।

सुबन्धु : आपकी क्या सेवा की जाए, देवि ?

भिक्षु : मैंने सोचा, दस्यु से संघर्ष करने में देवी का कंठ सूख गया होगा। सो आश्रम में ले जाकर इन्हें शीतल जल पिला दूँ !

सुबन्धु : ठीक किया, भन्ते ! (शिप्रा से) देवि ! शीतल जलपान कर कुछ विश्राम करें फिर अटवी-सामन्त के समीप जावें। आचार्य दिवाकर मित्र का आश्रम है। यहाँ किसी प्रकार की असुविधा नहीं होगी।

शिप्रा : धन्यवाद। मैं शीघ्र ही सामन्त से परिस्थिति का निवेदन करना चाहती हूँ। यदि इस पर ध्यान न दिया जाएगा तो अनेक स्त्रियों के लिए संकट उपस्थित हो सकता है।

सुबन्धु : आपका कथन यथार्थ है। यदि आप आवश्यक समझें तो मैं भी साथ चलूँ।

शिप्रा : नहीं, धन्यवाद ! मुझे कोई भय नहीं है, आप कष्ट न करें !

तारक : इस आश्रम में बिना आतिथ्य ग्रहण किए कोई नहीं जाता, देवि !

शिप्रा : आप जैसे महात्माओं के दर्शन ही अतिथि को तृप्त कर देते हैं। फिर मैं अतिथि भी नहीं हूँ।

सुबन्धु : अस्तु, आप शीतल जल ग्रहण करें, तब जाएँ। (भिक्षु से) भन्ते ! इन्हें रेवा का शीतल जल पान कराओ।

भिक्षु : चलो, देवि !

शिप्रा : मैं कृतार्थ हुई। मैं अभिवादन करती हूँ।

सुबन्धु : स्वस्ति !

[भिक्षु के साथ शिप्रा का प्रस्थान।]

तारक : कैसी दिव्य शक्ति और कैसा दिव्य सौन्दर्य !

सुबन्धु : तुम्हें अग्निहोत्र के लिए देर हो रही होगी, तारक !

तारक : इस अग्नि-शिखा की वन्दना किसी अग्निहोत्र से कम नहीं है। मैं सोचता हूँ, सुबन्धु ! कि यदि इस देवी में आक्रमण करने की शक्ति न होती तो क्या होता ?

सुबन्धु : उसके धन का अपहरण। और संसार के दुःखों से छूटने में उसे सुविधा होती। धन संसार का बन्धन ही तो है।

तारक : यदि धन के साथ उसका भी अपहरण हो जाता तो !

सुबन्धु : आर्यावर्त की नारी इतनी हीन नहीं है कि दस्यु उसका अपहरण करे।

तारक : (सोचते हुए) हाँ, यह तो ठीक है। धन का अपहरण ही होता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

[एक सैनिक का प्रवेश।]

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैनिक : महात्माओं का प्रणाम !

तारक : कौन हो तुम, सैनिक !

सैनिक : मैं स्थाण्वीश्वर-नरेश महाराज हर्षवर्द्धन का दूत हूँ। क्या आचार्य दिवाकर मित्र का आश्रम यही है ?

तारक : हाँ, आचार्य दिवाकर मित्र का आश्रम यही है। किन्तु महाराज हर्षवर्द्धन के दूत को यहाँ आने की क्या आवश्यकता प्रतीत हुई ?

सैनिक : क्षमा करें, वह निवेदन आचार्य के समक्ष ही किया जा सकेगा।

सुबन्धु : अभी आचार्य स्नान-गृह में हैं। वे उषाकाल ही में विन्ध्याटवी से लौटे हैं।

सैनिक : मैं एक बात पूछ सकता हूँ ?

सुबन्धु : अवश्य !

तारक : यह आश्रम तो सभी प्रश्नों का समाधान है, दूत !

सैनिक : आपके आश्रम में महादेवी आयी थीं ?

सुबन्धु : महादेवी ! नहीं। एक स्त्री आयी थी। अभी-अभी तो वह यहीं थी। रक्त से उसके वस्त्र भीगे थे।

सैनिक : (चौंककर) रक्त से ?

तारक : उसके हाथ में एक कृपाणी भी थी। उसके मुख पर अलौकिक तेज था।

सैनिक : (उद्विग्नता से) वही होंगी। वही होंगी, वही हैं।

तारक : कौन ? कौन वही हैं, दूत ?

सैनिक : महादेवी राज्यश्री ?

सुबन्धु : महादेवी राज्यश्री !

तारक : स्थाण्वीश्वर-नरेश की छोटी बहिन !

सैनिक : हाँ, वे विन्ध्याटवी की ओर चली आयी हैं।

सुबन्धु : विन्ध्याटवी में तो चारों ओर आग लगी थी। सारी रात आचार्य वहीं थे।

तारक : किन्तु वे महादेवी राज्यश्री नहीं होंगी, दूत !

सैनिक : आप कहते हैं कि उनके हाथ में कृपाणी थी।

तारक : कृपाणी तो प्रत्येक नारी के हाथ में रह सकती है। (सुबन्धु से) देखो सुबन्धु, वह स्त्री आश्रम में है ?

सुबन्धु : मैं अभी देखता हूँ। (प्रस्थान)

तारक : उसके हाथ में कृपाणी थी। उसके वस्त्र रक्त से भीग गए थे।

सैनिक : उनके पैरों में चोट लगी थी ?

तारक : जहाँ, उनके पैरों में चोट अवश्य थी।

सैनिक : तब तो वे महादेवी ही होंगी। लौह-शृंखला से कसे जाने पर उनके पैर अवश्य, क्षत-विक्षत हो गए होंगे।

तारक : लौह-शृंखला ? लौह-शृंखला से नहीं, दूत ! उन्होंने एक दस्यु से युद्ध किया था।

सैनिक : महाराज गृहवर्मा का घातक, मालवा-नरेश देवगुप्त किस दस्यु से कम हैं ?

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओह ? क्षमा करें, महात्मा ! आचार्य दिवाकर मित्र से निवेदन करने की वार्ता मेरे मुख से अनायास ही···

तारक : कोई हानि नहीं, दूत ! यह वार्ता मंत्र की भाँति और सुरक्षित रहेगी। यह आश्रम नीति का तपोवन है, राजनीति का नहीं (देखकर) अच्छा, सुवन्धु आ गए। उस स्त्री का क्या समाचार है, सुवन्धु !

[सुवन्धु का प्रवेश।]

सुबन्धु : खेद है कि वह स्त्री जल पीने के उपरान्त ही आश्रम से चली गयी।

सैनिक : तव मुझे यह सूचना महाराज की सेवा में निवेदन करनी होगी।

तारक : महाराज कहाँ हैं ?

सैनिक : विन्ध्याटवी की पश्चिमी सीमा पर।

सुबन्धु : पश्चिमी सीमा पर ! ठीक है। आग तो पूर्वी सीमा पर लगी थी।

सैनिक : महाराज तीव्र गति से विन्ध्याटवी का एक-एक भाग देखेंगे। वायु की भाँति उनकी गति है। वे अपनी बहिन को खोजकर ही रहेंगे।

तारक : इस प्रसंग से हम सव दुखित हैं, सैनिक !

सैनिक : महाराज हर्षवर्द्धन सर्वप्रिय नरेश हैं। तो महात्मन् ! जब आचार्य स्नान-गृह से बाहर आवें तो उन्हें महाराज के आगमन की सूचना अवश्य दे दें।

सुबन्धु : अव तो वे पूजन-गृह में होंगे। उनके आते ही यह सूचना उनकी सेवा में निवेदित की जाएगी। आचार्य के शिष्यों की ओर से उनका इस आश्रम में स्वागत है।

सैनिक : प्रणाम। (प्रस्थान)

तारक : महाराज हर्षवर्द्धन की बहिन ! क्यों सुबन्धु ! क्या वह स्त्री महाराज हर्षवर्द्धन की बहिन हो सकती है ?

सुबन्धु : मेरे अनुमान से नहीं हो सकती, क्योंकि वह स्त्री कहती थी कि मैं वनग्रामक में रहती हूँ और मेरे पति विदेश गए हैं। महारानी राज्यश्री के पति तो कन्नौज के नरेश हैं।

तारक : किन्तु राजनीति का कूटनीति भी तो एक अंग है। सम्भव है, महादेवी राज्यश्री ने छद्मवेश धारण कर दस्यु से युद्ध करने का अभिनय किया हो। कृपाणी पर लगा हुआ रक्त कोई रासायनिक द्रव्य ही हो।

सुबन्धु : मैं ये सब बातें कुछ नहीं जानता। मनुष्य को पहिचानने की सामान्य बुद्धि मुझ में है। उस स्त्री की भाव-भंगिमा से मुझे ज्ञात नहीं होता कि वह राजकुल की है। फिर इस आश्रम में आकर उस स्त्री को असत्य भाषण करने की क्या आवश्यकता हुई।

तारक : किन्तु उसके पैर में चोट थी। दूत भी कहता था कि महादेवी राज्यश्री के पैरों में चोट है।

सुबन्धु : ठीक है, किन्तु महादेवी राज्यश्री अकेले यहाँ कैसे आ सकती हैं ? उनके साथ तो अनेक स्त्रियों का समूह होगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[एक शिष्य का प्रवेश।]

शिष्य : आचार्य पूजा समाप्त कर इस बाहरी कक्ष में आ रहे हैं। (प्रस्थान)

सुबन्धु : हमें समस्त घटना-चक्र आचार्य के समक्ष रखना चाहिए।

तारक : और महाराज हर्ष के विन्ध्याटवी तक आ जाने का समाचार जो दूत ने कहा है, वह तो उन्हें सुनाना ही चाहिए।

[आचार्य दिवाकर मित्र का पादुका पहने हुए प्रवेश। सुवन्धु और तारक उन्हें प्रणाम करते हैं।]

सुबन्धु : भन्ते के श्रीचरणों में प्रणाम!

तारक : भन्ते के श्रीचरणों में प्रणाम! आसन ग्रहण कीजिए, भन्ते!

दिवाकर : (गंभीर स्वर में) स्वस्ति। तरुण बीजों को जल न मिलने से जो विकार होता है, वैसा विकार तो किसी के हृदय में नहीं है? माता को देखने पर शिशु के मन में जो विकार होता है, वैसा विकार तो किसी में नहीं हुआ?

सुबन्धु : भन्ते! आशीर्वाद देने के लिए उठे हुए आपके हाथ की शीतल छाया सभी प्रकार के तापों को दूर कर देती है।

तारक : किन्तु, भन्ते! कुछ देर पहले एक स्त्री आयी थी।

दिवाकर : इस आश्रम में स्त्री?

सुबन्धु : उसके वस्त्र रक्त से भीगे थे। और उसके हाथ में एक कृपाणी थी।

तारक : कहती थी कि उसने एक दस्यु से युद्ध किया है।

दिवाकर : वह स्त्री! पहले मैं समझा वे महादेवी राज्यश्री हैं। किन्तु राज्यश्री हैं! वह स्त्री एक सामान्य गृहस्थ की स्त्री है। दस्यु उसके धन का अपहरण करने के लिए उसके घर में आ घुसा था।

तारक : आप यह कैसे जानते हैं?

दिवाकर : मैंने लौटते उस समय दस्यु के घावों को धोया था और जड़ी का लेपन किया था। उसने सारी कथा मुझसे कही। अब से उसने दस्यु-कर्म सदैव के लिए छोड़ दिया।

सुबन्धु : आपके संपर्क में आकर दुष्ट भी दुष्टता छोड़ देता है।

तारक : एक समाचार और है, प्रभु! विन्ध्याटवी की पश्चिमी सीमा पर महाराज हर्षवर्द्धन आए हुए हैं। उनका सैनिक यह सूचना आपको सुनाना चाहता था।

दिवाकर : हर्षवर्द्धन, तुम धन्य हो! आर्यावर्त का भविष्य तुम्हारे ही हाथों में है।

तारक : सैनिक ने यह भी कहा कि महाराज तीव्र गति से विन्ध्याटवी का एक-एक भाग देखेंगे। वायु की भाँति उनकी गति है। वे अपनी बहिन को खोजकर ही रहेंगे।

दिवाकर : यह आश्रम उनके साथ होगा।

सुबन्धु : भन्ते! वह सैनिक कुछ बातें अस्पष्ट ढंग से कह गया। वह मालव-नरेश देवगुप्त को दस्यु कह रहा था और महादेवी राज्यश्री का नाम भी ले रहा था।

दिवाकर : यह दारुण संवाद है, सुबन्धु! मैंने इसे वेणुवन जनपद की सीमा पर सुना।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य चित्रभानु को देखकर लौट रहा था कि यह दारुण संवाद मुझे मिला ।

तारक : क्या हम लोग उसे सुन सकेंगे, भन्ते !

दिवाकर : कुशस्थल नरेश महाराज ग्रहवर्मा अब इस संसार में नहीं रहे ? (मन्द स्वर में) वे मेरे बाल्य-बन्धु थे ।

सब : (चौंककर) नहीं रहे ?

दिवाकर : जिस दिन स्थाण्वीश्वर-नरेश प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु हुई उसी दिन मालव-नरेश देवगुप्त ने ग्रहवर्मा की हत्या की ।

सुबन्धु : घोर अनर्थ !

दिवाकर : और सबसे भयानक बात यह है कि देवगुप्त ने ग्रहवर्मा की हत्या कर उनकी महादेवी राज्यश्री को लौह-शृंखलाओं में कसकर कारागार में डाल दिया !

तारक : सैनिक भी कह रहा था कि लौह-शृंखला से कसे जाने के कारण उनके पैर क्षत-विक्षत हो गए हैं ।

दिवाकर : हाँ, वे लौह-शृंखलाओं से कसी गई थीं; किन्तु गुप्त नामक कुलपुत्र द्वारा वे अन्तःपुर की समस्त स्त्रियों सहित मुक्त हुईं और छिपकर इसी विन्ध्याटवी में आ गई हैं ।

तारक : तब तो हमें उन्हें शीघ्र ही खोजना चाहिए ।

सुबन्धु : इस समय तक उन्होंने कहीं आत्महत्या न कर ली हो । क्योंकि वर्द्धन-वंश की स्त्रियाँ अग्नि को अपनी सहचरी मानती हैं ।

दिवाकर : इसलिए मैं कल रात विन्ध्याटवी में रुक गया था । जब मैंने उसमें अग्नि लगी हुई देखी तो मैं उत्सुकता से उन्हीं की खोज करने लगा । मैं केवल पक्षि-शावकों तथा जीव-जन्तुओं की रक्षा कर सका, उन्हें कहीं नहीं पा सका ।

तारक : महाराज हर्षवर्द्धन के हृदय में अपनी छोटी बहिन के प्रति इतना प्रेम है कि वे प्रचंड शत्रु को पराजित किए बिना ही अपना देश मन्त्रियों पर छोड़कर राज्यश्री को खोजने के लिए विन्ध्याटवी में सामान्य व्यक्ति की भाँति भटक रहे हैं ।

[समीप ही शंख-ध्वनि । शिष्य का प्रवेश ।]

शिष्य : भन्ते के श्रीचरणों में अभिवादन । महाराज हर्षवर्द्धन आश्रम में पधारे हैं ।

दिवाकर : (सहसा उठकर) महाराज हर्षवर्द्धन ! उनका स्वागत करो !! आयुष्मन् सुबन्धु और तारक ! तुम शीघ्र ही कमण्डल में पैर धोने का जल लाओ । वे स्वयं अमृतमय हैं ।

[तारक और सुबन्धु का प्रस्थान । फिर शंखनाद । महाराज हर्षवर्द्धन का माधवगुप्त के के साथ प्रवेश ।]

हर्षवर्द्धन : आचार्य दिवाकर मित्र को हर्ष का प्रणाम !

माधव : माधवगुप्त का अभिवादन स्वीकार हो !

दिवाकर : कल्याण हो, राजन् ! कल्याण हो ! मेरे आसन को सुशोभित करें ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्षवर्द्धन : भन्ते ! समस्त पृथ्वी को जीतने पर भी जिस सिंहासन पर हर्ष आसीन होगा, वह सिंहासन भी आपके आसन से नीचा ही रहेगा। आचार्य का आसन श्रद्धा का केन्द्र है। उस पर बैठकर हर्ष लांछित नहीं होगा। मेरे लिए तो पृथ्वी का आसन ही ऊँचा आसन है।

दिवाकर : राजन् ! आप वीरों में श्रेष्ठ हैं, पुरुष-सिंह हैं। आपके लिए तो गुणियों का हृदय ही आसन है।

हर्षवर्द्धन : नहीं, आचार्य ! जिस हर्ष के हृदय की अवस्था ऐसी है कि उसने श्री को शाप मान लिया है, पृथ्वी जिसे महापातक की भाँति ज्ञात हो रही है, राज्य जिसे रोग की भाँति घेरे हुए है, भोग जिसे भुजंग की भाँति ज्ञात होता है, घर जिसे नर्क की भाँति भयानक लगता है, जीवन अयश का केन्द्र और आरोग्य कलंक का विस्तार प्रतीत होता है, जिसके आहार में विष का स्वाद है, वह प्रत्येक आसन से गिर गया है ! आपके पुण्य-दर्शन से उसे कुछ आधार मिले तो उसका सौभाग्य होगा !

दिवाकर : राजन् ! मैं आपके हृदय की स्थिति समझता हूँ। आप राज्य की धुरी धारण करने वाले हैं। आप शान्त और सुखी हों।

[तारक और सुबन्धु का कमण्डल में जल लिए हुए प्रवेश।]

तुम आ गए ? अपने मान्य अतिथि के चरणों का प्रक्षालन करो।

माधव : विन्ध्याटवी में कुश-कंटकों से महाराज के चरण क्षत-विक्षत है, आचार्य !

हर्षवर्द्धन : मेरा हृदय चरणों की अपेक्षा अधिक क्षत-विक्षत है, आचार्य !

दिवाकर : सौभाग्य आपके आश्रय में भाग्यवान् हैं। पौरुष आपके हृदय में धन्य है। क्षत-विक्षत होने पर भी हृदय में मंगल का विकास है। हाँ सुबन्धु ! चरणों का प्रक्षालन करो।

[सुबन्धु जल लेकर बढ़ता है।]

हर्षवर्द्धन : नहीं, आचार्य ! आपके संभाषण-रूपी अमृत से मेरा समस्त शरीर प्रक्षालित हो चुका, अब पैरों का प्रक्षालन व्यर्थ। आप अपने आसन पर आसीन हों, मेरे लिए यह पृथ्वी ही श्रेष्ठ आसन है। (पृथ्वी पर बैठ जाता है।)

दिवाकर : आप जैसे पुण्यात्मा को देखकर मोक्ष की इच्छा रखते हुए भी मुझे मनुष्य-शरीर में श्रद्धा हो गई है। यह आश्रम सब प्रकार से आपके सत्कार के लिए प्रस्तुत है।

हर्षवर्द्धन : आचार्य ! हर्ष को किसी सत्कार की आवश्यकता नहीं है। दुर्भाग्य की साँसों ने ही उसे जीवन दिया है। महाप्रलय की भाँति पिता का मरण, उसके पूर्व ही जननी यशोमती का अग्नि-प्रवेश, फिर भगिनी-पति ग्रहवर्मा का बध, उसके अनन्तर ज्येष्ठ बन्धु राज्यवर्द्धन की हत्या और बहिन राज्यश्री को कारागृह। ये सब घटनाएँ उस दुर्भाग्य के चरण-चिह्न हैं जो मेरे जीवन के श्मशान में यात्रा कर रहा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। आचार्य ! दुर्भाग्य की यह यात्रा क्या मेरी जीवन-यात्रा से भी बड़ी हो गई ?

दिवाकर : राजन् ! ···

हर्षवर्द्धन : जिस प्रकार एक लौह-दण्ड बार-बार पत्थर पर चोट मारकर चिनगारियाँ उत्पन्न करता है; किन्तु उस पत्थर को भस्म नहीं करता, उसी प्रकार दुर्भाग्य मुझे तिल-तिल कर जलाता है, भस्म नहीं करता !

दिवाकर : वह भस्म कभी नहीं कर सकेगा, राजन् ! अग्नि वायु का भक्षण कर प्रज्वलित होती है; किन्तु वही वायु जब आँधी बन जाती है तब अग्नि एक क्षण में समाप्त हो जाती है। आपके हृदय में साहस की वह आँधी है, राजन् !

हर्षवर्द्धन : वह आँधी उस समय से उत्पन्न हुई है, आचार्य ! जब जननी यशोमती ने अग्नि में प्रवेश किया ! वैदेही की भाँति अपने पति के सामने ही उन्होंने अग्नि की शीतलता ग्रहण की ! वीर-जाया और वीर-जननी के साहस के समक्ष राज-परिवार और प्रजा-वर्ग के अनुरोध निर्बल सिद्ध हुए ! मेरे आँसू भी जननी के दृढ़ निश्चय की शिला पर सूख गए ! तब से उनका ही साहस मेरे प्राणों में समा गया है। कष्ट के तीखे काँटों को मैंने उन्हीं साहस की उँगलियों से उखाड़कर फेंका है और प्रधान अधिकारी अवन्ति द्वारा यह घोषणा करा दी है कि पृथ्वी से उदयाचल तक, सुवेल पर्वत तक, अस्ताचल तक, गन्धमादन पर्वत तक, राजाओं की मुकुटमणियों के आलोक से बना हुआ लेप मेरे चरणों का कष्ट दूर करेगा। किन्तु आचार्य ! इस समय मेरे चरणों का कष्ट तब दूर होगा, जब इस विन्ध्याटवी में खोई हुई मेरी वहिन राज्यश्री मुझे मिल जाए ! आप इस विन्ध्याटवी के कण-कण से परिचित होंगे। आपको मेरी बहिन राज्यश्री की सूचना है ?

माधव : आचार्य ! महादेवी राज्यश्री के खो जाने से महाराज को बहुत कष्ट है।

दिवाकर : राजन् ! शत्रु से अपमानित होने के भय से ही राज्यश्री विन्ध्याटवी में आई हैं, ऐसी सूचना अवश्य है। आपका साहस और मेरा विश्वास राज्यश्री को अवश्य ही आपके समीप ले आएगा।

हर्षवर्द्धन : आचार्य ! मेरे सभी प्रिय स्वजन संसार छोड़ चुके हैं ! एकमात्र छोटी बहिन राज्यश्री ही बची है। मुझे आशंका है कि पति की मृत्यु हो जाने के कारण कहीं वह भी अपने को अग्नि में सर्पित न कर दे ! उसके सामने अपनी जननी का आदर्श है जिसने अपने पति के आसन्न-वियोग ही में अपने प्राणों की आहुति दे दी।

दिवाकर : आश्रम का यह कितना बड़ा सौभाग्य होता यदि वह आपको प्रिय संवाद का उपहार दे सकता; किन्तु इसी समय मैं आश्रम के सभी शिष्यों को आदेश दूंगा कि वे विन्ध्याटवी की चारों दिशाओं में बिखरकर महादेवी राज्यश्री का पता लगावें। सुबन्धु और तारक !

सुबन्धु : आज्ञा प्रभु !

[भिक्षु का प्रवेश।]

भिक्षु : आचार्य को प्रणाम। एक स्त्री आश्रम-द्वार पर है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्षवर्द्धन : (चीत्कार के स्वर में) राज्यश्री !

भिक्षु : नहीं, राजन् ! वह स्त्री अभी कुछ देर हुए आश्रम से शीतल जल-पान करके गई थी। वह आचार्य के दर्शन करना चाहती है।

दिवाकर : उसे शीघ्र ही भीतर बुलाओ !

भिक्षु : जो आज्ञा ! (प्रस्थान)

दिवाकर : वह चित्रक की पत्नी है। उसने दस्यु पर आक्रमण किया था और अपनी कृपाणी से उसके शरीर पर गहरा घाव कर दिया था। वह वीर नारी है।

[शिप्रा का प्रवेश।]

शिप्रा : शिप्रा आचार्य के चरणों में प्रणाम करती है।

दिवाकर : स्वस्ति !

शिप्रा : मेरा अपराध नहीं है, आचार्य ! मैंने अपनी ओर से अनेक प्रार्थनाएँ कीं; किन्तु उनका परिणाम कुछ नहीं हुआ। अब आप ही रक्षा करें !

दिवाकर : मैं जानता हूँ, भद्रे ! किन्तु इसका निर्णय अटवी-सामन्त व्याघ्रकेतु करेंगे। दस्यु पर प्रहार करने में क्या अपराध हुआ, इस आश्रम से उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

शिप्रा : किन्तु आचार्य ! व्याघ्रकेतु इसका निर्णय नहीं कर कर सकते। आपके प्रभाव से ही रक्षा हो सकती है।

दिवाकर : भद्रे ! इस समय अवकाश नहीं है। उस पर फिर कभी विचार होगा।

शिप्रा : आचार्य ! इस समय अवकाश निकालना ही होगा। नहीं तो अनर्थ हो जाएगा ! बड़ी भयानक अग्नि की लपटें उठ रही हैं।

दिवाकर : उन्हें शान्त करो, भद्रे ! इस समय दूसरी समस्या आश्रम के सामने है। हृदय की ज्वाला शान्त करो।

शिप्रा : आचार्य ! यह समस्या सर्वप्रथम होनी चाहिए। अग्नि की लपटें मैं शान्त नहीं कर सकती। सारा वन-प्रान्त उनसे झुलस रहा है !

दिवाकर : क्या कल रात की लगी हुई आग अभी तक नहीं बुझी ?

शिप्रा : मैं यह तो नहीं कह सकती कि वह आग कल रात की लगाई हुई है; किन्तु लपटें आकाश तक उठ रही हैं !

दिवाकर : इस समय हमारे अतिथि विराजमान हैं। हमें इनका सत्कार करना है।

शिप्रा : मैं अतिथि को प्रणाम करती हूँ और उनसे भी प्रार्थना करती हूँ कि वे एक अबला की रक्षा करें !

हर्षवर्द्धन : किन्तु तुम अबला नहीं हो, देवि ! तुम दस्यु पर प्रहार कर अपनी रक्षा कर सकती हो।

शिप्रा : मैं अपनी बात नहीं कर रही हूँ, देव ! एक बाला है जो किसी समय सौभाग्यवती रही होगी। न जाने किस दुःख से अभिभूत होकर वह अग्नि में प्रवेश कर रही है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्षवर्द्धन : (विह्वल होकर) वह राज्यश्री है! कहाँ है, देवि ? वह कहाँ है, शीघ्र चलो ! आचार्य ! उसे बचाने की कृपा कीजिए !

दिवाकर : भगवान् तथागत की यही आज्ञा है। (शिप्रा से) भद्रे ! मार्ग बतलाओ। हम अभी चलेंगे। (सुबन्धु से) सुबन्धु !

सुबन्धु : तुम भी चलो। तारक ! तुम अन्य शिष्यों को लेकर शीघ्र ही आओ। विलम्ब न हो।

[हलचल होती है।]

शिप्रा : मैं उस अभागिनी बाला की सखियों से कह आई हूँ कि जब तक मैं आचार्य के आश्रम से न लौटूँ तब तक किसी न किसी बहाने तुम उस बाला को चिता पर न चढ़ने देना।

हर्षवर्द्धन : (शिप्रा से) तुम बुद्धिमती हो, देवि ! फिर भी शीघ्र चलो, देवि ! कहीं राज्यश्री अपने को अग्नि में समर्पित न कर दे ! मेरा हृदय कहता है कि वह राज्यश्री ही है ! राज्यश्री ही है ! भगवान् आदित्य मुझे किरणों की गति प्रदान करें ! मैं वायु के वेग से जाऊँ !

माधव : मैं वाहन का शीघ्र ही प्रबन्ध करता हूँ। (प्रस्थान)

शिप्रा : तब शीघ्र ही चलिए, देव ! मैं अश्व भी दौड़ाना जानती हूँ। यदि अश्व हो तो···

हर्षवर्द्धन : अश्व दौड़ाना जानती हो ? अश्व तो अनेक हैं। तुम धन्य हो ! चलो, देवि ! (आचार्य से) आचार्य ! मैं आगे चल रहा हूँ। (प्रस्थान)

दृश्यान्तर

[वनप्रान्त—वृक्षाटवी के समीप चिता जल रही है। चिता के समीप एक स्त्री मंगलपाठ कर रही है—]

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नौ बृहस्पतिर्वधात। शान्तिः ! शान्तिः ! शान्तिः !

[आरती करती हुई नारियों के कंठ से बीच-बीच में सिसकियाँ निकल आती हैं। राज्यश्री अनिमेष दृष्टि से चिता की ओर देखती हुई बैठी है। मंगल-पाठ की समाप्ति के बाद वह अपने आप गहरी साँस लेकर कहती है—]

राज्यश्री : मंगल-पाठ समाप्त हुआ। कितनी दिव्य ज्योति है चिता की इस मंगलमय अवसर पर ! अग्नि का पूजन हो, मेनका !

मेनका : स्वामिनी ! अग्नि का पूजन तो सदैव हुआ है, किन्तु इस समय का पूजन कितना कठिन है ! स्वामिनी !

राज्यश्री : अग्नि का पूजन सदैव ही मंगलमय है, मेनका ! विवाह के मंगल-पर्व पर मैंने

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वधू-वेश में भी तो इसी अग्नि का पूजन किया था। क्या जानती थी कि इस भाँति भी पूजन करना होगा। (सिसकी)

मेनका : स्वामिनी ! यह स्मृति बड़ी कष्टकर है !

राज्यश्री : (सिसकी रोककर) मेरी स्मृति ने वधू-वेश ही धारण किया है, मेनका ! जिसमें अक्षय श्रृंगार है। उतना ही जितना इस चिता में है। तू भी चिता का यह दिव्य श्रृंगार देख ! कितना मोहक सिन्दूर लगा रखा है इसने अपनी लपटों में। इन्हीं सिन्दूरी लपटों में मेरे सुहाग की रेखा भी तो छिप गई है ! (भावमय होकर) देवि ! लौटा दो ! लौटा दो, देवी ! मेरे सुहाग की रेखा। तुम्हारे पास तो सुहाग का भंडार है जो कभी नहीं घटता। सदैव सरिता के जल की भाँति भरता ही रहता है। अरे ! तुम तो और भी प्रज्वलित हो उठीं। नहीं लौटाओगी मेरा सिन्दूर ? जाने दो, मैं स्वयं तुम में प्रवेश करके अपना सिन्दूर खोज लूँगी या स्वयं सिन्दूर बनकर तुम्हीं में समा जाऊँगी !

[आगे बढ़ती है।]

मेनका : स्वामिनी ! आगे न बढ़ें।

राज्यश्री : मेनका ! मत रोक मुझे ! इसी प्रकार मेरी जननी यशोमति भी तो आगे बढ़ी थीं। अश्रु से स्नान कर, पति की चरण-रज का तिलक लगाकर उन्होंने भी तो अग्नि का कौशेय धारण किया था ! उस समय मैं उनके दर्शन नहीं कर सकी ! अब मैं उन्हें अग्नि की लपटों में पाकर पूछूँगी, माँ ! तुम राज्यश्री को उसी समय अपने साथ क्यों न ले आयीं ! (सिसकी)

विराजिका : विलाप न करें, महादेवी !

राज्यश्री : विलाप नहीं करती, विराजिका ! मृत्यु के पथ पर आँसू बहाकर उसका मार्ग कोमल बना रही हूँ। मृत्यु मेरी सहचरी बने। मैं भी तो उसी की तरह छाया मात्र रह गयी हूँ। मैं भी तो अतीत की स्मृतियों की समाधि हूँ !

विराजिका : महादेवि ! आपको खोकर महाराज हर्षवर्द्धन भी जीवित नहीं रहेंगे।

राज्यश्री : (स्मृति में बिलखकर) मेरे हर्ष ! कहाँ हो तुम ! देखो, तुम्हारी छोटी बहिन राज्यश्री कितनी लांछित हुई है ! जिसे तुमने गोद में खिलाया, वही कारागार की बन्दिनी बनी। लौह-श्रृंखलाओं से उसके पैर कसे गए ! हर्ष। मुझे देखकर तुम लज्जित होगे। मैं अपना कलंकित मुख तुम्हें नहीं दिखलाऊँगी, नहीं दिखलाऊँगी ! (सिसकियाँ)

विराजिका : महादेवि ! इसमें आपका क्या दोष ? संसार की विषम परिस्थितियाँ सभी को लांछित करती हैं।

राज्यश्री : लांछित होने की अपेक्षा मृत्यु अच्छी है, विराजिका ! दुर्भाग्य ने मृत्यु के मंच तक अनेक सोपान बनाए, किन्तु मेरे लिए मृत्यु एक पग भी नीचे नहीं उतरी ! एक पग भी नहीं ! जैसे नीच शत्रु की भाँति वह भी मुझे अपमानित कर रही है। जीवन के कारागार में डालकर वह दूर से ही मेरा परिहास कर रही है। मैं इसे सहन नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करूँगी, नहीं करूँगी। (सिसकियाँ)

विराजिका : महादेवि !...

विजयश्री : मेरे भस्म हो जाने के बाद यदि मेरे हर्ष मिले तो उन्हें यह कंठहार दे देना और कहना कि तुम्हारे दिए हुए उपहार के योग्य राज्यश्री नहीं हो सकी। वह अपने दुर्भाग्य के साथ इस कंठहार को नहीं जला सकी। प्यारे हर्ष का उपहार! (सिसकियाँ लेती है) इसे सँभालकर रखना, विराजिका ! अब ये चिता की लपटें जननी यशोमति की गोद बनना चाहती हैं, मेनका ! चिता पर चढ़ने के लिए अपने हाथ का सहारा दे !

[इसी समय अश्व के समीप आने का शब्द।]

शिप्रा : यही वह स्थान है, देव !

हर्षवर्द्धन : (पुकारकर) राज्यश्री !

मेनका : स्वामिनी ! महाराज हर्ष आ गए ! महाराज हर्ष आ गए !

राज्यश्री : (उद्भ्रान्त होकर) हर्ष ! हर्ष !! (मूर्छित हो जाती है।)

[महाराज हर्षवर्द्धन शीघ्रता से दौड़कर आते हैं।]

हर्षवर्द्धन : कहाँ है, कहाँ है मेरी राज्यश्री ? राज्यश्री ! राज्यश्री !! यह है ! मेरी बहिन राज्यश्री !!

[हाथों में उठाकर हृदय से लगा लेते हैं।]

हर्षवर्द्धन : (भरे हुए कंठ से) राज्यश्री ! तू कहाँ रही ? नेत्रों की अश्रुधारा से मेरे हृदय को शीतल कर दे !

विराजिका : (गद्गद कंठ से) महाराज की कंठ-ध्वनि सुनकर महादेवी अचेत हो गयीं। महाराज की सेवा में प्रणाम ! महाराज ठीक समय पर आए। यह आपका कंठ-हार।

मेनका : महाराज की सेवा में प्रणाम। महाराज यदि इसी समय न आते, तो स्वामिनी चिता में प्रवेश कर जातीं।

शिप्रा : (विनोद से) और तुम लोग महाराज का जयघोष करना भूल गयीं ?

[छः नारियों का सम्मिलित कंठ : महाराज हर्षवर्द्धन की जय !]

[दिवाकर मित्र का शिष्यों सहित प्रवेश।]

शिप्रा : आचार्य भी आ गए।

दिवाकर : मैं प्रसन्न हूँ। आपका अनुमान सत्य था, राजन् ! राज्यश्री की रक्षा हुई। उसका और आपका कल्याण हो !

हर्षवर्द्धन : आचार्य ! प्रणाम करता हूँ। यह आपके दर्शनों का फल है कि आज मेरी बहिन जीवित है।

[राज्यश्री को चेत होता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यश्री : (चीखकर) मेरे भाई हर्ष ! मैं अनाथ हुई, पिता गए, माता गयीं, भाई गए। तुमने मुझे उस मार्ग से क्यों लौटा लिया ? मुझे जाने दो ! ! मुझे जाने दो ! ! मुझे जाने दो ! ! मैं जाऊँगी ! (सिसकियाँ)

हर्षवर्द्धन : बहिन ! अब वर्द्धन-वंश में कौन रह गया ! तुम जाओगी तो हर्ष के लिए इस संसार में क्या अवलम्ब रहेगा ? मुझे जीवित रहने दो, बहिन ! जीवित रहने दो। इसलिए कि मैं उस नराधम के वंश को धूल में मिला सकूँ, जिसने तुम्हें इस स्थिति में पहुँचाया है। मुझे जीवित रहने दो, इसलिए कि मैं तुम्हारे अश्रु-विंदुओं का मूल्य शत्रु के रक्त-बिंदुओं से चुका सकूँ, बहिन ! हमारे भाई राज्यवर्द्धन की हत्या जिस शशांक ने की है, उसके वंश को मैं परशुराम की भाँति इक्कीस वार काटना चाहता हूँ। देवि ! जीवित रहो और मुझे जीवित रहने दो !

राज्यश्री : यह कुछ न करो, भाई ! जीवन में तुम पुरुषार्थ करो, किन्तु जिस बहिन के जीवन में अब कुछ भी शेष नहीं है, उस बहिन को संसार में मत खींचो। जो फूल बिखर गया है, उसकी पंखुड़ियों को तुम फिर न जोड़ो। जो सरिता सूख गयी है, उसमें तुम अंजुलियों से जल मत भरो। चिता मेरी प्रतीक्षा कर रही है, उसे शान्त न होने दो !

हर्षवर्द्धन : बहिन ! मैंने अपनी माँ को ज्वाला में जलते देखा है, पिता को मृत्यु की कालिमा में छिपते देखा है। अब साहस नहीं है कि अपनी छोटी बहिन को जलते हुए देखूँ। मेरी बहिन ! मेरे हृदय में अनेक चिताएँ जल रही हैं, उनमें छोटी वहिन की चिता प्रलय उत्पन्न कर देगी। उस प्रलय में नष्ट होने से मुझे वचाओ, बहिन !

राज्यश्री : भाई हर्ष ! मैं कहाँ जाऊँ ? पति-हीना नारी की संसार में कौन-सी गति है ? मैं प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अपने अथ से विचलित न करो। मुझे धर्म-संकट में न डालो।

हर्षवर्द्धन : आचार्य ! आप धर्म के प्राण हैं। मेरी बहिन को मार्ग दिखलाइए !

दिवाकर : पुत्रि ! पति-स्मृति पति-प्रेम से अधिक पवित्र है, पति का विरह पति के मिलन से अधिक शक्तिशाली है। तुम पति की स्मृति से जीवन को पवित्र बनाओ।

राज्यश्री : मैं प्रणाम करती हूँ, भन्ते ! मैं आपसे भी चितारोहण की अनुमति चाहती हूँ।

दिवाकर : पुत्रि ! अपने संकल्प का परित्याग करो, क्योंकि तुम्हारे संकल्प से दो जीवन नष्ट होंगे। तुम्हारा और तुम्हारे एकमात्र भाई हर्षवर्द्धन का। अत: दूसरे के कल्याण के लिए विचरण करो ! आत्मसंतोष का उतना महत्त्व नहीं, जितना दूसरे की प्राण-रक्षा का। अत: अपने शोक का परित्याग करो !

राज्यश्री : शोक का परित्याग करूँ ? तब मुझे काषाय-ग्रहण की आज्ञा प्रदान कीजिए।

हर्षवर्द्धन : (हर्षोल्लास से) साधु ! आचार्य के चरणों में प्रणाम ! बहिन ! तुम धन्य हो ! काषाय-ग्रहण मैं भी करूँगा। किन्तु मेरी एक प्रार्थना है। मैंने शत्रुओं का नाश करने की प्रतिज्ञा की है। वर्द्धन-वंश के प्रताप को आर्यावर्त में प्रतिष्ठित करने की शपथ ली है। जब तक मेरी यह प्रतिज्ञा पूरी न हो, तब तक मेरी बहिन मेरे समीप रहे। जब हर्षवर्द्धन अपना कार्य समाप्त कर ले, तब अपनी बहिन के साथ वह भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काषाय ग्रहण करे।

राज्यश्री : आचार्य की क्या आज्ञा है ?

दिवाकर : पुत्रि ! यद्यपि तुम्हारा दुःख वहुत दूर तक पहुँच गया है, फिर भी इस समय पिता और गुरु के समान वड़े भाई की आज्ञा मान्य है। पुनीत रहकर अपना कर्त्तव्य पालन करना ही जीवन-यज्ञ है। इस जीवन-यज्ञ में संसार का कल्याण है।

हर्षवर्द्धन : आचार्य ! आपसे मेरा एक निवेदन है। जव तक मेरी वहिन मेरे समीप रहे, आप धार्मिक कथाओं और विमल उपदेशों से इसे प्रतिवोध कराते रहें। आज से आप मेरे राज्य के आचार्य हुए !

दिवाकर : सत्य की विजय हो !

हर्षवर्द्धन : और शिप्रा ! तूने मुझ पर अत्यन्त उपकार किया है। तू मेरी वहिन राज्यश्री की अंगरक्षिका नियुक्त हुई।

शिप्रा : मैं कृतार्थ हुई, महाराज ! यह मेरा भी जीवन-यज्ञ होगा !

हर्षवर्द्धन : मैं सबसे यथास्थान लौटने की प्रार्थना करता हूँ और यह प्रण करता हूँ कि स्थाण्वीश्वर का वर्द्धन-वंश आर्य-गौरव को स्थिर करने में भी जीवन-यज्ञ की पूर्ति समझेगा। जय आदित्य !

सम्मिलित स्वर : महाराज हर्षवर्द्धन और आर्या राज्यश्री की जय !

[यवनिका]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चे राज्य का तिरस्कार

पात्र-परिचय

बिम्बसार : मगध के भूतपूर्व सम्राट्
वासवी : बिम्बसार की बड़ी रानी
अजातशत्रु (कुणीक) : बिम्बसार का पुत्र और मगध का सम्राट्
समुद्रदत्त : अजातशत्रु के आचार्य देवदत्त का सहायक और शिष्य
उग्रजित : सैनिक
भद्रजित् : वधिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान : मगध **काल : ई० पू० 548** **समय : रात्रि का दूसरा पहर**

[स्थिति—बिम्बसार ने सिंहासन त्याग दिया है। वैशाली राजवंश की लिच्छिवि कुमारी बिम्बसार की छोटी रानी है। उसने बुद्धदेव के विद्रोही चचेरे-भाई देवदत्त के परामर्श से अपने पुत्र अजातशत्रु को अपने पति के जीवन-काल में ही सिंहासन पर अधिकार कर लेने की शिक्षा दी। देवदत्त और छलना की नीति ने अजातशत्रु को विद्रोही और उद्दण्ड बना दिया। इसी गृह-कलश और आंतरिक संघर्ष को मिटाने के लिए बिम्बसार ने सिंहासन त्याग दिया और वे वासवी के साथ एक कुटी में निवास करने लगे हैं। राजशक्ति के प्रलोभन से अजातशत्रु अपने पिता को सन्देह की दृष्टि से देखता है और इसीलिए उसने अपने पिता की कुटी पर नियंत्रण लगा दिया है। नियंत्रण के साथ-साथ उसने उनका भोजन भी बन्द कर दिया है। इस समय बिम्बसार और वासवी कुटी में हैं। बिम्बसार लेटे हैं और वासवी उनके समीप बैठी है। बिम्बसार को निराश दृष्टि से देखती हुई कहती है—]

वासवी : आर्यपुत्र ! भोजन आज भी नहीं आया।

बिम्बसार : (भर्राये स्वर से) आज भी नहीं खाया ?

वासवी : नहीं, प्रातःकाल से प्रतीक्षा कर रही हूँ, पर शून्यदृष्टि द्वार तक जाकर लौट आती है।

बिम्बसार : प्रतीक्षा मत करो, देवी ! अजात का शासन यदि हमारे भूखे रहने से ही सुदृढ़ होता है, तो देवी, हमारी भूख में ही हमारा निर्वाण है। हम भोजन की कामना नहीं करेंगे।

वासवी : न करें, किन्तु मैं कैसे यह सहन करूँ कि आर्यपुत्र, जो कुछ समय पूर्व मगध के सम्राट् थे, आज सामान्य भोजन के अधिकारी नहीं समझे गए ! मगध-सम्राट् के भाग्य में आज साधारण अन्न के दाने भी नहीं हैं ! (सिसकी) आज चार दिन हो गए और नियन्त्रण में रखे गए मगध-सम्राट् के लिए मिट्टी के पात्र में रखा हुआ रूखा-सूखा भोजन भी नहीं है। यह कैसा शासन है जिसमें पिता की भूख ही पुत्र की राज्यश्री का प्रतीक है ? आज आर्यपुत्र को साधारण पुरुष की भाँति अपनी भूख बुझाने का भी अधिकार नहीं है ? (सिसकियाँ)

बिम्बसार : शान्त, शान्त, वासवी ! इन आँसुओं से मेरे धैर्य की शिला को बहाने का प्रयत्न न करो। बिम्बसार इतना निर्बल नहीं है कि वह बीते हुए राज्य-वैभव की स्मृति में अपने बन्दी-जीवन की वास्तविकता भूल जाए। बन्दी जीवन ऐसा ही होता है। सम्राट् की दृष्टि ही उसके भविष्य की दिशा है, फिर वह सम्राट् चाहे अपना

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र ही क्यों न हो ! आज मेरा कुणीक मगध का सम्राट् है। वह चाहता है कि हम बन्दी हों, तो हम बन्दी हैं। वह चाहता है कि हम भूख से मरण को प्राप्त हों, तो हम भूख से मरण को प्राप्त होंगे; किन्तु हम तड़पेंगे नहीं, देवी ! हम प्रलय की आँधी में उड़ेंगे, पर हमारी आँखों से आँसू नहीं गिरेंगे, क्योंकि हम मनुष्य हैं जिसकी सत्ता सर्वोपरि है। सुख और दु:ख दोनों हम समान रूप से भोग सकते हैं। भूख से हम मूर्च्छित होंगे, लेकिन हम यह नहीं कहेंगे कि हमें भोजन दो। भोजन देने वाले की इच्छा ही सत्य है। हमारी इच्छा कुछ महत्त्व नहीं रखती, देवी !

वासवी : आर्यपुत्र ! मैं भी स्वाभिमान रखती हूँ, यह समस्त मगध की प्रजा जानती है और इसीलिए मैं यह सहन नहीं कर सकती कि पुत्र इतना अभिमानी बने कि वह राज्य के लोभ से पिता को सिंहासन से हटाकर बन्दी-गृह में डाल दे और स्वयं सम्राट् बन जाए।

बिम्बसार : वासवी ! तुम महादेवी थीं, किन्तु तुम राजमाता नहीं थी। राजमाता लिच्छिवि कुमारी से पूछो कि सिंहासन प्राप्त करना प्रत्येक युग का आदर्श है या नहीं ? और फिर सिंहासन-त्याग मैंने स्वयं किया। तथागत की यही इच्छा थी कि मैं सांसारिक वैभवों से विरक्त होकर विश्राम लूँ। फिर गृह-विवाद और आन्तरिक संघर्षों से मगध को बचाना भी तो मेरा धर्म था। मैंने सिंहासन-त्याग किया। और कुणीक बड़ा हुआ, उसे भी तो उसका अधिकार मिलना चाहिए।

वासवी : आपने मगध के लिए इतना त्याग किया; किन्तु क्या कुणीक और कुणीक की माता लिच्छिवि कुमारी ने इस त्याग की सराहना की ?

बिम्बसार : देवि ! त्याग यदि घुटनों के बल बैठकर सराहना की भिक्षा माँगे तो क्या उसे हम त्याग कह सकते हैं ? मेरे त्याग को सराहना की अभिलाषा नहीं रही। वह मगध के प्रति मेरा कर्तव्य था जिसे मैंने पूरा किया। कर्तव्य और प्रशंसा का संगम होना कर्तव्य के लिए अभिनन्दनीय नहीं है।

वासवी : किन्तु, आर्यपुत्र ! आपके कर्तव्य का यह पुरस्कार भी तो नहीं है कि आपकी स्वतन्त्रता का अपहरण हो और आपका निवास-स्थान बन्दीगृह में परिवर्तित कर दिया जावे।

बिम्बसार : यह हमारा दुर्भाग्य है कि कुणीक पर हमारा प्रभाव नहीं रह सका। कुणीक अपनी माता लिच्छिवि कुमारी की छाया में पोषित हुआ और देवदत्त की कूटनीति में उसे गति मिली। तथागत की प्रतिद्वन्द्विता में देवदत्त जिस प्रतिहिंसा से प्रेरित हुआ है वही प्रतिहिंसा कुणीक के हृदय में जाग उठी है और तथागत के प्रति मेरी श्रद्धा ही कदाचित् मेरे बन्दी-जीवन का रहस्य है।

वासवी : हो सकता है, आर्यपुत्र ! किन्तु मैं उस प्रतिहिंसा को क्या कहूँ जिसमें पुत्र अपने पिता के वात्सल्य को भूलकर उसे बन्दी बना दे और मनुष्यता की सारी मर्यादाओं को तोड़ दे।

बिम्बसार : यह मनुष्यता की बात नहीं है, देवी ! सम्राट् की बात है, सम्राट् की ! अहंकार के अभिमान ही का नाम तो सम्राट् है, जैसे फूलों के चारों ओर काँटों की

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेल हो। यह महत्त्वाकांक्षा की बेल है, अमर-बेल है, जो बड़े-से-बड़े राज्य पर चढ़ जाती है और अपने बोझ से—अपनी सहस्र-सहस्र शाखाओं के बोझ से—राज्य को दबा देती है। राज्य का रस चूसकर लहलहाती है, बोझिल बन जाती है और राज्य को, राज्य को··· (खाँसी आ जाती है।)

वासवी : विश्राम करें, आर्यपुत्र ! आप बहुत दुर्बल हो गए हैं, यह जल ही ग्रहण कीजिए। (पात्र से जल भरकर देती है।)

बिम्बसार : (जल पीकर) यही मेरे लिए अमृत है। इसे पीकर मैं जीवन के अन्तिम क्षण तक जागता रहूँगा। हाँ, तुम शयन करो ! रात्रि का दूसरा पहर बीत रहा है। नक्षत्र ऊपर उठ चुके हैं। (हँसकर) ये हमारे भाग्य के नक्षत्र नहीं हैं। मेरे पुत्र के शासन में मगध का भाग्य-नक्षत्र ऊपर उठे, यही मेरी कामना है।

वासवी : इसी कामना के साथ अपने आप शयन करें।

बिम्बसार : शयन नहीं कर सकूँगा, देवी ! मेरे मस्तिष्क में प्रलय की आँधी है, जिसमें मेरे जीवन के शेष क्षण सूखे पत्ते की भाँति दिशा-शून्य होकर बिखर रहे हैं, उन्हें रोकने की चेष्टा न करो। उन्हें रोकोगी तो वे चूर-चूर हो जाएँगे और उन्हें चूर-चूर करने से मगध में धूल की मात्रा और भी बढ़ जायगी। मैं नहीं चाहता कि हमारा मगध धूल से अधिक धूमिल बने।

[पास ही किसी नारी का भयानक चीत्कार। 'हाय, मेरे लाल को बचा लो ! मेरे लाल को बचा लो ! मैं भी मर जाऊँगी, मेरे लाल को बचा लो ! कोई···कोई तो मेरे···लाल को···बचा लो !']

वासवी : (करुण स्वर से) किसी नारी का करुण चीत्कार है, आर्यपुत्र ! मैं बाहर देखती हूँ, कौन-सी दुःखिनी नारी इतने अन्धकार में इस भाँति भटकती फिर रही है।

[शीघ्रता से बाहर जाती है।]

बिम्बसार : (अपने-आप) अन्धकार ! मेरे भाग्य में समाया हुआ अन्धकार आज इतने घने रूप में संसार में भी समा रहा है। इस अन्धकार का क्या रहस्य है ? यह अन्धकार मेरे ही भाग्य में रहता तो अच्छा था। मेरे भाग्य ! क्या तुझमें पर्याप्त स्थान नहीं है कि तू सारे संसार के अन्धकार को समेट ले ? उसे आकाश की शरण में जाने का अवसर क्यों देता है ? मेरी भाँति तू भी शरणागत वत्सल बन, जिससे अन्धकार को और अन्धकार के भीतर किसी नारी को भटकने की आवश्यकता न पड़े।

[नारी की सिसकियाँ अत्यन्त समीप आ जाती हैं। वासवी का प्रवेश।]

वासवी : आर्यपुत्र ! एक अत्यन्त दुःखिनी नारी है जो अपनी कुटी के उपवन में से होकर जा रही थी। मैं द्वार पर नियुक्त रक्षक की स्वीकृति से उसे बुला लाई हूँ।

बिम्बसार : किन्तु हम उसके कष्टों का निवारण कैसे कर सकते हैं, देवी ! उसके

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराधी को दण्ड किस प्रकार दे सकेंगे ? आज हम सम्राट् नहीं हैं। कहाँ है वह स्त्री ?

वासवी : वह यहाँ आ गयी है। (नेपथ्य की ओर देखकर) आओ बहन !

[अस्तव्यस्त वेश में एक स्त्री का प्रवेश।]

बिम्बसार : (उठकर, स्त्री से) भद्रे, तुम कौन हो, तुम्हें क्या दुःख है ?

[स्त्री फूट-फूटकर सिसकियाँ लेने लगती है।]

वासवी : बोलो बहन, तुम्हें कौन-सा दुःख है ?

स्त्री : (सिसकियाँ लेती हुई) मेरे लाल को बचाओ, देवी ! मेरे लाल को बचाओ ! मैं बड़ी अभागिन नारी हूँ, मेरे लाल को बचा लो !

वासवी : (सहानुभूतिपूर्वक) तुम्हारे लाल को ? कहाँ है वह ? उसे क्या कष्ट है ?

स्त्री : देवी ! चार दिनों से उसके मुँह में अन्न का दाना भी नहीं गया। वह भूख से छटपटा रहा है। उसके प्राण बचा लो। (बिम्बसार से) मेरा लाल भूख की ज्वाला में जल रहा है। वह नन्हा, सुकुमार बच्चा अधिक दिनों तक भूख की ज्वाला नहीं सह सकेगा ! उसे बचाइए, महाराज !

बिम्बसार : (सन्तोष देते हुए) मगध में अन्न की कमी नहीं है, देवी ! तुम कहीं से भी अन्न प्राप्त कर सकती हो, जिसे हम नहीं प्राप्त कर सकते। उससे तुम अपने बच्चे के प्राण बचा सकती हो।

स्त्री : यह सम्भव नहीं है, महाराज ! राजसत्ता ने मेरा घर-द्वार सब छीन लिया। मैं अनाथ हूँ, महाराज ! मुझे अन्न कहीं नहीं मिल रहा है। मैं द्वार-द्वार जाकर भीख माँग चुकी। किसी ने मुझे एक मुट्ठी भी अनाज नहीं दिया। (सिसकियाँ)

बिम्बसार : मगध की प्रजा इतनी हृदयहीन नहीं है, देवी !

स्त्री : हृदयहीन नहीं है, महाराज ! किन्तु सम्राट् ने आज्ञा दे दी है कि जो मुझे एक मुट्ठी भी अन्न देगा, उसे बड़ा कठोर दण्ड दिया जाएगा।

बिम्बसार : क्यों ? उन्होंने इस प्रकार की आज्ञा क्यों दी ?

स्त्री : महाराज ! मैं तथागत का उपदेश सुनने के लिए उनके संघ में चली गयी थी। सम्राट् के गुप्तचरों ने जानेवाले व्यक्तियों की सूचना सम्राट् को दे दी। वहीं आचार्य देवदत्त बैठे थे। उन्होंने कहा कि जो गौतम के संघ में गया है उसका घर-द्वार और सम्पत्ति छीन लो। उसे एक मुट्ठी-भर अन्न न दो। सम्राट् ने मेरे लिए भी इसी दण्ड की घोषणा कर दी। मुझे मरने का भय नहीं है; किन्तु मेरा तीन वर्ष का अनाथ बच्चा बिना अन्न के एक दिन भी जीवित नहीं रह सकेगा। मुझे थोड़ा-सा अन्न चाहिए, महाराज ! मेरे लाल के जीवन के लिए मुझे कुछ अन्न दे दीजिए।

बिम्बसार : (क्षुब्ध होकर) अन्न ! अन्न ! अन्न ! मगध के सम्राट् ने अन्न को कितना महत्त्व दे दिया है। (गहरी साँस लेकर) भद्रे ! मैं किस प्रकार कहूँ, मैं तुम्हारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता नहीं कर सकता।

वासवी : बहन, जिस लाल को बचाने के लिए तुम हाहाकार कर रही हो, वह बड़ा होने पर तुम्हें बन्दीगृह में भी तो डाल सकता है ?

बिम्बसार : व्यंग्य मत करो, इस समय माँ के सामने उसके पुत्र की प्राण-रक्षा का प्रश्न है।

वासवी : क्षमा करे, आर्यपुत्र ! जीवन की विषमता हृदय को स्थिर नहीं होने देती। बहन ! तुम भी बुरा न मानना। मैं इस समय जीवन के बहुत बड़े संकट में हूँ। तुम्हारी क्या सहायता करूँ ? अन्न को छोड़कर जो कुछ भी हमारे पास है, तुम्हारा है।

स्त्री : और कुछ लेकर क्या करूँगी, देवी ! मेरे बच्चे को अन्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए। वह उठ-बैठ भी नहीं सकता। उसकी साँस वेग से चलने लगी है, आँखें ऊपर की ओर खिच गई हैं। उसके मुँह से 'माँ' और 'भूख' यही दो शब्द निकलते हैं। हाय, मेरा लाल, (सिसकियाँ) मुझे छोड़कर जा रहा है ! मैं अपने लाल के मुँह में अन्न के दो दाने भी नहीं डाल सकती। देवि ! मैं माँ नहीं हूँ, माँ नहीं हूँ, राक्षसी हूँ, पिशाचिनी हूँ। अपने लाल को मारकर ही रहूँगी। अपने लाल का जीवन लेकर ही रहूँगी। (सिसकियाँ) मेरा लाल ! हाय, मेरा लाल···!

बिम्बसार : देवि ! यदि ऐसा ही है तो सम्राट् की निरंकुशता की वेदी पर एक बलि और होने दो। आज मुझे अपने अधिकार का ध्यान हो आता है। जब मेरे हाथ में शासन था, भगवती अन्नपूर्णा प्रत्येक नागरिक की माता थीं। जिस भोजन से हमने सहस्रों बार मगध का प्रजा को संतुष्ट किया, वही भोजन आज हमारे पास नहीं है। इससे अधिक मुझे क्या कष्ट हो सकता है, भद्रे !

स्त्री : (सिसकियाँ रोककर) महाराज ! मुझे क्षमा कीजिए। मैंने आपको कष्ट दिया। मैं अपने लाल को तड़प-तड़पकर ही मर जाने दूंगी।

वासवी : नहीं, बहन ! तुम्हारा लाल तड़प-तड़पकर नहीं मरेगा। मैं तुम्हारे लिए—तुम्हारे लाल के लिए—भिक्षा माँगूंगी। जो कार्य मैंने जीवन में कभी नहीं किया, वह तुम्हारे लाल के लिए करूँगी। मैं आर्यपुत्र के भोजन के लिए भिक्षा नहीं माँग सकी, पर तुम्हारे लाल के लिए भिक्षा माँगूंगी।

बिम्बसार : वासवी ! तुम मानवी नहीं देवी हो। अपने पति के आत्म-सम्मान के लिए तुमने भिक्षा नहीं माँगी। इस स्त्री के लाल के लिए भिक्षा माँगो; किन्तु क्या मगध की राज-सत्ता तुम्हें भिक्षा माँगने देगी ? क्या तुम इस आश्रम में भी स्वतंत्र रखी गई हो ? देवी वासवी ! अन्न न सही, इसे और ही कुछ दे दो।

वासवी : आर्यपुत्र ! अब हमारे पास शेष क्या है ? मेरे हाथो में यही एक स्वर्ण-कंकण है। (स्त्री से) देवि ! यह स्वर्ण-कंकण लो और किसी को देकर अपने लाल के लिए अन्न प्राप्त करो।

स्त्री : देवि ! मैं यह स्वर्ण-कंकण कैसे लूं ? इसे कहाँ ले जाऊंगी ? इसे देखकर मगध के किसी भी व्यक्ति को पता लग जाएगा कि यह महादेवी वासवी का स्वर्ण-कंकण

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। राजसत्ता भी सतर्क है, और फल यह होगा कि दूसरे ही क्षण राजसत्ता आपको निमंत्रित करेगी कि वह आपको दण्ड दे। (बिम्बसार से) मैं अपने लाल की रक्षा में महाराज को दण्ड का भागी नहीं बनाऊँगी।

बिम्बसार : इसकी चिन्ता न करो, भद्रे! पहले अपने लाल के प्राणों की रक्षा करो। हम राजदण्ड सहन कर लेंगे। हमारी वर्तमान स्थिति से भयानक राजदण्ड की यंत्रणा न होगी।

स्त्री : सत्य है, ! देवि किन्तु महारानी···!

बिम्बसार : (बीच में ही) वे मगध की महारानी नहीं हैं, भद्रे! यह भयानक शब्द न कहो। मैं मगध के वृद्ध नागरिक के रूप में यह आदेश देता हूँ कि अपने लाल की जीवन-रक्षा के लिए यह स्वर्ण-कंकण स्वीकार करो। इसे बेचकर अन्न प्राप्त करो। जाओ, अब इस कष्ट को हम अधिक सहन नहीं कर सकेंगे। आज सागर सूख गया है, उसमें जल का एक कण भी शेष नहीं है। हम तुम्हें खारे जल की एक बूंद भी नहीं दे सके। आज हमारी सहानुभूति अमावस के उस चन्द्र की भाँति है जिसमें प्रकाश की एक कला भी शेष नहीं रह गई है।

स्त्री : (द्रवित होकर) महाराज, आपकी यह दशा···।

वासवी : लो, यह स्वर्ण-कंकण। इससे अपने लाल की प्राण-रक्षा करो। इसमें जड़े हुए रत्नों का प्रकाश तुम्हारे लाल के जीवन का प्रकाश बने।

स्त्री : मैं कृतार्थ हुई देवि! (बिम्बसार से) मैं कृतार्थ हुई, महाराज! प्रणाम! (वासवी से) देवि! प्रणाम!

वासवी : चलो, मैं तुम्हें द्वार तक पहुँचा दूं, जिससे तुम्हें रक्षकों से मुक्ति मिले।

[स्त्री के साथ वासवी का प्रस्थान।]

बिम्बसार : चली गई। बेचारी स्त्री! माता बनकर और भी कितनी करुण हो जाती है। अपने पुत्र के जीवन की आशंका से कितनी व्यथित है वह। देवी वासवी कहती हैं कि इसमें जड़े हुए रत्नों का प्रकाश तुम्हारे लाल के जीवन का प्रकाश बने। जीवन का प्रकाश! मेरा लाल भी एक रत्न था। कुणीक! अजातशत्रु! जिसमें जीवन का प्रकाश था; किन्तु मैं नहीं जानता था कि वह रत्न वज्र की भाँति कठोर होगा! उसमें कान्ति होगी किन्तु सरलता नहीं, सौन्दर्य होगा किन्तु सौभाग्य नहीं। मेरा ही रत्न मेरी दरिद्रता का अग्रदूत होगा, यह मैं नहीं जानता था। दरिद्रता जो आज मगध में पुरस्कार की भाँति वितरित की जा रही है। दरिद्रता! अन्न का अभाव! फूल से भी कोमल अन्न के अभाव में तड़पकर प्राण त्याग रहे हैं। (उग्रता से) बिम्बसार! तू विद्रोह कर। यह मानवता का सबसे बड़ा अभिशाप है। आज भूख से एक शिशु की हत्या हो रही है, कल शत-शत मानवता के कुसुम इसी ज्वाला में झुलस-झुलसकर नष्ट होंगे। विद्रोह कर! विद्रोह कर! जीवित रहने का अधिकार सभी प्राणियों को समान रूप से है। मनुष्य के जीवन के लिए तू विद्रोह कर! (शान्त होकर सोचते हुए) पर तथागत! तुम कहते हो कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी प्राणियों पर समदृष्टि रखो, यदि विश्व में किसी अस्त्र का प्रयोग हो सकता है तो वह करुणा ही है। करुणा से ही विश्व-मैत्री सम्भव है। तथागत! फिर मैं क्या करूँ? मैं भूल रहा हूँ! मैं भूल रहा हूँ! मुझे प्रकाश दो, तथागत! मुझे प्रकाश दो! मैं अन्धकार में खो रहा हूँ···रात के रहस्य में···!

[वासवी का प्रवेश।]

वासवी : आर्यपुत्र! रात्रि के अन्धकार में वह स्त्री विलीन हो गयी। मैंने उसका नाम जानने की चेष्टा की; किन्तु वह नाम बतलाए बिना ही चली गई। मुझे इसमें कुछ रहस्य ज्ञात होता है, आर्यपुत्र!

बिम्बसार : चिन्ता न करो, देवी! यह सृष्टि ही रहस्यमय है। तारों को देखो, कितने उज्ज्वल दिखाई देते हैं; किन्तु वे अपना कितना सत्य हम पर प्रकट करते हैं? विस्तृत आकाश में उदित होकर रात-भर चमकते हैं और प्रातःकाल अपना रहस्य अपने साथ लिए अस्त हो जाते हैं। सारी सृष्टि प्रवंचनामयी है। यदि उस स्त्री का लाल भूख से मरता भी न हो तो शिशु को बचाने की हमारी भावना ही अभिनन्दनीय है। तुमने अपना कर्तव्य किया। उससे अधिक सन्तोष और क्या हो सकता है?

वासवी : किन्तु आर्यपुत्र! इस सन्तोष में भी न जाने कहाँ का दुर्भाग्य झाँक रहा है, और हम यह भी नहीं जानते कि उस दुर्भाग्य की सीमा कितनी है।

बिम्बसार : मैं जानता हूँ, देवि, कि उस दुर्भाग्य की सीमा कितनी है क्योंकि वह दुर्भाग्य अपने पुत्र के द्वारा दी गई सम्पत्ति है। मेरे पुत्र ने—मेरे ही हृदय के टुकड़े ने—मुझे विपत्ति का यह कोष दिया है, देवि!

वासवी : आर्यपुत्र···!

बिम्बसार : विपत्ति का यह कोष? मेरे शासन-काल में ये विपत्तियाँ नहीं थीं। अब कुणीक के संकेत से उभरकर मेरे द्वार पर आ गयी हैं और बदला लेने की प्रतिहिंसा में मेरे जीवन में विष के बीज बो रही हैं। मगध की साधारण प्रजा भी—नारी भी—उन विष के बीजों पर कपट का जल सींच सकती है।

वासवी : सत्य, आर्यपुत्र! द्वार पर पहुँचते ही उस स्त्री ने रक्षकों को कुछ संकेत किया। मैंने धुंधले प्रकाश में भी देख लिया कि उस स्त्री ने एक रहस्यमय ढंग से हाथ उठाया और तभी रक्षकों के ओंठों पर एक हल्की-सी हँसी चमक उठी। वह स्त्री छद्मवेशिनी ज्ञात होती है। उसने कोई जाल तो नहीं रचा?

बिम्बसार : छोड़ो इन बातों को, देवि! इस सम्बन्ध में सोचना व्यर्थ है, विशेषकर जब हम भोजन न मिलने से प्रतिदिन मृत्यु के द्वार पर पहुँच रहे हैं। पर मुझे आश्चर्य है, देवी, कि तुम इतनी सुकुमार होकर भी किस प्रकार भूख से युद्ध कर रही हो? इतने कष्ट पाने पर भी तुम्हें अपने सम्बन्ध में चिंता नहीं है?

वासवी : आर्यपुत्र! आप इस सम्बन्ध में कुछ न सोचें, आपकी चिंता में भूलकर मुझे अपनी चिंता के लिए अवकाश ही नहीं रह जाता। मैं तो यही सोच लेती हूं कि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि हमारे भाग्य में क्षुधा ही से प्राणान्त होना लिखा है तो वह हम प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करेंगे।

बिम्बसार : मुझे यह सुनकर सन्तोष है, देवि !

वासवी : अब आप शान्ति से शयन करें।

[एकाएक खड़खड़ाहट के साथ समुद्रदत्त और एक सैनिक का प्रवेश।]

समुद्रदत्त : महाराज और महारानी की सेवा में प्रणाम !

बिम्बसार : यह सम्बोधन हमें नहीं चाहिए। कौन है जो इन दुर्दिनों में हमारा परिहास कर रहा है ?

समुद्रदत्त : मैं हूँ, आचार्य देवदत्त का सहायक समुद्रदत्त। (सैनिकों से) सैनिक उग्रजित्, तुम द्वार पर ही रहो ! आवश्यकता होने पर बुलाए जाओगे।

उग्रजित् : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

बिम्बसार : आचार्य देवदत्त के सहायक समुद्रदत्त को इस कुटी में आने की आवश्यकता क्यों पड़ी ?

समुद्रदत्त : आचार्य देवदत्त की आज्ञा, श्रीमन् !

बिम्बसार : बिम्बसार के जीवन को अब भी आज्ञाओं के अनुसार चलना है ? क्या उन आज्ञाओं का अन्त कभी न होगा ? इस निकृष्ट दशा में डालने के उपरान्त अब किस आज्ञा का अंकुश बिम्बसार के मस्तक पर है ?

समुद्रदत्त : क्षमा करें, श्रीमान् एक अभियोग के भागी हैं।

वासवी : (चौंककर) अभियोग ? कैसा अभियोग ?

समुद्रदत्त : हाँ, देवि ! एक दारुण अभियोग है।

बिम्बसार : राजसिंहासन से दूर होकर एक कुटी में निवास करते हुए, प्रातःकाल के एक तारे की भाँति निष्प्रभ होते हुए, बिम्बसार किस अभियोग का भागी हो सकता है ?

वासवी : जिस सम्राट् ने अपने जीवन-भर अभियोगों का निर्णय कर अपराधियों को दण्ड दिया है, वह अभियोग का भागी किस प्रकार होगा ?

समुद्रदत्त : देवि ! इस अभियोग में आप भी सम्मिलित हैं।

वासवी : मैं भी सम्मिलित हूँ ? हो सकता है। यदि आर्यपुत्र अभियोग के भागी हैं तो वामांग भी भागी होगा।

समुद्रदत्त : (बिम्बसार से) क्षमा करें, श्रीमन् ! मेरे पास अधिक समय नहीं है। इस समय अभियोग सिद्ध करने का उत्तरदायित्व मुझ पर है। अभियोग यह है कि आपने राजाज्ञा की अवहेलना की है।

बिम्बसार : राजाज्ञा की अवहेलना ? स्पष्ट करो, समुद्रदत्त ! मैंने कौन-सी राजाज्ञा की अवहेलना की है ?

वासवी : यदि बिना भोजन के जीवित रहना राजाज्ञा की अवहेलना है तो हम अवश्य ही अपराधी हैं, समुद्रदत्त !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्रदत्त : क्षमा करें, देवि ! राजनीति में व्यंग्य के लिए स्थान नहीं है। अभी एक स्त्री आपकी कुटी में आई थी ?

वासवी : हाँ, वेचारी अशान्त और दुःखिनी थी। उसका लाल भूख से तड़प-तड़पकर मरने को था।

समुद्रदत्त : आपकी सेवा में मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि वह स्त्री राजसत्ता से दण्डित है। आचार्य देवदत्त का आदेश है कि उसे भिक्षा में एक मुट्ठी अन्न भी कोई नहीं दे सकता। यदि कोई उसकी सहायता करेगा तो राजाज्ञा की अवहेलना करेगा और राजसत्ता उसे अपराधी मानकर दण्ड देगी चाहे वह मगध का सम्राट् ही क्यों न हो।

बिम्बसार : इसकी सूचना मुझे है। उस स्त्री ने ही हमें इस राजाज्ञा की सूचना दी थी।

समुद्रदत्त : तव भी देवी वासवी ने उसकी सहायता करने के लिए उसे अपने हाथों का स्वर्ण-कंकण दिया। आपकी कुटी के वाहर वह स्वर्ण-कंकण के साथ पाई गई।

वासवी : क्या आप कुटी के बाहर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे ?

समुद्रदत्त : देवि ! अपराधियों के पीछे राजसत्ता की दृष्टि सदैव ही रहती है। किसी भी क्षण हम अपराधियों के कार्यों का लेखा दे सकते हैं।

वासवी : यह ठीक है, परन्तु मुझे इसमें कुटिलता की गन्ध मिल रही है। जान-बूझकर हमें अभियोग में फँसाने की चेष्टा ज्ञात होती है। वह स्त्री रात्रि के अन्धकार में हमारे उपवन में से होकर निकले, क्रन्दन कर हमारी करुणा को उत्तेजित करे, हम उसकी सहायता करें, और वह स्त्री रक्षकों को रहस्यमय संकेत कर इसकी सूचना समुद्रदत्त को दे और हम इस दंड के भागी बन जाएँ। यह देवदत्त की क्षुद्रता है। क्या कुटिलता ही मगध राष्ट्र की राजनीति है ?

समुद्रदत्त: यह राजद्रोह है, देवी ! और राजद्रोह का दण्ड प्रणदण्ड है।

बिम्बसार : चुप रहो, समुद्रदत्त ! मैंने सिंहासन छोड़ दिया है, किन्तु उसका यह तात्पर्य नहीं है कि राज्य के साधारण सेवक भी हमसे स्वेच्छापूर्वक व्यवहार कर सकें। तुम अपना कर्तव्य कर सकते हो किन्तु हममें से किसी का भी अपमान नहीं कर सकते। अधिक-से-अधिक अभियोग स्पष्ट कर हमें दण्ड की सूचना दे सकते हो।

समुद्रदत्त : आचार्य देवदत्त का आदेश है कि राजाज्ञा के विरुद्ध उस नारी की सहायता करने के कारण श्रीमान् बिम्बसार और देवी वासवी राजद्रोह के अपराधी हैं।

बिम्बसार : और राजद्रोह का दण्ड प्राणदण्ड है।

समुद्रदत्त : हाँ, महाराज !

बिम्बसार : 'महाराज' शब्द का सम्बोधन मत करो। यदि हमने राजद्रोह किया है तो तुम हमें प्राणदण्ड दे सकते हो।

समुद्रदत्त : आचार्य देवदत्त की ऐसी आज्ञा हुई है।

वासवी : अभी-अभी यह नारी कुटी के बाहर गयी है। इतने थोड़े समय में हमारे अभियोग की सूचना देवदत्त के पास पहुँच गयी और उन्होंने दण्ड की आज्ञा भी दे

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी ? यह सचमुच एक विचित्र घटना है ।

समुद्रदत्त : (राजाज्ञा-पत्र निकालकर) आचार्य देवदत्त की दण्ड-घोषणा का राज-पत्र है ।

बिम्बसार : (देखकर विचारते हुए) हूँ, अब मेरे मन में विश्वास हो गया कि यह एक पूर्व-निश्चित अभिसन्धि ही है । बुद्धदेव की प्रतिष्ठा देवदत्त को सहन नहीं हो सकती । और जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक बुद्धदेव की अप्रतिष्ठा कभी नहीं होगी । इसलिए बुद्धदेव को गिराने के लिए मेरी मृत्यु की आवश्यकता है । क्यों समुद्रदत्त ! वह नारी देवदत्त के द्वारा ही भेजी गयी थी ?

समुद्रदत्त : मैं इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं हूँ, श्रीमन् !

बिम्बसार : ठीक है, वह नारी देवदत्त के द्वारा ही भेजी गयी थी । (वासवी से) देवी ! तुम्हारा अनुमान सत्य है । अपराध की कल्पना पहले ही कर ली गयी थी । नारी से अभिनय कराया गया । वह संघ में गयी । उसकी सम्पत्ति का अपहरण किया गया । राज्य की घोषणा हुई कि उसकी सहायता कोई न करे । उसका बच्चा चार दिनों से भूखा बना रहा । यह मेरे चार दिनों के उपवास का व्यंग्य था ।

वासवी : सत्य है, आर्यपुत्र !

बिम्बसार : उसकी करुणा से हम द्रवित हो जाएँ, उसकी सहायता करें और इस प्रकार राजदंड के भागी बनें । देवदत्त ने यह विचार कर राजदण्ड का आज्ञा-पत्र पहले से ही समुद्रदत्त को दे दिया और नारी ने अन्धकार में विलीन होकर प्रतीक्षा करते हुए समुद्रदत्त को अपनी कुटिल योजना की सफलता की सूचना भी दे दी । बोलो, समुद्रदत्त ! यह ठीक है ?

समुद्रदत्त : (हतप्रभ होकर) आप स्वयं सम्राट् रह चुके हैं, महाराज ! आप सत्य अनुमान कर सकते हैं, किन्तु मैं तो आज्ञाकारी सेवक हूँ । मुझे राजाज्ञा का पालन करना ही होगा ।

बिम्बसार : तो राजाज्ञा का पालन करो । देवदत्त के अनुसार हमने राज्य के प्रति अपराध किया है । उस अपराध का दण्ड है—प्राणदण्ड । तुम बधिक को अपने साथ लाए हो ?

समुद्रदत्त : हाँ, महाराज ! भद्रजित् मेरे साथ आया है, वह द्वार पर है ।

बिम्बसार : तो उसे बुलाओ और मेरे बध की आज्ञा दो । बिना भोजन के मैं यों ही मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहा हूँ । यह प्राणदण्ड मेरी भूख की यंत्रणाओं को सदैव के लिए समाप्त कर देगा । कहाँ है भद्रजित् ? उसे यहाँ आने की आज्ञा दो ।

वासवी (आगे बढ़कर) पहले प्राणदण्ड मुझे मिलना चाहिए, क्योंकि मैंने ही अपना स्वर्ण-कंकण उतारकर उस नारी को दिया था ।

बिम्बसार : देवी, स्वर्ण-कंकण उतारकर देने का आदेश तो मेरा था ।

वासवी : नहीं, आर्यपुत्र ! आदेश में अभियोग की पूर्ति नहीं है, क्रिया-निर्वाह में अभियोग की पूर्ति है और फिर मैं अपनी आँखों से यह जघण्य कार्य होते नहीं देख सकूँगी । समुद्रदत्त ! अपराध मेरा है, मुझे प्राणदण्ड पहले मिलना चाहिए ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिम्बसार : (समुद्रदत्त से) समुद्रदत्त ! इस दण्ड की सूचना राज्य-परिषद् को है ?

समुद्रदत्त : आचार्य देवदत्त के निर्णय की मान्यता सर्वप्रथम है। राज्य-परिषद् के सभ्यों को वे अपने कार्य के औचित्य से संतुष्ट कर सकते हैं।

बिम्बसार : और मगध-सम्राट् अजातशत्रु को हमारे प्राणदण्ड की सूचना है ?

समुद्रदत्त : मगध-सम्राट् जो भी कार्य करते हैं, आचार्य देवदत्त के निर्णयानुसार ही करते हैं। अतः इस सम्बन्ध में मगध-सम्राट् की सहमति का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

बिम्बसार : मैं एक बार मगध-सम्राट् को देख सकता हूँ, समुद्रदत्त !

समुद्रदत्त : श्रीमन्, क्षमा करें। यह असंभव है। आचार्य देवदत्त के आज्ञा-पत्र में इसकी कोई स्वीकृति नहीं। अन्तिम इच्छा की पूर्ति कर देने की भी स्वीकृति नहीं है।

वासवी : देवदत्त मानव नहीं, दानव है।

बिम्बसार : क्रोध न करो, देवी ! हमें राजसत्ता की प्रत्येक आज्ञा मान्य है। (समुद्रदत्त से) समुद्रदत्त, कोई चिन्ता की बात नहीं। बुलाओ बधिक उग्रजित् को। हम मगध-सम्राट् को नहीं देख सकेंगे, कोई हानि नहीं। मुझे प्राणदण्ड देने के बाद मेरा यह प्रश्न मगध-सम्राट् के पास भिजवा देना कि पिता की वात्सल्यधारा का उत्तर रक्तधारा से देकर तुमने किस आदर्श की पूर्ति की है ? अच्छा, अब मैं मरने के लिए प्रस्तुत हूँ। समुद्रदत्त ! तुम अपना कार्य पूरा करो। (वासवी से) वासवी ! देवी ! विदा।

वासवी : (चीत्कार करते हुए) यह नहीं हो सकता ! यह नहीं हो सकता ! मरने का अधिकार सर्वप्रथम मेरा है।

समुद्रदत्त : (गम्भीरता से) आप चिन्तित न हों, देवी ! आचार्य देवदत्त ने इस बात की व्यवस्था भी कर दी है कि आवश्यकता पड़ने पर आप दोनों को एक साथ ही दण्ड दिया जा सकता है। (पुकारकर) उग्रजित् !

[उग्रजित् का प्रवेश]

उग्रजित् : आज्ञा, श्रीमन् !

समुद्रदत्त : भद्रजित् को कृपाण सहित यहाँ आने की सूचना सुनाओ !

उग्रजित् : जो आज्ञा, श्रीमन् !

वासवी : मैं बहुत कृतज्ञ, हूँ, समुद्रदत्त !

समुद्रदत्त : इसमें कृतज्ञ होने की बात नहीं है, देवी ! यह तो राजाज्ञा है। हाँ, आज्ञा देने के पूर्व मैं आचार्य देवदत्त की आज्ञा से आप दोनों को एक आनन्द-संवाद सुना देना चाहता हूँ, जिससे आप अपने जीवन के अन्तिम क्षण में प्रसन्न हो सकें और आनन्द से मर सकें। वह आनन्द-संवाद यह है कि···

वासवी : (बीच ही में टोककर) आर्यपुत्र की कुशलता को छोड़कर संसार में मेरे लिए कोई भी आनन्द-संवाद नहीं हो सकता।

समुद्रदत्त : हो सकता है, देवी ! यह आपके लिए ही नहीं, समस्त मगध-साम्राज्य के लिए आनन्द का संवाद है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिम्बसार : तब मैं यह आनन्द-संवाद अवश्य सुनूंगा जिसमें समस्त मगध-साम्राज्य आनन्द का अनुभव कर सकता है । सुनाओ वह आनन्द-संवाद, समुद्रदत्त !

समुद्रदत्त : वह आनन्द-संवाद यह है, वासवी देवी ! आप भी सुनने की कृपा करें !

वासवी : जिसमें आर्यपुत्र की स्वीकृति है वह मुझे सदैव स्वीकार है। सुनाइए, वह आनन्द-संवाद !

समुद्रदत्त : धन्यवाद ! वह आनन्द-संवाद यह है कि···

[उग्रजित् का प्रवेश]

उग्रजित् : श्रीमन्, भद्रजित् कृपाण सहित सेवा में उपस्थित है ।

समुद्रदत्त : ठीक है ! उससे कहो कि कुछ क्षण द्वार पर ही रहे । मैं अभी ही उसे भीतर आने का आदेश दूंगा ।

उग्रजित् : जो आज्ञा । (प्रस्थान)

समुद्रदत्त : अच्छा, तो मैं आप दोनों को आनन्द-संवाद सुनाता हूँ । वह आनन्द-संवाद यह है कि अजातशत्रु को प्रसेनजित् कौशल-नरेश की कन्या वाजिरा कुमारी से एक पुत्र···

बिम्बसार : (विह्वल होकर बीच ही में शीघ्रता से) पुत्र ! पुत्र ! कुणीक को पुत्र प्राप्त हुआ है ! (उद्विग्न होकर वासवी से) वासवी, देवी ! कुणीक के यहाँ पुत्र हुआ है । मैं···मैं···उस पुत्र को देखूँगा । अपने पुत्र को देखूंगा ।···मगध के भावी नरेश को देखूंगा···। समुद्रदत्त ! मुझे ले चलो ··! मुझे ले चलो···! राजभवन में मुझे ले चलो ! मैं कुणीक के पुत्र को देखूंगा···। नन्हे-से राजकुमार को देखूंगा···। उसे एक चुम्बन···स्नेह-चुम्बन दूंगा । वासवी ! देवी !···उसे एक स्नेह-चुम्बन दूंगा । फिर मुझे···फिर मुझे प्राणदण्ड दे देना ।···पहिले मुझे मेरा छोटा राजकुमार दिखला दो···। मैं उसे देखूंगा···अवश्य देखूंगा···। इसी क्षण देखूंगा···। ओह···इतना सुख···इतना आनन्द···मैं कैसे सँभालूं ! (पुकारकर) वासवी ! शीघ्र चलो···शीघ्र चलो, नहीं तो हम पीछे रह जाएँगे, पीछे रह जाएँगे···। ओह, मेरा सिर घूम रहा है···मैं गिर पड़ूंगा, वासवी !···मैं गिर···वासवी देवी···!

[बिम्बसार पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं ।]

वासवी : (शीघ्रता से समीप आकर) आर्यपुत्र···आर्यपुत्र !

[नेपथ्य में तीव्र घोष—'सम्राट् की जय'···'राजकुमार की जय'···'मगध के भावी सम्राट् की जय'···'नवीन राजकुमार की जय'···'जय—जय—जय' ।]

समुद्रदत्त : (घबराहट से) सम्राट् इस समय यहाँ कैसे···यहाँ कैसे आ सकते हैं ? मैं जाकर देखता हूँ । (शीघ्रता से प्रस्थान)

[नेपथ्य में फिर एक बार 'सम्राट् की जय' का घोष होता है। 'जय' की ध्वनि समाप्त होते ही द्वार से आते हुए अजातशत्रु का स्वर सुनाई देता है : 'पिता'··· 'पिता'···'पिता···! शब्द क्रमशः पास आता है । अजातशत्रु का शीघ्रता से प्रवेश]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजातशत्रु : **(उद्विग्न और करुण स्वर से)** पिता…! पिता…पिता जी ! क्षमा… क्षमा ! मैं क्षमा का भिक्षुक हूँ। मैं पितृ-द्रोही हूँ। मैंने जघन्य पाप किया है। मैंने अपने स्वर्ग को नरक में डाल दिया। मुझे राज्य नहीं चाहिए, राज्य नहीं चाहिए। पिता ! पिता ! मुझे केवल आपके चरणों की छाया चाहिए। **(वासवी से)** माँ ! माँ ! पिता जी उत्तर क्यों नहीं देते ? क्या वे मुझसे इतने रुष्ट हैं कि मुझसे बोलना भी उन्हें स्वीकार नहीं ? उनका पुत्र कुणीक सेवा में उपस्थित है।

वासवी : **(सिसकियाँ लेती हुई)** नहीं, कुणीक ! तुम्हारे पुत्र-जन्म संवाद से तुम्हारे पिता को इतना आनन्द हुआ कि वे आनन्दातिरेक से मूर्छित हो गए।

अजातशत्रु : **(विह्वल होकर)** ओह, मैं कितना पापी हूँ, पिता ! जो पिता पुत्र के प्रत्येक आनन्द को अपना आनन्द समझता है, उसी पिता को पुत्र ने नियंत्रण में रखा। उसे बिना भोजन के तड़पाया। आह, माता ! मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हें और पिता को इतने कष्ट दिए हैं कि यदि तुमने और पिता ने मुझे क्षमा नहीं किया तो उनका प्रायश्चित्त सौ जन्मों में भी नहीं हो सकता। पृथ्वी पर साक्षात् देवी और देवता की भाँति मैंने माता और पिता का मूल्य नहीं समझा। मैं कितना अधम हूँ…कितना नीच हूँ !

वासवी : नहीं, तुम मगधराज हो, कुणीक !

अजातशत्रु : माँ ! मुझे शाप दो। मैंने मगधराज बनकर अपने सच्चे राज्य का तिरस्कार किया है। मेरी माता ने और देवदत्त ने अपने स्वार्थों के लिए मेरा बलिदान किया। मुझ पर दया करो, माँ ! मुझे क्षमा करो। मैंने पिता के स्नेह का मूल्य नहीं समझा।

वासवी : कुणीक ! जब तुम स्वयं पिता हुए तब तुमने पिता के स्नेह का मूल्य समझा।

अजातशत्रु : मुझे लज्जित न करो, माँ ! मेरी आँखें लज्जा से ऊपर भी नहीं उठ सकतीं। मैं भ्रम में पोषित हुआ। मेरा मार्ग टेढ़ा था। मुझे उचित शिक्षा नहीं दी गयी। मैंने अपने को विश्व-भर में महान् समझा। मैं उद्दण्ड हो गया। अब मुझे अनुभव हुआ कि जिस राजमहल में मैं रहा वह तो ईंट-पत्थरों का था। मेरा सच्चा राजमहल तो पिता के चरणों में है। मैंने तुमको और पिता को जो दारुण यंत्रणाएँ दी हैं वे सब एक साथ मिलकर मेरे हृदय में दंशन कर रही हैं। माँ ! मुझे क्षमा करो। पिता ! मुझे क्षमा करो। **(वासवी से)** माँ, पिता जी बोलते क्यों नहीं ?

वासवी : **(बिम्बसार से)** आर्यपुत्र ! कुणीक आपके चरणों में क्षमायाचना कर रहे हैं। उन्हें क्षमा कीजिए।

अजातशत्रु : पिता जी ! आपका पुत्र कुणीक आपके चरण छूकर शपथ…… **(चरण स्पर्श करता है। सहसा चीखकर)** पिताजी ! आप कहाँ हैं ! कहाँ हैं ! पिता ! पिता !

वासवी : **(उद्विग्नता से सिसकी लेकर)** आर्यपुत्र ! आर्यपुत्र !

[मूर्छित हो जाती है।]

अजातशत्रु : माँ ! तुम मूर्छित हो गईं ! ओह, पापी कुणीक ! तू पितृहन्ता है। तू इतने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलम्ब से आया कि पिता बिना क्षमा किए ही चले गए। क्या इस रात का यही रहस्य है, जिसने अपने अन्धकार में मेरे जीवन के वास्तविक सत्य को ढँक लिया था ? ओह, पिता ! आप कितने महान् थे। अपनी यंत्रणाओं से निरन्तर युद्ध किया, भूख की ज्वाला में अपने रोम-रोम को जलाया और अपने स्नेह को सुरक्षित रखते हुए वीर पुरुष की भाँति इस संसार से चले गए। मेरे सुख से सुखी हुए किन्तु उस सुख की सूचना भी नहीं दी। इस सबका दोष इस अभागे कुणीक पर है। इस कुत्सित अजातशत्रु पर है। इस दम्भी मगधराज पर है, जिसने विष को अमृत समझा और पाप को पुण्य समझकर माथे पर लिया। धिक्कार है मुझे ! अभागे कुणीक ! अब तुझे जीवन-भर शान्ति नहीं मिलेगी। तू आत्म-प्रतारणा की अग्नि में तिल-तिल कर जल···जल···! (एक गहरी सिसकी)

[नेपथ्य में जाता हुआ भिक्षु-वर्ग गम्भीर स्वर में सम्मिलित ध्वनि कर रहा है—]

बुद्धं शरणं गच्छामि !
धम्मं शरणं गच्छामि !
संघं शरणं गच्छामि !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक हजार रुपया

पात्र-परिचय

सेठ सुगमचन्द	:	नगर के एक सेठ	—आयु 52 वर्ष
हीरालाल	:	सुगमचन्द के मुनीम	—आयु 40 वर्ष
बंसीलाल	:	सुगमचन्द के कारिन्दे	—आयु 35 वर्ष
कुमार	:	सुगमचन्द के भतीजे	—आयु 28 वर्ष
केदार	:	कुमार का साथी	—आयु 26 वर्ष
अन्नपूर्णा	:	कुमार की माँ	—आयु 46 वर्ष
किशोर	:	कुमार का छोटा भाई	—आयु 24 वर्ष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय : संध्या के सात बजे।

[साधारण रूप से सजा हुआ कमरा। दाहिने और बायें दो दरवाजे हैं। दाहिनी ओर का दरवाजा बाहर को खुलता है। बायीं ओर का दरवाजा घर के भीतर जाने का है। बाएँ दरवाजे के समीप ही एक अलमारी है जिसमें कुछ रजिस्टर और वहियाँ हैं। सामने एक तख्त है जिस पर कालीन बिछा हुआ है। पीछे लक्ष्मी जी की तस्वीर है। उसके समीप ही टेवल पर टेलीफोन रखा हुआ है।

दाहिनी ओर दो-तीन कुर्सियाँ रखी हुई हैं। पीछे की दीवाल में एक खिड़की है जिससे बाहर का दृश्य दिखलाई देता है। कमरे में विजली का उजाला। दीवाल पर आमने-सामने दो चित्र हैं। एक गोपाल जी का और दूसरा सुगमचन्द के छोटे भाई का।

परदा उठने पर सेठ सुगमचन्द पगड़ी, शेरवानी और धोती पहने दृष्टिगत होते हैं।]

सुगमचन्द : (हाथ जोड़कर) हे लक्ष्मी माता! हमने जिन्दगी-भर तुम्हारी पूजा की—तुम जानो। मगर तुमने हमारे सिर पर अपनी सवारी का उल्लू बिठा दिया। मेरे घर में उल्लुओं की कमी थी? पर तुमने एक और जोड़ दिया। मैं उल्लू नहीं हूँ पर उल्लुओं के बीच में तो हूँ—तुम जानो। छोटे भाई गोकलचन्द को तुमने उठा लिया। और अब उसका परिवार मुझे उल्लू बना रहा है। उसका छोटा लड़का किशोर कल से घर से फरार है। पुलिस स्टेशन को टेलीफून किया, पर कुछ पता नहीं। मुनीम भी उसे खोजने गया है—अभी तक नहीं लौटा। अब तो सोचता हूँ कि मुझे भी उल्लू बनाकर अपनी सवारी में ले लो—तुम जानो। (टेलीफोन की घंटी बजती है) हिलिओ! मैं सेठ सुगमचन्द हूँ···जी···किशोर का···किशोर का···मेरे भतीजे का कुछ पता चला।···नहीं? शहर में ही कहीं होगा···जी··· हाँ, हुलिया 5 फुट 4 इंच···रंग गेहुआँ···बुशर्ट और पेंट में है···जी? हाँ निशान? जी क्या बतलाऊँ। सिगरेट पीने से उसकी उँगलियाँ पीली हो गई हैं। शराब? जी···जी हाँ, ज्यादातर लड़कियों की कम्पनी में पीता है—हाँ उसकी लिमिटेड कम्पनी है। बाल हिप्पी टाइप के हैं।···जी हाँ···जी हाँ, पता जरूर लगा दीजिए। जी···बहुत धन्यवाद।

[टेलीफोन रख देता है, फिर तख्त पर बैठकर हुक्के में कश लगाने लगता है। इसी बीच मुनीम आकर सुनते हुए खड़ा हो जाता है।]

हीरालाल : कुछ पता चला? किसका टेलीफून था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगमचन्द : पुलिस स्टेशन का था—तुम जानो। कहाँ तो रेल के स्टेशन पर सब बातों का पता चल जाता है—दूर-दूर तक के टिकट मिल जाते हैं—बड़ी-बड़ी गाड़ियों के आने-जाने का पता लग जाता है—और ये पुलिस स्टेशन—यहाँ एक लड़के का पता नहीं चलता है। कहने को स्टेशन है। (हुक्का गुड़गुड़ाता है।)

हीरालाल : कहीं ऐसा तो नहीं है सेठ जी, कि उठाईगीरों ने किशोर को फँसा लिया हो और चिट्ठी आती हो कि पन्द्रह-बीस हजार फिरौती दो।

सुगमचन्द : (आँखें फाड़कर) पन्द्रह-बीस हजार ? रुपए पेड़ पर फलते हैं, जब चाहो हिला दें तो बरस जाएँ सारे रुपए ? मैं तो पन्द्रह-बीस पैसे भी नहीं दूँगा। गोपाल कहो—चाहे वे मेरे बड़े भतीजे कुमार को भी बाँधकर ले जाएँ। फिरौती माँगेंगे—जैसे इन्हीं के लिए मैं व्यौपार करता हूँ। हाँ, जाओ, बाग के मकानों का किराया वसूल करके ले आओ।

[बंसीलाल का प्रवेश]

हीरालाल : अभी जाता हूँ। ये बंसीलाल जी आ रहे हैं ? (प्रस्थान)

बंसीलाल : जैगोपाल लालाजी ! कहिए किशोर का पता लगा ?

सुगमचन्द : कहाँ पता लगे ! कल शाम से गायब हैं। उसकी माँ अन्नो ने कुछ खाया-पीया नहीं और वह किसी से कुछ कहके भी नहीं गया। ये हीरालाल कहते हैं कि शायद उठाईगीरों ने किशोर को फँसा लिया हो···और···और फिरौती···

बंसीलाल : किशोर 5-6 बरस का बच्चा तो है नहीं कि उठाईगीर उसे अपने झोले में डाल लें ! आपने कहीं फोन किया ?

सुगमचन्द : हाँ, पुलिस स्टेशन फोन किया था—कोई खबर नहीं तुम जानो।

बंसीलाल : पुलिस स्टेशन से क्या खबर मिलेगी ! आप भी गलत जगह फोन करते हैं। आपको फोन करना चाहिए, सिनेमा हाउस में। दुनिया में आजकल के लड़के वहीं मिलते हैं। वे चाहे जहाँ घूमें-फिरें—लौटकर आते हैं सिनेमा हाउस में। सिनेमा हाउस ने तो उनका दिल ही जैसे गिरवी रख लिया है।

सुगमचन्द : दिल ही गिरवी रख लिया है ?

बंसीलाल : सही कहता हूँ। गिरवी क्या रक्खा है, खरीद लिया है। अगर उनसे कहा जाए कि एक तरफ स्वर्ग है, दूसरी तरफ सिनेमा हाउस—तुम कहाँ जाओगे ? वे कहेंगे सिनेमा हाउस, स्वर्ग देखा किसने है ? महज कल्पना है, फरेब है और सिनेमा हाउस ? एक से एक नयी दिलचस्प प्रेम-कहानी, ताक-झाँक, गुलाब में चुभा हुआ काँटा, रोमांस की रंगीनियाँ, नए-नए नजारे, दिल में बस जाने वाली रूप की रानियाँ, गुदगुदाने वाले गाने—हाय, क्या नहीं है वहाँ ?

सुगमचन्द : तुम भी सिनेमा में बिक गए हो, लगता है। तुम जानो।

बंसीलाल : मेरी तो उम्र बीत गई। अब तो काफी हाउस जाता हूँ। काफी हाउस भी बड़े दिलचस्प होते हैं। दुनिया में जितने तरह के लोग होते हैं, वहाँ मिल जाते हैं। प्रौढ़, जवान, किशोर और किशोरियाँ। सबका जमघट होता है वहाँ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगमचन्द : लोगों के लिए घर काफी नहीं हुए तो अलग से काफी हाउस बन गए !

बंसीलाल : हाँ, एक प्याला काफी और दुनिया-भर की बातें। दुनिया में शायद ही कोई विषय हो जिसकी चर्चा वहाँ न होती हो। समाजवाद, फूलनदेवी, प्रेम-विवाह, छायावाद, रेल दुर्घटना, कुलपति का घिराव, परीक्षा में नकल, विदेश यात्रा और शीर्षासन तक की बातें होती हैं और मजा यह है कि सब कुछ कह डालो और नतीजा कुछ न निकले। तुमने काफी हाउस फोन किया ?

सुगमचन्द : काफी हाउस—इसकी चर्चा कभी हुई नहीं। किशोर फिजूलखर्च है, खाता-पीता है यह बात जरूर है। तुम जानो। यूनाइटेड कमर्शल बैंक में कार्य करता है। थोड़ी-बहुत तनख्वाह मिलती है पर उससे काम कुछ चलता नहीं है। कभी भाई कुमार से माँगता है, कभी मुझसे। पर मैं अपना पैसा, तुम जानो फिजूलखर्ची के लिए कभी देता ही नहीं।

बंसीलाल : तो कहीं दूसरे के सहारे गुलछर्रे उड़ा रहा होगा। देर-सबेर आ ही जाएगा। चिन्ता करने से क्या होता है ?

सुगमचन्द : चिन्ता मैं क्यों करूँ ! पर वह रहता तो हमारे घर ही है।—बड़े भाई गोकलचन्द संसार से जल्दी चले गए। तुम जानो घरवाली और ये दो बच्चे कुमार और किशोर छोड़ गए। गनीमत है दोनों नौकरी से लगे हैं लेकिन रहते तो मेरे ही घर हैं। मेरे कोई बाल-बच्चा नहीं तुम जानो, तो चलो तुम्हीं घर में रहो।

बंसीलाल : अच्छा है, परिवार में बच्चों से कुछ चहल-पहल रहे तो घर-घर जैसा लगता है। फिर भतीजों को भी तो घर पर रहने का अधिकार होना चाहिए।

सुगमचन्द : अधिकार क्या—यह तो मेरी मेहरबानी है। मैंने उन्हें अपने घर में रहने दिया। अपनी करनी, पार उतरनी—तुम जानो। खुद कमाओ और खर्च करो। भाई के बेटे हो तो घर में रहो—ठीक है।

बंसीलाल : अच्छा ! मैं चलता हूँ। किशोर कमर्शल बैंक में काम करता है तो उसी बैंक के मैनेजर से पूछूंगा—कुछ तो पता चलेगा।

सुगमचन्द : अच्छी बात है।

[बंसीलाल का प्रस्थान। सुगमचन्द तख्त पर बैठकर हुक्का पीते हैं। फिर आँखें बन्द कर सोचने लगते हैं। कुछ क्षण बाद हीरालाल का प्रवेश]

हीरालाल : सेठ जी ! मैं बाग के मकानों का किराया ले आया।

सुगमचन्द : ले आए ? कितना लाए।

हीरालाल : बारह सौ रुपए।

सुगमचन्द : सिर्फ बारह सौ ? ये कमबख्त किराएदार तुम जानो परले सिरे के बेईमान और धोखेबाज हैं। बारह सौ पचास के बजाय सिर्फ बारह सौ दिए ?

हीरालाल : कहते हैं—पचास रुपए फिर दे देंगे।

सुगमचन्द : फिर दे देंगे। पचास रुपए देने में नानी मरती है। कोई बात नहीं। कमबख्तों से एक-एक पैसा वसूल कर लूंगा। जाएँगे कहाँ। तुम जानो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीरालाल : मैंने भी सिर्फ बारह सौ के पावते की रसीद दे दी है। लीजिए, ये बारह सौ रुपए।

[सुगमचन्द सौ-सौ रुपए के बारह नोट गिनते हैं।]

सुगमचन्द : बाकी पचास रुपए कब देंगे ?

हीरालाल : अगले महीने देने को कह रहे हैं।

सुगमचन्द : कह देना पचास रुपए का ब्याज भी भरना होगा।

हीरालाल : कह दूँगा। जै गोपाल जी !

सुगमचन्द : देखो ! जाते वक्त जरा काफी हाउस में भी देखते जाना। बंसीलाल कह रहे थे कि काफी हाउस में भी किशोर को देख लेना चाहिए। खाऊ-उड़ाऊ किस्म का लड़का है—वहीं हो सकता है। तुम जानो।

हीरालाल : अच्छी बात है। काफी हाउस जा रहा हूँ। (प्रस्थान) सुगमचन्द बारह सौ रुपए के नोट थैली में सम्हाल कर रखते हैं, फिर उसे अपनी बही के नीचे दबाकर हुक्का पीने लगते हैं। पीते-पीते आँखें बन्द कर कुछ सोचने लगते हैं।

[कुछ ही क्षणों में कुमार और केदार का बातें करते हुए प्रवेश।]

कुमार : (सुगमचन्द से) चाचा जी ! किशोर आया ? (सुगमचन्द कुछ नहीं बोलते) शायद नहीं आया। अगर आ जाता तो घर में इतना सन्नाटा न रहता। क्या करूँ केदार। किशोर को कहाँ-कहाँ नहीं खोजा ! कम से कम हम लोगों से कह तो जाता कि कहाँ जा रहा है। कल से गायब है। माँ रात-भर नहीं सोयीं। दिन में खाना भी नहीं खाया। कहती हैं पता नही किशोर ने कुछ खाया या नहीं। मैं समझाता हूँ कि किशोर भी कहीं भूखा रह सकता है। वह दूसरों की प्लेटें साफ कर जाता है, पर माँ हैं कि मानती ही नहीं। क्यों चला गया, कहाँ चला गया—कुछ समझ में नहीं आता।

केदार : कहीं शहर से बाहर तो नहीं चला गया ?

कुमार : शहर से बाहर जाने की क्या जरूरत पड़ सकती है। फिर बैंक के काम से उसे फुर्सत ही कहाँ मिलती है। खाने-पीने और कपड़े पहनने का शौक उसे जरूर है। शहर में कपड़े का कोई अच्छा डिजाइन आया कि किशोर का सूट तैयार है।

केदार : इतने पैसे तो उसे बैंक से मिलते नहीं कि उसका शौक पूरा कर सकें। शायद चाचाजी देते होंगे।

कुमार : (सुगमचन्द की ओर देखकर) चाचा जी ! बाग के मकानों का किराया आया ? (चाचाजी कुछ नहीं बोलते) शायद चाचा जी को झपकी लग गई ! चाचाजी किशोर को क्या, किसी को एक पैसा नहीं देते। वे तो पैसों की मीनार कुतुबमीनार से ऊँची बनाना चाहते हैं।

केदार : तभी तो लाखों रुपयों से उनकी तिजोरी भरी है। उनके पास पैसा आता नहीं, बरसता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

कुमार : हाँ, लेकिन हमारे पिताजी तो अच्छे कामों में पैसा खर्च करने में विश्वास रखते

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। चाचाजी का हुक्का ठंडा हो गया होगा, (पुकारकर) चाचा जी ! हुक्का ताजा कर दूं ? (चाचा जी कुछ नहीं बोलते) लगता है, चाचा जी गहरी नींद में हैं। चाचाजी इसी तरह बैठे-बैठे तकिए के सहारे सो जाते हैं। बुढ़ापे में शरीर भी कैसा हो जाता है। जहाँ बैठ गए, बैठ गए—जहाँ नींद आयी, सो गए !

केदार : बुढ़ापा अजीब चीज है। जो शरीर सेब की तरह गदराया रहता है, वह सूखे बेर की तरह ऐंठ जाता है। हाथ-पैर जो हाथी की सूंड़ की तरह सुडौल रहते हैं वे साखू की लकड़ी की तरह सूख जाते हैं।

कुमार : बुढ़ापे में ऐसा हो ही जाता है। हमारे राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण ने 'यशोधरा' में लिखा है कि भगवान बुद्ध ने अपनी सुन्दर पत्नी यशोधरा के बुढ़ापे की कल्पना करके कहा था :

देखी मैंने आज जरा।
ऐसी ही क्या हो जाएगी मेरी यशोधरा ?
युवती यशोधरा वृद्धावस्था में कैसी लगेगी—

संसार की इसी गतिशीलता को देखकर उन्होंने राजभवन छोड़ दिया था।

केदार : लेकिन वे खुद भी तो बुढ़ापे से नहीं बच सके। अस्सी बरस की आयु में उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

कुमार : आयु चाहे जितनी बढ़ जाए, यदि स्वास्थ्य ठीक रहे तो वृद्धावस्था का कष्ट खलता नहीं है। लेकिन हमारी माँ की भी तन्दुरुस्ती बहुत खराब हो रही है।

केदार : सचमुच ! तुम्हारे पिताजी की मृत्यु के बाद तो जैसे उनके जीवन का सब ऐश्वर्य ही समाप्त हो गया।

कुमार : अगर उनकी चिन्ता न की गयी तो अधिक दिनों तक वे हम लोगों का साथ नहीं दे सकेंगी। केदार ! इसी सम्बन्ध में मैंने चुपचाप एक काम किया है जिसकी खबर किसी को नहीं है।

केदार : अच्छा, वह कौन सा काम किया ?

कुमार : (सुगमचन्द को गहराई से देखते हुए) चाचा जी ! आपको प्यास लगी है, पानी लाऊँ ? (कोई उत्तर नहीं) लोग कहते हैं कि बुढ़ापे में नींद नहीं आती लेकिन हमारे चाचाजी ऐसी गहरी नींद में सोते हैं कि उनके लिए दिन और रात में कोई अन्तर ही नहीं रहता। अच्छा केदार सुनो, मैंने वह काम किया है कि लोग आश्चर्यचकित हो जाएँगे। लेकिन तुम वचन दो कि तुम किसी से नहीं कहोगे। न माता जी से, न किशोर से और चाचा जी को मालूम होगा तो कहीं उनका हार्ट फेल न हो जाए।

केदार : उनका हार्ट फेल तो उनकी तिजोरी का ताला टूटने पर ही हो सकता है।

कुमार : उनकी तिजोरी उन्हें मुबारक ! देखो जो काम मैंने किया है उसे तुम अपने तक ही रखोगे। किसी से नहीं कहोगे।

केदार : अच्छा किसी से नहीं कहूँगा।

कुमार : प्रोमिस।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केदार : प्रोमिस।

कुमार : देखो केदार, माँ की तन्दुरुस्ती दिनोदिन खराब हो रही है। चाचीजी को इसकी जरा भी चिन्ता नहीं। वे उन पर एक पैसा भी खर्च नहीं करेंगे। वे तो चाहते हैं कि यह बला जितनी जल्दी हो, टले। इसलिए मैंने एक काम किया।

केदार : वह कौन सा ?

कुमार : अपने कार्यालय से समय निकालकर मैं अंग्रेजी और हिन्दी में लेख लिखता रहा हूँ और उनका जो पारिश्रमिक मुझे मिला है, उसे मैंने खर्च नहीं किया। उसे अलग से जमा कर लिया है। मेरी इच्छा है, उन रुपयों से मैं माँ को अपने साथ कश्मीर ले जाऊँ और उनकी सही ढंग से दवा कराऊँ। आवोहवा बदलने से और सही इलाज से वे ठीक हो जाएँगी। पिताजी तो हमें जल्दी ही छोड़कर चले गए, हम चाहते हैं कि माता जी की छत्रछाया तो हमारे ऊपर रहे। हम इसी तरह उनकी कुछ सेवा कर सकें।

केदार : वहुत ही सुन्दर विचार है। प्रत्येक पुत्र को अपनी माँ का ध्यान इसी तरह रखना चाहिए। तो तुम्हारे लेखों का कुल कितना पुरस्कार तुमने जमा कर रखा है।

कुमार : अधिक तो नहीं है। ग्यारह सौ रुपये होंगे। कश्मीर जाने तक सोचता हूँ 1500 रुपए हो जाएँ। तनख्वाह से तो कुछ बचता नहीं। घर के खर्चे में सब रुपये सपने की तरह उड़ जाते हैं। ग्यारह सौ रुपये मैंने अलग से सहेज कर रख लिए हैं।

केदार : तुम्हारी बातें सुनकर मैं भी अपनी माँ को लेकर तुम्हारे साथ चलूंगा। कश्मीर में बड़ा मजा आएगा।

[माँ का प्रवेश।]

माँ : कुमार ! किशोर का कुछ पता चला ?

केदार : प्रणाम माँ ! अभी तक किशोर भाई आए नहीं। पता नहीं कहाँ चले गए लेकिन घबराओ नहीं माँ, वे आते ही होंगे।

मां : कल से नहीं आया। पहले तो कभी इतनी देर रुकता नहीं था।

कुमार : हाँ, मैं समझता था कि वह सेकिंड शो सिनेमा देखने चला गया होगा, लेकिन रात एक बजे तक मैं रास्ता देखता रहा—नहीं आया। आज दिन में भी उसका पता नहीं चला। मैंने बैंक के मैनेजर से मिलने की कोशिश की, शायद उनसे पता चले लेकिन बैंक के मैनेजर अपने आफिस में नहीं थे।

माँ : राम-लक्ष्मण की तरह तुम दोनों मेरे सहारे हो। अगर किशोर को कुछ हो गया तो मैं जिन्दा नहीं रह पाऊँगी।

कुमार : माँ, इतने दुखी होने की बात नहीं है। किशोर की आदत है कि वह किसी से कुछ कहता नहीं—मनमानी करता है। कहीं चला गया होगा। जल्द वापस आ जाएगा।

माँ : सुना था कि तुम्हारे चाचाजी ने पुलिस स्टेशन फोन किया था, कुछ पता नहीं चला।

[बंसीलाल का प्रवेश। माँ अपने सर का पल्ला संभाल लेती है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंसीलाल : पता चल गया है। (देखकर) लालाजी सो रहे हैं? किशोर की बातों का पता चल गया।

माँ : (विह्वलता से) कहाँ है, कहाँ है, मेरा लाल! कब आएगा? कहाँ है? कहाँ चला गया?

बंसीलाल : बैंक के मैनेजर मुझे रास्ते में ही मिल गए। उन्होंने कहा कि किशोर ने बहुत बड़ा अपराध किया है।

कुमार : अपराध? कैसा अपराध?

बंसीलाल : बैंक का एक हजार रुपए का हिसाब नहीं मिलता। किशोर कैशियर है। उसने वह रुपया अपने ऊपर खर्च कर लिया। धीरे-धीरे वह रुपया लेता रहा और रजिस्टर में उसने दर्ज नहीं किया। कल जब जाँच की गयी तो मालूम हुआ कि उसने एक हजार का गबन किया है। तभी से किशोर दफ्तर से गायब है।

माँ : कहीं उसने आत्महत्या तो नहीं कर ली? (सिसकियाँ लेती हैं।)

बंसीलाल : आत्महत्या नहीं की! अगर की होती तो पुलिस को खबर होती। लाला जी ने पुलिस स्टेशन फोन किया था। वहाँ से ऐसी कोई खबर नहीं मिली।

कुमार : किशोर फिजूलखर्च तो है ही। बैंक में रहते हुए पैसों पर उसकी निगाह डोल सकती है। मैंने कई बार फिजूलखर्ची से उसे रोका, लगता है—उसकी समझ में कुछ आया नहीं और उसकी आदत दिनोदिन खराब होती गयी।

बंसीलाल : मैनेजर साहब यह भी कहते थे कि अगर कल तक वह एक हजार रुपया जमा कर दे तो वे केस पुलिस में नहीं देंगे। रुपया जमा नहीं हुआ तो किशोर को जेल जाना पड़ेगा। पुलिस तो अपराधी को कहीं न कहीं खोज ही लेगी। जेल तो होगी ही।

माँ : उसे जेल होगी? हाय! मेरे पास एक हजार क्या एक सौ रुपया भी नहीं है। अब क्या होगा—कुमार, अब क्या होगा?

बंसीलाल : कुमार, तुम जानते हो मैं खुद अपने बाप-दादों का कर्ज पटाते-पटाते रुपयों के मामले में कितना बेसहारा हो गया—नहीं तो मैं तुम लोगों से कहे बिना एक हजार रुपया जमा कर देता।

कुमार : चाचा जी से कुछ कहा जाए?

चाचाजी : (आँख खोलकर) क्या किसी ने मुझे पुकारा? तुम लोग सब मेरे घर में भीड़ लगाए रहते हो। यह नहीं देखते कि मेरा हुक्का ठंडा हो गया है, इसे ताजा कर दिया जाए? तुम जानो।

कुमार : चाचा जी! मैंने आपसे कई बार पूछा था—लेकिन आपकी झपकी लग गयी थी। मैंने भी सोचा कि जब आपकी आँख लग गयी है तो हुक्के का क्या होगा!

चाचाजी : हाँ, तुम लोग तो चाहते हो कि मेरी आँख बन्द हो जाएँ तो लूटने-खसोट का मौका हाथ लगे। कोई बात नहीं—मैं अपना हुक्का खुद ताजा कर लूंगा। तुम जाओ।

कुमार : नहीं चाची जी! लाइए, मैं ताजा कर लूँ। आप क्यों कष्ट करते हैं!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगमचन्द : बहुत शिष्टाचार न बरतो—मैं खुद अपना काम कर लूँगा। (हुक्का लेकर प्रस्थान)

कुमार : चाचा जी ने कुछ कहने का मौका ही नहीं दिया।

माँ : फिर हजार रुपए का प्रबन्ध कैसे होगा? मेरा बेटा जेल भेज दिया जाएगा! बदनामी होगी सो अलग।

[इसी समय किशोर प्रवेश करता है।]

माँ : (किशोर को देखते ही) किशोर…किशोर तू कहाँ रहा? तेरे बिना हम सब कितने परेशान हो रहे हैं!

कुमार : तुम कहाँ चले गए थे किशोर? तुम्हारे चले जाने के बाद माँ ने अभी तक कुछ खाया-पिया नहीं।

किशोर : वे खाएँ या न खाएँ, मुझे अब जहर खाना ही होगा।

बंसीलाल : किशोर बाबू! हमें सब मालूम हो गया है। तुम्हारे बैंक के मैनेजर डा० टण्डन ने मुझे बतलाया है कि तुमने बैंक से एक हजार रुपया गबन किया है और अगर कल तक यह रुपया जमा नहीं किया तो तुम जेल भेज दिए जाओगे।

किशोर : मैं आज दिन भर शहर की गली-गली भटकता रहा कि कहीं एक हजार रुपए का प्रबन्ध हो जाए लेकिन मेरे सारे दोस्त स्वार्थी निकले। सब खाने-उड़ाने के साझीदार थे। किसी ने कोई हमारा नहीं दिया। अब तुम लोगों से विदा लेने आया हूँ। जेल जाने की अपेक्षा मैं मर जाना बेहतर समझता हूँ।

माँ : फिर मुझे भी अपने साथ ले चलो। मैं भी मर जाऊँगी।

बंसीलाल : क्या मात्र एक हजार का प्रबन्ध नहीं हो सकता, कुमार! चाचा जी से कहना चाहिए। उनके पास तो हजारों रुपयों का खजाना है।

माँ : वे एक पैसा नहीं देंगे। हम लोग जो उनके घर रहते हैं उसी का एहसान हमेशा जताते रहते हैं। इन बच्चों के पिता जी कोई घर नहीं बनवा सके। दान-पुण्य करते रहे। बच्चों को खिला-पिला कर बड़ा कर दिया और चले गए। आज का दिन देखने के लिए ही शायद उन्होंने जिन्दा रहना ठीक न समझा हो! (सिसकियाँ लेती हैं।)

कुमार : (माँ को सान्त्वना देते हुए) माँ, रोने से कोई लाभ नहीं है। मैं भरसक किशोर की सहायता करता रहा हूँ लेकिन मुझे पता नहीं था कि किशोर की फिजूलखर्ची इतनी बढ़ गयी है कि उसका गुजारा उसकी तनख्वाह और मेरी थोड़ी-बहुत सहायता से भी नहीं होता और वह चुपके-चुपके बैंक से रुपया चुराता रहा है।

किशोर : जो कुछ कहना है कह डालो! मैं जानता हूँ कि आपके पास इस समय इतना रुपया नहीं है कि आप मेरी सहायता कर सकें। माँ बेचारी के पास धरा ही क्या है। हम लोगों को पढ़ाने में उनके सारे गहने बिक गए। मैं सोचता था मेरी चोरी जल्दी पकड़ी नहीं जाएगी और धीरे-धीरे मैं सब रुपया जमा कर दूंगी पर बात बीच में ही खुल गयी। अब या चाचा जी से रुपयों की भीख माँगी जाए या आप मुझे

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो-चार रुपए दे दें जिससे मैं जहर खाकर मर जाऊँ। परिवार को बदनामी से बचा लूँ कि मैंने जेल की हवा नहीं खायी।

बंसीलाल : किशोर, इतनी जल्दी मत घबराओ। देखो, मैं कोशिश करता हूँ कि कल तक रुपयों का प्रबन्ध हो जाए। (प्रस्थान)

किशोर : क्या प्रबन्ध होगा! खुद तो कर्ज में डूबे हैं, मेरे लिए क्या रुपयों का प्रबन्ध करेंगे। चाचा जी रुपया देंगे नहीं, तुम्हारे और माँ के पास रुपया है नहीं, तुम्हारी सारी तनख्वाह तो घर-खर्च में चली जाती है। तो सिवाय आत्महत्या के मेरे पास दूसरा क्या चारा है। लाइए, मैं लिख दूँ कि मैं अपनी इच्छा से आत्महत्या कर रहा हूँ जिससे आप लोगों पर कोई आँच न आए। इस बही से ही मैं एक कागज फाड़ लेता हूँ।

[किशोर जैसे ही वही उठाता है, उसके नीचे चाचा जी के रुपयों की थैली दीख पड़ती है।]

किशोर : (चौंककर थैली उठाता हुआ) यह चाचा जी के रुपयों की थैली है! (खोलकर देखता है) इसमें तो सौ-सौ रुपयो के नोट भरे पड़े हैं। अब तो रुपया मुझे मिल गया!

कुमार : यह कैसा रुपया है?

किशोर : अब कुछ न पूछिए। ये सौ-सौ के नोट हैं—(गिनकर) एक दो तीन चार पाँच छः सात आठ नौ दस···मेरा काम बन गया। ये दो नोट इसी में रहने दूँ।

[किशोर थैली नीचे गिरा देता है। कुमार उसे उठाता है।]

कुमार : यह क्या करते हो किशोर! ये चाचा जी के रुपए हैं। उन्हें मालूम हुआ कि उनके रुपए इस तरह लूट लिए गए तो उनका हार्ट फेल हो जाएगा। उनका पैसा इस थैली में ही रख दो।

किशोर : घर में पैसा भरा हुआ है और मैं उसे छू भी न सकूँ, जेल चला जाऊँ या जहर खाकर मर जाऊँ।

माँ : मरने का नाम मत लो किशोर! लेकिन चाचा जी के रुपयों के रहते हुए अगर तुम्हें जेल जाना पड़ा तो दुनिया के लोग क्या कहेंगे? हमारी इज्जत तो यों ही धूल में मिल रही है।

कुमार : चाचा जी के रुपयों को लेने का अर्थ है कि अब हम लोग हम घर में रहने भी नहीं पाएँगे। देखो किशोर! रुपयों का प्रबन्ध तो किसी तरह हो जाएगा। तुम चाचाजी के रुपयों हाथ मत लगाओ।

[कुमार किशोर से रुपये छीनने के लिए उलझ जाता है। कुछ नोट जमीन पर बिखर जाते हैं। चाचा जी का हुक्का लिए हुए प्रवेश।]

चाची जी : अब जाके कहीं मेरा हुक्का ताजा हुआ है, तुम जानो। तुम लोगों को इसकी क्या चिन्ता! (सोचते हुए) हाँ, मेरे रुपयों की थैली यहीं रह गयी थी···वह कहाँ···(किशोर पर नजर पड़ती है जो नोटों को हाथ में लिए हुए है) ए···किशोर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...अब आया है और आते ही मेरे रुपयों पर डाका...! यह हिम्मत ? (झपटकर) मेरे रुपये...मेरे रुपये...इधर लाओ...इधर लाओ...(किशोर के हाथों से थैली झटक लेते हैं) यहाँ हम परेशान थे कि किशोर कहाँ गया, ये महाशय इसलिए गायब हो गए थे कि हमें धोखा देकर हमारे रुपयों पर हाथ साफ करें।

कुमार : ऐसी बात नहीं है चाचा जी !

चाचाजी : अरे मैं सब जानता हूँ। मेरे घर में रहकर मेरा गला काट रहे हो। (कुमार के हाथों से रुपये लेकर) इधर लाओ ! ये मेरे मकान के किराये के रुपये हैं। तुम लोगों की नीयत इतनी गिर गयी है, मैं यह नहीं जानता था। निकलो मेरे घर से—इसी वक्त निकल जाओ। मेरे अहसान का यह बदला दे रहे हो, तुम लोग ? उठाओ अपना डेरा-डंडा और निकल जाओ मेरे घर से—तुम जानो।

कुमार : कोई आपके रुपये नहीं ले रहा था, चाचाजी ! मैं खुद आपके रुपयों की थैली आपको देने के लिए जा रहा था। थैली हाथ से गिर गयी और कुछ नोट जमीन पर बिखर गए।

चाचाजी : तुम सब लोग चोर हो। मेरे रुपयों पर तुम लोगों की नजर है, पर तुम लोगों को एक पैसा भी नहीं मिलेगा, तुम जानो। यही बहुत है कि अभी तक मैंने तुम लोगों को अपने घर में रखा, लेकिन अब तुम लोगों को अपने घर में भी नहीं रहने दूंगा, तुम जानो।

कुमार : यह आपकी इच्छा है। हम लोग कहीं भी चले जाएँगे। लेकिन हम लोगों में से कोई भी नहीं चाहता कि आपका रुपया चोरी से लिया जाए। (माँ से) माँ, भीतर चलो। चाचाजी को गलतफहमी हो गई है। उनके लिए चाय का प्याला तैयार कर दो। (दोनों का प्रस्थान)

चाचाजी : (बड़बड़ाते हुए) अपनी बड़ी सफाई दे रहे हैं (चिढ़े हुए स्वर में) मैं आपके रुपयों की थैली आपको ही देने जा रहा था (सारे नोट जमीन पर बिखराकर) एक-आध नोट हथिया तो नहीं लिया ? गिनूं जरा !

[थैली खोल कर नोट गिनने लगते हैं। किशोर सामने तनकर खड़ा हो जाता है।]

चाचाजी : कहिए, अब आपका क्या इरादा है ?

किशोर : चाचाजी ! गलती से मैंने बैंक के रुपये अपने काम में ले लिए। समझ लीजिए फिजूलखर्ची में उड़ा दिए। मेरी एक हजार रुपये की चोरी पकड़ी गयी है। रुपये का इन्तजाम करने के लिए मैं शहर की गली-गली में चक्कर लगाता रहा। आप लोगों को परेशानी हुई, इसके लिए माफी चाहता हूँ, अगर कल तक मैं रुपये जमा नहीं कर सका तो जेल भेज दिया जाऊँगा।

चाचाजी : तो जाओ, खाओ जेल की हवा। एक हजार रुपये उड़ाए हैं तो एक हजार दिन जेल में मौज करो। तुम जानो।

किशोर : आपकी इज्जत पर धब्बा नहीं लगेगा ?

चाचाजी : गुलछर्रे आप उड़ाइए और मेरी इज्जत पर धब्बा लगाइए। मेरी इज्जत

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिट्टी का खिलौना नहीं है कि उसे चाहे जब तोड़ दिया जाय। मेरी इज्जत अपनी जगह है, तुम अपनी इज्जत देखो।

किशोर : मैं आपका भतीजा हूँ चाचाजी !

चाचाजी : तो रहे आओ भतीजे। लेकिन भतीजा होने का नतीजा यह तो नहीं कि तुम लोग मेरी दौलत पर हाथ साफ करो। तुम जानो।

किशोर : चाचाजी ! मुझे एक हजार रुपये चाहिए।

चाचाजी : बैंक से एक हजार रुपये चुराए, अब मेरे रुपये भी चुराओ।

किशोर : चुराता नहीं हूँ, आपसे माँगता हूँ।

चाचाजी : हजार बार माँगो। मैं एक हजार रुपये तो क्या, एक हजार पैसे भी नहीं दूँगा। तुम जानो।

किशोर : (आगे बढ़ कर) लेकिन मुझे एक हजार रुपये चाहिए।

चाचाजी : (थैली को छाती से लगाते हुए) नहीं दूँगा, नहीं दूँगा।

किशोर : लेकिन मैं लेके रहूँगा। अगर आप सीधी तरह से नहीं देंगे तो मैं आपसे जबर्दस्ती छीन···

चाचाजी : (चिल्लाते हुए) दौड़ो-दौड़ो, ये किशोर मुझे जान से मारे डाल रहा है। बचाओ···बचाओ···

[कुमार और उसकी माँ का शीघ्रता से प्रवेश।]

कुमार : क्या बात है ? चाचाजी क्यों चीख रहे हैं ?

चाचाजी : (थैली छाती से चिपटाते हुए) ये किशोर···ये किशोर रुपयों के लिए मेरी हत्या···मेरी हत्या करने···

किशोर : मैंने चाचाजी को छुआ भी नहीं लेकिन उनका रुपया मुझे चाहिए। उन्हें देना ही होगा।

कुमार : (चाचाजी से) चाचाजी ! परिवार की इज्जत के लिए आप रुपया दे सकें तो दीजिए, नहीं तो किशोर जेल भेज दिया जाएगा।

माँ : (सिसकते हुए) रुपया न मिलने पर वह जहर खाने को कह रहा है !

चाचाजी : जहर एक बार नहीं दस बार खाए ! अपनी करनी, पार उतरनी। तुम जानो।

माँ : जान से बढ़कर रुपया हो गया ! (सिसकने लगती है।)

कुमार : माँ, शान्त रहो। रोने से कुछ काम नहीं चलेगा। (चाचाजी से) चाचाजी ! किशोर इस समय अपने आपे में नहीं है, वह बहुत मुसीबत में फँस गया है। उसने बैंक का रुपया अपने खर्चे में डाल लिया था—धीरे-धीरे वह उसे अदा कर देता लेकिन इसके पहले ही जाँच में उसकी चोरी खुल गयी। सिर्फ एक हजार की बात है। अगर आप इस समय उसे एक हजार रुपया दे दें तो मैं सौ रुपयों की किस्तों में आपके एक हजार रुपये अदा कर दूँगा।

चाचाजी : बड़े आए अदा करने वाले। इस चोर को एक हजार रुपये दूँ। एक बार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूँगा तो दस बार लेगा। आदत जो उसकी खराब हो गयी है। अपनी करनी का फल भोगे। कुछ तो उसे सीख मिलेगी, तुम जानो। चोर को तो सजा मिलनी ही चाहिए।

माँ : वह जेल गया तो मैं आत्महत्या कर लूँगी।

कुमार : माँ ! छोटी-छोटी बातों पर आत्महत्या नहीं करनी पड़ती। चाचाजी ! किशोर आखिर आपके सगे भाई का लड़का ही तो है। क्या आपके हृदय में कुछ भी ममता नहीं है ? इस समय उसकी सहायता कर दीजिए। और फिर मैं आपका रुपया अदा करने के लिए जवाबदार तो हूँ ही। आइंदा किशोर ठीक रास्ते पर चलेगा।

चाचाजी : अगर तुम उसको बचाने के लिए इतना गिड़गिड़ा रहे हो तो तुम्हीं उसे अपना रुपया दे दो।

किशोर : चाचाजी ! भाई के पास रुपया कहाँ है। उनकी सारी तनख्वाह तो घर चलाने में खर्च होती है। वे मुझे भी समय-समय पर रुपया दे देते हैं—उनके पास हजार रुपया कहाँ है।

चाचाजी : घर चलाने में सारी तनख्वाह खत्म हो जाती है तो अंग्रेजी और हिन्दी में तुम जो लेख लिखते रहे हो उसके पुरस्कार के ग्यारह सौ रुपये तुमने कहाँ छिपा रखे हैं, तुम जानो।

माँ : (आश्चर्य से) ग्यारह सौ रुपये ?

चाचाजी : पूछो उनसे। कहते थे—कार्यालय से समय निकाल कर मैं अंग्रेजी और हिन्दी में लेख लिखता रहा हूँ। उसका जो पारिश्रमिक मुझे मिला है, उसे मैंने खर्च नहीं किया—उससे मैं अपनी माँ के साथ कश्मीर जाऊँगा। उस रुपये से जाओ कश्मीर ! यहाँ तुम्हारा भाई जेल की हवा खाए—तुम कश्मीर की हवा खाओ। और कान खोलकर सुन लो। आइंदा कभी मेरे रुपयों पर नजर डाली तो इस घर में रहने नहीं पाओगे। (थैली को देखकर) तुम जानो। इसे मैं तिजोरी में रख लूँ, नहीं तो किशोर के हाथों बचेगी नहीं। जाओ-जाओ···किशोर जेल जाए और तुम कश्मीर जाओ···कश्मीर जाओ ! (प्रस्थान)

किशोर : चाचाजी जो बात कह गए क्या वह सच है ?

माँ : तो तुम्हारे पास ग्यारह सौ रुपये हैं ?

कुमार : हाँ, हैं।

किशोर : (प्रसन्नता से) ग्यारह सौ रुपये ?

कुमार : हाँ, ग्यारह सौ रुपये—जो कुछ ही दिनों में पन्द्रह सौ रुपये हो जाएँगे।

किशोर : तुमने अभी तक यह बात बतलायी नहीं ?

कुमार : किशोर, तुम जानते हो, माँ की तबीयत दिनोदिन गिर रही है। चाचीजी को तो रुपया प्राणों से प्यारा है। वे माँ पर एक पैसा खर्च नहीं कर सकते। मैंने सोचा कि माँ को कुछ दिनों के लिए कश्मीर ले जाऊँ जिससे उनकी तबीयत सँभल जाए। आबोहवा बदलने से भी तन्दुरुस्ती ठीक हो जाएगी। पिताजी तो चले

Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए—हम माँ को भी नहीं सम्हाल सके तो हमारे जीवन को धिक्कार है ! इसीलिए मैंने ये रुपये बचाकर रखे थे—मैंने किसी से यह बात नहीं कही। आज केदार से कह रहा था—समझता था कि चाचाजी को झपकी लग गयी है लेकिन अब लगा, वे सोने का बहाना कर मेरी सब बातें सुन रहे थे। मैंने यह गुप्त धन सिर्फ माँ की तन्दुरुस्ती के लिए छिपा रक्खा था। इसे हर तरह से सुरक्षित रखना चाहता था।

माँ : धन्य हो मेरे लाल ! पर मेरी तन्दुरुस्ती जैसी है ठीक है। मुझे कहीं नहीं जाना—कश्मीर की बात तो सपने जैसी है। तुम्हारे पिताजी भी यही चाहते थे कि मैं किसी ठंडी जगह में रहूँ। पर नहीं गयी। तुम अपना यह रुपया किशोर को दे दो।

किशोर : भैया ! मैं वचन देता हूँ कि अब से कोई फिजूलखर्ची नहीं करूँगा और अपने वेतन से हजार रुपया बचाकर मैं खुद माँ को कश्मीर ले जाऊँगा।

कुमार : ऐसा ही हो। माँ की सेवा करना हम दोनों का धर्म है। तुम्हें अभी एक हजार रुपया देता हूँ। तुम उसे ले जाकर बैंक में जमा कर दो—और मैनेजर डा० टंडन को उनकी उदारता के लिए धन्यवाद दो।

किशोर : भैया, मेरी गलतियों के लिए क्षमा कर दो।

कुमार : भाई की गलती भाई के प्रेम से बड़ी नहीं है।

माँ : आओ ! मेरे हृदय से लग जाओ मेरे लाल ! (दोनों को एक साथ हृदय से लगाती है।)

[परदा गिरता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कादम्ब या विष ?

पात्र-परिचय

परम भट्टारक : महाराजाधिराज
कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य : मगध के सम्राट्
कुमार स्कन्दगुप्त : युवराज
पुरगुप्त : सम्राट् के छोटे पुत्र
अनन्तदेवी : सम्राट् की छोटी रानी, पुरगुप्त की माता
सुनन्दा : अनन्तदेवी की अंतरंग परिचारिका
टिण्डल : हूण सैनिक
नर्त्तकियाँ और परिचारिकाएँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल : 455 ई०   समय : 8 बजे रात्रि

[अनन्तदेवी का शृंगार हो चुका है। वे दर्पण के समीप बैठी हुई सुनन्दा से वार्तालाप कर रही हैं। सुनन्दा उनकी केश-राशि में मोतियों की माला सजा रही है।]

अनन्तदेवी : सुनन्दा ! तू मेरी केशराशि में बड़े सुन्दर ढंग से मोती गूँथ रही है। पर यह बतला कि तूने कभी मेरे नेत्रों में आँसुओं के मोती देखे हैं ?

सुनन्दा : हाँ, देवी !

अनन्तदेवी : किस समय ?

सुनन्दा : जिस समय आपने पहली बार परम भट्टारक के दर्शन किए और आपके विशाल नेत्रों से आनन्द के दो आँसू पलकों की कोर में झलक उठे थे।

अनन्तदेवी : (हँसकर) अच्छा ? और तूने कभी मेरे हृदय में पीड़ा देखी ?

सुनन्दा : हाँ देवी !

अनन्तदेवी : किस समय ?

सुनन्दा : जब लाज-भरे सौन्दर्य की पंखुड़ियों को प्रेम की किरण ने पहली बार छेड़ा था।

अनन्तदेवी : ओह, कहाँ पहुँच गईं ! अच्छा, यह बतला कि मैं किस समय सबसे अच्छी लगती हूँ ?

सुनन्दा : उषाकाल की निद्रा में। सौन्दर्य के साथ श्रांति; माधुर्य के साथ मादकता; जैसे सोने में सुगन्धि हो।

अनन्तदेवी : (हँसकर) तू बड़ी प्रियवादिनी है, सुनन्दा !

सुनन्दा : यह बड़ा मोती केशपाश के छोर में सजा दूँ ?

अनन्तदेवी : सजा दे। ज्ञात होगा जैसे नीलाकाश के कोने में शुक्र नक्षत्र चमक रहा है। तू बड़ी कला-पारखी है। (सहसा) हाँ, मेरे शयनपर्यंक की पीठिका केतकी के पराग से सजा दी गई ?

सुनन्दा : मृणालिनी ने सजा दी, महादेवी !

अनन्तदेवी : और कर्पूर-पल्लवों के रस से कादम्ब-पात्र सुवासित हुआ ?

सुनन्दा : लवंगिका ने सुवासित कर दिया, महादेवी !

अनन्तदेवी : और मेरे शयन-कक्ष की प्रतिमाओं के वक्षस्थल पर कुंकुम के रंग से चित्रकारी हो गई ?

सुनन्दा : मधुरिका ने चित्रकारी कर दी, महादेवी !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

अनन्तदेवी : मेरे कलहंसों ने कमल का मधु रस पान किया ?

सुनन्दा : गीतिका ने करा दिया, महादेवी !

अनन्तदेवी : और मेरी कोकिलाओं को आम्र-मंजरी के अंकुर तो खिला दिए गए होंगे ?

सुनन्दा : सुहासिनी ने अपने हाथ से खिला दिए, महादेवी !

अनन्तदेवी : मृणालिनी, लवंगिका, मधुरिका, गीतिका और सुहासिनी को मेरी मुस्कान का संवाद भिजवा दे, सुनन्दा !

सुनन्दा : जो आज्ञा ! अभी जाऊँ ?

अनन्तदेवी : नहीं, आर्यपुत्र शयन-मन्दिर में आना ही चाहते हैं। मैं उनके स्वागत के मनोभावों में होना चाहती हूँ। मेरी वाणी संदेह-वाहक राजहंस के शब्द-सी हो। मेरा विरहोच्छ्वास सारिका के मधुर स्वर-सा हो। मेरा प्रणय-निवेदन कोकिल के कूजन-सा हो और मेरी दृष्टि चन्द्रिका-पान में मद-विह्वल चकोर की दृष्टि हो।

सुनन्दा : मेरा निवेदन है कि इसके लिए प्रयत्न न करना होगा, महादेवी ! ये तो आपके स्वाभाविक गुण हैं और वे अस्त्र होने की सीमा तक पहुँच गए हैं।

अनन्तदेवी : (हँसते हुए) तू सचमुच प्रियवादिनी है। फिर भी अपने अस्त्रों की धार तीक्ष्ण करने की आवश्यकता पड़ ही जाती है।

सुनन्दा : सत्य है, महादेवी !

अनन्तदेवी : तू मेरी वेणी में मुक्तामाल गूँथ चुकी ?

सुनन्दा : हाँ, स्वामिनी !

अनन्तदेवी : तो अब इन वाद्य-यन्त्रों को मुखरित कर सकेगी ?

सुनन्दा : आपकी आज्ञा ही मेरे समस्त कार्यों की स्वामिनी है।

अनन्तदेवी : मैं वीणा में अपनी उमंग को साकार देखना चाहती हूँ।

सुनन्दा : जो आज्ञा।

[कुछ क्षणों तक वीणा में राग भैरव का वादन।]

अनन्तदेवी : बहुत सुन्दर ! ऐसा ज्ञात होता है कि वीणा के प्रत्येक तार में मेरा हृदय अनगिनत कंपन ले रहा है। अब तू वंशी में मेरा प्रणय-निवेदन भर दे।

सुनन्दा : जो आज्ञा।

[कुछ क्षणों तक वंशी में राग मालकौश का वादन।]

अनन्तदेवी : कितना सुन्दर प्रणय-निवेदन है ! जैसे वंशी की ध्वनि करुण नेत्रों की दृष्टि बनकर प्रियतम के हृदय में निवास करने जा रही है। अब तू मेरे उत्साह को मृदंग में मुखरित करेगी ?

सुनन्दा : जैसी आज्ञा, महादेवी !

[कुछ क्षणों तक मृदंग में राग हिण्डोल का वादन।]

अनन्तदेवी : चमत्कारपूर्ण ! मृदंग के बोल ही मेरे पद-चाप हैं जो अपने आदर्श पर तीव्र

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गति से जा रहे हैं। कितनी गमनशीलता है ! अब तू मेरे रोष को डमरू का स्वर देने का प्रयत्न कर ।

सुनन्दा : जैसी आज्ञा ।

[कुछ क्षणों तक डमरू में राग मारू का वादन ।]

अनन्तदेवी : बहुत अच्छे ढंग से तूने मेरे रोष का रूप उपस्थित किया । यह डमरू जैसे मेरे रोष के प्रत्येक प्रहार को बार-बार तीव्र आघातों से व्यक्त कर रहा है ।

सुनन्दा : मैं धन्य हुई, महादेवी ! किन्तु इस रोष से मुझे भय लगता है ।

अनन्तदेवी : तुझे भय करने का कोई कारण नहीं है, सुनन्दा ! दूसरे हैं जो भय कर सकते हैं ।

सुनन्दा : महादेवी ! ऐसे कौन भाग्यहीन व्यक्ति हैं जिन्हें आपके रोष से भय होना चाहिए ?

अनन्तदेवी : सुनन्दा ! अपनी सीमा से आगे बढ़ने का प्रयत्न न कर । राजनीति परिचारिकाओं के मनोविनोद की सामग्री नहीं है ।

सुनन्दा : क्षमा करें, महादेवी ! मेरी जिज्ञासा राजनीति की दृष्टि नहीं रखती । वह तो केवल महादेवी की महत्ता के सामने श्रद्धानत होना चाहती है ।

अनन्तदेवी : तो श्रद्धानत ही बने, रोष का मार्ग खोजने का प्रयत्न न करे । जाने दे । मेरा कंठ शुष्क हो रहा है । कादंब !

सुनन्दा : जो आज्ञा, स्वामिनी ! (कादम्ब भरकर देती है ।)

अनन्तदेवी : (एक घूंट पीकर) बड़ा स्वादिष्ट कादम्ब है । तूने इसमें चंपक की सुगंधि भी दे दी है । इसका पान करने पर ऐसा अनुभव होता है, सुनन्दा ! जैसे मैं इन्द्र के नन्दन-निकुंज में कल्पवृक्ष के किसलयों पर शयन कर रही हूँ और विद्याधर और किन्नरियाँ मेरे समक्ष सुगन्धि को ही राग बनाकर गा रहे हैं । इन्द्राणी मेरे चरण-पल्लवों को चूम रही हैं और स्वयं इन्द्र मरुत् को इस बात का संकेत कर रहे हैं कि वायु धीरे बहे । मेरे ओंठों की लालिमा शुष्क भी न बने और मेरे केशों के तिरछे छोर मेरे मस्तक के समीप नृत्य करते रहें । सुनन्दा ! यह दिव्य क्षण कितना मादक है !

सुनन्दा : हाँ, महादेवी !

[एक परिचारिका का प्रवेश ।]

परिचारिका : महादेवी की सेवा में प्रणाम ।

अनन्तदेवी : गीतिका, तू है ? तुझे मेरी प्रसन्नता का सौभाग्य प्राप्त हो । किन्तु तुम सबने मुझे महादेवी कहना क्यों प्रारंभ कर दिया ?

[हल्की हँसी ।]

गीतिका : स्वामिनी ! महादेवी न होते हुए भी आप वास्तव में महादेवी हैं, क्योंकि परम भट्टारक सम्राट् का प्रेम आप ही पर है । कुमार स्कन्दगुप्त की माता तो केवल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महादेवी का नाम धारण करती हैं, महादेवी का महत्त्व नहीं ।

अनन्तदेवी : तो क्या आर्यपुत्र केवल मेरे ही हैं ?

सुनन्दा : जैसे साँस केवल नासिका से प्रवाहित होती है, दृष्टि केवल नेत्रों में निवास करती है, प्राण केवल शरीर में संचरित होते हैं उसी प्रकार परम भट्टारक सम्राट् का प्रेम केवल आपके द्वारा साकार होता है ।

अनन्तदेवी : (हँसकर) तू तो कविता भी करने लगी, सुनन्दा ! इसमें केवल अंधकार ही है या रस भी ? हाँ, गीतिका ! क्या समाचार लाई है ?

गीतिका : महादेवी की जय हो ! परम भट्टारक के चरणों की दिशा इस कक्ष की ओर हो रही है ।

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र इस कक्ष में आ रहे हैं ?

गीतिका : सत्य है, महादेवी !

सुनन्दा : मेरा कथन भी कितना सत्य निकला, महादेवी !

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र सचमुच ही मेरे हैं। सुनन्दा ! कादम्ब-पात्र पूरी तरह से भरा हुआ है ?

सुनन्दा : हाँ, महादेवी ! आपके आशीर्वाद की भाँति !

अनन्तदेवी : लेखनी प्रस्तुत है ?

सुनन्दा : हाँ महादेवी ! कृपाण की भाँति ?

अनन्तदेवी : फूल-माला प्रस्तुत है !

सुनन्दा : हाँ, महादेवी ! बाहुपाश की भाँति !

अनन्तदेवी : गीतिका ! पारसीक नर्त्तकियों का प्रबंध है ?

गीतिका : हाँ, महादेवी !

अनन्तदेवी : जैसे ही मैं इच्छा करूँ, नर्त्तकियों को नृत्य के लिए उपस्थित होना चाहिए।

गीतिका : जो आज्ञा, महादेवी !

अनन्तदेवी : अच्छा, तू जा ।

गीतिका : महादेवी की जय हो । (प्रस्थान)

अनन्तदेवी : सुनन्दा ! आज आर्यपुत्र के सामने बड़े महत्त्व की बात होनी है ।

सुनन्दा : उस महत्त्व की बात में मेरे योग्य कोई सेवा हो सकती है, महादेवी ?

अनन्तदेवी : (हँसकर) तू अपनी महादेवी को क्या किसी बात में असमर्थ समझती है ?

सुनन्दा : ऐसा सोचना भी पाप है, महादेवी !

अनन्तदेवी : तो मैं अपना कार्य उसी भाँति कर सकती हूँ जिस प्रकार अंगारों से अपने-आप ज्वाला उठ आती है, बादलों के घुमड़ने पर अपने-आप बिजली चमकने लगती है और तीव्र वायु के चलने से लहरें अपने-आप प्रताड़ित होने लगती हैं ।

सुनन्दा : यह सत्य है, महादेवी !

अनन्तदेवी : तो ज्वाला उठना चाहती है, बिजली चमकना चाहती है और लहरें प्रताड़ित होना चाहती हैं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

सुनन्दा : महादेवी ! मैं भयभीत हो उठी हूँ ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनन्तदेवी : भयभीत ! नारी भी कहीं भयभीत होती है ? मूर्खा ! (हँसती है) जब नारी को अपने आप पर विश्वास नहीं रह जाता तभी वह भयभीत होती है। यदि नारी वर्तमान के साथ भविष्य को भी अपने हाथ में ले ले तो वह अपनी शक्ति से बिजली की तड़प को भी लज्जित कर सकती है। बेचारी नारी ! उसे निर्भर रहने का अभ्यास हो गया है। इसलिए भविष्य की झूठी कल्पना भी उसे प्रतिक्षण आतंकित किए रहती है। तू अपने भविष्य को हाथों में ले और शक्ति की देवी बन !

सुनन्दा : जैसी आज्ञा, महादेवी !

अनन्तदेवी : तभी मेरे कार्यों में तू सच्ची सहचरी बन सकती है।

सुनन्दा : आपके कार्यों में, महादेवी ! मेरी योग्यता ?

अनन्तदेवी : इसमें योग्यता और अयोग्यता की कौन-सी बात है ? सुनन्दा ! आग जब संसार की प्रत्येक वस्तु को जलाने के लिए उठती है तब किस योग्यता की साधना करनी पड़ती है ? वह तो उसका स्वाभाविक गुण है ! समुद्र की लहरें किस योग्यता को लेकर आकाश चूमती हैं ?

सुनन्दा : सत्य है, महादेवी !

अनन्तदेवी : अब यही बात देख ले ! मैं आर्यपुत्र से हँसते हुए ऐसी बात करवा सकती हूँ जिसके लिए संसार में अनेक युद्ध हुए हैं या हो सकते हैं।

सुनन्दा : कौन सी बात, महादेवी ?

अनन्तदेवी : (हँसकर) अच्छा ? तो तेरी जिज्ञासा भी जाग उठी है ? मैं तुझे भी बतला दूँ ?

सुनन्दा : महादेवी ! भविष्य के परिणाम देखकर अपनी स्वामिनी की शक्ति की प्रशंसा ठीक ढंग से कर सकूँगी।

अनन्तदेवी : इन छद्मवेशी वाक्यों को सुनकर प्रसन्न होने के बदले मैं तुझसे रुष्ट हो सकती हूँ।

सुनन्दा : आपके रोष का मार्ग खोजने का साहस किसी को भी न होगा, महादेवी !

अनन्तदेवी : किसी को भी न होगा ? है, ऐसा साहस एक व्यक्ति में है।

सुनन्दा : वह क्षीण आयु वाला कौन व्यक्ति है ? महादेवी !

अनन्तदेवी : तू मेरी सहचरी है। तू सुन ले। किन्तु यह अत्यंत गोपनीय है।

सुनन्दा : यह मेरे प्राणों के स्थान पर रहेगा, महादेवी !

अनन्तदेवी : द्वार पर जाकर देख आ, कोई है तो नहीं ?

सुनन्दा : जो आज्ञा (द्वार तक जाती है) कोई नहीं है, महादेवी !

अनन्तदेवी : सुन और सुनकर भूल जा। अनन्तदेवी की क्रोधाग्नि में···

[दरवाजा खड़कने की हल्की आवाज।]

अनन्तदेवी : यह किसने द्वार खटखटाया ?

सुनन्दा : कोई नहीं है, महादेवी ! वायु का शब्द है !

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनन्तदेवी : वायु का शब्द है ? अच्छा, तो सुन, अनन्तदेवी की क्रोधाग्नि को छेड़ने वाले का नाम है···स्कन्दगुप्त ।

सुनन्दा : (चौंककर) कुमार स्कन्दगुप्त !

अनन्तदेवी : चौंक उठी ! (व्यंग्य की हँसी हँसकर) शक्ति-हीना नारी ! पवन के झोंकों से चौंक उठना, फूलों की पंखुड़ियों से शरीर पर खरोंच लगना, कंठ पर बाहु का वोझ अनुभव करना, ये कुंज में पुष्प-शैया की बातें हैं, राजनीति की नहीं। राजनीति में कुंज की पुष्प-शैया जल उठती है, लाल फूल अंगारों का रूप धारण कर लेते हैं और शीतल समीर सर्पों की फुफकार बन जाती है ।

सुनन्दा : (काँपते हुए) सत्य है, महादेवी । युवराज स्कन्दगुप्त···

अनन्तदेवी : उसे युवराज न कह ! युवराज-पद का सम्मान मेरे पुत्र पुरगुप्त को प्राप्त होगा । (प्रत्येक शब्द पर जोर देकर) मेरे पुत्र पुरगुप्त को ।

सुनन्दा : (डरे हुए स्वर में) महादेवी !

अनन्तदेवी : और डमरू के जिस स्वर में तूने मेरे रोष को साकार किया, उनके अनवरत प्रहारों में स्कन्द के सारे स्वप्न भस्मीभूत होंगे ।

सुनन्दा : किन्तु परम भट्टारक का कुमार स्कन्दगुप्त पर पूर्ण विश्वास है।

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र का स्कन्द पर विश्वास ? (व्यंग्य की हँसी) इस शयनकक्ष के द्वार पर सारे विश्वास भिक्षुक बनकर खड़े रहते हैं । जिस विश्वास की झोली भरनी आवश्यक होती है, मैं आर्यपुत्र के हाथों की दिशा बदलकर वह झोली भरती हूँ ।

सुनन्दा : आपमें अपरिमित शक्ति है, महादेवी !

अनन्तदेवी : और सुन ! मैंने ऐसे विधान की रचना की है जिससे स्कन्द पर आर्यपुत्र का विश्वास वैसे ही क्षुब्ध हो उठेगा जैसे ग्रीष्मकाल में बड़े-बड़े तालाबों का पानी सूख जाने से मछलियाँ लोटने लगती हैं।

सुनन्दा : सत्य है महादेवी !

अनन्तदेवी : और तू जानती है, यह कैसे होगा ? स्कन्द की वीरता ही उसका षड्यन्त्र बनेगी, उसके द्वारा बंदी किया गया हूण सैनिक ही धन के लोभ से उसके मार्ग का कंटक बनेगा ।

सुनन्दा : (काँपकर) महादेवी !

अनन्तदेवी : इस रहस्य को गोपनीय रख, शक्तिहीना नारी ! आज आर्यपुत्र के मुख से उच्चरित होने वाले शब्दों से गुप्त साम्राज्य का भविष्य बदलेगा ।

सुनन्दा : (डरे हुए शब्दों में) गुप्त साम्राज्य का भविष्य !

अनन्तदेवी : हाँ, गुप्त साम्राज्य का भविष्य । और यह सब करेगी महादेवी (महादेवी पर जोर) अनन्त देवी !

[नेपथ्य में—परमं भट्टारक महाराजाधिराज की जय !]

अनन्तदेवी : (शीघ्रता से) आर्यपुत्र आ गए ! सुनन्दा, जल्दी कर। मेरी वेणी सुधार दे और यह आसन ठीक कर दे। उस पर मौलश्री की पंक्तियाँ सजा दे ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनन्दा : जैसी आज्ञा, महादेवी !

अनन्तदेवी : और देख, चरण-पीठिका पर कौशेय वस्त्र की सिकुड़न दूर कर दे। और कादम्ब पात्र सामने की पीठिका पर सजा दे।

[सुनन्दा आज्ञानुसार वस्तुएँ सुसज्जित करती है।]

अनन्तदेवी : आज तेरी महादेवी की परीक्षा है। उसकी शक्ति आज राजनीति की कसौटी पर कसी जाएगी। तू देखेगी कि उसके कार्यों की रेखा राजनीति की कसौटी पर कंचन की रेखा जैसी चमकदार निकलती है।

[अट्टहास के साथ कुमारगुप्त का प्रवेश।]

सुनन्दा : परम भट्टारक महाराजाधिराज की जय हो !

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र की जय हो !

कुमारगुप्त : (हँसते हुए) प्रिये ! तुम्हें खोजते-खोजते थक गया। तुम इस कामदेव-कक्ष में इतनी दूर चली आईं !

अनन्तदेवी : आपके स्वागत के लिए, आर्यपुत्र ! आसन ग्रहण कीजिए।

कुमारगुप्त : देवि ! आसन नहीं, मुझे हृदय चाहिए, हृदय ! अच्छा, तो मैं इस आसन को तुम्हारा हृदय समझकर ही ग्रहण करूँगा। (फिर हँसी) लो, ग्रहण कर लिया। (बैठते हैं) प्रिये ! तुम्हारा कामदेव-कक्ष तो वहुत सुन्दर सजा हुआ है। और तुम भी कितनी सुन्दरी हो, प्रिये !

अनन्तदेवी : यह आपका अनुराग है, आर्यपुत्र !

कुमारगुप्त : मुझे तो लगता है कि कामदेव भस्म होने के वाद अव स्त्री वन गया है, स्त्री ! (हँसी) और तुम्हारे शरीर को पाकर फिर संसार में साकार हुआ है। (हँसी)

अनन्तदेवी : वह इसलिए आर्यपुत्र ! कि आपके साहचर्य का सुख मिलता रहे।

कुमारगुप्त : और तुम जानती हो, कि कामदेव भस्म होने के वाद स्त्री क्यों वन गया ?

अनन्तदेवी : नहीं, आर्यपुत्र !

कुमारगुप्त : इसलिए स्त्री वन गया कि पुरुष होने पर शिवजी उसे भस्म कर सकते थे, अव स्त्री होने पर उनकी क्या शक्ति जो उसे फिर भस्म कर सकें। स्त्री पर कोई पुरुष प्रहार नहीं कर सकता। तो यह कामदेव का षड्यन्त्र है, षड्यन्त्र कि वह तुम्हारे रूप में प्रकट हुआ है जिससे वह सब प्रकार के प्रहारों से सुरक्षित रहे।

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र का अनुराग ही तो मेरा कवच है।

कुमारगुप्त : अनुराग है तभी तो इतनी दूर कामदेव-कक्ष तक चला आया। मार्ग में पुष्प की पंखुड़ियाँ विछी थीं। ज्ञात होता था जैसे किसी कवि के छन्द बिछे हों और वाणी की भाँति मेरे पैर अग्रसर हो रहे थे। (गहरी साँस लेकर) ओह ! थक गया !

अनन्तदेवी : सुनन्दा ! एक पात्र कादम्ब···नहीं, नहीं ··तू जा। मैं अपने हाथों से आर्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र को कादम्ब दूँगी। तू यहाँ से जा।

कुमारगुप्त : हाँ, सुनन्दा ! तू यहाँ से जा। जब पूर्णिमा की रात होती है तो चाँदनी आकाश में चारों ओर से बरसना चाहती है। तू बादल बनकर उस चाँदनी को नहीं रोक सकती।

सुनन्दा : आपके आदेश का समीर मुझे कहीं भी ले जा सकता है, महाराज ! प्रणाम ! (अनन्तदेवी से) महादेवी ! प्रणाम !

कुमारगुप्त : (दुहराते हुए) महादेवी ! (अट्टहास) तो महादेवी तुम हो ! (प्रत्येक शब्द पर जोर देते हुए) सचमुच महादेवी तुम्हीं हो। राज्य की महादेवी महारानी देवकी और मेरे हृदय मन्दिर की महादेवी ! तुम ! तुम ! अनन्तदेवी ! जिनका प्रेम अनन्त है, जिनका सौन्दर्य अनन्त है और सौन्दर्य का आकर्षण ? वह भी अनन्त है। अनन्त ! अनन्त !

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र ! आपका कंठ सूख रहा है। यह कादम्ब !

कुमारगुप्त : एँ, कादम्ब ! तुम्हारे हाथों से ! तुम्हीं अपने कोमल करों से पिला दो ! (दो घूँट पीकर) आह, कितना मधुर, कितना मादक ! जैसे यह ही तुम्हारा प्रेम है जो अपने आत्मसमर्पण में तरल हो गया है और मैं उसे संसार भर की प्यास लेकर पी रहा हूँ। (जोर से पीने का शब्द) महादेवी ! महादेवी ! तुम मगध की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हो ! (मतवाले स्वरों में) सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी ! चन्द्रमा की किरणों से अगर कोई तारों की माला गूँथे तो उसका नाम होगा अनन्तदेवी ! परम भट्टारक के हृदय-मन्दिर की महादेवी।

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र का प्रेम पाकर मैं कृतार्थ हुई। मेरे हाथ से गूँथी हुई माला आपके हृदय में स्थान पाकर धन्य बने।

कुमारगुप्त : जिस हृदय में तुम्हारा निवास है, प्रिये ! उसमें किसी अन्य के लिए स्थान नहीं है। किन्तु लाओ ! यह माला अपने हाथों से पहिना दो (माला पहिनाती है) समझूंगा कि मेरे हृदय में जो तुम्हारी मूर्ति है, उसके चरणों में यह पुष्पांजलि सजी हुई है। (देखकर) एँ, यह बकुल की माला ? देवी ! यह तो उसी बकुल की माला है जो तुम्हारे मुख की मदिरा के छींटे पाकर उत्फुल्ल हुआ था।

अनन्तदेवी : हाँ, आर्यपुत्र ! यह उसी बकुल की माला है।

कुमारगुप्त : इसमें अशोक के अरुण पुष्प भी हैं जो तुम्हारे पदाघात से पुष्पित हुए थे। जब अशोक की डाल से उतरकर मयूर भागने की चेष्टा कर रहा था तब तुमने उसे अपनी चूड़ियों की मंजु ध्वनि में नृत्य करा लिया था। नृत्य···अविराम नृत्य ! ··· ओह एक पात्र कादम्ब !

अनन्तदेवी : यह है, आर्यपुत्र ! (कादम्ब देती है।)

कुमारगुप्त : प्रिये ! उस मयूर का नृत्य इस समय भी आँखों में नाच रहा है।

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र ! कुछ पारसीक नर्त्तकियाँ भी आपकी सेवा में नृत्य की अनुमति चाहती हैं।

कुमारगुप्त : नृत्य ! अवश्य होना चाहिए। देखूँगा कि तुम्हारी चूड़ियों की ध्वनि में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाचते हुए मयूरों के नृत्य में और उनके नृत्य में कितना साम्य है।

अनन्तदेवी : जैसी आज्ञा। (कक्ष के घंटे पर चोट करती है।)

कुमारगुप्त : यह घंटे की ध्वनि उसी प्रकार गूंज रही है जिस तरह समस्त मगध साम्राज्य में तुम्हारी कीर्ति की ध्वनि गूंज रही है। प्रिये ! इसी प्रकार तुम्हारे प्रेम से मेरा हृदय भी गूंजता रहता है।

अनन्तदेवी : तो आर्यपुत्र, आपके हृदय में अनुराग का कैसा संगीत भरा हुआ है जो निरन्तर गूंजता रहता है ?

कुमारगुप्त : जैसी मेरी हँसी गूंजती है। (अट्टहास)

[गीतिका का प्रवेश।]

गीतिका : महादेवी को प्रणाम। मुझे क्या आज्ञा है ?

अनन्तदेवी : नर्त्तकियों को आज्ञा दो कि आर्यपुत्र ने उनके नृत्य को धन्य हो जाने की अनुमति प्रदान कर दी है। उन्हें यहाँ आने की आज्ञा शीघ्र सुनाओ।

गीतिका : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

कुमारगुप्त : प्रिये ! इन नर्त्तकियों द्वारा केवल नृत्य ही होगा या संगीत भी ?

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र ! पुरुष और प्रकृति के मिलन पर ही सृष्टि प्रारम्भ होती है। संगीत पुरुष है और नृत्य प्रकृति है। इन दोनों के मिलाप पर ही आनन्द की सृष्टि होगी।

कुमारगुप्त : यह तुमने बहुत अच्छा कहा, प्रिये ! यही मैं भी कहना चाहता था कि मेरी आत्मा में तो तुम्हारे प्रेम का संगीत है और उस संगीत के अनुसार तुम्हारा क्रिया-कलाप ही नृत्य है। इन दोनों के मिलाप में···

[नेपथ्य में नृत्य की ध्वनि]

अच्छा ! नृत्य करते हुए नर्त्तकियाँ आ भी गईं !

[नर्त्तकियों का नृत्य करते हुए प्रवेश।]

अनन्तदेवी : नर्त्तकियो ! इस नृत्य के साथ इतना सुन्दर गायन हो कि आर्यपुत्र की प्रसन्नता तुम्हारे भविष्य पर भी छा जाए।

[नर्त्तकियों का गायन—]

नूपुर की झनकार।
जैसे वायु पहन जाती है ध्वनि के चंचल हार। नूपुर की झनकार।
कुंज कुंज की कली खिल गयी;
प्रियतम से प्रियतमा मिल गयी;
और अधूरी प्रेम-कथा है राका में साकार ! नूपुर की झनकार।
लज्जा की बंकिम अरुणाई;
तट पर सधी लहर सी आई;
सिकता-कण के प्राणों से गुंजा है मानो प्यार ! नूपुर की झनकार।

[गाते हुए प्रस्थान।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारगुप्त : (मतवाले स्वरों में) प्रिये ! यह संगीत समाप्त होने पर भी कानों में गूंज रहा है, जैसे तुम्हारी स्मृति तुम्हारे जाने के बाद भी हृदय पर छाई रहती है। गीत कहता है कि 'और अधूरी प्रेम-कथा है राका में साकार'। मैं तो कहूँगा कि 'और अधूरी प्रेम-कथा है नयनों में साकार !' तुम्हारी आँखें मौन रहकर भी सारी प्रेम-कथा कह देती हैं।

अनन्तदेवी : मैं धन्य हुई, स्वामी ! एक कादम्ब पात्र और दूं ?

कुमारगुप्त : प्रिये ! जैसे सागर में सहस्रों सरिताएँ अपना आत्मसमर्पण करती हैं किन्तु सागर अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता उसी प्रकार कादम्ब के अनगिनती पात्र मेरे कंठ में अपना सर्वस्व समर्पित करते हैं और मेरा हृदय अपनी चेतना नहीं खोता ! प्रिये ! आँखों में आलस्य का संकेत दीख रहा है। मैं सब शयन करना चाहता हूँ।

[सहसा नेपथ्य में भयानक तुमुल होता है। 'इस हूण का वध'...'इस हूण का वध करना होगा' की कर्कश ध्वनि।]

अनन्तदेवी : (घबराए स्वर में) अरे, यह तो पुरगुप्त का कंठस्वर है।

प्रतिहार : परम भट्टारक की जय हो ! कुमार पुरगुप्त द्वार पर हैं।

कुमारगुप्त : (अलसाए स्वर में) प्रिये ! पुरगुप्त को भी एक कादम्ब-पात्र की आवश्यकता होगी।

अनन्तदेवी : नहीं, आर्यपुत्र ! कोई भयानक कांड घटित हुआ ज्ञात होता है।

कुमारगुप्त : नहीं, नहीं, कादम्ब-पात्र के टूटने का शब्द होगा।

अनन्तदेवी : प्रतिहार ! राजकुमार पुरगुप्त को यहाँ आने की सूचना दो।

प्रतिहार : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

कुमारगुप्त : (अलसाए और मादक स्वर में) प्रिये ! मेरी आँखों में एक स्वप्न तैर रहा है। तुम हो, मैं हूँ और हमारे सामने कादम्ब की नदी बह रही है। हम और तुम उसमें स्नान कर रहे हैं। मैं जब कभी उस नदी में तैरते हुए सिर उठाता हूँ तो तुम कादम्ब के छींटे मुझ पर उछाल रही हो। वे छींटे मेरे मुख पर पड़ते हुए मेरे हृदय में भी समा रहे हैं और मुझे हँसी आ रही है। हँसी आ रही है। (मतवाली आवाज में हँसते हैं।)

[पुरगुप्त का प्रवेश।]

पुरगुप्त : परम भट्टारक के चरणों में प्रणाम।

कुमारगुप्त : कौन ? कादम्ब चरणों में प्रणाम नहीं कर सकता। उसे मेरे मुख तक आना चाहिए।

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र ! पुरगुप्त चरणों में प्रणाम कर रहे हैं।

कुमारगुप्त : पुरगुप्त ! कुमार पुरगुप्त ! मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा कादम्ब-पात्र कभी रिक्त न रहे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरगुप्त (घबराए स्वरों में) परम भट्टारक ! गुप्त साम्राज्य की राजलक्ष्मी आज षड्यंत्र के चरणों पर बलि होने को थी, हमारे जीवन का सूर्य आज पश्चिमी क्षितिज पर पहुँचने को था और प्रतिहिंसा-राक्षसी के लिए आज हमारे हृदय का पवित्र रक्त शरीर से बाहर आने को था।

अनन्तदेवी : पुरगुप्त ! मेरे लाल ! क्या हुआ ? स्पष्ट शब्दों में कहो न ?

पुरगुप्त : माँ ! शुक्ल पक्ष में चंद्रमा की कलाओं के समान बढ़ने वाले गुप्त साम्राज्य भी कलंक की एक कालिमा है।

कुमारगुप्त : कलंक की कालिमा ? वह मेरे कादम्ब-पात्र से उछला हुआ कोई छींटा तो नहीं है जो चंद्रमा तक जाकर उसका अंजन बन गया ! तुम लोग उसे कलंक कहने लगे। (हँसते हैं।)

पुरगुप्त : परम भट्टारक के कादम्ब-पात्र से नहीं, वात्सल्य से उछला हुआ अमृत है जो विष बन गया है। एक क्षण के विलम्ब से हमारी सौभाग्य-लक्ष्मी विदेशियों से पद-दलित होती।

अनन्तदेवी : (आग्रह से) इस घटना को स्पष्ट करो, पुरगुप्त !

पुरगुप्त : कैसे स्पष्ट करूँ, माँ ! जिस बात की संभावना स्वप्न में भी नहीं हो सकती वह कठिन सत्य बनकर हृदय को ज्वालामुखी बना रहा है।

कुमारगुप्त : किसी समय इस पृथ्वी ने भी मदिरा पी होगी। इतनी अधिक पी होगी कि वही ज्वालामुखी की लपट बनकर उन्मत्तता के साथ···

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र स्वस्थ हों ! इस घटना का मदिरा से कोई संबंध नहीं है।

अनुसन्धान केन्द्र तिथि पु०सं० 2816 भारती पुस्तकालय

कुमारगुप्त : तो मदिरा-पात्र से होगा।

पुरगुप्त : (सहसा) परम भट्टारक की हत्या से था।

अनन्तदेवी : (चीखकर) परम भट्टारक की हत्या था !

कुमारगुप्त : (चौंककर) मेरी हत्या से ?

पुरगुप्त : हाँ, पिताजी ! आपकी हत्या से। कुसुमपुर आज सर्पों की बमी बन गया है। और ये सर्प स्वच्छन्दतापूर्वक घूमते हुए चाहे जिस व्यक्ति को दंशित कर सकते हैं।

कुमारगुप्त : मैं सर्प का नाम जानना चाहता हूँ, पुरगुप्त !

पुरगुप्त : परम भट्टारक क्षमा करें। मैं सर्प का ही नहीं, विषैले तक्षक का नामक भी ले सकता हूँ। कोई सहसा विश्वास नहीं करेगा किन्तु मैं प्रमाण भी प्रस्तुत कर सकता हूँ।

कुमारगुप्त : कौन है वह नर-रूप तक्षक ?

पुरगुप्त : परम भट्टारक का जिस पर अटल स्नेह और विश्वास है। जिसके हाथों में मगध साम्राज्य के भविष्य का राजदंड जाने को है।

अनन्तदेवी : (चीखकर) स्कन्दगुप्त !

कुमारगुप्त : युवराज स्कन्दगुप्त ! असभव है, असंभव, असंभव !

पुरगुप्त : मेरे पास प्रमाण प्रस्तुत है, पिताजी !

कुमारगुप्त : नहीं, पुरगुप्त ! मर्यादा-पालक राघवेन्द्र ने दशरथ की जैसी सेवा की थी,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
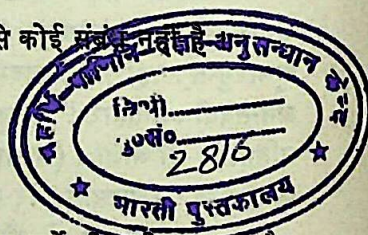
वैसी ही सेवा पुत्र स्कन्दगुप्त ने मेरी की है। उस जैसा सुशील, विनम्र और सच्चरित्र पुत्र दुर्लभ है। महादेवी देवकी का मातृत्व उससे धन्य है।

अनन्तदेवी : मैं भी यही सोचती थी, आर्यपुत्र ! किन्तु इधर उसके मन की दिशा बदल रही है। वह षड्यन्त्रकारियों के हाथ का खिलौना वन रहा है।

कुमारगुप्त : प्रिये ! चाहे मेरे मन की दिशा वदल जाए किन्तु स्कन्द का मन ध्रुव नक्षत्र की भाँति स्थिर और अटल है। मेरा पुत्र स्कन्द हमारे वंश का प्रतापी सम्राट होगा।

पुरगुप्त : पिताजी ! आपके इसी विश्वास की छाया में युवराज स्कन्द की महत्वाकांक्षा षड्यन्त्र में परिणत हुई है और आज तो उसका चरम दृश्य संसार के समक्ष उपस्थित होने को था यदि आपका यह सेवक समय पर उपस्थित न हो जाता।

कुमारगुप्त : तुम मेरी कुतूहलता और क्रोध को एक साथ उत्तेजित कर रहे हो, पुरगुप्त !

पुरगुप्त : पिताजी ! यदि मेरा अपराध किसी भी परिस्थिति में आप देखें तो मुझे कठोर से कठोर दंड दीजिए। किन्तु यदि मेरी सेवा में देशभक्ति और पितृ भक्ति का कहीं भी संकेत मिले तो मैं केवल आशीर्वाद के दो शब्दों का अधिकारी मात्र समझा जाऊँ।

अनन्तदेवी : पुरगुप्त ! अपना मन इस तरह छोटा मत करो। जो घटना घटित हुई है वह आर्यपुत्र के समक्ष निवेदन करो।

पुरगुप्त : पिताजी ! पूज्य भाई स्कन्द के चरणों में मेरी अपार श्रद्धा रही है।

अनन्तदेवी : यह तो मैं भी जानती हूँ।

पुरगुप्त : उसी श्रद्धा से प्रेरित होकर मैं प्रतिदिन संध्या समय उनके चरणों में प्रणाम कर अपने कक्ष में आ जाता हूँ। आज संध्या समय जब मैं उनके कक्ष में गया तो वे वहाँ नहीं थे।

अनन्तदेवी : वहाँ वे कैसे होंगे ? अपने विश्वासपात्रों से मिलने का अवसर तो संध्या के धुंधले प्रकाश में ही है।

कुमारगुप्त : प्रिये ! व्यर्थ के संदेह से अपने मन को कलुषित मत करो।

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र ! संदेह जब तक घटना का रूप न ले तब तक मैं उसे अपने मन में स्थान ही नहीं देती। जिस मन में आपकी मूर्ति है उसे अपवित्र करना मैं पाप समझती हूँ। हाँ, पुरगुप्त ! फिर क्या हुआ ?

पुरगुप्त : पिताजी ! जब मैंने उन्हें कक्ष में नहीं देखा तो यह समझ कर कि, पिताजी ! वे आपके कक्ष में होंगे, इस कक्ष में आया। आने के पूर्व देखा कि पश्चिम के पार्श्व में कोई तोरण-शालभंजिका की मूर्ति की ओट में काले वस्त्रों के आवरण में छिपा हुआ बैठा है।

अनन्तदेवी : काले वस्त्रों के आवरण में ? कौन था वह ! युवराज स्कन्द ?

पुरगुप्त : नहीं माँ ! युवराज स्कन्द नहीं थे। वह स्कन्द के षड्यन्त्र का रूप था।

अनन्तदेवी : स्कन्द का षड्यन्त्र ? मैं कुछ समझी नहीं।

पुरगुप्त : वह एक हूण था जो शस्त्र लिए उस क्षण की प्रतीक्षा में था जब परम भट्टारक मधुर निद्रा में लीन रहते और वह एक ही हाथ में मगध का वैभव और इतिहास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्त की धाराओं में बहा देता !

अनन्तदेवी : (चीखकर) रक्त की धाराओं में बहा देता ? (सिसकियाँ लेते हुए) नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता था ! ऐसा नहीं हो सकता था ! मेरा भाग्य इतना प्रतिकूल नहीं हो सकता था !

कुमारगुप्त : धैर्य रखो, प्रिये ! मेरी मृत्यु की संभावना ऐसी नहीं है जो तुम्हें इतना विह्वल बना दे। हाँ, पुरगुप्त ! फिर क्या हुआ ?

पुरगुप्त : पिता जी ! मैंने उस हूण पर पीछे से जाकर पाद-प्रहार किया। जैसे ही वह घबराकर भागने को हुआ कि मैंने उसे पकड़ लिया। अन्तःपुर की समस्त द्वाररक्षिकाएँ सहम उठीं। मेरा उससे मल्लयुद्ध हुआ और अन्त में वह जब शिथिल हो गया तो मैंने एक द्वार-रक्षिका के उत्तरीय से उसके हाथ-पैर बाँध दिए।

अनन्तदेवी : धन्य हो, मेरे लाल ! तुमने हूण को मल्लयुद्ध में पराजित किया, तुम्हें कहीं चोट तो नहीं लगी ?

पुरगुप्त : जब मैंने उसके हाथ से तलवार छीनी तो मेरे बायें हाथ में रक्त की एक रेखामात्र झलक उठी। कोई विशेष चोट नहीं है।

अनन्तदेवी : लाओ, मैं उसे बाँध दूँ, लाल ! (पास आकर बाँधती है) ओ हो, इतना अधिक रक्त निकल रहा है और तुम उसे केवल रक्त की रेखा ही कह रहे हो ? हाथ उठाओ ? मेरे लाल ! हाँ, इस तरह ! लाओ ! पीठिका का कौशेय ही बाँधूं। (फाड़ने की आवाज) इसे ऐसे बाँधूं···हाँ, इस तरह। ओह, आर्यपुत्र देखिए···कितना रक्त निकल रहा है !

कुमारगुप्त : मेरे पुत्रों के लिए रक्त श्रृंगार की वस्तु है। हाँ, पुरगुप्त ! तो तुमने यह कैसे जाना कि वह हूण युवराज स्कन्द के षड्यन्त्र में था।

पुरगुप्त : जब मैंने उसी की तलवार से उसका वध करना चाहा तो वह मुँह फाड़कर चीख उठा और कहने लगा कि युवराज स्कन्दगुप्त की आज्ञा से ही वह वहाँ छिपकर बैठा था।

कुमारगुप्त : किसलिए ?

पुरगुप्त : आपको अनन्त निन्द्रा में शयन कराने के लिए।

कुमारगुप्त : नहीं, नहीं, यह असंभव है। स्कन्द के मन में ऐसी दुर्भावना आ ही नहीं सकती।

पुरगुप्त : मैं प्रमाण उपस्थित कर सकता हूँ, पिताजी ! मैंने उस हूण के हाथ-पैर बाँध कर उसी तोरण-शाल भंजिका की ओट में डाल दिया है। यदि आपकी आज्ञा होगी तो मैं आपकी सेवा में उसे उपस्थित भी कर दूँगा।

अनन्तदेवी : संदेह के लिए स्थान ही क्यों छोड़ा जाए ! आर्यपुत्र के समक्ष उसे उपस्थित क्यों नहीं कर देते ?

कुमारगुप्त : किन्तु मुझे स्कन्द पर किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है।

अनन्तदेवी : आप इतने साधु और सौम्य हैं, आर्यपुत्र ! कि आप समस्त संसार को अपने जैसा ही साधु और सौम्य समझते हैं। राज्याधिकार ने किसके मन को कलंकित नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया ! क्या अजातशत्रु ने महाराज बिम्बसार को राज्य-सिंहासन से हटा कर स्वयं राज-शक्ति अपने हाथ में नहीं कर ली ? इतिहास इसका साक्षी है, आर्यपुत्र !

कुमारगुप्त : किन्तु स्कन्द !

अनन्तदेवी : जब आपका ही पुत्र पुरगुप्त प्रमाण उपस्थित करने की आज्ञा चाहता है तो उसे अनुमति प्रदान करने में हानि ही क्या है ?

कुमारगुप्त : अच्छा, पुरगुप्त ! प्रमाण उपस्थित हो।

पुरगुप्त : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

कुमारगुप्त : प्रिये ! मैं बार-बार विश्वास करने का प्रयत्न करता हूँ कि तुम्हारा और पुरगुप्त का कथन सत्य हो किन्तु मेरे अन्तःकरण की ध्वनि विश्वास करने की आज्ञा नहीं देती।

अनन्तदेवी : आपका कंठ सूख रहा है आर्यपुत्र ! एक पात्र कादम्ब ग्रहण कीजिए।

कुमारगुप्त : लाओ प्रिये ! (एक घूँट पीकर) तुम्हारे प्रेम की भाँति ही यह कादम्व मधुर है, किन्तु प्रिये ! मैं भीतर से एक उदासी का अनुभव कर रहा हूँ।

अनन्तदेवी : सत्य है, प्राणनाथ ! जब विश्वासपात्र ही विश्वास खोने लगते हैं तब मन की ऐसी दशा हो ही जाती है। यद्यपि स्कन्द ने प्राणदंड पाने का कार्य किया है किन्तु उसका निर्णय कुछ दयापूर्ण हो।

[पुरगुप्त का हूण बन्दी सहित प्रवेश।]

पुरगुप्त : पिताजी ! यह हूण बन्दी है। यही तोरण-शालभंजिका के पीछे तलवार लिए छिपा था।

कुमारगुप्त : अच्छा, तुम हो ! तुम्हारा नाम ?

हूण : (हकलाते हुए) टि···टि···टि···टिण्डल।

कुमारगुप्त : तुम कुसुमपुर में किस तरह आए ?

हूण : सो···सो ·····सोकंदगुप्त टा लाया।

कुमारगुप्त : स्कन्दगुप्त क्यों लाए ?

हूण : सोकंदगुप्त टा लाया। बंदी टा वेनाया। हाम की सेनाटा भगाया। फि···फि··· फि···फिर बंदी खाना टा में डाला।

कुमारगुप्त : वहाँ से तुम यहाँ कैसे आए ?

अनन्तदेवी : तुमसे स्कंदगुप्त ने यहाँ आने को कहा था न ?

हूण : ज···ज···ज···जेश रानी टा केहा तेश ठीक।

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र ! आपको अब तो विश्वास होगा ?

कुमारगुप्त : क्या स्कन्दगुप्त ने तुम्हें तोरण-शालभंजिका के पास छुपने को कहा था ?

हूण : ह···ह···ह···हाम टा समझता नहीं।

कुमारगुप्त : तुम तलवार लेकर मारने आए थे ?

हूण : ए···ए···ए···ऐसा टा पोरगुप्त बोला।

अनन्तदेवी : तुम ठीक से नाम उच्चारण करो। किसने तुमसे ऐसा कहा ? स्कन्दगुप्त ने ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूण : ज···ज···ज···जेश रानी टा केहा तेश ठीक।

पुरगुप्त : पिताजी को मेरे कथन पर विश्वास करना चाहिए। यदि मैं ठीक समय पर न आता तो आज सर्वनाश था।

कुमारगुप्त : मैं इस हूण से अधिक बात नहीं कर सकता। मुझे मूर्छा-सी आ रही है। कादम्ब का प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

अनन्तदेवी : प्राणनाथ! आप विश्राम कीजिए। पुरगुप्त, जाओ। इस हूण बन्दी को ले जाओ। इसके दंड का निर्णय मैं स्वयं करूँगी।

पुरगुप्त : जैसी आज्ञा। (हूण से) चलो जी!

[पुरगुप्त का हूण के साथ प्रस्थान।]

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र! हमारे मगध साम्राज्य में एक षड्यन्त्र चल रहा है जिसका केन्द्र स्कन्दगुप्त है। इसका आभास मुझे तो कई महीनों से लग रहा था, आज यह सत्य वन गया।

कुमारगुप्त : (शिथिल स्वरों में) प्रिये! स्कन्द से इस संबंध में बातें किए विना मैं विश्वास कैसे करूँ? स्कन्द को वुलाओ।

अनन्तदेवी : स्कन्द आपके सामने किस प्रकार आ सकेगा? उसे तो अब आपके पास आने में लज्जा आएगी! जिसने अपने पिता के वध की योजना बनाई, वह क्या पिता से बातें कर सकेगा? छोड़िए, इन अरुचिकर प्रसंगों को। आपका कंठ सूख रहा है। लीजिए, यह एक पात्र, कादम्ब।

कुमारगुप्त : नहीं, प्रिये! मैंने आज कादम्ब का इतना अधिक पान किया है कि उसकी नदी मेरे शरीर में बह रही है मेरा सिर घूम रहा है और नेत्र उठ भी नहीं सकते।

अनन्तदेवी : फिर भी मेरे हाथों से इस बार इस कादम्ब को पान करें। इसमें मैंने अपने मुख का प्रतिविम्ब देखकर मुस्करा दिया है। यह कादम्ब तो आपको और भी प्रिय होगा!

कुमारगुप्त : लाओ प्रिये! यदि तुम इस प्रकार मुस्कराकर मुझे विष भी दो तो मैं उसे अमृत समझ कर पान कर लूँगा। लाओ। (पान करते हैं।)

अनन्तदेवी : मैं धन्य हुई, आर्यपुत्र!

कुमारगुप्त : मुझे मूर्छा-सी आ रही है, प्रिये!

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र! आप मेरी गोद में विश्राम करें। कल प्रातःकाल स्कन्द को बुला कर आपके समक्ष उपस्थित करूँगी और जिस विश्वासघात से उसने अपने पिता के जीवन का अंत करना चाहा है, उसका निर्णय मैं स्वयं उससे करवाऊँगी।

कुमारगुप्त : स्कन्द···स्कन्द···देवकी कहाँ है?

अनन्तदेवी : वह चक्रपाणि भगवान की पूजा में व्यस्त होंगी। जिसने पति की ओर से उदासीन होकर चक्रपाणि को ही सब-कुछ समझ लिया है उस नारी के संबंध में मैं क्या कह सकती हूँ?

कुमारगुप्त : (आँख बन्द कर शिथिल स्वरों में) महादेवी देवकी श्रद्धा की देवी हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र ! अत्यन्त सरल स्वभाव के हैं। (सहसा) हाँ, एक आवश्यक आज्ञा-पत्र मन्त्री कुमारामात्य पृथ्वीसेन की ओर से आया था, उस पर आपके हस्ताक्षर होने हैं।

कुमारगुप्त : (शिथिल स्वरों में) किस संबंध में आज्ञा-पत्र है ?

अनन्तदेवी : मैं तो उसे देख नहीं सकी, किन्तु कुमारामात्य ने निवेदन किया था कि यह आज्ञा-पत्र अत्यंत आवश्यक है, इस पर आज ही हस्ताक्षर हो जाने चाहिए।

कुमारगुप्त : प्रिये ! मैं तो इस समय आँख खोल भी नहीं सकता। कादम्ब ने स्वप्नों की चित्रशाला मेरी आँखों में खींच दी है। मैं उसी में खो गया हूँ।

अनन्तदेवी : मेरी आँखों से देखिए, आर्यपुत्र ! मेरी सेवा से चैतन्य हो जाइए। आज मन्त्रिपरिषद् में आपने किसी विशेष समस्या पर विचार किया होगा।

कुमारगुप्त : (सोचता हुआ) हाँ···पुष्यमित्रों की गति रोकने के लिए···हाँ···सामन्त राज्यों की रक्षा के लिए···हाँ, मालव की रक्षा के लिए मैं स्कन्द को वहाँ भेजना चाहता था।

अनन्तदेवी : तब उसी संबंध में मन्त्री कुमारामात्य ने आपके हस्ताक्षरों के लिए आज्ञा-पत्र भेजा होगा।

कुमारगुप्त : संभव है, वही हो। कार्य अत्यन्त आवश्यक है।

अनन्तदेवी : तब आप इस पर हस्ताक्षर कर दीजिए। मैं इसी समय आज्ञा-पत्र को कुमारामात्य के पास भेज दूँगी।

कुमारगुप्त : हाँ, हाँ···स्कन्द को कल प्रातःकाल ही मालव के लिए प्रस्थान करना चाहिए।

अनन्तदेवी : तब यह रही लेखनी। आप यहाँ हस्ताक्षार कर दीजिए।

कुमारगुप्त : लाओ···(सोचकर) पर हाँ, मुझे तो कल प्रातःकाल स्कन्द से पूछना था कि पुरगुप्त के कथन में कितना सत्य है ?

अनन्तदेवी : स्कन्द मालव जाने के पूर्व तो आपकी सेवा में आएगा ही। उस समय उससे पूछ लीजिएगा।

कुमारगुप्त : यह भी ठीक है। (हस्ताक्षर करते हुए) लो, हस्ताक्षर कर दिए। प्रिये ! मुझे मूर्छा आ रही है। मैं विश्राम करना चाहता हूँ।

अनन्तदेवी : आप मेरी गोद में विश्राम कीजिए, प्राणनाथ ?

कुमारगुन्त : (स्वप्निल स्वरों में) पुष्यमित्रों को हरानेवाला···स्कन्द ! वीर-तेजस्वी···पितृभक्त मेरा वध नहीं करवा सकता ! मेरे युवराज···स्कन्द !···उसका विवाह···यदि मालव-कुमारी देवसेना से हो···तो···कितना अच्छा होगा···देवसेना ! वह नन्दन-वन की वसन्त-श्री···अमरावती की शची स्वर्ग की लक्ष्मी···स्वर्ग की लक्ष्मी···चक्रपाणि भगवान की शेष-शैय्या पर आसीन···लक्ष्मी···लक्ष्मी···सागर से उत्पन्न···समुद्र-मंथन के अवसर पर···कल्पवृक्ष···धन्वन्तरि···ऐरावत, वारुणी, अमृत···विष···विष···

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

अनन्तदेवी : विश्राम कीजिए, आर्यपुत्र ! आपका मन अशांत है। विश्राम कीजिए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारगुप्त : विष···शंकर ने पान किया···नीलकंठ की शोभा···आकाश की भाँति··· जिसमें चमकता हुआ चन्द्रमा···किन्तु उसकी कालिमा जो कादम्ब के छींटों से बनी है···कादम्ब···कादम्ब···

अनन्तदेवी : आर्यपुत्र ! एक पात्र कादम्ब और दूं ? लीजिए। (कुमारगुप्त को कादम्ब पिलाती है।)

कुमारगुप्त : (कादम्ब मुख में भरकर)···ओह, मूर्छा···

[नेपथ्य में—मैं पिताजी के दर्शन इसी समय करना चाहता हूँ सुनन्दा का स्वर—महादेवी भी साथ हैं। स्कन्दगुप्त का स्वर—मेरी माँ !]

[स्कन्दगुप्त का प्रवेश।]

स्कन्दगुप्त : माँ···माँ···

अनन्तदेवी : कौन, स्कन्दगुप्त !

स्कन्दगुप्त : क्या माँ नहीं हैं ? किन्तु तुम भी तो मेरी माँ हो।

अनन्तदेवी : तुम्हारा छद्मवेश मैंने बहुत देखा है, स्कन्द ! आगे से मुझे माँ मत कहा करो। मैं तुम्हारे द्वारा माँ कहने पर अपने को अपमानित समझती हूँ।

स्कन्दगुप्त : मेरी ओर से आज तक कोई अपराध नहीं हुआ, माँ ! किन्तु अनजाने यदि अपराध हो गया हो तो मैं क्षमा चाहता हूँ। मुझे क्षमा करो।

अनन्तदेवी : यह छल-छन्दों की भाषा मुझे नहीं चाहिए। यह उनसे कहो जो महादेवी का दम्भ भर कर चक्रपाणि भगवान की पूजा का ढोंग करती हैं।

स्कन्दगुप्त : मेरी माँ को अपमानित मत करो माँ ! वे पूज्य हैं और माँ तुम भी पूज्य हो ! पिताजी भी जानते हैं··· (पिता को देखकर सहसा) क्या पिताजी निद्रा में हैं ?

अनन्तदेवी : हाँ, निद्रा में हैं।

स्कन्दगुप्त : तो माँ, धीरे बातें करो। कहीं पिताजी की निद्रा भंग न हो जाए !

अनन्तदेवी : यह झूठी पितृ-भक्ति रहने दो, स्कन्द !

स्कन्दगुप्त : माँ ! तुम ऐसी बातें करके मुझे कष्ट न दो !

अनन्तदेवी : मैंने तुम्हें रोक दिया है कि तुम मुझको माँ मत कहो।

स्कन्दगुप्त : आज इतना क्रोध मुझ पर क्यों है, माँ ! आप तो मेरी सौतेली माँ हैं, फिर ऐसी कौन-सी नारी है जो 'माँ' शब्द पर द्रवित नहीं होती ?

अनन्तदेवी : अच्छा, तो मैं नारी नहीं हूँ ! अब तू मुझे भी अपमानित करेगा !

स्कन्दगुप्त : नहीं माँ ! जिस दिन स्कन्द से अपनी माँ का अपमान होगा उस दिन स्कन्द इस संसार में नहीं रहेगा।

अनन्तदेवी : पिता को संसार में रहने दे, यही तेरी बड़ी कृपा होगी।

स्कन्दगुप्त : पिता को संसार में रहने दूं ! यह आप कैसी बातें कर रही हैं ? मैं तो समझता हूँ कि भगवान ही पिता के रूप में अवतार ग्रहण करते हैं। वे ही उत्पत्ति-कर्ता हैं, वे ही पालक हैं। उनके प्रति कपट करना संसार के सबसे बड़े पापों में हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनन्तदेवी : ये विचार इसलिए तो नहीं हैं कि तुझ पर किसी को संदेह करने का अवसर न मिले ? मुख से पिता का गुणगान करना और अपने कार्यों से उनके वध का प्रवन्ध करना।

स्कन्दगुप्त : वध का प्रवन्ध करना ? मैं कुछ समझा नहीं।

अनन्तदेवी : हाँ, इसे तो हूण ही समझ सकता है।

स्कन्दगुप्त : हूण ? कौन-सा हूण ? मैंने तो कुसुमपुर में छिपे समस्त हूणों को या तो मार डाला है या बन्दी कर लिया है।

अनन्तदेवी : वन्दी इसलिए कर लिया है कि तेरे षड्यन्त्रों में भाग लेकर तेरे युवराज पद को परम भट्टारक के पद में परिवर्तित कर दें।

स्कन्दगुप्त : माँ ! अपने शब्दों पर प्रतिवन्ध लगाओ। ऐसे अनुचित और पापमूलक वाक्यों से···

अनन्तदेवी : मेरे वाक्य पापमूलक हैं और उन्हीं के अनुसार तेरे कार्य पुण्यसूचक हैं। क्यों स्कन्द ?

स्कन्दगुप्त : (पुकारकर) पिताजी !

अनन्तदेवी : तुम्हारे पिता इस समय गाढ़ निद्रा में हैं। उनकी निद्रा भंग न करो। (व्यंग्य से हँसकर) जो उन्हें चिर-निद्रा में सुलाना चाहता था; वह उनकी निद्रा भंग करे ! बड़े कौतुक की बात है।

स्कन्दगुप्त : माँ ! तुम क्या कर रही हो ? क्या तुम अपने वाक्य प्रमाणित कर सकती हो ?

अनन्तदेवी : सत्य को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, स्कन्द ! अमावस का अंधकार किसी व्यक्ति से नहीं कहता कि मेरी घोषणा करो। वह पाप रूप से सब संसार पर छा जाता है। इसी प्रकार तुम्हारे कार्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रखते।

स्कन्दगुप्त : माँ ! मेरा रक्त खौल रहा है। मैं पिताजी से निवेदन करूँगा···

अनन्तदेवी : जब मेरे पुत्र ने हूण से उनकी रक्षा कर ली तब उनसे तुम क्या निवेदन करोगे ? उसी हूण से जिसे तुमने पितृवध के लिए तोरण-शालभंजिका के पीछे छिपा दिया था।

स्कन्दगुप्त : ओह ! घोर षड्यन्त्र ! क्या ऐसा संभव हो सकता है, माँ ! यह किसी नीच का कार्य है। स्कन्द सौ जन्म में भी अपने पिता के प्रति दुर्भावना नहीं ला सकता। ओह ! बतलाओ, माँ ! वह हूण कौन था ?

अनन्तदेवी : इस तरह अनजान बन जाने से तुम्हारे पापों पर परदा नहीं पड़ सकता। (व्यंग्य से) वह हूण कौन था—जैसे दो वर्ष के भोले बच्चे हो न ? जिस हूण को षड्यन्त्र में सम्मिलित किया, उसका नाम भी नहीं जानते।

स्कन्धगुप्त : भगवान चक्रपाणि की शपथ ! माँ, मैं उसे नहीं जानता।

अनन्तदेवी : भगवान चक्रपाणि तो माँ और बेटे के खिलौने हैं। चाहे जब उनकी दुहाई दे दी। चक्रपाणि न हुए वक्रपाणि हो गए। टेढ़े कार्यों में भी उनकी साक्षी !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

स्कन्दगुप्त : माँ, माँ बस करो। मेरी निंदा करो किन्तु भगवान की निंदा न करो। मैं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुमसे प्रार्थना करता हूँ।

अनन्तदेवी : जिस तरह हूण टिण्डल से प्रार्थना की थी।

स्कन्दगुप्त : ओह टिण्डल ! वह नीच हूण जो धन लूटने के लिए गरम लोहे से नागरिकों को जलाता था—खौलते तेल में कपड़े डुबाकर जनता को जलाता था और कोड़े मारता था ! उसको मैंने वन्दी किया ! पैसे का लोभी ! उसे मार डालता तो यह सब कुछ न होता।

अनन्तदेवी : उसे मार डालना सहज नहीं था। मेरा पुत्र ही उसे मार सकता है।

स्कन्दगुप्त : मैं भी तो तुम्हारा पुत्र हूँ, माँ ! मैंने उसे मारने के लिए कृपाण उठाया। उसने पैरों पर गिरकर प्राण-भिक्षा माँगी। मैंने उसे केवल वन्दी करने की आज्ञा दी। वह पैसे का बड़ा लोभी था। ज्ञात होता है किसी नीच ने बंधन-मुक्त कर पैसे का लोभ दिया और चाहे जैसा कहला दिया। इन हूणों में मानवता नहीं है, माँ ! ये धन के लिए सब कुछ कर सकते हैं। किसी नीच का ही यह कार्य है। मैं टिण्डल को दण्ड दूंगा—अव प्राण-दंड दूंगा।

अनन्तदेवी : किस पद से प्राणदंड दोगे ? युवराज पद से ? तुम्हारे इन्हीं षड्यन्त्रों से क्षुब्ध होकर परम भट्टारक ने तुम्हें युवराज-पद से हटाकर कुसुमपुर छोड़ने को कहा है और पुरगुप्त को युवराज-पद दिया है। देखो, यह आज्ञा-पत्र जिसकी स्याही अभी तक सूखने नहीं पाई। (हँसती है।)

स्कन्दगुप्त : (आज्ञा-पत्र देखकर) ठीक है, माँ ! यह आज्ञा शिरोधार्य है। मुझे राज्य का कोई लोभ नहीं है। किन्तु मैं सोच रहा हूँ कि इस कार्य के लिए षड्यन्त्र की रूप-रेखा किसने बनाई है।

अनन्तदेवी : अर्थात् मैंने बनाई है ? तुझे लज्जा नहीं आती अपनी माँ पर इस प्रकार लांछन लगाते हुए ? नीच, दुष्ट ! एक ओर तो मुझे अपनी माँ कहता है, दूसरी ओर मुझ पर षड्यन्त्र का लांछन लगाता है ?

स्कन्दगुप्त : मैंने तुम्हारा नाम नहीं लिया, महादेवी !

अनन्तदेवी : और नाम कैसे लिया जाता है ! जब कुछ कहने को नहीं है तो 'महादेवी' संबोधन से मुझे प्रसन्न करना चाहता है ! मैं ऐसे छद्मवेशियों के भुलावे में नहीं आ सकती।

स्कन्दगुप्त : सारा रहस्य मेरी समझ में आ गया। अब मुझे कुछ नहीं कहना है। अपनी माँ की आज्ञा लेकर मैं कुसुमपुर छोड़ दूंगा। किन्तु दुःख इसी बात का है कि मगध की प्रजा पर संकट आने पर···

अनन्तदेवी : क्या तू ही संकट दूर कर सकता है ? क्या मेरे पुरगुप्त में इतनी शक्ति नहीं है कि वह विदेशियों और आततायियों से प्रजा की रक्षा कर सके ? तुझे अपनी शक्ति पर बड़ा अभिमान हो गया ज्ञात होता है।

स्कन्दगुप्त : शक्ति जननी की है और साहस पिता का है। मुझे राज्याधिकार का मोह नहीं। मेरे भाई पुरगुप्त युवराज बनें। मगध-साम्राज्य के अधिकारी हों किन्तु मेरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मभूमि की दुर्दशा न हो।

अनन्तदेवी : अभिनय तू अच्छा कर सकता है, स्कन्द !

स्कन्दगुप्त : महादेवी ! यह अभिनय नहीं। यह प्राणों का चीत्कार है। जन्म भूमि की दुर्दशा मैं किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकूंगा। शरीर में अंतिम रक्त-बिन्दु के रहते मैं किसी भी विदेशी और अत्याचारी को मगध की भूमि पर पैर नहीं रखने दूंगा। युवराज बनकर न सही, सैनिक बन कर तो मैं अपनी मातृभूमि की रक्षा का अधिकार रखता हूँ। यह आज्ञा-पत्र कहाँ तक पिता की इच्छा से लिखा गया है, यह तो परिषद् निर्णय करेगी किन्तु मैं यह वचन देता हूं माँ ! कि मैं सिंहासन के प्रलोभन से कोई कार्य नहीं करूँगा।

अनन्तदेवी : (व्यंग्य से) बस, बस, बहुत हुआ।

स्कन्दगुप्त : मुझे कल प्रातःकाल मालव की ओर प्रस्थान करना है। पिछले शक-युद्ध में मालव-राज्य की जो संधि मगध-साम्राज्य से हुई थी, उसके अनुसार मालव की रक्षा हमारा धर्म है। आज मालव संकट में है। शकों की सेना फिर मालव को घेर रही हैं। मुझे शीघ्र ही मालव की रक्षा के लिए प्रस्थान करना है। किन्तु, महादेवी ! मुझे आपसे यही निवेदन करना है कि अपने पुत्र को युवराज-पद दिलाने के उपरांत अब और कोई अभिसंधि मेरी अनुपस्थिति में न हो।

अनन्तदेवी : क्या मुझे आज्ञा देने का साहस तुझमें है ?

स्कन्दगुप्त : तुम महादेवी हो, किन्तु मगध-साम्राज्य से बढ़कर नहीं हो। मगध की रक्षा तुम्हें भी उसी प्रकार करनी होगी जिस प्रकार एक सैनिक करता है। मगध पर विदेशियों की सेना उमड़ रही है। युवराज पुरगुप्त को तैयार करो कि वह उसका सामना करे। मगध का शासन विलास की छाया में नहीं हो सकता, कृपाण की छाया में होगा। पिताजी के जागने पर उनके चरणों में मेरा प्रणाम निवेदन करना और कहना कि स्कन्द उन्हीं के आदेश से मालव की ओर चला गया है। विजय प्राप्त करके ही लौटेगा। (प्रस्थान)

अनन्तदेवी : चला गया। कंटक दूर हुआ। कहता है, मगध का शासन विलास की छाया में नहीं हो सकता ! विलास की छाया में ! मैं तो ऐसा शासन करूंगी कि समस्त मगध साम्राज्य के इतिहास में वह अमर हो जाए। (घंटे पर चोट करती है।) कंठ सूख रहा है, कादम्ब समाप्त हो गया।

[सुनन्दा का प्रवेश।]

सुनन्दा : आज्ञा, महादेवी !

अनन्तदेवी : हाँ ! आज से तुम्हारा सम्बोधन सार्थक हो गया। महादेवी ! आज से मैं वास्तव में महादेवी हूँ। सुनन्दा ! मेरा कंठ सूख रहा है।

सुनन्दा : मैं कादम्ब साथ लाई हूँ। पान करें। मैं जानती थी कि महादेवी का कंठ सूख रहा होगा।

अनन्तदेवी : तू बड़ी कुशल है, सुनन्दा ! ला पान करूँ। (पान करती है) और सुन !

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम भट्टारक ने लिखित आज्ञा-पत्र से यह घोषणा की है कि आज से स्कन्द युवराज नहीं हैं। युवराज हैं मेरे पुत्र कुमार पुरगुप्त ! और देख ! इस बात की किसी को भी सूचना न हो कि परम भट्टारक अब इस संसार में नहीं हैं। देख, वे चिर निद्रा में लीन हैं।

सुनन्दा : परम भट्टारक सम्राट् अब संसार में नहीं हैं ! (सिसकी)

अनन्तदेवी : चुप सुनन्दा ! एक सिसकी भी नहीं। (सुनन्दा की सिसकियाँ बन्द हो जाती हैं) अधिक से अधिक इसी बात की सूचना हो कि परम भट्टारक अस्वस्थ हैं और अपनी अंतिम शैया पर लेटे हैं।

सुनन्दा : (सिसकी-भरे कंठ से) जो आज्ञा।

अनन्तदेवी : आज मैं महादेवी हूँ। महादेवी देवकी का अभिमान धूल में लोट रहा है। जा, इस लिखित आज्ञा-पत्र की घोषणा तूर्य से हो कि आज से युवराज पुरगुप्त की आज्ञा मान्य हो। शीघ्र जा।

सुनन्दा : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

अनन्तदेवी : (अट्टहास करती है) स्कन्द कहता है कि मगध का शासन विलास की छाया में नहीं हो सकता। मैं कहती हूँ कि मैं विलास की छाया में ही मगध का शासन करूँगी। जिस प्रकार डमरू के नाद से नाग मोहित होता है, उसी प्रकार मेरे रोष से मगध जो नाग की भाँति मतवाला है, मोहित होकर मूर्छित होगा और तब मैं एकाधिपत्य शासन करूँगी। विलास की छाया में···विलास की छाया में···

[बाहर तूर्य की ध्वनि।]

अनन्तदेवी : (अट्टहास के साथ) मैं महादेवी हूँ ! मेरा पुत्र युवराज है ! मैं स्वयं अपने मुँह से कहूँगी—महादेवी अनन्तदेवी की जय ! जय···जय ! ! ···! !

[धीरे-धीरे शब्द क्षीण हो जाता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैलेण्डर का आखिरी पन्ना

पात्र-परिचय

बिहारीलाल : अवकाश-प्राप्त मास्टर	—आयु 55 वर्ष
मनोहर : बिहारीलाल का पुत्र	—आयु 22 वर्ष
नसीबन् : पड़ोस की बूढ़ी स्त्री	—आयु 70 वर्ष
सकीना : एक स्त्री (रहमान की माँ)	—आयु 40 वर्ष
हवलदार दिनेशसिंह : हवलदार	—आयु 30 वर्ष
शीला : नर्स	—आयु 20 वर्ष
संपतलाल : मुनीम	—आयु 45 वर्ष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान : इलाहाबाद का मोहल्ला—नखासकोना
तारीख व समय : 31 दिसंबर, 1965, संध्या 5 बजे

[एक छोटे-से मकान का बाहरी कमरा। बहुत साधारण ढंग से सजा हुआ है। दीवार पर कैलेण्डर, जिसमें दिसम्बर महीने का पृष्ठ खुला हुआ है। तीन-चार चित्र, जिनमें महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू तथा लालबहादुर शास्त्री के चित्र हैं। बीचोबीच एक सामान्य दरी, जिस पर एक टेबल और दो साधारण-सी कुर्सियाँ हैं। बगल में एक पुरानी आरामकुर्सी, जिसके बेंत टूट रहे हैं। दाहिनी ओर बाहरी दरवाजा और मध्य में भीतर जाने का रास्ता है, जिस पर एक परदा पड़ा हुआ है। सन्ध्या के पाँच बजे हैं। मनोहर टेबल पर झुका हुआ कुछ लिख रहा है और उसका पिता बिहारी, आरामकुर्सी पर बैठा हुआ कैलेण्डर की ओर देख रहा है। परदा उठने पर बिहारी अपना चश्मा उतारकर साफ करता हुआ कैलेण्डर की ओर बढ़ता है। उसके हाथ में छड़ी है। वह कमजोरी से लड़खड़ाता हुआ चलकर कैलेण्डर के पास आता है।]

बिहारीलाल : (गिरे हुए स्वर से गिनता हुआ) उनतीस···तीस···एकतीस···एकतीस दिसम्बर! आखिरी तारीख और आखिरी पन्ना! आज इकत्तीस तारीख है, मनोहर?

मनोहर : (लिखते हुए) जी, एकतीस दिसम्बर!

बिहारीलाल : इकत्तीस दिसम्बर! आज ही के दिन···आज ही के दिन···

मनोहर : (रोकते हुए) बाबूजी!

बिहारीलाल : मनोहर! तुम मुझे हमेशा रोक देते हो। लेकिन सोचना तो नहीं रोक सकते!···तारीखें गिनता हूँ···कैलेण्डर देखता हूँ···वही तारीख···वही तारीख, जिसने···

मनोहर : बाबूजी, वही बातें आप क्यों सोचते हैं? उस तारीख को देखते हैं? देखते-देखते···

बिहारीलाल : अच्छी बात है, अब नहीं देखूंगा। और फिर, अब मेरी आँखें भी काम नहीं देतीं, मनोहर! चश्मा तो पुराना हो ही गया। नया चश्मा लूं तो कुछ काम चले! लेकिन अब नया चश्मा भी क्या करूंगा लेकर। कौन-से सुख के दिन देखने हैं! एक-एक कर सुख के सब साथी छूट गए। तेरी माँ, तेरी बहन और अन्त में तेरा भाई भी। फिर वही बात सोचने लगा···आज ही के दिन···इकत्तीस तारीख को तेरा भाई छूटा। (गला भर आता है) उसके कलेजे में गोली लगी। मैं वहाँ होता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो दुश्मनों से कहता—जालिमो ! पहले मेरे सीने में गोली मारो। मेरी छाती छेद डालो।

मनोहर : लेकिन दुश्मन क्यों छाती छेदता ? हम ही दुश्मन की छाती छेद देते···

बिहारीलाल : तो मनोहर ! मेरे सुदर्शन ने भी यही किया होगा। उसके सामने दुश्मनों की सारी फौज तितर-वितर हो गयी होगी। एक ही सिपाही बचा होगा जिसने उसकी छाती में गोली मारी होगी।

मनोहर : तो शहीदों पर आँसू बहाना कहाँ तक ठीक होगा ? लेकिन आप आँसू बहाते रहते हैं। इसी तरह रोते-रोते आपने अपनी आँखें खराब कर लीं। हमेशा कोई न कोई बात लेकर आप अपना मन खराब कर लेते हैं। (उठकर टहलते हुए) और आप ही को दुःख है ? मैं दुखी नहीं हूँ ? आखिर वे मेरे भी तो भाई थे। हम दोनों भरती के दफ्तर में गए थे। सुदर्शन भैया ने कहा था कि हम दोनों में से एक को मोरचे पर जाना चाहिए। दूसरे को पिताजी की सेवा के लिए रहना चाहिए। मैंने जाना चाहा तो जिद करके मुझे वापस भेज दिया और खुद चले गए। अगर वे मुझे वापस न भेजते तो उनकी जगह देश के लिए मेरा बलिदान होता। मैं कितना भाग्यशाली होता ! मुझे देश पर मरने नहीं दिया और खुद चले गए।

बिहारीलाल : मेरा तो दोनों तरह से ही नुकसान होता, बेटा ! जैसे तुम, वैसे सुदर्शन ! मैं भी सुदर्शन के शहीद होने पर अपने को भाग्यशाली समझता हूँ, लेकिन अपने दिल के भीतर तड़पते हुए पिता के हृदय को कहाँ ले जाऊँ ? फिर, बुढ़ापे में बेटे की मौत देखना ! जैसे कपड़ा सिलते समय सुई की नोक टूट जाए ! सुदर्शन नहीं रहा, जैसे···जैसे मन्दिर से कोई मूर्ति उठा ले जाए और उस सूने मन्दिर में भूत-प्रेत रहने लगें। रात-दिन मन के भीतर कोई चीख उठा करती है। इसे कैसे चुप करूँ।

मनोहर : इस तरह दुःख करने से तो आपकी हालत और भी खराब हो जाएगी। फिर सुदर्शन भैया की मृत्यु पर तो सारे देश को गर्व है···

बिहारीलाल : (तेज आवाज में) चुप रहो, मनोहर ! यह गर्व सिर्फ भाषण देते समय कह देने के लिए है। यह सिर्फ जनता के लिए एक नारा है। किसको उसके मरने का गर्व है ? कौन सौभाग्यशाली है ? दुश्मनों को मार भगाने के कौन सौभाग्यशाली है ? दुश्मनों को मार भगाने के बाद किसी ने पूछा कि सुदर्शन का पिता और भाई किस तरह अपने दिन गुजार रहे हैं ? जिन्दगी सिर्फ आदर्शों में नहीं पलती। दीन-दुनिया में भूख-प्यास भी होती है। रहने के लिए घर चाहिए। पेट की आग के लिए अन्न चाहिए। किसी ने कुछ सहायता की ?

मनोहर : आज देश के सभी लोग दुखी हैं, बाबू !

बिहारीलाल : दुखी तो सारी दुनिया है, लेकिन हमारे ही देश में मामूली-से आदमी देश-सेवा का डंका पीटकर क्या से क्या हो गए ! कोई नेता हो गया, कोई एम॰ पी॰ हो गया, कोई विदेश में ऊँचे पद पर पहुँच गया, लेकिन देश की इज्जत बचाने में जो बेचारे गरीब मर गए उनके घर के लोग ? वे तो इंसान की जिन्दगी भी नहीं बिता सकते। कौन कहाँ है—इसकी खोज खबर लेने वाला भी कोई है ?

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोहर : देश के सामने बहुत-सी समस्याएँ हैं, बाबू !

बिहारीलाल : सिर्फ हमारी समस्या नहीं है। सुदर्शन को एम० ए० तक पढ़ाने में घर की जमीन बिक गई। तुझे बी० ए० तक पढ़ाने में घर की पूँजी खत्म हो गई। अब क्या रहा ! कहीं से कोई सहायता नहीं ! आज आठ बरस की उमर में एक सेठ की उल्टी-सीधी बही लिखा करता हूँ, तब कहीं खाने के लिए कुछ जुटा पाता हूँ।

मनोहर : मुझे खुद इस बात का दुःख है, बाबू, मेरा क्या वश है ! दस जगह नौकरी के लिए दौड़-धूप कर चुका, कहीं कोई पूछता नहीं। जैसे ही मेरी नौकरी लगी, मैं आपको किसी सेठ की बही नहीं लिखने दूँगा। मैं फिर कोशिश कर रहा हूँ, बाबू, कि मुझे जल्दी ही कोई नौकरी मिल जाए।

बिहारीलाल : दो बरस तो हो गए कोशिश करते। कहीं किसी ने पूछा भी नहीं। जिस तरह कीड़े-मकोड़े अपना खाना खोजते फिरते हैं उसी तरह इंसान को भी अब अपना खाना खोजने के लिए गली-सड़कों पर निकलना पड़ेगा।

मनोहर : नहीं बाबू ! एक प्रकाशक से मेरी बात हो चुकी है। उसने तीस रुपये पर किताबों के प्रूफ देखने के लिए मुझे रखने की बात कही है। फिर यह जो मैं सुदर्शन भैया की जीवनी लिख रखा हूँ, यह प्रकाशित हो जाए तो प्रकाशक लोग मेरी लिखी किताबें छापने लगेंगे। तब रुपयों की कमी नहीं होगी।

बिहारीलाल : यह तो बहुत दूर की बात है, बेटे ! तब तक मैं जिन्दा रहूँगा या नहीं—यह भगवान् जाने।

मनोहर : अभी आप बहुत दिनों तक जिन्दा रहेंगे। हाँ, एक बात कहूँ, बापू ? (ठहरकर) बही लिखने की मेहनत के वे जो सौ रुपए आपको मिले हैं न ? वे यदि सुदर्शन भैया की जीवनी को छपाने में लगा दिए जायें तो कैसा हो !

बिहारीलाल : अरे, उस जीवनी को कौन पूछेगा ? सुदर्शन को ही किसने पूछा जो अब उसकी जीवनी को पूछने लगेंगे ?

मनोहर : नहीं, बाबू ! अगर आज नहीं पूछा तो कल पूछेंगे। फिर मैंने यह जीवनी बड़ी मेहनत से लिखी है। मैं अभी उसे फिर से एक बार देख रहा था—कहीं-कहीं कुछ बातें जोड़नी थीं।

बिहारीलाल : अब जोड़ना क्या है, बेटा ! वह तो चला ही गया। कहीं भूले-भटके उसे कोई याद कर लेगा तो यह लोगों का बड़ा एहसान होगा। पहले तो उसके बलिदान की चर्चा ऐसी चली कि एक वही भारत का सपूत है। बाद में सब अपने-अपने रास्ते लगे, जैसे सुदर्शन नाम का कोई लड़का था ही नहीं।

मनोहर : नहीं, बाबू ! ऐसी बात नहीं है। फिर मेरी लिखी हुई इस जीवनी से सुदर्शन भैया की याद फिर ताजी हो जाएगी।

बिहारीलाल : तो उसमें से तू मेरा नाम निकाल दे। मैं अपने को उसका योग्य पिता साबित नहीं कर सका। मैं देश का कोई काम नहीं कर सका। सौ रुपयों पर बही लिखने वाला ! और वे सौ रुपए भी उस सेठ की मुट्ठी से ऐसी कठिनाई से निकलते हैं जैसे किसी नास्तिक के मुँह से राम का नाम।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोहर : खैर, ये बातें अब ज्यादा दिन नहीं रहेंगी। तो फिर आपने उन सौ रुपयों के बारे में क्या सोचा ?

बिहारीलाल : सोचूंगा बेटा ! यों सोचने के लिए बातों की क्या कमी !

मनोहर : अच्छी बात है, सोच लीजिएगा। तो फिर मैं जाता हूँ। शाम हो चुकी है। तरकारी-भाजी ले आऊँ, खाने का प्रबन्ध भी तो करना है।

बिहारीलाल : ठीक है। पैसा देता हूँ। (पॉकेट से निकालकर) ले यह दो रुपयों का नोट। आजकल तरकारी-भाजी के दाम भी तो इतने चढ़ गए हैं जैसे कोई नालायक बेटे को सिर चढ़ा ले। तरकारी क्या हो गई, सोने-चाँदी का जेवर हो गया।

मनोहर : रहने दीजिए, पिताजी ! मेरे पास कल के कुछ पैसे बचे हैं। उन्हीं से आज का काम चला लूंगा।

बिहारीलाल : तो सिर्फ अपने लिए ही लाना। मैं आज कुछ भी नहीं खाऊँगा। आज ही के दिन सुदर्शन को गोली लगी थी। 31 दिसम्बर—शाम के पाँच बजे। (गला भर आता है।)

मनोहर : आप फिर दुखी हो गए, बाबू ! अच्छा तो फिर मैं नहीं खाऊँगा।

बिहारीलाल : नहीं, नहीं, मैं ठीक हूँ। तुम जाओ। ऐसे ही आज बार-बार उसकी याद हो उठती है।

मनोहर : तो आप अपने मन को सम्हालिए। अच्छा तो, मैं जाता हूँ। (फिर लौटकर) और हाँ, बाबू, जीवनी छपाने के लिए सौ रुपए की बात सोचिएगा।

बिहारीलाल : सोचना क्या है ! जैसा तू चाहेगा, कर दूँगा।

मनोहर : अच्छी बात है, तो फिर मैं जाता हूँ। (प्रस्थान)

[बिहारी कुछ क्षणों तक निश्चेष्ट बैठा रहता है। फिर कैलेण्डर की ओर देखता है। उदास स्वरों में फिर कहता है।]

बिहारीलाल : 31 दिसम्बर—शाम के पाँच बजे।

[फिर धीरे-धीरे चलकर टेबल के समीप की कुर्सी पर बैठता है। खुली हुई जीवनी के अन्तिम पृष्ठ पर उसकी दृष्टि पड़ती है। चश्मा ठीक कर गहरी दृष्टि से देखने लगता है।]

बिहारीलाल : यह सुदर्शन की जीवनी है—क्या होगा इस जीवनी का ? मुरझाये हुए फूल पर कौन आँसू बहाता है··· (ठहरकर) मनोहर ने अच्छा लिखा है—लालबहादुर शास्त्री का नाम ? यह भी लिखा है ? लालबहादुर शास्त्री कहते हैं—(पढ़ता है) 'हम शान्ति चाहते हैं, मित्रता चाहते हैं। लेकिन अगर कोई हमारे देश की एक इंच भूमि भी हमसे लेना चाहेगा तो हम युद्ध में पीछे नहीं हटेंगे। हमारे जवान बाजुओं में ऐसी ताकत रखते हैं कि वे दुश्मनों के दाँत खट्टे कर देंगे—और हमारे जवान ही सैनिक नहीं हैं, वे लोग भी सैनिक हैं जो अपने-अपने क्षेत्रों में ईमानदारी से काम करते हैं।' (सोचता हुआ) ईमानदारी से काम ? मैं सेठ की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बही—सेठ की बही—ईमानदारी से लिखता हूँ ? अपनी जिन्दगी चलाने के लिए ये सौ रुपए ईमानदारी के हैं ? (सोचता है) ईमानदारी के हैं ?

[नेपथ्य से किसी स्त्री के सिसकने की आवाज। उसे धैर्य देती हुई एक वृद्धा के शब्द।]

नसीबन् : अब न रोओ, वेटी ! जो कुछ होना था, सो तो हो गया ! (पुकारकर) अरे, बाबू विहारीलाल !

विहारीलाल : कौन, नसीबन् बुआ ! क्या है ? यह कौन है जो फूट-फूटकर रो रही है ?

[युवती के अधिक सिसकने की आवाज।]

नसीबन् : न रोओ बेटी ! कब तक रोती रहोगी ? अब रहमान बेटा तो तुझे चुपाने के लिए आने से रहा। वह तो बहादुरी से लड़कर खुदा को प्यारा हो गया ! वह तो दस सिपाहियों को मार कर मरा होगा।

विहारीलाल : (धीरे-धीरे मन ही मन) दस सिपाहियों को मारकर ? क्या इसका बेटा भी इसे छोड़ गया ? (नसीबन् से) बुआ ! यह कौन है ?

नसीबन् : अरे, तुम्हारे गाँव की ही तो लड़की है, सकीना ! तुम्हारे बाबू परमानन्द की गोद में खेली है।

विहारीलाल : अरे, वो सकीना ? बहन, तुम हो ! तुम्हें क्या हुआ ?

सकीना : (सिसकियाँ लेकर) तुम्हारा रहमान ! तुम्हें छोड़ गया, भैया (फिर सिसकियाँ लेती है।)

नसीबन् : अरे, वहाँ गया था, लड़ाई पर—वहाँ—अच्छा-सा नाम है—नेफा। चीनियों ने हमला किया था न ? ये उस वक्त वहीं था। उसने ऐसी बहादुरी से लड़ाई की कि चीनियों से भागते ही बना। लेकिन भागते हुए कमबख्तों की बन्दूक से जाने कैसी एक गोली छूट गई कि वो बेचारे रहमान के सीने में लगी। बेचारा वहीं लेट रहा।

सकीना : मेरा बेटा खुदा की कसम खाकर गया था कि वह दुश्मनों को नेस्त-नाबूद कर मेरे कदमों में सिर झुकायेगा। उसने दुश्मनों को तो नेस्त-नाबूद कर दिया, लेकिन वह मेरे कदमों में सिर झुकाने के लिए नहीं आया। मैं इन्तजार करती रही, वह तो नहीं आया। उसकी मौत की खबर···

विहारीलाल : (शून्य स्वर से) उसने देश के चरणों में सिर झुका दिया, बहन !

सकीना : दुश्मनों को मारकर न जाने कितने जवान लौट आए। उनमें अगर रहमान भी होता तो खुदा की कुदरत में कौन बात बिगड़ जाती।

विहारीलाल : (शून्य दृष्टि से देखते हुए) सुदर्शन भी नहीं आया !

नसीबन् : (आश्चर्य से) हाय ! बेटा सुदर्शन भी वहीं का हो गया ?

विहारीलाल : तुम्हें खबर नहीं है बुआ ? देश के हजारों शहीदों में सुदर्शन ने भी नाम लिखा लिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नसीबन् : तो सुदर्शन और रहमान—दोनों ही चले गए ? हमारे गाँव के दो जवान।

बिहारीलाल : हमारे सैकड़ों गाँवों के न जाने कितने जवान चले गए। सुदर्शन पिछले वर्ष इसी 31 तारीख को चला गया। आज ही के दिन।

सकीना : तुम्हें कैसे धीरज दूँ, भैया !

बिहारीलाल : अब किसी को धीरज देने की बात नहीं रह गयी, बहन ! हमारे जवानों ने इतिहास में अपने देश का नाम अमर कर दिया। सोचता हूँ, जैसे मेरा सुदर्शन गया वैसे ही तुम्हारा रहमान और न जाने कितने माता-पिताओं के कितने सुदर्शन और रहमान चले गए। सबने देश की बलि-वेदी सजाई है। सब माता-पिताओं को तो प्रसन्न होना चाहिए कि उनके पुत्रों ने देश के संकट में देश का साथ दिया। अपने आँसू पोंछ डालो, बहन !

सकीना : भैया ! मुझे तो अब सुदर्शन का ज्यादा दुःख हो गया।

बिहारीलाल : और अगर मैं यह कहूँ कि मुझे रहमान का अधिक दुःख हो गया तो तुम मुझ पर भरोसा करोगी ?

नसीबन् : दोनों को दोनों पर भरोसा है, बेटा ! लड़ाई में तो यह सब होता ही है। बाप-दादों के जमाने से लड़ाई चलती आ रही है। कोई लड़ाई में मर जाता था तो उसके नाम पर फूल बरसाये जाते थे। माँ कहती थी—बेटा, मेरे दूध को मत लजाना। मरना या मारकर आना। तो जैसा तब, वैसा अब ! है न, सकीना बेटी ?

सकीना : (धैर्य से) बुआ, तुम सच कहती हो।

नसीबन् : तो अब तुम्हारे जी को ढारस आ गया। मैं चलूं। (चलने को उद्यत होती है। फिर लौटकर) हाँ बेटा बिहारीलाल, एक बात और है—जब तक रहमान मोर्चे पर था तब तक हर महीने बेटी सकीना के लिए खर्चा आता था। अब क्या होगा ? इसके तो कोई है भी नहीं। जिन्दगी कैसे कटेगी—इस पर भी सोचना।

बिहारीलाल : ऐसा हाल तो बहुतों का है, बुआ ! लेकिन क्या सकीना बहन का कोई नहीं है ?

नसीबन् : तुम तो जानते हो, बेटा ! माँ-बाप का साया बहुत पहले ही उठ गया। ससुराल में भी कोई नहीं है। रहमान के अब्बा रहमान के होने के दूसरे साल ही चले गए। जितना पैसा वो छोड़ गए थे, वो रहमान के पढ़ने-पढ़ाने में खर्च हो गया। मलेटरी में रहमान की नौकरी लगी तो कुछ पैसा पास आया। अब वो भी खतम ! बेटा, क्या सोच रहे हो ?

बिहारीलाल : कुछ नहीं, बुआ !

नसीबन् : तो अब सकीना बेटी को तो सब तरह से मुसीबतों ने घेर लिया।

सकीना : मुझे अपनी मुसीबतों में रहने दो, बुआ ! मेरी बदकिस्मती का काला साया मुझ तक ही रहे—किसी को मेरे गुनाहों की सजा क्यों सहनी पड़े ? (सिसकी)

बिहारीलाल : नहीं, बहन ! जब तक मैं जिन्दा हूँ तब तक तुम्हें मुसीबत क्यों हो ? हम दोनों एक ही तरह के गुनहगार हैं। या कहो—एक ही तरह के खुद-किस्मत हैं कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे वेटों ने दिलेरी से देश की रक्षा की। तो तुम एक काम करो ! गाँव में कोई रोजगार करो ।

सकीना : रोजगार के लिए मेरे पास पैसे कहाँ हैं, भैया !

बिहारीलाल : मैं वतलाता हूँ। मेरे पास कुछ पैसे हैं। सौ रुपए। उनसे तुम दो चरखे और रुई खरीदो और दिन-भर सूत कातकर शाम को कपड़े बुननेवालों के हाथ वेच दो। गांधीजी हर असहाय स्त्री के लिए यही काम कराना चाहते थे।

सकीना : भैया, वेटे की याद करती जाऊँगी और सूत कातती जाऊँगी।

बिहारीलाल : और इस तरह तुम इतना लम्बा सूत कात लोगी कि शायद वह वहिश्त में वेटे रहमान के पास तक पहुँच जाए।

नसीबन् : वाह वेटे ! खुदा तुम्हें लाख बरस की उमर दे। तुमने अपने गाँव की वहन के लिए भाई का असली फर्ज निभाया।

बिहारीलाल : यह कुछ नहीं, बुआ ! ईश्वर इसीलिए तो पैसा देता है कि वह जरूरत-मन्दों के काम आए। अच्छा रुको, मैं आया। (प्रस्थान)

नसीबन् : खुदा का लाख-लाख शुक्र है कि उसने ऐसे इन्सानों को पैदा किया जो फरिश्ते वनकर वन्दों की मदद करते हैं।

सकीना : बुआ, मैं किस मुँह से भाई विहारीलाल की तारीफ करूँ कि वो सुदर्शन को खोकर रहमान की माँ के दुख में साथ दे रहे हैं ! बुआ, यह वतलाओ कि मैं यह रुपया लूँ या न लूँ ?

नसीबन् : जिस हालत में तुम हो, वेटी, उस हालत में ले लेने के सिवाय और चारा ही क्या ?

सकीना : लेकिन बुआ ! मैं एक ही शर्त पर ले सकती हूँ कि सूत कातकर जो पैसा इकट्ठा करूँ, पहले मैं भाई विहारीलाल का कर्ज अदा करूँ।

नसीवन् : खुश रहो, बेटी ! रहमान की माँ को ऐसा ही सोचना चाहिए ! लेकिन अभी विहारीलाल से यह सब कहने की जरूरत नहीं है, नहीं तो वे सभझेंगे कि वहन ने भाई के रिश्ते को भी रोजगार समझ लिया।

सकीना : अच्छी वात है। नहीं कहूँगी।

[विहारीलाल का प्रवेश।]

बिहारीलाल : यह लो वहन ! ये दस-दस रुपए के दस नोट हैं। गांधी मन्दिर से दो चरखे और रुई खरीद लेना। अगर और रुपयों की जरूरत हो तो मुझे खबर देना।

सकीना : भाई का यह उपकार वहन हमेशा-हमेशा अपने सिर-आँखों पर रखेगी। (रुपये ले लेती है।)

नसीबन् : तुम्हारे धरम से ही यह दुनिया टिकी है, वेटा ! तुम इन्सान नहीं, देवता हो, विहारीलाल !

बिहारीलाल : बुआ ! तुम समय-समय पर बहन सकीना की खवर देती रहना।

नसीबन् : खुश रहो ! अच्छा अब हम लोग चलेंगे, वेटा !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहारीलाल : अच्छी बात है ! नमस्ते !

सकीना : नमस्ते !

नसीबन् : नमस्ते !

नसीबन् : नमस्ते ! मुझ कमवख्त से कहते ही नहीं बनता ! बेटा, खुश रहो । (प्रस्थान)

बिहारीलाल : (थोड़ी देर तक सोचता है। फिर अपने आप) रहमान भी सुदर्शन के साथ चला गया । उसकी माँ—सकीना—अब चरखा चलाएगी और सूत कातेगी। ईश्वर करे, यह सूत बिछुड़े हुओं को एक-दूसरे से जोड़ दे ।

[बाहर से आवाज : यह मकान बिहारीलाल जी का है ?]

बिहारीलाल : (जोर से) कौन साहब हैं ?

[बाहर से ही : मैं हवालदार दिनेशसिंह हूँ ।]

बिहारीलाल : भीतर आइए ।

[हवलदार दिनेशसिंह का फौजी कदमों से प्रवेश—उसके साथ नर्स है ।]

दिनेशसिंह : (सलाम करते हुए) जयहिन्द !

बिहारीलाल : जयहिन्द ! कहिए, कैसे कष्ट किया ?

दिनेशसिंह : जी, आप सुदर्शन के पिताजी हैं ?

बिहारीलाल : जी, मैं सुदर्शन का पिता बिहारीलाल हूँ। आप बैठिए। (नर्स की ओर संकेत करते हुए) आप कौन हैं ?

नर्स : जी, मैं पटेल हास्पिटल की नर्स हूँ । मेरा नाम शीला है ।

बिहारीलाल : नमस्ते । आप इधर बैठ जाइए ।

दिनेशसिंह : बिहारीलालजी ! नेफा के मोर्चे पर हवलदार सुदर्शन ने जो काम कर दिखाया है उसके लिए मैं आपको बधाई देने आया हूँ । सरकार की तरफ से हवलदार सुदर्शन के लिए इनाम का ऐलान हुआ है। हम लोग नेफा की पहाड़ी के नीचे थे। चीनियों ने रात में ही गोलाबारी शुरू कर दी थी, लेकिन हम लोगों ने बड़ी सावधानी और चालाकी से काम किया था : एक जगह मोर्चा बनाकर दिनभर चहल-पहल रखी, लेकिन अँधेरा होने पर हवलदार सुदर्शन ने बड़ी बुद्धिमानी से उस मोर्चे से हटकर दूसरे स्थान पर मोर्चा बना लिया। चीनी सिपाही समझते रहे कि हम लोग पहले वाले मोर्चे में ही हैं। वे अँधेरे में वहीं गोलाबारी करते रहे और हम लोग उनकी बेवकूफी पर हँसते रहे ।

बिहारीलाल : यह सूझ सुदर्शन ने की थी ?

दिनेशसिंह : जी हाँ, सुदर्शन ने ही यह चाल सुझायी थी। सुबह तक गोलाबारी होती रही। चीनी समझते थे कि उन्होंने हमारा मोर्चा तोड़ दिया, लेकिन हम लोगों ने पौ फटते ही दूसरी ओर से हमला बोल दिया ।

बिहारीलाल : शाबाश !

दिनेशसिंह : बर्फ बहुत जमी थी। सुदर्शन ने यह किया कि रस्सी के सहारे एक छोटी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहाड़ी पर चढ़कर एक बूढ़े हुए चीनी सिपाही को गोली मार दी। वह गिरा तो उन्होंने उसकी पोशाक पहन ली और आगे बढ़कर बायीं ओर से मशीनगन की ऐसी मार दी कि चीनी घबरा गए और मोर्चा छोड़कर भाग गए। भागते हुए एक चीनी सिपाही ने ऐसा हथगोला फेंका जिससे सुदर्शन का मुँह बुरी तरह झुलस गया और दाहिना हाथ उड़ गया।

बिहारीलाल : कितनी तकलीफ हुई होगी उसे !

दिनेशसिंह : लेकिन हवलदार सुदर्शन ने उसकी जरा भी परवा नहीं की और बायें हाथ से वे मशीनगन चलाते रहे जब तक कि चीनी मोर्चा बिलकुल साफ नहीं हो गया।

बिहारीलाल : धन्य है मेरा लाल ! फिर क्या हुआ ?

दिनेशसिंह : उसके बाद हवलदार सुदर्शन बेहोश हो गए। उन्हें हम लोग उठाकर हास्पिटल मे ले आए और शीलाजी ने उनकी मरहम-पट्टी की।

शीला : लेकिन हम लोग उन्हें बचा नहीं सके।

बिहारीलाल : अन्तिम समय मेरे बेटे ने कुछ कहा था ?

शीला : वे बहुत जख्मी हो गए थे। उन्हें दो दिनों बाद होश आया। होश आने पर उन्होंने बड़े कष्ट से एक ही बात पूछी—दुश्मनों के कितने सिपाही मारे गए ? हवलदार दिनेशसिंह जी पास ही खड़े थे। उन्होने कहा—बहादुर हवलदार ! तुमने सब सिपाही ही नहीं मारे दुश्मनों का मोर्चा भी नहस-नहस कर दिया। इस पर अपनी तकलीफों की परवा न करते हुए वे मुस्कराए और मुँह से निकल पड़ा—'जय जवान, जय किसान !'

बिहारीलाल : मैं धन्य हूँ। मेरे बेटे ने अपने को देश पर कुर्बान कर दिया।

शीला : उसके बाद वे दस घण्टे जिन्दा रहे। मैंने और अस्पताल की सिस्टर्स ने हर तरह से उनको बचाने की कोशिश की, लेकिन उन्हें बहुत गहरे जख्म लगे थे, वे किसी तरह भी नहीं बचाए जा सकते थे। अन्तिम समय में उन्होंने आपको प्रणाम कहा और यह अपना फौजी चिह्न देकर कहा कि पिताजी से कहना कि उनके बेटे ने अपना कर्त्तव्य पूरा किया।

बिहारीलाल : यह मेरे बेटे का स्मृति-चिह्न है, लाओ, मुझे दे दो। यही मेरे जीवन का सहारा रहेगा।

दिनेशसिंह : बिहारीलालजी, आप भाग्यशाली हैं कि आपने ऐसा पुत्र देश के सम्मान में समर्पित कर दिया।

बिहारीलाल : लेकिन यह सब सूचना मुझे इतने दिनों बाद क्यों दी जा रही है ? मैं अब तक नहीं जान सका था कि मेरे बेटे ने किस तरह युद्ध किया ?

दिनेशसिंह : युद्ध की सूचनाएँ गुप्त रखी जाती हैं, फिर मुझे खुद आपके पास आने का हुक्म हुआ था—मुझे छुट्टी नहीं मिल सकी, नर्स भी आना चाहती थी—उसके आने में भी कुछ कठिनाई हो रही थी।

शीला : मैं तो चाहती थी कि ऐसे बहादुर जवान के पिताजी के दर्शन करूँ और उनके अन्तिम शब्द आपसे कहूँ। किन्तु मोर्चे के अन्य जवानों की सेवा से जल्दी छुट्टी नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल सकी, क्षमा करें।

बिहारीलाल : आप सचमुच देश की भाग्यशालिनी पुत्री हैं जो घायल जवानों की सेवा करती हैं और उन्हें अन्तिम समय में शान्ति पहुँचाती हैं।

दिनेशसिंह : अच्छा, अब आज्ञा दीजिए। हवलदार सुदर्शन के परिवार के लिए सौ रुपया महीना पेंशन मंजूर हुई थी। उसके कागजात भी हमारे पास ठीक समय पर नहीं पहुँच सके। एक वर्ष की पेंशन बारह सौ रुपये आपकी सेवा में पेश करता हूँ।

बिहारीलाल : यह बतलाइए दिनेशसिंहजी, कि हमारे गाँव का एक जवान अब्दुल रहमान भी लड़ाई में मारा गया, उसके बारे में कुछ जानते हैं आप ?

दिनेशसिंह : क्या नाम ? अब्दुल रहमान ! हाँ, उसका नाम भी बहादुर जवानों की फेहरिस्त में है। उसने संगीनों की लड़ाई में करीब पचास चीनियों को जख्मी किया, आखिर एक संगीन की चोट, जो उसे पसली से लगी, वह खतरनाक सिद्ध हुई और वह वहीं गिर पड़ा।

बिहारीलाल : अस्पताल में उसका इलाज नहीं हुआ ?

दिनेशसिंह : हम उसे लड़ाई के मैदान में नहीं पा सके। मालूम हुआ हमारे जितने जवान घायल हुए थे, उन्हें दुश्मन उठा ले गए। हम नहीं जानते अब्दुल रहमान की देख-रेख किस तरह हुई होगी, लेकिन कुछ दिनों बाद उस लड़ाई में मरने वालों की फेहरिस्त में अब्दुल रहमान का नाम था।

बिहारीलाल : सरकार की तरफ से उसके परिवार वालों के लिए कुछ निर्णय नहीं हुआ ?

दिनेशसिंह : जरूर हुआ। उसके परिवार वालों के लिए पचास रुपये मासिक पेंशन मंजूर हुई है। उसकी कार्रवाई भी जल्दी होगी।

बिहारीलाल : मैं एक प्रार्थना करना चाहता हूँ।

दिनेशसिंह : कहिए।

बिहारीलाल : जैसी देर इस सौ रुपये की पेंशन में हुई, अगर वैसी ही देर पचास रुपये की पेंशन में हो तो सौ रुपये की पेंशन के पचास रुपये रहमान की माँ को दे दिए जाएँ।

दिनेशसिंह : (लज्जित होकर) ओः देखिए, आप व्यंग्य न करें। हम जल्दी से जल्दी वह पेंशन अब्दुल रहमान के घर पहुँचाएँगे।

बिहारीलाल : अब्दुल रहमान की माँ बहुत दुखी है और उसके जीवन का कोई सहारा नहीं है।

शीला : मैं उनसे भी भेंट करूँगी। उनके मकान का पता तो शायद हवलदार साहब के पास होगा।

दिनेशसिंह : हाँ, मेरे पास है। अच्छा, अब हम लोग चलेंगे।

बिहारीलाल : मेरी एक बात और सुनते जाइए हवलदार साहब !

दिनेशसिंह : कहिए !

बिहारीलाल : देखिए ! यह पेंशन मैं नहीं लूँगा। मेरे बेटे सुदर्शन ने अपने देश के लिए कुर्बानी की तो यह उसका धर्म था, कर्तव्य था जैसा उसने मरते समय कहा। मेरे

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए पेंशन लेने का अर्थ यह होगा कि मैंने अपने बेटे के बलिदान की कीमत ले ली। मैं यह कीमत नहीं चाहता। हर महीने यह पेंशन मुझे याद दिलाएगी कि मेरे बेटे का रक्त इन रुपयों में लिपटा हुआ है। मैं अपाहिज नहीं हूँ, अभी काम कर सकता हूँ, ईमानदारी से काम कर सकता हूँ। मेरा दूसरा बेटा भी नौकरी कर सकता है, फिर पेंशन की क्या जरूरत है ?

दिनेशसिंह : आप बहुत समझदार आदमी हैं बिहारीलालजी ! लेकिन सरकार ने तो आपके बेटे की बहादुरी का सम्मान करते हुए यह पेंशन मंजूर की है।

बिहारीलाल : मैं सरकार को धन्यवाद देता हूँ कि उसने मेरे बेटे की बहादुरी को समझा और उसका सम्मान किया, लेकिन पिता का हृदय इस सम्मान को सिर-माथे पर भी वापस करना चाहता है।

दिनेशसिंह : सरकार इसे क्या समझेगी, मैं कह नहीं सकता।

बिहारीलाल : तो ऐसा कीजिए हवलदार साहब, कि इस पेंशन के रुपयों से नेफा के अस्पताल में घायल हुए जवानों के लिए सुदर्शन के नाम से दो-एक कमरे बनवा दीजिए। हर महीने की पेंशन से काफी रुपये हो सकते हैं।

शीला : आपने मेरे मन की बात कही बाबूजी। इससे सुदर्शन जी का नाम भी अमर हो जाएगा।

दिनेशसिंह : हाँ, यह हो सकता है। अच्छा, मैं सरकार को इस सम्बन्ध में लिखूंगा।

बिहारीलाल : तो अभी ये रुपये ले जाइए।

दिनेशसिंह : ठीक है। सचमुच आप सुदर्शन के योग्य पिताजी हैं। मैं आपके प्रस्ताव को सरकार तक पहुँचाऊँगा और आपको सूचना दूँगा। अच्छा जय हिन्द !

शीला : जय हिन्द !

बिहारीलाल : जय हिन्द ! (सोचते हुए) बलिदान की पेंशन···रक्त और रुपया···देश-सेवा और पुरस्कार···यह नहीं होगा, यह नहीं होगा।

[मनोहर का प्रवेश।]

मनोहर : बाबू, कुछ देर लग गई। तरकारियाँ लेकर लौट रहा था कि प्रकाशक महोदय कमलेशजी मिल गए। उन्होंने कल से मुझे काम पर बुलाया है।···बाबू ! आप मेरी बात नहीं सुन रहे हैं ?

बिहारीलाल : (चौंककर) एँ, क्या कहा !

मनोहर : आप क्या सोच रहे हैं ? आप मेरी बात नहीं सुन रहे हैं ?

बिहारीलाल : सुन रहा हूँ···

मनोहर : तो आपको यह बात सुनकर खुशी नहीं हुई कि मेरी नौकरी लग गयी ?

बिहारीलाल (अन्यमनस्कता से) खुशी क्यों नहीं होगी ?

मनोहर : ठीक है, तो कमलेशजी ने मुझे कल ही काम पर बुलाया है। मैं ये तरकारियाँ उस कमरे में रख दूँ···

बिहारीलाल : रख दो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[मनोहर तरकारियाँ रखने जाता है।]

बिहारीलाल : सुदर्शन की बहादुरी पर सौ रुपये की पेंशन और मनोहर के परिश्रम पर तीस रुपये की नौकरी। जीवन में संघर्ष के मूल्यों में कितना अन्तर है ?

मनोहर : (नेपथ्य से बोलता हुआ आता है) तो बाबू ! मैंने उनसे सुदर्शन भैया की जीवनी के प्रकाशन की बात भी कही। उन्होंने कहा—उसमें तीन सौ रुपयों का खर्च है—भैया की जीवनी छोटी तो है ही···तो उन्होंने कहा—कि अगर तुम डेढ़ सौ रुपया मिला दो तो मैं अगले हफ्ते में ही उसे छाप दूंगा। मैंने कहा कि मेरे बाबू के पास सौ रुपये ही हैं। अगर सौ रुपये स्वीकार कर लें तो मैं कल ही सुबह आपको दे दूंगा (रुककर) आप चुप क्यों हैं बाबू ?

बिहारीलाल : जीवनी छापने में इतनी जल्दी क्यों है ? मुझे उससे अभी बहुत कुछ सीखना है।

मनोहर : तो मेरा लिखना सार्थक हुआ। तब तो उसे जल्द छपाना चाहिए। यह तो संयोग की बात है कि कमलेशजी ने अपने खर्च से उसे तुरन्त छापने की बात मान ली, नहीं तो अभी छपाने की बात ही नहीं थी। तो बाबू, कल आप मुझे सौ रुपये दे दें तो मैं उन्हें कमलेशजी को देकर रसीद ले लूं।

बिहारीलाल : सौ रुपये क्या, मैं तुझे बारह सौ रुपये दे सकता था, लेकिन मैंने बारह सौ रुपये भी स्वीकार नहीं किए।

मनोहर : बारह सौ ?

बिहारीलाल : हाँ, बारह सौ। अभी हवलदार दिनेशसिंह जी आए थे। उन्होंने सूचना दी कि सुदर्शन नेफा के मोर्चे पर बड़ी वीरता से लड़ा। उसने युद्ध के मैदान में इतनी सूझ-बूझ दिखलाई कि अकेले ही एक चीनी मोर्चे को तहस-नहस कर किया, लेकिन एक हथगोले से उसका मुंह झुलस गया और उसने अपने प्राण देश की बलिवेदी पर समर्पित कर दिए।

मनोहर : सुदर्शन भैया वीरता दिखलाने में सबसे आगे रहते थे, ऐसा उनका स्वभाव ही था।

बिहारीलाल : उसकी वीरता पर प्रसन्न होकर भारत सरकार ने उसके परिवार के लिए सौ रुपये मासिक पेंशन मंजूर की। एक वर्ष तक हम लोगों को इसकी खबर ही नहीं मिल सकी। अभी कुछ देर पहले हवलदार दिनेशसिंह यह सूचना लेकर आए थे।

मनोहर : हाँ, जब मैं बाजार से लौट रहा था तो अपने घर के पास ही वे दिखलाई दिए थे। उनके साथ एक स्त्री भी थी।

बिहारीलाल : वह नर्स थी जिसने घायल सुदर्शन की सेवा-सुश्रूषा की थी। बेचारी उन्हें नहीं बचा सकी। वह भी इसकी सूचना देने आयी थी।

मनोहर : बड़ी देर में उन्होंने यह सूचना दी !

बिहारीलाल : फौजी सूचनाएँ, कहते हैं, रुक-रुककर आती हैं। वे अपने साथ एक वर्ष की पेंशन बारह सौ रुपये लाए थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोहर : तो वे वही वारह सौ रुपये थे जो आपने स्वीकार नहीं किए ?

बिहारीलाल : मैंने कहा कि मैं सुदर्शन की वीरता रुपयों पर नहीं तौलना चाहता। मैंने उस पेंशन का सारा रुपया अस्पताल को दान दे दिया जिससे सुदर्शन की स्मृति में घायल सिपाहियों के लिए दो-चार कमरे बनवा दिए जाएँ।

मनोहर : वाबू वाह ! आपने वहुत अच्छा सोचा। यह कार्य तो उनकी जीवनी छापने से भी अधिक मूल्यवान है। भैया सुदर्शन की वीरता का इससे अच्छा और क्या स्मारक हो सकता है।

बिहारीलाल : लेकिन तूने जीवनी वहुत अच्छी लिखी है मनोहर ? तेरे जाने के वाद मैंने उसे पढ़ा तो श्री लालवहादुर शास्त्री के उत्तेजनापूर्ण शब्दों से मैं जैसे नींद से जाग उठा। उन्होंने उसे ही सैनिक नहीं कहा जो युद्धभूमि में लड़ता है, उसे भी सैनिक कहा है जो ईमानदारी से अपने क्षेत्र में कर्तव्य का पालन करता है। और इस तरह से हम लोग भी अपने-अपने क्षेत्र में सैनिक वन सकते हैं।

मनोहर : शास्त्रीजी की यह वात समस्त देश के लिए संजीवनी मन्त्र है।

बिहारीलाल : इसीलिए अव मैं किसी दान या पुरस्कार पर निर्भर नहीं रहना चाहता। मैं इस उमर में भी मेहनत करूँगा। मास्टर रहा हूँ, लड़की को पढ़ाऊँगा, उनका ट्यूशन करूँगा और इस प्रकार अपनी मेहनत से जो रुपया कमाऊँगा उससे तेरी लिखी हुई सुदर्शन की जीवनी प्रकाशित कराऊँगा···

मनोहर : बाबू ! आपने कितने उत्साह की बातें कहीं हैं। जव आप इस अवस्था में परिश्रम करेंगे तो मुझे तो और भी अधिक परीश्रम करना चाहिए और मैं आपको वचन देता हूँ कि मैं अपने क्षेत्र में इतना परिश्रम करूँगा कि लोग कहेंगे कि इसने सुदर्शन के योग्य भाई वनने का प्रमाण दिया है।

बिहारीलाल : तेरी यह बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ मनोहर ! जव तू इतना अधिक परिश्रम करेगा तो सुदर्शन की जीवनी और भी अच्छे ढंग से प्रकाशित होगी। अच्छा, अब तुम जाओ और भोजन की तैयारी करो।

मनोहर : अच्छी वात है। आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ बाबू ! अच्छा स्वादिष्ट भोजन तैयार करूँगा। मैं जाता हूँ।

बिहारीलाल : जाओ।

[मनोहर का प्रस्थान।]

[नेपथ्य से संपतलाल : अजी मास्टरजी ! थाने तो घणी देर कर दीनी।]

मनोहर : (प्रवेश कर) छा वजे आवणे की वात कह दीनी थी, गोपालजी की दया से, शो अव तक पधारणे की लीला नहीं भई। शेठजी, थारे आवणे की बाट अगोर रहे हैं, गोपालजी की दया से।

बिहारीलाल : आज से मैंने आपकी दुकान का काम छोड़ दिया, संपतलालजी ! सेठजी से मेरा नमस्कार कहिएगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपतलाल : अरे मास्टरजी ! नमस्कार तो श्रीगोपालजी के मन्दिर में शमर्पण होता है। शेठजी तो आपकी खातिर बहुत ही बेचैण हैं।

बिहारीलाल : उनसे कहिए कि वे अपनी बेचैनी गोपालजी के मन्दिर में समर्पण करें।

संपतलाल : अरे नहीं, बिहारीलालजी, कल इनकमटैक्स जी के निसपिट्टर साहब पधार रहे हैं। तिणके सौंही आपने जो हिशाब का रजट्टर बणाया है शो दिखलाया जाणे को है।

बिहारीलाल : मुझसे नकली रजिस्टर बनवाया गया था, उसके लिए मैं प्रायश्चित्त करूँगा।

संपतलाल : ये पायचित्त का होवै है बिहारीलालजी। उशके लिए कुछ पूजण-वूजण होवै हो, तो हुकुम फरमावो। पायचित्त भी कोई पूजण विधान दीखै है ? नहीं तो गोपालजी की दया शे आपके पायन पै चित्त तो लोटणा ही है।

बिहारीलाल : आप अपना समय नष्ट मत कीजिए—यहाँ से जाइए।

संपतलाल : गोपालजी की दया शे नाराजी-फाराजी दूर करौ बिहारीलालजी। शेठजी ने सौ रुपये नजर को दीने हैं शो गोपालजी की दया शे ग्रहण करौ और शेठजी कौ रजिट्टर···

बिहारीलाल : आप ले जाइए ये सौ रुपये···मुझे इनकी जरूरत नहीं है। चोरबाजारी और बेईमानी का रुपया मुझे नहीं चाहिए।

संपतलाल : चोरबाजारी तो आज का धरम है, गोपालजी की दया शे बिहारीलालजी !

बिहारीलाल : आप लोगों ने ही उसे धरम बनाया है।

संपतलाल : आज तो गोपालजी की दया शे आप कोपभवन में बिराजे हैं। अच्छा तो शेठजी शे क्या संदेसणा वहोण दूं ?

बिहारीलाल : कह दीजिए, आज से मैंने उनका काम छोड़ दिया।

संपतलाल : और ये सौ रुपये गोपालजी की दया शे ?

बिहारीलाल : यह उनके चोर-घर की तिजोरी में रख दीजिए।

संपतलाल : हे गोपालजी रच्छ्या करो। आज तुम्हारी माखनचोरी लीला को लोग बदनाम कर रहे हैं। उशको लोग चोरबाजारी लीला कहते हैं। बंशी के बजैया ! हम लोग तो तुम्हारी लीला के मुताबक ही काम करते हैं, गोपालजी की दया शे।

बिहारीलाल : अच्छा, अब आप जाइए।

संपतलाल : गोपालजी सदा सहाय रहें। (प्रस्थान)

बिहारीलाल : (पुकारकर) मनोहर !

[नेपथ्य से : आया बाबू !]

मनोहर : (प्रवेश कर) कहिए !

बिहारीलाल : मनोहर ! तुमने सुदर्शन की जीवनी में लालबहादुर शास्त्री की एक बात बहुत अच्छी लिखी है—"हमारे जवान ही सैनिक नहीं हैं, वे लोग भी सैनिक हैं जो अपने-अपने क्षेत्रों में ईमानदारी से काम करते हैं।" मेरा सुदर्शन जवान था और

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने अपने क्षेत्र में ईमानदारी से काम किया, लेकिन मैंने अपने क्षेत्र में ईमानदारी से काम नहीं किया, इसलिए आज से मैंने सेठ विरधीचन्द की नौकरी छोड़ दी।

मनोहर : नौकरी छोड़ दी ?

बिहारीलाल : हाँ, अभी मुनीम संपतलाल आया था, वह मुझे इनकमटैक्स इन्सपेक्टर के सामने गलत रजिस्टर रखवाने के सौ रुपये दे रहा था। मैंने उसे भी वापस कर दिया।

मनोहर : बाबू, फिर आप क्या करेंगे और सुदर्शन भैया की जीवनी कैसे छपेगी ?

बिहारीलाल : मैं ईमानदारी से लड़कों का ट्यूशन करूँगा और भूखा रहकर भी सुदर्शन की जीवनी छपाऊँगा। यदि उसकी मृत्यु का दिन कैलेण्डर का आखिरी पन्ना था तो आज मेरे कष्टपूर्ण जीवन के कैलेण्डर का आखिरी पन्ना है। लालबहादुर शास्त्री के वाक्यों ने मुझे नये जीवन का नया दिन दिया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजरानी सीता

पात्र-परिचय

स्त्री

राजरानी सीता : महाराज राम की पत्नी
मन्दोदरी : राजा रावण की पत्नी
विचित्रा, सौदामिनी, चित्रा, सुलेखा, त्रिजटा : राजा रावण की दासियाँ

पुरुष

हनुमान : महाराजा राम के दूत
रावण : लंका का अधिपति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान : अशोक वाटिका

[अशोक वृक्ष के नीचे महारानी सीता शोकमग्न मुद्रा में बैठी हैं। उनके समीप एक दासी (विचित्रा) बैठी है। नेपथ्य में शंख और घंटों की ध्वनि हो रही है। आज रावण ने एक बहुत बड़ा महोसत्सव भगवान शंकर के मंदिर में किया है। धीरे-धीरे यह ध्वनि क्षीण होती है और फिर सम्मिलित स्वर में सुनाई पड़ता है : महादेव शंकर की जय !···भगवान त्रिपुरारी की जय !···महाराजाधिराज रावण की जय !···यह ध्वनि धीरे-धीरे मंद होती हुई वायु में विलीन हो जाती है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे जयध्वनि करने वाले मंदिर से बाहर जा रहे हैं। जयध्वनि के वायु में विलीन होते-होते महारानी सीता के कंठ से एक गहरी सिसकी निकल पड़ती है।]

विचित्रा : महारानी, आज महादेव शंकर के मंदिर में महाराजाधिराज रावण ने दसवाँ उत्सव मनाया है। आपने राजाधिराज रावण की जय नहीं बोली ?

[महारानी सीता फिर सिसकी भरतौ हैं और सिसकी भरते हुए करुण शब्दों में कहती हैं—]

सीता : महा···राजाधिराज···राम की जय !

विचित्रा : महाराजाधिराज राम की जय !अब भी आपने महाराजाधिराज राम की जय कहना नहीं छोड़ा ? आज दस मास बीत गए। आपको पाने के लिए महाराज ने भगवान शंकर के मंदिर में दस उत्सव किए, आपने दस बार क्या, एक बार भी महाराज रावण की जय नहीं कही !

सीता : कपट मृग के पीछे महाराज श्री राम जिस प्रकार धनुष-बाण लेकर दौड़े थे— भौंहें कसी हुई थीं, नेत्र कुछ-कुछ लाल हो रहे थे, दृष्टि स्थिर थी, नीचे का होंठ दाँतों से दबा हुआ था, मुख पर कुछ पसीने के बिन्दु झलक रहे थे—ऐसे श्रीराम की शोभा की—ऐसे श्रीराम की जय ! एक बार नहीं, दस बार जय !

विचित्रा : आप जानती हैं, इस हठ का क्या परिणाम होगा ?

सीता : मैं उस परिणाम के लिए व्याकुल हूँ बहिन ! यदि शरीर से श्रीराम के दर्शन न कर सकूँ तो प्राण से ही उनके समीप पहुँच सकूँ ! महाराज श्रीराम से जाकर कौन कहे कि तुम अभी तक नहीं आए और सीता तुम्हारे विरह में···(सिसकियाँ)

[सौदामिनी, चित्रा और सुलेखा—तीन दासियों का प्रवेश।]

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

सौदामिनी : महारानी, महाराज रावण इधर ही आ रहे हैं। विचित्रा, तू बाहर जाकर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज का स्वागत कर।

विचित्रा : बहुत अच्छा। (प्रस्थान)

चित्रा : (महारानी सीता से) महारानी, आप सिसकियाँ क्यों भर रही हैं? आज तो उत्सव का दिन है। महाराजा रावण ने आज भगवान शंकर की पूजा कर स्वयं वेद-पाठ किया है।

सुलेखा : और पूजा करने से पूर्व महाराज ने आज्ञा की थी कि आज महारानी सीता का शृंगार हो।

सीता : जिसके हृदय में राम हैं, उसके शृंगार की आवश्यकता नहीं है।

सौदामिनी : राम का स्मरण करते हुए आप थकती नहीं? आज आप इस नाम को भूल जाएँ। इस समय महाराज रावण का नाम सबसे ऊँचा है। ओफ, आज महाराज की कितनी भव्य मूर्ति थी! मस्तक पर त्रिपुंड, भौंहों में कितनी कमनीयता, जैसे यज्ञ के कुएँ की काली रेखाएँ हों! नेत्र यज्ञ के धुएँ से कुछ-कुछ लाल थे। हाथ में चन्द्र-हास तलवार थी। क्यों चित्रा?

चित्रा : और जब उन्होंने चन्द्रहास से अपना मस्तक काट कर भगवान शंकर के सामने अर्पण किया तो उनके कटे हुए सिर के मुख पर कितनी मधुर मुस्कान थी!

सुलेखा : और चित्रा, कितने आश्चर्य से हम लोगों ने देखा कि कटे हुए मस्तक के नीचे से दूसरा सिर फिर से महाराज के गले पर सुसज्जित हो गया है, यह प्रताप भगवान शंकर का है। क्यों सौदामिनी?

सौदामिनी : महाराज की भक्ति का नहीं है? वे कितने बड़े भक्त हैं, यह तो सारा संसार जानता है। जब उन्होंने एक बार शंभु सहित सफेद कैलास पर्वत उठाया तो ऐसा मालूम हुआ जैसे आकाश रूपी नीले सरोवर में महाराज के हाथ रूपी कमल पर हंस शोभायमान हो रहा है। बिना ऊँची भक्ति के भला कोई भक्त भगवान शंभु को कैलास पर्वत सहित उठा सकता है?

चित्रा : यह तो महाराज का बल है, सौदामिनी, महाराज की शक्ति और शूरवीरता तो इतनी अधिक है कि जब उन्होंने अपने हाथ से अपना सिर काट कर अग्नि में होम किया तो ब्रह्मा के लिखे हुए मस्तक के लेख महाराज ने अपने नवीन मुख से पढ़े। उनमें लिखा हुआ था कि तुम्हारी मृत्यु नर के हाथों से होगी। महाराज अट्टहास कर हँस पड़े। कहने लगे—बूढ़े ब्रह्मा की बुद्धि भी भ्रष्ट हो गई है। जब शक्तिशाली देवता भी मेरे वश में हैं तो नर की शक्ति ही कितनी कि वह मेरे सामने खड़ा हो सके?

सौदामिनी : महारानी सीता, ऐसे शक्तिशाली महाराज की बात स्वीकार करने में तुम्हें संकोच है?

सीता : बड़े से बड़ा जुगनू भी चन्द्रमा की समानता नहीं कर सकता! (तीव्र स्वर में) मैं महाराज राम के अतिरिक्त किसी का नाम नहीं सुनना चाहती।

सुलेखा : महारानी, सावधान! ऐसा हठ मैंने जीवन में पहली बार देखा। देव-कन्या, यक्ष-कन्या, गंधर्व-कन्या, नर-कन्या, नाग-कन्या ऐसी कितनी ही सुंदरियों ने महाराज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाहु-बल पर मोहित होकर आत्म-समर्पण कर दिया, किन्तु आपने···

सीता : (सोचते हुए धीरे-धीरे) इनमें कोई विदेह-कन्या नहीं रही ?

[नेपथ्य में महाराज रावण की जय का घोष ।]

सुलेखा : महारानी सीता, महाराज की आज्ञानुसार आज अपना शृंगार करें। महाराज आने ही वाले हैं।

सीता : क्या महारानी मन्दोदरी के शृंगार से तुम्हारे महाराज रावण को संतोष नहीं हुआ ? अपनी महारानी के शृंगार को छोड़ कर जो दृष्टि पर-नारी के शृंगार की ओर जाती है, वह दृष्टि तुम्हारे महाराज ने आग में होम नहीं की ? (करुण स्वर में) बेचारी मन्दोदरी !

[नेपथ्य में फिर महाराजाधिराज रावण की जय। रावण के साथ महादेवी मन्दोदरी और दासी त्रिजटा आती हैं। रावण का प्रवेश करते ही अट्टहास ।]

सौदामिनी : राजाधिराज और महादेवी की सेवा में प्रणाम स्वीकृत हो।

चित्रा : राजाधिराज और महादेवी की सेवा में प्रणाम स्वीकृत हो ।

सुलेखा : राजाधिराज और महादेवी की सेवा में प्रणाम स्वीकृत हो ।

रावण : राजाधिराज की सेवा में तुम्हारा अनुराग रहे। संवत्सरों तक तुम राजाधिराज और महादेवी की सेवा करती रहो। तुम्हारी महारानी सीता का शृंगार हुआ ? (देखकर) नहीं हुआ ! सौदामिनी, यह शृंगार क्यों नहीं हुआ ? चित्रा, तुमने महारानी को सुसज्जित क्यों नहीं किया ? सुलेखा, तुमने पुष्प की मालाओं और मोतियों से महारानी के केश क्यों नहीं सजाए ?

सौदामिनी : (नम्रता से) महारानी की इच्छा नहीं थी।

रावण : (दुहराते हुए) महारानी की इच्छा नहीं थी। (सोचकर) हाँ, महारानी की इच्छा सर्वोपरि है। त्रैलोक्य-सुंदरी महारानी सीता की इच्छा का आदर होना चाहिए। अच्छा, जाओ। तुम लोग महारानी सीता को प्रणाम कर यहाँ से जाओ।

तीनों : (सम्मिलित स्वर में) महारानी सीता को प्रणाम।

[सीता कुछ उत्तर नहीं देतीं, दासियों का प्रस्थान।]

रावण : प्रणाम का कुछ उत्तर नहीं दिया महारानी सीता ने ! (अट्टहास) ठीक है। कहाँ त्रैलोक्य की शोभा का शृंगार और कहाँ तुच्छ दासियाँ ! दासियों के प्रणाम का उत्तर भी कैसे हो सकता है ? हाँ, अगर महादेवी मन्दोदरी प्रणाम करें तो संभवतः उत्तर मिले। (मन्दोदरी की ओर देखकर) महादेवी मन्दोदरी !

मन्दोदरी : महारानी सीता को मन्दोदरी का प्रणाम।

सीता : प्रभु राम अनाथों पर कृपा करें।

[रावण मुक्त अट्टहास करता है।]

रावण : यह निष्ठा देखी, महादेवी मन्दोदरी ! एक तपस्वी के प्रति यह निष्ठा ! संसार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में किसी नारी के पास ऐसी निष्ठा नहीं। मैं इसी निष्ठा से प्रभावित हूँ महारानी सीता! किन्तु यह निष्ठा शृंगार के साथ नहीं है। आज तो शृंगार होना चाहिए था। आज के पुण्य पर्व में देवाधिदेव शंकर स्वयं आए थे। महादेवी मन्दोदरी, तुमने भगवान शंकर की छवि देखी थी?

मन्दोदरी : मैं तो आपकी और भगवान शंकर की छवि में कुछ देर तक अंतर भी नहीं देख सकी। यदि उनके हाथ में त्रिशूल और आपके हाथ में चन्द्रहास न होता तो दोनों का स्वरूप एक ही था।

[रावण फिर अट्टहास करता है।]

रावण : ठीक है, भक्त और भगवान में एकरूपता तो होनी ही चाहिए। किन्तु आज उनकी मुद्रा कुछ उदास थी। संभवत: इसलिए कि महारानी ने शृंगार नहीं किया। (सीता जी से) महारानी, आपकी मलीनता का क्षोभ देवाधिदेव शंकर को भी होता है। आपको आज शृंगार करना चाहिए।

[सीता सिसकियाँ भरती हैं।]

रावण : ये आँसू···! ये आँसू! ये तो आपके सौन्दर्य के अनुरूप नहीं हैं, महारानी सीता! और आपके सिर पर केशों की एक ही वेणी, यह मैली साड़ी, ये भूमि पर गड़े हुए नेत्र, यह उदासी! जैसे चन्द्र के साथ अन्धकार हो। क्यों महादेवी! चन्द्र के साथ अन्धकार कैसे निवास करता है?

मन्दोदरी : चन्द्र के साथ नहीं, चन्द्र के भीतर अंधकार निवास करता है, महाराज!

रावण : वह अंधकार नहीं है, महादेवी! वह तो मेरा आतंक है जो चन्द्रमा सदैव अपने हृदय पर लिए फिरता है। संसार के लोग उसे कलंक कहते हैं। किन्तु वह चन्द्र के हृदय में राजाधिराज रावण का भय है, आतंक है। पर इस समय जाने दो इन बातों को। मुझे तो इन नेत्रों से त्रैलोक्य के सौंदर्य को देखना है, महारानी सीता! (सीता मौन रहती हैं) आज सौंदर्य में वाणी नहीं है, पुष्प में सुगंधि नहीं है, चन्द्रमा में किरण नहीं है। मैंने सारे भूमंडल का पर्यटन किया, स्वर्ग के देवताओं को जीता, पातालपुरी के नागों को अधीन किया, किन्तु ऐसा दिव्य सौंदर्य कहीं नहीं देखा! अभी तक मैं समझता था कि मेरी महादेवी ही सौंदर्य की स्वामिनी हैं, किन्तु आज···

मन्दोदरी : महाराज, आप मुझे व्यर्थ आदर दे रहे हैं।

रावण : तब महादेवी, तुम भी यह स्वीकार करती हो कि महारानी सीता तुमसे अधिक सुंदरी हैं?

मन्दोदरी : मैं इसे स्वीकार करती हूँ, महाराज!

रावण : तब तो महादेवी, तुम्हें महारानी सीता की सेवा करनी चाहिए। (सीता से) सुनिए महारानी सीता! यदि आप एक बार भी मुझ पर कृपालु हो जावें तो मैं महादेवी मंदोदरी से लेकर सभी रानियों को आपकी अनुचरी बना दूंगा। बोलिए,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप महादेवी मन्दोदरी की सेवा स्वीकार करेंगी ?

सीता : महादेवी मन्दोदरी, मैं आपसे केवल एक तृण चाहती हूँ।

रावण : तृण ! केवल तृण ? क्यों ? किसलिए ? महादेवी, इन्हें एक सोने का तृण लाकर दो। महारानी उससे अपनी स्वीकृति लिखेंगी। साथ ही काले पत्थर की एक कसौटी भी। कसौटी पर वह स्वर्ण-रेखा जैसे अन्धकार पर सूर्य की किरण के समान होगी। वही महारानी की कृपा की स्वीकृति होगी !

सीता : नहीं महाराज, मैं केवल भूमि का तृण चाहती हूँ।

रावण : वह किसलिए ?

मन्दोदरी : मैं जानती हूँ महाराज, किसलिए ? क्या महारानी सीता की इच्छा पूरी की जाय ?

रावण : उनकी इच्छा सर्वोपरि है। तृण को वे मेरे सामने रख कर ही बातें करें। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं।

मन्दोदरी : (तृण तोड़ कर देती है) यह लीजिए।

सीता : (तृण लेते हुए) धन्यवाद, महादेवी !

रावण : महारानी, मैं अपने प्रस्ताव की स्वीकृति चाहता हूँ। मैं कब से महादेवी मन्दोदरी को आपकी सेवा में नियोजित कर दूँ ?

सीता : एक स्त्री का अपमान करने के बाद दूसरी स्त्री का अपमान करने का प्रस्ताव ! इस मूर्खता के संबंध में मैं क्या कहूँ ! क्या वेदों का पाठ करने वाले पंडित के ज्ञान की यह विडंबना नहीं है ?

रावण : महारानी सीता ! (तीव्र स्वर से) महाराज रावण का अपमान करने की शक्ति किसी में नहीं है।

सीता : किस रावण का अपमान ? उस रावण का जो प्रभु के दूर चले जाने पर सूने आश्रम से मुझे हरण कर लाया है ? उस रावण का जो संन्यासी का वेश रख कर आया और चोर बन कर गया ? उस रावण का जो भिक्षा माँग कर संसार के समस्त भिक्षुकों को लज्जित कर गया ? आज वही रावण अपने अपमान की बात कर रहा है ! उस रावण ने भिक्षुकों तक का अपमान किया है।

मन्दोदरी : महारानी सीता, शान्त हों !

रावण : महादेवी मन्दोदरी, तुम रावण को शान्त नहीं करती ? पिछले दस महीनों से वह तिल-तिल कर जल रहा है। उसने देवाधिदेव शंकर के दस महोत्सव किए हैं, दस बार प्रार्थनाएँ की हैं कि महारानी सीता मुझ पर अनुकूल हों, किन्तु न शंकर ने ही स्वीकृति दी और न महारानी सीता ने ही। मैंने दस महीनों से कुवेर की भेंट स्वीकार नहीं की, ब्रह्मा के कंठ से वेद-पाठ नहीं सुना, सूर्य को सभा में नहीं आने दिया, चन्द्रमा की अमृत वाणी नहीं सुनी, सारे वैभव छोड़ दिए ! एकमात्र इसलिए कि महारानी सीता एक बार कृपापूर्वक मेरी ओर मुख करें; किन्तु आज तक मैं इस सुख से वंचित रहा। मैं कितना अशान्त हूँ, यह अग्नि की लपटों से पूछो, लंका की सीमा पर गर्जना करते हुए सागर से पूछो ! इसे तुम नहीं जान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकतीं, महादेवी !

मन्दोदरी : जानती हूँ महाराज, किन्तु यदि आपकी इच्छा पर सारे वैभव आपको छोड़ दें, ब्रह्मा, कुवेर, सूर्य और चन्द्र आपके दर्शन का वरदान न पावें, तो इसमें उनका क्या दोष ? दोष तो आपकी इच्छा का है।

रावण : तुम भी सीता से सहानुभूति रखती हो महादेवी ? मेरे प्रताप की ओर से आँख वंद कर सीता को ही निर्भीक और निडर वनाती हो ?

सीता : महाराज राम के बल से कौन निर्भीक और निडर नहीं है ? उनके प्रताप के सामने तुम्हारा प्रताप क्या है ? क्या जुगनुओं का प्रकाश कभी सूर्य के प्रकाश की समानता कर सकता है और उस प्रकाश से क्या कभी कमलिनी खिल सकती है ? ऐसे व्यक्ति का प्रताप···

रावण : (अट्टहास करते हुए) मेरा प्रताप ! महारानी सीता ! जिसके पुत्र ने सुरेश्वर इन्द्र को जीत कर इन्द्रजीत का नाम और यश पाया है उसके प्रताप के संबंध में आपको शंका है ? महादेवी, समझाओ सीता को कि मैं क्या हूँ ! त्रैलोक्य में मेरी शक्ति से लड़ने का साहस किसमें हो सकता है ! जिसके हृदय में दंडी, मुंडी और जटाधारी ही निवास करते हैं उस निर्गुणी···

सीता : (बीच ही में) चुप रह दुष्ट ! क्या तुझे लज्जा नहीं आती कि मुझे एकान्त में पाकर हरण करता है और अपनी शक्ति का आडंबर मुझे दिखलाना चाहता है ? अन्यायी भी कहीं शक्तिशाली हो सकता है, पापी भी कहीं भक्त हो सकता है, कायर भी कहीं शूरवीर हो सकता है ? जिसने अपनी सारी लज्जा खो दी है वह अपने सम्मान की बात किस मुख से कह सकता है ? जिसके सामने संन्यासी, चोर, भिक्षुक और कायर में अंतर नहीं है, वह रावण···वह रावण प्रभु राम से···

रावण : (बीच में ही चिल्लाकर) सीता···

सीता : (मन्दोदरी से) महादेवी ! आज मुझे जीवन के अंतिम क्षण दीख रहे हैं। आप यहाँ से चली जाएँ तो अच्छा है।

मन्दोदरी : (रावण से) महाराज ! नारी पर बल-प्रयोग करना अन्याय है।

रावण : महादेवी, मैं तुमसे नीति की शिक्षा नहीं ले रहा हूँ। रावण भगवान शंकर को छोड़कर किसी को अपना गुरु नहीं मानता। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम यहाँ से जा सकती हो।

मन्दोदरी : मैं महाराज को अन्याय करने से रोकूँगी।

रावण : (तीव्रता से) मुझे न्याय या अन्याय करने से कौन रोक सकता है ?

सीता : भगवान राम के बाण ! जब वे तेरे सिरों को काट कर भगवान के निषंग में प्रवेश करेंगे तो महात्मा लक्ष्मण उनसे पूछेंगे कि अन्यायी के रक्त का स्वाद कैसा है, तब ये बाण···

रावण : (बीच ही में क्रोध से) बाण नहीं, यह कृपाण ! देखो, यह चन्द्रहास (तलवार निकालता है) मेरे अपमान करने वाले के शरीर में यही चन्द्रहास एक क्षण में चमक कर मेरे सम्मान का आदर्श त्रैलोक्य में स्थापित करता है ! यह चन्द्रहास !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखती हो ? इसने कितने अपराधियों के सिर काट कर सारे ब्रह्मांड में बिखरा दिए हैं । सिरों की तरह असंख्य तारों को बिखराकर दूज का चन्द्र चन्द्रहास का अभिनय करता है । देखो, इस तारों भरी रात को और इस चन्द्रहास को । मेरी भौंह के संकेत पर न चलनेवाले को चंद्रहास की धार पर चलना पड़ता है ।

सीता : (गहरी साँस लेकर) चन्द्रहास ! श्याम कमलों की माला के समान प्रभु की भुजा ! मेरे कंठ की यही शोभा है । या तो प्रभु की भुजा हो या यह चन्द्रहास हो । चन्द्रहास ! चन्द्र का शीतल हास ! प्रभु के विरह में उठी हुई ज्वाला को तू क्यों नहीं शान्त कर देता ? तेरी धार कितनी शीतल है, कितनी तीक्ष्ण है ! मेरे इस दुःख को दूर कर दे । तू अभी तक मृत्यु का दूत है, मेरे लिए जीवन का देवदूत बन जा !

रावण : (चिल्ला कर) तब तैयार हो ! चन्द्रहास ! तुझे भी ऐसा शरीर न मिला होगा । तैयार हो । वायु को काटता हुआ आकाश में चन्द्रमा की तरह उठ जा और उल्कापात की तरह इस शरीर पर गिर···

मन्दोदरी : (बीच में उठ कर और विह्वल होकर) महाराज, महाराज, यह नहीं हो सकता ! पुरुष नारी का इस प्रकार बध करे ! यह नहीं हो सकता ! यह अन्याय है ! यह नहीं हो सकता ! पहले मेरा बध कीजिए···मेरा बध···मेरा बध···

सीता : (दुःख से) महादेवी, यह क्या ?···

मन्दोदरी : (शीघ्रता से) नहीं, नहीं, महारानी सीता ! (रावण से) महाराज, पहले मेरा बध कीजिए । यह अन्याय मैं अपने सामने नहीं होने दूंगी । मैं आपको पाप में नहीं पड़ने दूंगी ।

रावण : (जोर से साँस लेता हुआ) अरे, यह क्या ? भगवान शंकर की भी स्वीकृति नहीं ! मेरा त्रिपुंड गीला हो गया । उस त्रिपुंड पर भगवान शंकर के आँसू गिर पड़े ! प्रभु, प्रभु···मेरे शत्रु पर तुम्हारी इतनी करुणा क्यों ? तुम्हारी इतनी अनुकंपा क्यों ? तुम कैसे मेरे भगवान हो ! भक्त की इच्छा के प्रतिकूल ? तुम्हारी तो कभी ऐसी बान नहीं थी ?···प्रभु शंकर ! मुझे बल दो कि मैं शत्रु से लड़ सकूं ! चन्द्रहास से न सही तो अपनी नीति से लड़ सकूं ! जिस प्रकार तुम मेरे सभी कार्यों में सहायक हो उसी प्रकार इस कार्य में क्यों नहीं होते ? लेकिन मैं लड़ूंगा । (प्रकट) महादेवी मन्दोदरी, तुम्हारे कहने से मैं इस मास भी सीता को छोड़ता हूँ । एक मास क्षमा की अवधि और रहेगी । मैं ग्यारहवाँ महोत्सव मनाऊँगा । ग्यारहों रुद्र उसके साक्षी होंगे और यदि उस उत्सव पर सीता ने मेरा कहना नहीं माना तो फिर यही चन्द्रहास !···यही चन्द्रहास होगा और उसके सामने होगी सीता··· सीता···यही सीता जो मेरे आराध्यदेव द्वारा भी बचाई जा रही है । कहाँ हो शंकर ? आज तुम्हारा भक्त अपमानित हो गया । (शीघ्रता से बाहर जाता है । बाहर जाते-जाते शब्द धीमे होते जाते हैं) इस अपमान का बदला···महाराजाधिराज रावण के अपमान···का···बदला···

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दोदरी : मैं भी जा रही हूँ, महारानी सीता ! पतिदेव रुष्ट हो गए। यह त्रिजटा दासी तुम्हारे समीप रहेगी।

[मन्दोदरी जाती है और सीता फिर एक बार सिसकी भरती हैं।]

सीता : (चिंतित स्वरों में) एक मास और···ग्यारहवाँ उत्सव···ग्यारह रुद्रों की साक्षी···क्यों नहीं आज ही उस दुष्ट ने मुझे इस विरह दुःख से मुक्त कर दिया ! एक मास और···कैसे सहूँ ! प्रभु के विरह में एक-एक दिन युग के समान बीत रहा है, उस पर अभी एक मास की लंबी अवधि और है। (सिसकी लेकर) प्रभु, अब मैं जीवित नहीं रहूँगी। मैं जीवित नहीं रहना चाहती। तुम्हारी होकर तुमसे इतनी दूर हूँ, एक-एक क्षण मुझे चन्द्रहास की धार से भी अधिक तीक्ष्ण ज्ञात होता है। हाय मेरा जीवन नष्ट क्यों नहीं हो जाता ? मेरे ही कारण मेरे प्रभु को व्यंग्य सुनने पड़ते हैं। मेरे ही कारण संसार दीख रहा है कि मैं प्रभु की हूँ और प्रभु अभी तक नहीं आए। मैं कितनी अभागिनी··· (सिसकियाँ)

त्रिजटा : महारानी, आप दुःख न करें। आपकी सेवा के लिए मैं तैयार हूँ। मैं त्रिजटा हूँ। आपकी आज्ञाकारिणी सेविका···

सीता : (विह्वल होकर) त्रिजटा, तुम मेरी सेवा करोगी तो यही सेवा करो कि लकड़ियाँ लाकर मेरे लिए चिता बना दो और उसमें आग लगा दो। अब प्रभु राम का यह विरह मुझे सहन नहीं होता। राम के विरह की ज्वाला से चिता की ज्वाला शीतल होगी। मैं कहाँ तक दुष्ट रावण के दुर्वचन सुनूँ ! मैं प्रभु राम के शत्रु को अपनी आँखों के सामने कैसे देखूँ ? मेरे प्रेम को सार्थक करो और मुझे चिता में जल जाने दो। मैं अपने हृदय की वेदना कैसे कहूँ ?

त्रिजटा : महारानी, आप इतनी दुखी क्यों होती हैं ? प्रभु राम आपका उद्धार अवश्य करेंगे।

सीता : (चौंक कर) क्या कहा ? फिर से कहो, देवी फिर से कहो—प्रभु राम···प्रभु राम···

त्रिजटा : हाँ-हाँ; प्रभु राम आपका उद्धार अवश्य करेंगे। आपने ही तो कहा था कि प्रभु राम के बाण···

सीता : (विह्वल होकर) हाँ, कहती जाओ, देवी, कहती जाओ···मैं प्रभु की बात सुनाना चाहती हूँ।

त्रिजटा : यही तो आपने कहा था कि भगवान राम के बाण जब रावण के सिरों को काट कर भगवान के निषंग में प्रवेश करेंगे तो महात्मा लक्ष्मण उनसे पूछेंगे कि अन्यायी के रक्त का स्वाद कैसा है ?

सीता : किन्तु यह कब होगा, देवी त्रिजटा ?

त्रिजटा : भगवान राम की कृपा होने में विलंब नहीं लगता।

सीता : सच है देवी, किन्तु यदि एक मास से अधिक विलंब हुआ तो दुष्ट रावण मुझे मार डालेगा और मैं प्रभु के दर्शन भी न कर पाऊँगी, इससे अच्छा तो यही है कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम मुझे अभी ही चिता में जल जाने दो।

त्रिजटा : यह संभव नहीं है महारानी, फिर रात आधी से अधिक व्यतीत हो गई है। अब किसके घर आग मिलेगी ? सभी लोग भोजन कर सो रहे होंगे।

सीता : (आह भर कर) आह, यह भी संभव नहीं। फिर सहूँ प्रति दिन की तीक्ष्ण बातें, रात-दिन, दिन-रात !

त्रिजटा : देवी सीता, आप धैर्य रक्खें ! मैंने एक स्वप्न देखा है कि आपका उद्धार होगा !

सीता : देवी, आपके वचनों से मुझे धैर्य मिलता है, क्योंकि आप भी प्रभु राम के चरणों में प्रेम रखती हैं।

त्रिजटा : मैं किस योग्य हूँ महारानी, कि प्रभु राम के चरणों में प्रेम कर सकूँ ! यदि मेरे सिर की जटाओं में आजन्म राम नाम की—नाम के अक्षरों की—र और म की रेखाएँ बनी रहें, तो इससे बड़ा सौभाग्य क्या होगा ?

सीता : मेरी विपत्ति की सहायिका देवी, तुम धन्य हो !

त्रिजटा : धन्य तो मैं तब होऊँगी जब महारानी, आपका उद्धार हो जाएगा और मुझे विश्वास है कि दुर्भाग्य के बादल प्रभु की कृपा की किरणों को नहीं रोक सकते।

सीता : तुम्हारा विश्वास अमर रहे !

त्रिजटा : अच्छा महारानी, अब आप विश्राम कीजिए। रात थोड़ी ही रह गई है। अब मैं जाऊँगी। आप सो जाइए।

सीता : मैं क्या सोऊँगी ! मेरी शैया पर तो दुर्भाग्य ने काँटे बिछा दिए हैं, किन्तु तुम जाओ, तुम सोओ।

त्रिजटा : प्रणाम करती हूँ, महारानी !

सीता : प्रभु राम अनाथों पर कृपा करें।

[त्रिजटा का प्रस्थान ।]

सीता : (गहरी साँस लेकर) यह सहायिका भी चली गई ! विधाता मेरे कितना प्रतिकूल है। माँगने से आग भी नहीं मिलती, जिससे मैं चिता में जल जाऊँ ! मेरे हृदय की आग ही बाहर निकल आए तो मैं अपने को धन्य समझूँ। मैं अपना शरीर जलाना चाहती हूँ, किन्तु मन ही जल कर रह जाता है। (कुछ देर ठहर कर) रात आधी से अधिक बीत चुकी है ! सब लोग सो रहे हैं। साँसों के आने-जाने का शब्द सुनाई पड़ रहा है।···मैं क्या करूँ। भगवान राम न जाने कहाँ होंगे। किस वृक्ष के नीचे बैठकर मेरे विरह में दुखी होते होंगे ! कंचन-मृग का चर्म लाने का आग्रह करने से पहले मैंने उन्हें माला गूँथ कर पहिनायी थी। वह इस समय भी उनके गले में पड़ी होगी, उसके फूल मेरी ही तरह मुरझा गए होंगे, किंतु वे फूल मुझसे अधिक भाग्यशाली हैं, क्योंक मुरझाने पर भी वे प्रभु राम के हृदय से लगे हुए हैं और मैं यहाँ मुरझाई हुई दुष्ट रावण की अशोकवाटिका में हूँ। (सिसकी भरती हैं) प्रभु राम मुझे क्षमा करो ! मैंने कंचन-मृग का चर्म ही क्यों माँगा ? तुमने मृग की ओर देखकर अपना परिकर बाँधा, हाथ में धनुष सँभाल कर तीक्ष्ण बाण की नोक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को गहरी दृष्टि से परखा। बाण की ओर देखते हुए तुमने लक्ष्मण को रक्षा का भार सौंपा और तीव्र गति से कंचन-मृग के पीछे दौड़ पड़े···संसार जिनके पीछे दौड़ता है, वे मेरे प्रभु कंचन-मृग के पीछे दौड़े···मेरे कारण···ओह प्रभु, तुम कैसे हो और मैं कैसी हूँ! आज मेरा कष्ट कंचन-मृग वन जाता और तुम उसके पीछे दौड़ते! यह कष्ट मैं कैसे सहूँ? लक्ष्मण, तुम्हारा कुछ दोष नहीं। तुम कुटी से चले गए। मुझे क्षमा करो। प्रभु को समझा दो कि सारा दोष सीता का है। इसीलिए आज मेरे समीप कोई नहीं है। (पेड़ के पत्तों के हिलने का शब्द) वायु बह कर निकल जाती है, एक क्षण रुक कर मेरा संदेसा प्रभु के पास नहीं ले जाती। आकाश में इतने अंगारे फैले हैं, इनमें से कोई भी तो नीचे गिर जाता! यह चन्द्रमा भी ज्वालाओं से जल रहा है। वह एक लपट नीचे की ओर फेंक दो तो मैं उस आग में जल जाऊँ? क्या मैं इतनी अभागिनी हूँ कि चन्द्रमा की एक लपट भी पाने की अधिकारिणी नहीं? वृक्ष अशोक, तुम्हीं मुझ पर दया करो। अपने नाम को सार्थक करते हुए मुझे भी अशोक बना दो। मेरा शोक दूर कर दो। तुम्हारे नये-नये पत्ते आग की तरह लाल हैं। इन्हीं से अग्नि-कण बरसा कर मेरे शरीर का अन्त कर दो। प्रभु राम! तुम्हारे विरह में जल कर भी आज मैं जीवित हूँ! मेरे जीवन को···धिक्कार···है···(सिसकियाँ)

[इसी समय श्री हनुमान जी अशोक वृक्ष से श्रीराम की मुद्रिका नीचे गिरा देते हैं। मुद्रिका गिरने के शब्द से सीता हठात् चौंक उठती हैं।]

सीता : यह कैसा शब्द? क्या आकाश से कोई तारा गिरा, या अशोक वृक्ष ने मेरे जलने के लिए अंगार डाल दिया है···(देख कर) वैसी ही तो कुछ चमक है। देखूँ, (चल कर मुद्रिका उठाती हैं) यह क्या? यह तो मुद्रिका है! यह मुद्रिका किसकी है···अरे, अरे, इस पर तो राम-नाम अंकित है! ओह, यह मुद्रिका तो प्रभु राम की है···! किन्तु यह यहाँ कैसे? यह यहाँ कैसे आई? इसे कौन लाया? यह तो श्रीराम के हाथों में मैंने पहनाई थी। उनसे कभी एक क्षण दूर नहीं हुई। फिर यह मुद्रिका यहाँ कैसे···? प्रभु राम, तुम कहाँ हो? किसी शत्रु ने तो···नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकता। भगवान् राम को कौन जीत सकता है? वे तो अजेय हैं, फिर यह मुद्रिका···मुझे छलने के लिए किसी ने माया से तो यह नहीं बना दी? किन्तु माया से, त्रिभुवन की माया से यह बनाई भी कैसे जा सकती है? नहीं, नहीं, यह मुद्रिका उन्हीं की है। मेरे प्रभु राम की है। मुद्रिके बोल, तू यहाँ कैसे आई? श्रीराम और लक्ष्मण कुशलपूर्वक तो हैं? तूने राम को कैसे छोड़ दिया? ओह, मेरे राम को सब छोड़ देते हैं! नगर से चलते समय नगर-लक्ष्मी ने उन्हें छोड़ दिया, वन के बीच में मैंने उन्हें छोड़ दिया! अब आज से नारियों पर कौन विश्वास करेगा? मेरे राम की मुद्रिका···

[सीता जी सिसकियाँ लेती हैं, इसी समय अशोक वृक्ष पर से श्री हनुमान के शब्द—]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमान : रघुकुल मणि रामचन्द्र, दशरथ सुत रामचन्द्र, सीतापति रामचन्द्र, वानर-प्रिय रामचन्द्र।

सीता : (आश्चर्य से चौंक कर) यह कौन ?

हनुमान : श्री रामचन्द्र के चरण स्पर्श से अहल्या पवित्र हो गई, श्री रामचन्द्र के हाथों से शिव-धनुष तिनके के समान टूट गया, श्री रामचन्द्र की कृपा से चित्रकूट भी साकेत बन गया, श्री रामचन्द्र की शक्ति से खर-दूषण का विनाश हुआ, श्री रामचन्द्र की भक्तवत्सलता से जटायु ने परम गति प्राप्त की, श्री रामचन्द्र के अनुग्रह से सुग्रीव ने अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त किया और श्री रामचन्द्र की कृपा से मुझे उनके चरणों की भक्ति ! (कंठ गद्गद हो जाता है।)

सीता : जिसने मेरे कानों में इस अमृतवाणी की वर्षा की है वह मेरे सामने प्रकट हो।

[अशोक वृक्ष से कूदकर श्री हनुमान प्रकट होते हैं और प्रणाम करते है, सीताजी आश्चर्यचकित हो मुख फेरकर बैठ जाती हैं।]

हनुमान : मातुश्री सीता ! मेरा सादर प्रणाम स्वीकार हो। मैं करुणानिधान श्रीराम की शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं श्रीराम का दूत हनुमान हूँ। आप मुझसे मुख फेर कर न बैठें। मैं पुत्र की भाँति आपके दर्शन करना चाहता हूँ, मैं ही यह मुद्रिका लाया हूँ। प्रभु राम ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है, आप मुझे श्रीराम-दूत मान लें, इसीलिए उन्होंने मुझे यह मुद्रिका देने की कृपा की।

सीता : नर और वानर का साथ कैसे संभव है ?

हनुमान : मातुश्री ! दुष्ट रावण ने जब आपका हरण किया तो आपने अपने कुछ वस्त्र और आभूषण नीचे फेंक दिए थे। वे वानरराज सुग्रीव को प्राप्त हुए। मैं वानरराज सुग्रीव का सहायक हूँ। जब लक्ष्मण सहित श्रीराम आपको खोजते हुए उस स्थान पर आए तो दोनों में मित्रता हुई। सुग्रीव की रक्षा के लिए श्रीराम ने उसके भाई, बालि का वध किया, फिर सुग्रीव की सहायता से श्रीराम ने आपकी खोज में असंख्य वानर भेजे। मैं ही इतना सौभाग्यशाली हूँ कि आज आपके चरणों के दर्शन कर रहा हूँ। मैं राम-दूत हनुमान हूँ, मातुश्री।

सीता : तुम्हारे वचनों पर मुझे विश्वास होता है। तुम मन, वचन और कर्म से प्रभु राम के दास हो। कहो, मेरे प्रभु राम कैसे हैं और वीर लक्ष्मण कैसे हैं ? मेरे प्रभु तो इतने कोमल हृदय वाले हैं, करुणासिंधु हैं, उन्होंने कैसे इतनी निष्ठुरता की कि अभी तक नहीं आए ? क्या कभी वे मेरा स्मरण करते हैं ? उन्होंने तो मुझे भुला ही दिया ! हाय, उन्होंने मुझे बिलकुल ही भुला दिया !

हनुमान : नहीं मातुश्री, वे आपको कभी नहीं भूल सके, वे तो आपका सदैव स्मरण करते हैं। वे सब तरह से कुशल हैं, यदि उन्हें दुःख है तो केवल आपका ही दुःख है। वीर लक्ष्मण भी सकुशल हैं। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। आपके प्रति प्रभु राम के हृदय में जो प्रेम है, उसकी थाह नहीं ली जा सकती !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीता : क्या कभी मेरे नेत्र उनके सुदर श्याम शरीर को देख कर शीतल होंगे ? ओह, मैं कितनी अभागिनी हूँ।

हनुमान : मातुश्री, प्रभु राम जिनका स्मरण करते रहते हैं, उनके लिए अभाग्य कैसा ? दुष्ट रावण का सिर काटने के लिए श्रीराम के तरकश में वाण कसकने लगे हैं। श्रीराम ने इस दिशा में प्रस्थान कर दिया है। शीघ्र ही यह दुःख का अंधकार दूर होगा। प्रभु राम की कृपा का सूर्य उदय हो चला है, आप कुछ दिन और धैर्य धारण करें, कपि-सेना के साथ श्रीराम यहाँ आएँगे और रावण को मार कर आपका उद्धार करेंगे।

सीता : (आनन्दविह्वल होकर) श्रीराम मेरा उद्धार करेंगे। मेरा उद्धार करेंगे ! ओह, आज मैं कितनी सुखी हूँ। प्रभु-राम, आज मैं तुम्हारे आने के समाचार से कितनी सुखी हूँ !

[इसी समय प्रभात का मंगल वाद्य वजता है जिससे समय की सूचना मिलती है।]

सीता : (प्रसन्नता से) प्रभात की इस मंगल वेला में, प्रभात की इस मंगल ध्वनि में, मेरी मंगल कामना सफल हो···! मेरे प्रभु राम की जय हो !

[मंगल वाद्य वजते-वजते वायु में लीन हो जाता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैमूर की हार

पात्र-परिचय

तैमूर
जफ़रअली : तैमूर का सरदार
अलीबेग, मुबारक : तैमूर के सिपाही
कल्याणी : एक ग्रामीण स्त्री
बलकरन : कल्याणी का पुत्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल : 1398   समय : प्रातःकाल 8 बजे
स्थान : दीपलपुर के समीप वन-प्रान्त में एक छोटा-सा गाँव ।

[मिट्टी का एक छोटा-सा घर। दाहिनी ओर एक दरवाजा है जिससे घर के भीतर प्रवेश किया जाता है । सामने की दीवार में एक खिड़की है। बायीं ओर के दरवाजे से अन्दर पहुँचते हैं जहाँ से तलघर की ओर मार्ग है। दूसरा मार्ग गुप्त रूप से बाहर की ओर जाता है । कमरे में हर्षवर्द्धन, विक्रमादित्य और पृथ्वीराज चौहान आदि की कुछ तसवीरें हैं। बायीं ओर के कोने में एक अँगीठी है जिस पर कुछ खाने की सामग्री पक रही है। उसके समीप ही कुछ बरतनों में खाने की चीजें और मिठाइयाँ सजी हुई हैं। कमरे के बीचो-बीच एक तख्त है जिस पर एक मोटी-सी दरी बिछी है। उसके समीप ही बैठने का एक मोढ़ा है ।

कल्याणी अँगीठी के पास बैठी हुई कोयले डालकर आग तेज कर रही है। साथ ही एक गीत गुनगुनाती जा रही है। उसका लड़का बलकरन तख्त पर बैठा हुआ एक पत्थर के टुकड़े पर अपना चाकू तेज कर रहा है ।]

कल्याणी : (गुनगुनाती हुई गाती है—)

अब मत जाना तुम दूर···दूर ।
उठ रही है पच्छिम में धूर,
उठ रही है पच्छिम में धूर,
आ गया तुरक···आ गया तुरक,
नशे में चूर—नशे में चूर···चूर
अब मत जाना तुम दूर···दूर !

बलकरन : (चाकू तेज करते हुए) यह तुम क्या गुनगुना रही हो, माँ ? इस पत्थर पर मेरा चाकू तेज नहीं हो रहा ।

कल्याणी : क्या तेरा चाकू भी मेरा गाना सुन रहा है ? (पास आकर मोढ़े पर बैठते हुए) पर आज चाकू तेज करने की तुझे क्या सूझी ! आज तो तेरी वर्षगाँठ है।

बलकरन : वर्षगाँठ ! मेरी वर्षगाँठ पर तो हथियारों की पूजा होनी चाहिए, माँ ! पूजा ! हाँ, तो माँ, क्या यह वर्षगाँठ वैसी ही होगी जैसे पार-साल हुई थी ? (चाकू रोक देता है।)

कल्याणी : हाँ, बिलकुल वैसी ही । इस वर्षगाँठ पर तू पूरे बारह वर्ष का हुआ। बेटा, मैं तो आशीर्वाद देती हूँ कि इसी तरह तेरी बहुत-सी वर्षगाँठें मनायी जाएँ। तू दिन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूना, रात चौगुना बढ़े ।

बलकरन : इसीलिए तू गाना गा रही थी ! (फिर चाकू तेज करता है) माँ ! कैसा है वह गाना ?

कल्याणी : यों ही बहुत पुराना गाना है ।

बलकरन : (रुककर) कितना पुराना ?

कल्याणी : बहुत पुराना । जब मैं तेरे बराबर थी, मेरी माँ गाया करती थी ।

बलकरन : तब माँ, मुझे भी सिखला दे यह गाना । जब मेरे बच्चे हो जाएँगे, तो मैं भी उनके सामने गाऊँगा ।

कल्याणी : (हँसकर) गायेगा ? वाह मेरे बलकरन ! भगवान् करे, तेरी बात सच निकले। पर, बच्चे ! यह गाना अच्छा नहीं है ।

बलकरन : वाह, जब तेरी हरएक बात अच्छी है तो गाना क्यों अच्छा नहीं होगा ?

कल्याणी : डर का गाना है । अब तो वह जमाना बीत गया । बहुत बरस हुए, एक तुरक आया था ।

बलकरन : तुरक कौन ?

कल्याणी : तुरक जो हमारा धरम नहीं मानता, कोई दूसरा धरम मानता है ! और वह तुरक ऐसा था जो लोगों का खून बहाता था, उन्हें लूटता था, उनका घर जला देता था ।

बलकरन : ये भी कोई धरम है, माँ ?

कल्याणी : हाँ, वह तुरक तो कहता था, हमारा वही धरम है । कहता था, जो हमारा धरम नहीं मानता, उसको मारने के लिए ही हमने जनम लिया है ।

बलकरन : अच्छा ! क्या नाम था उस तुरक का ?

कल्याणी : महमूद । कहते हैं, गजनी से आया था । उसने सोमनाथ का मन्दिर तोड़ा और बहुत-से आदमियों का खून बहाया । फिर बहुत-सा धन लेकर वह यहाँ से चला गया ।

बलकरन : माँ, अगर मैं उस जगह होता तो देखता ।

कल्याणी : तू ? तू देखता ? बेटा ! वह तुझे भी···

बलकरन : मुझे ? मुझे मारता ? और यह चाकू किस दिन काम आता ? इस चाकू से देख लेता ।

कल्याणी : अरे बेटा, उसके पास बड़ी-बड़ी तलवारें थीं । वह जिधर से निकल जाता आग और मौत बरसाता जाता था । इसीलिए महमूद का नाम लोगों ने डराने के लिए रख छोड़ा था ।

बलकरन : किसको डराने के लिए ?

कल्याणी : बच्चों को डराने के लिए । जब कोई बच्चा नटखटी होता था तो लोग कहते थे—'देखो, वह महमूद आ रहा है ! तुरक आ रहा है ।' तभी का तो यह गाना है । मेरी माँ भी कभी-कभी यही गाना गाती थी :

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब मत जाना तुम दूर···दूर।
उठ रही है पच्छिम में धूर !

तुरक पच्छिम से आया था न ? तो कहते हैं :

उठ रही है पच्छिम में धूर।

उसकी बड़ी सेना साथ आ रही थी, उसके चलने से रास्ते की धूर ऊपर उठने लगती थी :

आ गया तुरक—आ गया तुरक
नशे में चूर—नशे में चूर···चूर

लोगों का खून बहाना ही उसका नशा था, इसलिए माँ अपने बच्चे से कहती थी :

अब मत जाना तुम दूर···दूर···!

बलकरन : (सोचता हुआ) माँ, मैं यह गाना नहीं सीखूंगा। तू भी यह गाना मत गा।

कल्याणी : नहीं गाऊँगी, बेटा ! वह तो तेरी वर्षगाँठ के दिन मुझे बहुत-सी पुरानी बातें याद आ गयीं तो यह गाना भी याद आ गया, गुनगुनाने लगी।

बलकरन : नहीं माँ ! अब वह बात नहीं रही। मैं इस चाकू के साथ बड़े-बड़े हथियार लेकर बड़ी दूर जाऊँगा, और तुरक को देखूंगा कि वह कैसे अपने नशे में चूर रहता है।

कल्याणी : ठीक है, बेटा ! यह तो आगे की बातें हैं, जब तू बड़ा हो जाएगा। आज तो तेरी बारहवीं वर्षगाँठ ही है।

बलकरन : तो इससे क्या हुआ ? मैं तुरक से नहीं डरता। ये विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन और पृथ्वीराज चौहान के चित्र मुझ में उत्साह भरते हैं।

कल्याणी : ठीक है, बेटा ! ये चित्र ऐसे ही उत्साह भरने वाले हैं।

बलकरन : इसीलिए मैं तुरक से नहीं डरता।

कल्याणी : तेरे पिता भी नहीं डरते थे, बेटा ! आज वे होते ! (आँख में आँसू)

बलकरन : अरे, माँ ! तेरी आँखों में आँसू ? अच्छा मैं अब ऐसी बातें नहीं करूँगा। मुझे माफ कर दो ! मुझे माफ कर दो !

कल्याणी : बेटा ! तू तो मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारा है, तुझे माफ करने की बात ही क्या ! मैं तो गीत गाकर और तुझे देखकर ही सब कुछ भूलना चाहती थी।

बलकरन : तो सब कुछ भूल जाओ, माँ ! बतलाओ, आज वर्षगाँठ में क्या-क्या करोगी ?

कल्याणी : क्या करूँगी ? अपने प्यारे बेटे को नहलाऊँगी, चन्दन लगाऊँगी, फूलों की माला पहनाऊँगी ! फिर, आज मैंने तेरे लिए बहुत अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ बनायीं हैं। देख, उस कोने में रखी हुई हैं। मिठाइयों के साथ खीर खिलाऊँगी, तुझे असीस दूँगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलकरन : पर माँ, मेरे साथ तुझे भी खाना पड़ेगा। तुझे भी अपनी वर्षगाँठ आज ही मनानी पड़ेगी, अभी ही, मेरे साथ। मैं अकेले इतनी मिठाइयाँ नहीं खा सकता।

कल्याणी : तेरे खाने के बाद खा लूँगी। बस, दूध-भर आ जाए। खीर बनने में देर ही क्या लगती है। पानी उबल ही रहा है।

बलकरन : अभी दूध नहीं आया ?

कल्याणी : सूरज चढ़ आया, अभी तक सुजान दूध लाया ही नहीं। जाने क्यों नहीं लाया ?

बलकरन : मैं ले आऊँ ?

कल्याणी : सुजान आता होगा, बेटा ! तू कहाँ जाएगा ?

बलकरन : 'मत जाना तुम दूर···दूर' की बात तू सोच रही है। मैं तो बड़ी दूर जा सकता हूँ और फिर, सुजान का घर है ही कितनी दूर। रास्ते में जरा हटकर उत्तर की तरफ है न ? उस शीशम के पेड़ के नीचे ही तो उसकी झोंपड़ी है। मैं अभी ले आऊँगा। इसी गुप्त मार्ग से बाहर चला जाऊँगा।

कल्याणी : तू ऐसी बातें करता है तो जा ! पर जल्दी ही लौटना। आज तेरी वर्षगाँठ है।

बलकरन : मैं अभी लौटकर आया। (उठता है) मुझे एक बरतन दे दो। मैं अभी लाता हूँ। और···यह चाकू अब काफी तेज हो गया है, इसे मैं अपने पास रखूँगा।

कल्याणी : चाकू तेरे किस काम आएगा ? अच्छा, यह ले बरतन। (बरतन देती है) बेटा जल्दी ही लौटना !

बलकरन : अच्छा, माँ ! मैं अभी आया। (बायीं ओर के गुप्त मार्ग से प्रस्थान।)

कल्याणी : (बरतन ले जाने की दिशा में देखती हुई) मेरा भोला बच्चा ! बलकरन ! अभी से कैसी वीरता की बातें करता है ! (संतोष से) बलकरन···मेरा बेटा ! (अँगीठी के पास आकर आग ठीक करती है। फिर गुनगुनाती है) 'तुम मत जाना···' (सम्हलकर) नहीं···यह गाना अब नहीं गाऊँगी। बलकरन को अच्छा नहीं लगता। मेरा साहसी बच्चा !

[फिर आग ठीक करने लगती है। थोड़ी देर तक स्तब्धता रहती है। एकाएक भयानक शोर और भगदड़। कल्याणी झिझककर खिड़की से बाहर देखती है। शीघ्रता से एक ग्रामीण प्रवेश करता है।]

हिन्दू ग्रामीण : (घबराये हुए स्वरों में) तुरक आ गया ! तुरक आ गया ! भागो, भागो ···तुरक आ गया, भागो !

कल्याणी : (आगे बढ़कर, दृढ़ता से) पागल हो गए क्या ? तुरक कहाँ से आ गया ?

हिन्दू ग्रामीण : नहीं, नहीं, तुरक आ गया।

कल्याणी : अरे, तुरक जब आया था, तब से वर्षों बीत गए। अब तुरक कहाँ है ? वह आया भी और चला भी गया। तुरक··· (व्यंग्य से) हूँ !

हिन्दू ग्रामीण : नहीं, सबको लेकर जंगल में छिप जाओ। वह आ रहा है। वह आ रहा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। (भाग जाता है।)

[फिर भगदड़ की आवाज होती है।]

कल्याणी : यह भगदड़ कैसी मच रही है? (आगे बढ़ती है।)

[दूसरे ग्रामीण का प्रवेश।]

मुसलमान ग्रामीण : बहन, भाग चलो! जल्दी-जल्दी। वह तैमूर आ गया। मैंने अपनी आँखों से देखा है। लूटते हुए आ रहे हैं वे लोग। हम लोग मरे···चलो बहन!

कल्याणी : अरे, कैसा तैमूर? कहाँ का तैमूर?

मुसलमान ग्रामीण : (नेपथ्य में देखते हुए) तुम नहीं चलोगी? वह आया! वह आया! (भाग जाता है।)

कल्याणी : क्या सचमुच ही फिर तुरक आ गया? अरे, उसको मरे तो सैकड़ों बरस हो गए होंगे। क्या अपनी कब्र से उठकर आ रहा है? लेकिन कहते हैं तैमूर आया है। तैमूर कौन? (पुकारकर) बलकरन···बलकरन···!

[फिर भगदड़ की आवाज होती है। चीख-पुकार। तीसरे ग्रामीण का प्रवेश।]

तीसरा हिन्दू ग्रामीण : बहन कल्याणी, सब कुछ छोड़कर जल्दी से भागो, तभी जान बचेगी। जंगल में छिप जाओ, नहीं तो घर के तलघर में ही चलो। चलो मेरे साथ···समय नहीं है।

कल्याणी : (घबराहट से) बलकरन! मेरा बलकरन तो अभी नहीं आया। उसे छोड़कर मैं कहीं भी नहीं जाऊँगी।

तीसरा ग्रामीण : कहाँ गया बलकरन?

कल्याणी : (घबराहट से) वह···वह···दूध लेने गया है, सुजान के घर।

तीसरा ग्रामीण : सुजान के घर? बहुत अच्छा है। तब तो उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा। सुजान का घर खास रास्ते से बहुत हटकर दूर कोने में है। वे लोग सीधे रास्ते से ही चले आ रहे हैं।

कल्याणी : कौन? कौन आ रहा है।

तीसरा ग्रामीण : तुरक—इस बार तैमूर तुरक आया है। बड़ी भारी फौज लिए हुए है।

कल्याणी : (डरकर) तैमूर तुरक? बड़ी भारी फौज?

तीसरा ग्रामीण : हाँ, पर अब समय बिलकुल नहीं रहा। बलकरन का कुछ नहीं होगा। तुम जल्दी से चलकर तलघर में छिप जाओ।

कल्याणी : नहीं, बलकरन को आने दो। मैं बलकरन के बगैर नहीं जाऊँगी। (पुकारती है) बलकरन···बलकरन···बेटा बलकरन···!

तीसरा ग्रामीण : बहन, चुप रहो! तुरक सुन लेगा। जल्दी चलो···चलो जल्दी!

[कल्याणी का हाथ पकड़कर वेग से ले जाता है, कल्याणी का स्वर 'बलक···र···न' धीरे-धीरे गूँजकर शान्त हो जाता है। स्तब्धता! फिर भगदड़। उसकी आवाज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्त होते ही वेग से तीन सैनिक घर में घुस आते हैं। उनके हाथ में तलवारें हैं, वे घर के सामान को तोड़ते-फोड़ते आते हैं। सरदार, जिसका नाम जफरअली है, लात से मोढ़ा उलट देता है। दोनों सिपाही तख्त के नीचे देखते हैं।]

जफर : कोई नहीं ? कमबख्त सब भाग गए।

पहला : तख्त के नीचे भी कोई नहीं है।

जफर : मुबारक ! इस वक्त आदमियों को कत्ल करने का हमारा उतना मकसद नहीं है जितना सोना-चाँदी लूटने का है। इस घर में देखो, कहीं है ?

मुबारक : (देखते हुए) कहीं कुछ नहीं है सरदार ! मामूली-सी झोंपड़ी है। इसमें सोना-चाँदी कहाँ ?

जफर : बेवकूफ हो तुम ! इन तसवीरों को पलटो। इनके पीछे दीवाल में कुछ होगा। ये लोग अपना सोना-चाँदी दीवालों में रखते हैं।

[मुबारक और उसका साथी अलीबेग तलवार से सब तसवीरों को उलटता है। कुछ नहीं दीख पड़ता।]

अलीबेग : कहीं कुछ नहीं है, सरदार !

मुबारक : सरदार ! अगर सोना-चाँदी उन लोगों के पास होगा भी तो वे लोग अपने साथ लेकर भाग गए होंगे।

जफर : देखो, उस कोने में क्या है ?

अलीबेग : कुछ बरतन मालूम होते हैं, सरदार ! (बरतनों के पास जाकर उन्हें खोलता है) सरदार ! है, ये है।

जफर : (खुशी से) शाबाश ! क्या है, सोना ? चाँदी ?

[अलीबेग उठाकर लाता है।]

अलीबेग : सरदार ! सोना-चाँदी तो नहीं लेकिन उससे भी ज्यादा कीमती चीज है जिसकी आपको और हमको सख्त जरूरत है।

जफर : क्या ?

मुबारक : (अलीबेग के पास आकर) सरदार ! बढ़िया खाना। तरह-तरह की मिठाइयाँ। ओह ! (छूकर) बिलकुल ताजी। गरम।

अलीबेग : सरदार ! आप बहुत भूखे हैं। कुछ खा लीजिए। फिर तो दिन-भर हम लोगों को लूट और कत्ल करना ही है।

जफर : नहीं···नहीं···फेंक दो ! (रुककर)···एँ···अच्छा, इधर लाओ !

मुबारक : सरदार ! मालूम होता है, जल्दी में लोग खाना नहीं खा सके। वैसा ही रखा छोड़ गए।

जफर : (हाथ से छूकर) हाँ, गरम मिठाइयाँ हैं। लो, तुम लोग भी लो, भूखे होंगे।

मुबारक : सरदार नोश फरमाएँ।

जफर : मैं खाऊँगा। लो, तुम लो ! (मुबारक को देता है। वह प्रसन्न होकर लेता है)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी मिठाइयाँ हैं। लो, अलीवेग ! तुम भी लो।

अलीवेग : (आगे बढ़कर) सरदार तो कबूल करें। (हाथ फैलाता है) दरअसल ताजी हैं।

[शेष मिठाई से भरी थाली जफर मोढ़े को तलवार से सीधा कर उस पर रखता है। फिर तख्त पर वैठता है।]

जफर : (खाते हुए) वहुत लजीज। दो दिनों से खाना नसीव नहीं हुआ। अब जाकर ये मिठाइयाँ सामने आयी हैं।

अलीवेग : (खाते हुए) खुदा का फज्ल है, सरदार !

मुबारक : (सहसा) लेकिन, सरदार ! रुक जाइए।

जफर : (चौंककर) क्यों ?

मुबारक : कहीं इन मिठाइयों में जहर न मिला हो।

जफर : वेवकूफ हो तुम। मुबारक ! यहाँ के लोग इतने सीधे हैं कि वे ये बातें करना जानते ही नहीं। और फिर, हमने अपना धावा इतनी जल्दी बोला है कि किसी को ऐसा करने का—सोचने का—वक्त ही नहीं मिल सकता।

अलीवेग : सरदार सच फरमाते हैं।

जफर : और फिर, दो दिनों के बाद इतना अच्छा खाना नसीब हुआ है। भूख-प्यास से बुरा हाल है। और अगर इस तरह मरना ही है, तो मिठाई खाकर क्यों न मरें !

अलीबेग : सरदार ने क्या बात कही है ? मिठाई खाकर क्यों न मरें ? वाह, वाह···!

मुबारक : सच बात है, सरदार ! भूख से तो मरना ही है, तो यह चीज फिर क्यों छोड़ी जाए ?

जफर : इसीलिए मैं खा रहा हूँ। (खाते हुए) वाह ! क्या कहना है ! यहाँ के लोग मिठाइयाँ बनाना भी खूब जानते हैं।

अलीबेग : सरदार ! मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि वे लोग हम लोगों के लिए ही ये मिठाइयाँ बनाकर छोड़ गए हैं।

मुबारक : ये कैसे ?

अलीबेग : ये ऐसे कि उन्होंने यह समझा होगा कि ये मिठाइयाँ खाकर हम लोगों का गुस्सा कम हो जाएगा। लूट-मार कम करेंगे।

जफर : (हँसते हुए) ह् ह् ह् ह् ह् ! हम लोगों का गुस्सा कम हो जाएगा ! लूट-मार कम करेंगे !

[सब लोगों की जोर से सम्मिलित हँसी। नेपथ्य में तीव्र आवाज : 'चुप रहो, कमबख्तो !' तभी तैमूर लंग का प्रवेश। वह लँगड़ाते हुए आगे बढ़ता है। उसे देखते ही सब चौंक पड़ते हैं; मिठाइयाँ जमीन पर फेंककर फौजी ढंग से तनकर खड़े हो जाते हैं। सन्नाटा छा जाता है। तैमूर लंग बारी-बारी से तीनों को घूरता हुआ आगे बढ़ता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैमूर : (तीव्र स्वर में) तुम लोग ! बदबख्तो ! इसी तरह तुम हिन्दोस्तान की दौलत गाजी तैमूर के खजाने में भरोगे ? जब तुम्हें कत्ल करना चाहिए, तब तुम आराम से तख्त पर बैठते हो। जब तुम्हें जवाहरात ढूंढ़ने चाहिए तब तुम नाश्ता करते हो और जब तुम्हें धावा बोलना चाहिए, तब तुम लोग मिलकर कहकहे लगाते हो। जवाब दो ?

[कोई कुछ नहीं बोलता—निस्तब्धता]

तैमूर : (फिर तीव्र स्वर में) मैंने अफगानिस्तान के बाद हिन्दुस्तान पर रुख इसलिए किया था कि मेरे सिपाही दौलत लूटने के बदले आराम से खाना ढूंढ़ते फिरें ? मैं बिना जतलाए देखना चाहता था कि तुम किस तरह मेरे हुक्म को अंजाम दे रहे हो। इसलिए मैंने अपने सब सिपाहियों को बाहर छोड़ दिया है। मैं देखता हूँ कि तुमने मेरे जिहाद को नफ्स-परवरी (इन्द्रिय-लोलुपता) का एक अदना तमाशा बना दिया है। तुम यहाँ मौज से खाना खाओ और गाजी तैमूर तीन दिन से भूखा रहे, और रात-दिन हुक्म देता रहे ! मैंने तुम्हें क्या हुक्म दिया था, सरदार ?

जफर : (सैनिक ढंग से) बुलन्द-इकबाल ने हुक्म फरमाया था कि आज शाम तक अमरकोट पहुँच जाना है।

तैमूर : तो अमरकोट पहुँचने का यह रास्ता है ? बदबख्त ! गाजी तैमूर के सिपाहियों को रास्ता दिखलाने की जिम्मेदारी किस पर है ? तुम पर। और तुम ऐश करते हुए अमरकोट का रास्ता खोजोगे ?

[फिर सन्नाटा]

तैमूर : मेरे हुक्म को किसने अंजाम दिया ? तुमने ? तुम्हारे सिपाहियों की तलवारों पर खून का एक धब्बा भी नहीं है। तुम लोग सिपाही हो ? तैमूर को मुंह दिखलाने के काबिल भी नहीं हो। बोलो, क्या चाहते हो ? खाना खाने के बाद तुम्हारे लिए नाच-गाने का इन्तजाम भी किया जाए ?

जफर : हम लोग आलीजाह की माफी के ख्वाहिस्तगार हैं। माफी अता फरमायी जाए।

तैमूर : हरगिज नहीं। गाजी तैमूर कुसूर को माफ करना नहीं जानता। सरदार ! तुमने जो हुक्म-उदूली की है, उसकी सजा तुम्हें मिलेगी। मैं तुम्हारा नाम···तुम्हारा नाम···

जफर : जफर अली !

तैमूर : जफर अली ! तुम गाजी तैमूर की खिदमत नहीं कर सकते। आज शाम को तुम्हारी सजा तजवीज की जाएगी। अभी मैं तुम्हें तुम्हारे मरतबे से खारिज करता हूँ, समझे !

जफर : बुलन्द-इकबाल का हुक्म !

तैमूर : जाओ, शाम तक अमरकोट पहुँचने का मेरा हुक्म पूरा हो ! (तीव्रता से) जाओ !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[तीनों सैनिकों का शीघ्रता से प्रस्थान]

तैमूर : (बड़बड़ाता हुआ) दोजख के कुत्ते ! ···खाना-पीना, कहकहे ! सिपाहियों में आरामतलबी ! मेरे सामने हिन्दोस्तान की यह फिजा नहीं रहेगी। (गला बैठ जाता है। धीरे से) नहीं रहेगी··· (ओंठ चाटता है) गला सूख रहा है। तीन दिनों से खाना नहीं मिला···कल से पानी भी नहीं नसीब हुआ। गला सूख रहा है। (जमीन पर औंधा गिरा हुआ बरतन देखकर चौंकता है। तलवार की नोक से उसे सीधा करता है) सब खाली ? कमबख्तों ने कुछ भी नहीं छोड़ा ? लेकिन कोई बात नहीं। गाजी और मुजाहिदों (धार्मिक योद्धाओं) की किस्मत में आराम कहाँ ?

[बलकरन का दूध लिए हुए बायीं ओर के गुप्त मार्ग से प्रवेश।]

बलकरन : (पुकारते हुए) माँ, माँ ! मैं यह दूध ले आया।

तैमूर : (चौंककर) दूध ?

बलकरन : (उजाड़ घर को देखकर चौंकते हुए) यह सब क्या ? (तैमूर को देखकर) एँ, तुम कौन ? (पुकारता है) माँ···माँ ! (कुछ उत्तर न पाकर) मेरी माँ कहाँ है ? (तैमूर गौर से बलकरन को देखता है) इस तरह मेरे···घर में घुस आने वाले तुम कौन हो ?

तैमूर : (जोर से) खामोश ! गाजी तैमूर से यह नाचीज सवाल करता है कि तुम कौन हो। कमबख्त ! अगर बात पूछने की तमीज नहीं है तो खामोश रह।

बलकरन : (धीरे से दोहराता हुआ) गाजी तैमूर ?

तैमूर : इस नाम से वाकिफ नहीं है ? दुनिया का जर्रा-जर्रा जिसके कदमों को चूम चुका है, उससे सवाल करता है, 'तुम कौन हो ?' कमबख्त बच्चे ! मेरी तलवार से पूछ ! यह तेरे खून में डूबकर तुझे मेरा नाम बतलाएगी। लेकिन ठहर···यह दूध इधर ला···इस वक्त खुदा ने मेरे लिए भेजा है।

बलकरन : यह दूध···यह दूध मेरी वर्षगाँठ के लिए है।

तैमूर : साफ जबान में बात कर, जो समझ में आए। सामने दूध हाजिर कर !

बलकरन : नहीं, मैं माँ के सिवाय किसी को नहीं दे सकता।

तैमूर : क्या ? लेकिन मैं ले सकता हूँ। (दूध छीनकर जोर से अट्टहास करता है) दूध मेरा है कि नहीं ? अब तुझे इस तलवार से काट दूँ ?

बलकरन : (हिचकते हुए) क्या···क्या तुम तुरक हो जो खून बहाना चाहते हो ? मेरी माँ यही कहती थीं।

तैमूर : तू बड़ा निडर मालूम होता है। सामने आ ! मेरी तलवार से कटने का फख्र हासिल कर !

बलकरन : मेरे पास सिर्फ एक चाकू है। मेरे हाथ में भी एक तलवार दो।

तैमूर : ओफ ओह ! तू मुझसे दो हाथ लड़ने का हौसला भी रखता है ? अच्छा ! पहले दूध पिऊँगा। गला सूख रहा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[तख्त पर तलवार रखकर दोनों हाथों से दूध का बरतन मुँह में उलट लेता है। बलकरन दौड़कर तैमूर की तलवार उठा लेता है।]

तैमूर : (सहसा) मेरी तलवार···

बलकरन : तुम्हारी तलवार अब मेरे हाथ में है। अब तुम मुझ से लड़ सकते हो। सामने आओ।

तैमूर : (दोहराकर) सामने आओ ? शाबाश ! लेकिन मेरी तलवार तुझसे सँभल नहीं सकेगी, बच्चे ! इधर ला !

बलकरन : जैसे दूध छीन लिया था, वैसे तलवार भी छीन लो !

तैमूर : छीन लूं ?

बलकरन : हाँ, लेकिन लड़ने वाले तलवार नहीं छीनते, वार करते हैं।

तैमूर : तेरा कहना सही है। मालूम होता है, तू बहादुर है। मेरी फौज में भरती होगा ?

बलकरन : (दृढ़ता से) नहीं।

तैमूर : नहीं ? इस्लाम कबूल करेगा ?

बलकरन : (अधिक दृढ़ता से) नहीं।

तैमूर : तो अब तुझे ज्यादा देर तक जिन्दा नहीं रखूंगा। (पैंतरा बदलकर तलवार छीन लेता है) यह रही मेरी तलवार।

बलकरन : छीन ली ? लेकिन यह बहादुरी नहीं है। मेरे पास यह चाकू है। इसी से लड़ूंगा।

तैमूर : चाकू से लड़ेगा, चाकू से ! (अट्टहास करता है) ह् ह् ह् ह् ह !

बलकरन : हाँ, थोड़ी देर पहले मैंने इसे तेज किया है। देखो, यह इतना तेज है—मेरी उँगली से खून निकाल सकता है।

[उँगली में चुभाकर खून की बूंदें दिखलाता है।]

तैमूर : शाबाश ! तैमूर के दिल में रहम नहीं है लेकिन तेरी बातें सुनकर मैं···

बलकरन : इन बातों से क्या ! चलाओ अपनी तलवार, मैं भागूँगा नहीं।

तैमूर : भागेगा नहीं ! तू बहादुर शेर है। मैं तुझ पर तलवार नहीं चला सकता। तू मुझ से भी ज्यादा बहादुर मालूम होता है। चाकू वाला बहादुर ! तेरा नाम क्या है ?

बलकरन : दुश्मन नाम नहीं पूछता, वार करता है।

तैमूर : लेकिन तेरी बहादुरी देखकर मैं तुझे अपना दुश्मन नहीं मानता। तेरा नाम क्या है, चाकू वाले ?

बलकरन : बलकरन।

तैमूर : (दोहराता हुआ) बलकरन ! बलकरन ! हिन्दुस्तान की दौलतों में तू भी एक दौलत है। बलकरन, गाजी तैमूर एहसान नहीं भूलता। जो उसकी थकावट दूर करने के लिए दूध हाजिर कर सकता है, उसके खून से वह अपनी तलवार नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रँगेगा। नहीं तो अभी तक मैंने तुझे साफ कर दिया होता।

बलकरन : लेकिन दूध मैंने हाजिर नहीं किया, तुमने छीन लिया।

तैमूर : एक ही बात है। दूध मैंने पाया। मैं तेरी जान बख्शता हूँ और तेरी एक मुराद पूरी कर सकता हूँ।

बलकरन : मुझे कुछ नहीं चाहिए।

तैमूर : नहीं, तू मेरा छोटा-सा बहादुर दोस्त है, चाकू वाला! और इस हैसियत से तेरा मुझ पर हक है।

बलकरन : तो, मेरी माँ कहाँ है?

तैमूर : मैं नहीं जानता। मेरे सिपाहियों ने तेरी माँ को कत्ल भी न किया होगा; क्योंकि उनकी तलवारों पर खून का एक भी धब्बा नहीं था।

बलकरन : आप मेरी मुराद पूरी करेंगे? तो फिर आपसे मैं यही चाहता हूँ कि आप हमारे गाँव से बाहर चले जाएँ।

तैमूर : (दुहराकर) गाँव से बाहर चले जाएँ? (सोचकर) मंजूर! मैं दूसरे गाँव जाऊँगा। अपने छोटे बहादुर दोस्त की मुराद पूरी करूँगा। तेरा दूध और चाकू मुझे हमेशा याद रहेगा।

बलकरन : धन्यवाद!

तैमूर : मैं कुछ समझा नहीं। खैर, तैमूर की जिन्दगी में एक नई बात हुई। तैमूर के सामने कम लोग आते हैं—तू आया। तैमूर कम लोगों को माफ करता है, आज किया। वह काफिरों का खून पीता है, आज तुझसे छीनकर दूध पिया। यह एक मोजिजा (करामात) है।

बलकरन : मैं कुछ समझा नहीं।

तैमूर : (अट्टहास कर) तैमूर की बराबरी करना चाहता है? लेकिन तू तैमूर से भी बड़ा है। तेरा चाकू उसकी तलवार से भी तेज निकला। तैमूर खूँख्वार है लेकिन बहादुरी को सलाम करता है। बहादुर बच्चे को तैमूर का सलाम! (फौजी ढंग से सलाम करता है।)

बलकरन : (उसी तरह) सलाम!

तैमूर : तेरे गाँव को हाथ नहीं लगाऊँगा। सिपाहियों को हुक्म देकर वापिस कर दूँगा। (हाथ उठाकर) खुदा हाफिज! (शीघ्रता से प्रस्थान।)

बलकरन : (उसके जाने की दिशा में देखता हुआ) तैमूर···बहादुरी को सलाम करता है! (फिर लौटता है। चारों ओर देखकर पुकारता है) माँ···! माँ···! म···ाँ···ाँ···?

[शीघ्रता से कल्याणी का प्रवेश। वह अति शीघ्रता से बलकरन को हृदय से लगा लेती है।]

कल्याणी : बेटा···बेटा···बलकरन! (सिसकने लगती है।)

बलकरन : माँ! तू रोती क्यों है? तू कहाँ थी?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणी : बेटा, तैमूर के सिपाही आए थे। उनसे बचाने के लिए ठाकुर दादा मुझे तलघर में खींच ले गए थे। तुझे तो कुछ नहीं हुआ, बेटा ! कहीं चोट तो नहीं आयी ? देखूं !

[गौर से बलकरन के शरीर को देखती हैं।]

बलकरन : नहीं, माँ ! कहीं चोट नहीं आयी।

कल्याणी : तैमूर के सिपाहियों ने तो तुझे हाथ नहीं लगाया ?

बलकरन : जब खुद तैमूर हाथ नहीं लगा सका, तो तैमूर के सिपाही कैसे हाथ लगाते !

कल्याणी : तैमूर हाथ नहीं लगा सका ? क्या तैमूर यहाँ आया था ? तुरक तैमूर ?

बलकरन : हाँ, माँ ! आया था। वह सारा दूध पी गया।

कल्याणी : सारा दूध पी गया ?

बलकरन : मैं सुजान के घर से दूध लाया था न, वही दूध सब पी गया।

कल्याणी : बेटा, वे लोग तो खून पीते हैं।

बलकरन : पीते होंगे। लेकिन तैमूर ने तो सारा दूध पी लिया।

कल्याणी : तैमूर ने ? तुरक ने ?

बलकरन : हाँ, माँ ! तूने तो मुझे झूठ बोलना नहीं सिखलाया।

कल्याणी : नहीं, बेटा ! कैसा था तैमूर ?

बलकरन : तैमूर ? सिपाही की तरह, रोबीला, चेहरा, मोटे-मोटे हाथ ! ऊँची नाक, हाथ में तलवार ! लेकिन माँ, मेरे पास भी चाकू था। मैंने आज सुबह ही तो उसे तेज किया था।

कल्याणी : उसकी तलवार के सामने तेरा चाकू किस काम आता ?

बलकरन : उसी चाकू ने तो उसे चौंका दिया। मुझे वह चाकू वाला बहादुर कहता था।

कल्याणी : (आश्चर्य से) अच्छा !

बलकरन : मैंने कहा, यह चाकू बड़ा तेज है। मैंने सुबह से ही उस पर धार रखी हुई है। माँ ! उसे मैंने अपनी उँगली चीरकर दिखला दी। देखो, यह खून !

कल्याणी : (चीखकर) ओह, यह खून !

बलकरन : उसने नहीं निकाला। मैंने ही उँगली चीरकर गिराया है।

कल्याणी : (घबराकर) तेरी उँगली से खून तो अभी तक निकल रहा है, बेटा !

बलकरन : उसकी कुछ चिन्ता नहीं है, माँ ! तैमूर कहता था कि तेरा चाकू मेरी तलवार से भी तेज निकला।

कल्याणी : क्या तूने चाकू से उस पर वार किया था ?

बलकरन : नहीं, माँ ! मैं तो लड़ना चाहता था पर वही मीठी-मीठी बातें करने लगा। इस तरह चलता था लँगड़ाकर। (लँगड़ाकर चलता है और हाथ फैलाकर कहता है) 'तैमूर खूंख्वार है, लेकिन बहादुरी को सलाम करता है। बहादुर बच्चे को तैमूर का सलाम !' (फौजी ढंग से सलाम करता है।)

कल्याणी : (आश्चर्य और प्रसन्नता से) वाह ! तू तो बिलकुल तैमूर ही बन गया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलकरन : मैं लँगड़ा नहीं बनना चाहता, माँ !

कल्याणी : (हँसकर) हाँ, लँगड़ा कभी न बने ! तू सब तरह से फले-फूले ! तेरी उमर दिन-दूनी रात-चौगुनी हो ! भगवान् को हजार-हजार धन्यवाद है कि उसने मेरे बच्चे की तैमूर से रक्षा की।

बलकरन : यह सब तेरा आशीर्वाद है, माँ !

कल्याणी : हाँ, बेटा, आज तेरी वर्षगाँठ है न ! (चारों तरफ देखकर) तुरक के सिपाहियों ने सारा घर तोड़-फोड़ डाला। तेरे लिए मैंने कितनी अच्छी मिठाइयाँ बनायी थीं, सब नष्ट हो गयीं। अब तेरी वर्षगाँठ कैसे मनाऊँ ?

बलकरन : बस अपना आशीर्वाद दे दे, माँ ! और···

कल्याणी : और क्या ?

बलकरन : और, तू चन्दन लगाने के लिए कहती थी न ! तो ले, मेरी उँगली के खून का रक्त-चन्दन बना ले।

कल्याणी : ओह, बेटे ! तू क्या कहता है ? आज मैं अकेली हूँ। (सिसकती है।)

बलकरन : अकेली क्यों ? भगवान् है और मैं हूँ, माँ !

कल्याणी : जुग-जुग जियो, मेरे लाल ! मैं तुझे भगवान् का अंश ही समझती हूँ। (चौंककर खिड़की से देखती हुई) यह पश्चिम में धूल कैसी उड़ रही है ? क्या फिर कोई आ रहा है ?

बलकरन : तैमूर और उसके सिपाही गाँव से बाहर जा रहे होंगे !

कल्याणी : वे तो गाँव लूट रहे होंगे और आदमियों का खून बहा रहे होंगे ?

बलकरन : नहीं, वे गाँव से बाहर जाएँगे, मैंने जो कह दिया है।

कल्याणी : तूने कह दिया है ? तेरा हुक्म वे क्यों मानने लगे ?

बलकरन : उनको मानना तो पड़ेगा ही, माँ ! तैमूर ने मेरी बहादुरी से खुश होकर मेरी एक बात पूरी करने को कहा।

कल्याणी : (आश्चर्य से) अच्छा !

बलकरन : मैंने कहा—आप और आपके लोग, इसी समय हमारे गाँव के बाहर चले जाएँ। तैमूर ने सोचा; फिर कहा, मंजूर ! मैं दूसरे गाँव जाऊँगा। अपने छोटे-से बहादुर दोस्त की मुराद पूरी करूँगा।

कल्याणी : धन्य ! मेरे लाल ! (हृदय से लगाती है) घर-घर में ऐसे लाल हों।

बलकरन : (खिड़की से देखता हुआ) हाँ, पश्चिम में तो बहुत धूल उड़ रही है। वे लोग बड़ी तेजी से वापस जा रहे हैं।

कल्याणी : हाँ, बेटे ! वापस जा रहे हैं।

बलकरन : वह पश्चिम की धूल वाला तेरा कैसा गीत है ?

कल्याणी : अब तो उस गीत को बदलना पड़ेगा, मेरे बेटे, आज तेरी वर्षगाँठ के दिन।

बलकरन : तब मेरी उँगली से खून लेकर मुझे तिलक करके उसे बदलकर गाओ।

कल्याणी : उँगली के खून का तिलक लगाऊँ ? यही सही, मेरे लाल ! वीर बालक की वर्षगाँठ है। तेरी बारहवीं वर्षगाँठ ऐसे ही मनायी जाए !

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[कल्याणी बलकरण की उँगली से खून लेकर तिलक करती है। फिर पहले गीत को बदलकर गाती है, बीच में फिर रक्त का तिलक लगाती है—]

तुम जाना घर से दूर···दूर···!
उठ रही है पश्चिम में धूर···
उठ रही है पश्चिम में धूर···
फिर गया तुरक—भग गया तुरक
नशे में चूर···चूर···!
तुम जाना घर से दूर···दूर···!

[बलकरन गम्भीर है। कल्याणी रक्त-चन्दन लगाती है। धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगति के चरण

(एक प्रतीक रूपक)

पात्र-परिचय

आकाश

कक्षा

दैत्य (एटम बम का विस्फोट)

स्पूतनीक

मानव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान : बीसवीं शताब्दी का सातवाँ दशाब्द **समय :** रात्रि के बारह बजे।

[आकाश का एक भाग स्थिर होकर तारिका-खण्ड पर बैठा है और कक्षा चंचलता से नृत्य कर रही है। कुछ देर बाद जब कक्षा का नृत्य मन्द होकर फैलती हुई लहर का रूप लेता है और एक ओर बढ़ता है तो आकाश उस ओर देखता हुआ कक्षा को सम्बोधित करता है—]

आकाश : उस ओर बार-बार क्यों देख रही हो कक्षा ?

[कक्षा तन्मय होकर नृत्य के आकार को बढ़ते हुए एक ओर आकृष्ट हुई चली जाती है।]

आकाश : (कुछ अधिक बल देकर जिज्ञासा के स्वरों में) क्या देख रही हो कक्षा ?

कक्षा : (सहसा उलटकर आकाश की ओर देखते हुए) निर्दय आकाश ! मुझे मत छेड़ो ! (फिर नृत्य में अग्रसर होती है किन्तु जैसे ही नृत्य की भंगिमा लेती है, वैसे ही मानो अंग शिथिल हो जाते हैं) तुमने मेरा सारा ध्यान, सारा स्वप्न तोड़ दिया ! तुम क्या जानो आकर्षण किसे कहते हैं ? शून्य आकाश ! जिसमें कुछ भी नहीं है।

आकाश : मुझमें कुछ नहीं है, इसलिए तो सब कुछ है। भूलो मत कक्षा ! मैं तुम्हारी तरह आकर्षक रूप तो नहीं रख सकता परन्तु दूसरों को रूप रखने में सहायता देता हूँ। बुरा मत मानो, मैं तुम्हारे रूप की रक्षा के लिए ही तो पूछता हूँ कि कहाँ खिंची जा रही हो ?

कक्षा : जैसे जानते ही नहीं ! देखते नहीं, वे शक्तिशाली मंगल कितनी दूर चले गए हैं। (करुण स्वर में) पहिले मुझे अपनी कक्षा की रेखा बनाया, फिर मुझे छोड़ कर दूसरी ओर चले जा रहे हैं। उनकी गति अण्डाकार की अपेक्षा सर्पिल हो गई है।

आकाश : (गम्भीर होकर) तो कक्षा कब नक्षत्र के साथ चलती है। नक्षत्र तो अपनी गति से दिशा में बढ़ता है। जिस दिशा को वह पीछे छोड़ देता है, वही उसकी कक्षा बनकर रह जाती है। कक्षा पड़ी रहती है, नक्षत्र आगे बढ़ जाता है। उसके वेग में गुरुत्वाकर्षण समाप्त हो जाता है।

कक्षा : तो क्या मैं सदैव ऐसी ही पड़ी रहूँगी ?

आकाश : नहीं, तुम्हारे घूमने की भी गति है लेकिन बहुत धीरे ! यह तो शताब्दियों की गति है कक्षा ! लेकिन इसी हल्की गति में तुम कितनी सुन्दर बन गई हो। दिक् और काल एक-दूसरे में लय हो गए हैं। उन्होंने अपनी निरपेक्ष पृथकता खो दी है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे इस चंचल नृत्य से गति की सुन्दरता बिगड़ जाएगी।

कक्षा : अपने नक्षत्र के बिना मेरी सुन्दरता का कोई महत्व नहीं है। दिक् और काल की निरन्तरता ही तो मेरी वक्र गति है। यह वक्रता ही वास्तविक है। इसके बिना मेरा कोई महत्त्व नहीं।

आकाश : महत्त्व नहीं है? कक्षा! यदि महत्त्व न होता तो विश्व भर के दूरदर्शक तुम्हें और हमें इस तरह देखते? कितने हजार वर्षों के वाद मंगल नक्षत्र खिंच कर पृथ्वी के इतने समीप आया। उसी के साथ खिंचकर मैं आया और तुम भी, इस विशेष दिशा में! समय, शून्य और स्थिति के कितने सम्वन्ध टूट-टूटकर बने। विश्व-मंडल की कितनी शक्तियाँ किस आश्चर्यजनक गति से काम करती रहीं। अब दिक् और काल की निरपेक्षता नहीं रही। कितने गूढ़ और विचित्र नियम हमें और तुम्हें बना कर इस पृथ्वी के पास छोड़ गये!

कक्षा : पृथ्वी के पास?

आकाश : हाँ, पृथ्वी के पास! यह जो हमारे समीप घूम रही है। बहुत सुन्दर मालूम होती है।

कक्षा : इस विश्व में तो न जाने कितने पृथ्वी पिण्ड होंगे। जो एक से एक सुन्दर हो सकते हैं।

आकाश : हाँ, सुन्दर हो सकते हैं, पर वहुतों में तो जीवन ही नहीं है। बिलकुल मृत पिण्ड हैं।

कक्षा : मैं कुछ नहीं समझती।

आकाश : नहीं समझती? क्यों? मंगल की गति में भूली हो? उसे इस तरह देखो कक्षा! कि अभी तक हम लोग किन-किन नक्षत्रों से खिंचकर कहाँ-कहाँ नहीं गए? गुरुत्वाकर्षण ने हमें कहाँ-कहाँ नहीं खींचा? किन्तु इस बार नक्षत्र मंगल की ही यह कृपा थी कि उसने अपनी गति से हमें और तुम्हें पृथ्वी से इतने समीप ला दिया। मंगल नक्षत्र की अपेक्षा उसके वरदान की अधिक सराहना होनी चाहिए। यह पृथ्वी देखो न! अन्य नक्षत्रों की अपेक्षा यह कितनी अच्छी है!

कक्षा : तुम प्रत्येक नक्षत्र के समीप आकर ऐसा ही तो कहते थे!

आकाश : किन्तु इस पृथ्वी को देखकर मैं अन्य सभी नक्षत्र भूला जा रहा हूँ। देखो न! यह पृथ्वी कितना मधुर गीत गाती है। तुम जो इतना अच्छा नृत्य कर रही थीं वह पृथ्वी के समीप रहने के कारण ही तो है।

कक्षा : पृथ्वी के समीप रहने के कारण? (सोचते हुए आगे बढ़कर) देखूँ, यह पृथ्वी!

आकाश : देखो न! कुछ अधिक आगे बढ़कर देखो न! (आगे बढ़कर देखते हुए) इस ओर—दाहिनी ओर से (कक्षा आगे बढ़कर नीचे अन्तरिक्ष में देखती हुई) देखा? इस पृथ्वी में जीवन है, जल है, मिट्टी है, कितनी हरियाली है! पेड़, पत्ते, फूल, जीव-जन्तु···और मानव! ओफ! कितनी उष्णता है, कितना जीवन है—बसन्त है! सभी नक्षत्रों में ऐसी बातें नहीं हैं।

कक्षा : (प्रसन्न होकर) ओह! इतने रंगों की मिट्टी—इतना लहराता हुआ जल! इतने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर पेड़ ! इस तरह के प्राणी !

आकाश : और उन प्राणियों में मानव ! सबसे ऊँचा प्राणी ! बहुत से नक्षत्र जो हमने देखे, वहाँ जीवन नहीं, मृत्यु है। वह मृत्यु जो अन्धकार और शीतलता से लिपटी हुई पड़ी है। अब समझी ? इस पृथ्वी के तो कण-कण से जैसे जीवन की लहर उठ रही है।

कक्षा : (फिर देखती हुई) सचमुच ! इस पृथ्वी की लहर-लहर में जीवन है। ये इतनी बड़ी-बड़ी नदियाँ, कितना मधुर गीत गाती हैं। पेड़ों के पत्ते हवा में किस तरह नाचते हैं। मैं भी इस हवा की मस्ती में नाचूँगी और नदियों की लहरों में गाऊँगी।

आकाश : (प्रसन्न होकर) यह स्थान ही ऐसा है ! लाओ, मैं इन हवा के तारों को बजाऊँ और तुम नाचो।

[आकाश जैसे ही हाथ आगे बढ़ाता है उसे हवा के तारों का वाद्य यन्त्र प्राप्त हो जाता है। वह उसे बजाने लगता है, और कक्षा नाचने लगती है। थोड़ी देर नृत्य होता है। फिर पश्चिम के आकाश में गड़गड़ाहट के साथ विस्फोट होता है। भयानक आग की लपटें दिखाई देती हैं, और उसी क्षण एक भयानक दैत्य तीव्रता से आता है। वह पैर की धमक से आग की चिनगारियाँ उत्पन्न करता है। कक्षा स्तब्ध होकर एक कोने में ठिठक जाती है। आकाश दूसरे कोने में संकुचित होकर भयग्रस्त-सा खड़ा हो जाता है।]

कक्षा : बहुत भयानक है···भीषण···है···मैं···गिर रही हूँ आकाश में···गिर··· (मूर्छित होती है।)

आकाश : (कक्षा को सम्हालता है। फिर कुछ आगे बढ़कर) तुम कौन हो ?

दैत्य : सामने से हट जाओ ! मैं एटम का विस्फोट हूँ। सर्वनाश की आग हूँ। जहाँ जाऊँगा, वहीं संहार करूँगा। (क्रोध से काँपता है।)

आकाश : शान्त···शान्त···मृत्यु के दैत्य ! तुम आगे मत बढ़ो।

दैत्य : मुझे कौन रोक सकता है ? मैं एक क्षण में सर्वनाश कर सकता हूँ ? पृथ्वी के हिरोशिमा, नागासाकी जैसे बड़े-बड़े नगर आज भी मेरे महानाश से कराह रहे हैं।

आकाश : पर यह सब अच्छा नहीं किया तुमने ! मृत्यु के दैत्य की अपेक्षा तुम्हें जीवन का देवता बनना चाहिए।

दैत्य : यह मेरे हाथ में नहीं है। मैं देवता बन सकता हूँ और दैत्य भी। यह तो मनुष्य के हाथ में है कि वह मेरी पूजा देवता के रूप में करना चाहता है या दैत्य के रूप में। और मनुष्य चाहता है कि मैं दैत्य बनूँ, देवता नहीं।

आकाश : मनुष्य कभी नहीं चाहेगा कि वह देवता को दैत्य बना दे।

दैत्य : क्यों ? अणुबम में बैठकर मैं क्या बनूँगा ? देवता या दैत्य ? मनुष्य ने चाहा कि मैं अणुबम में बैठूं। और मैं वहाँ बैठकर दैत्य ही बनूंगा, देवता नहीं।

आकाश : किस मनुष्य ने चाहा कि तुम दैत्य बनो ?

दैत्य : क्या अब यह भी बतलाना पड़ेगा। जो युद्ध चाहते हैं वह अणु बमों का प्रयोग करते

CC-0. Gurukul Kangri Kanya Mahavidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। उत्तरी ध्रुव के समुद्रों में ऐसे कितने अणुबम नहीं गिराए गए ? समुद्र का जल खौल उठा है ! उसमें रहने वाले न जाने कितने जीव-जन्तु मर गए। मैं भी तो वहीं से आ रहा हूँ। मेरी भूख पृथ्वी पर नहीं बुझी तो अब यहाँ आया हूँ ?

आकाश : लेकिन तुम यहाँ दैत्य नहीं रहोगे। यहाँ इतने अधिक अणु हैं कि तुम उनमें आग नहीं लगा सकते। एक हिन्दी के कवि ने कहा है कि क्या खटाई की कुछ बूँदों से दूध का सागर फट सकता है ?

दैत्य : मैं तो महानाश की आग लिए हूँ। जो सामने आएगा उसे ही जलाऊँगा।

आकाश : यह आग जल्द ही बुझा दी जाएगी। देखो तुम स्वयं शान्त होने लगे हो। जाओ यहाँ से और आकाशगंगा में स्नान करो (पूर्व की ओर देखकर) अरे, यह कौन आ रहा है। यह तो कोई नया नक्षत्र ज्ञात होता है ! बड़ी तेजी से आ रहा है !

दैत्य : उससे तो मुझे भी कुछ डर लग रहा है ! अच्छा तो मैं जा रहा हूँ (शीघ्रता से प्रस्थान।)

आकाश : कक्षा अभी तक मूर्छित पड़ी है ! (पास जाकर) उठो, कक्षा, दैत्य का तेज समाप्त हो गया !

कक्षा : (धीरे-धीरे उठते हुए) मैं कहाँ हूँ !

आकाश : मेरे समीप ! आकाश के हाथों में ! वह अणुबम का दैत्य चला गया।

कक्षा : (सिहरते हुए) ओह ! वह दैत्य बड़ा भयानक था। मैं तो उसके शरीर से निकलने वाली ज्वालाओं से ही सुलगी जा रही थी।

आकाश : वह दैत्य कुछ समय बाद देवता बन जाएगा।

[दूर से बीच-बीच की ध्वनि सुनाई देती है]

कक्षा : (ध्यान से सुनते हुए) अब यह कौन आ रहा है ?

आकाश : कोई नक्षत्र होगा। इस स्थान पर नक्षत्रों की क्या कमी ? मैं देखता हूँ, कोई बड़ी शक्ति है, अणुबम के दैत्य को भी उससे डर लगता है। इसीलिए वह यहाँ से भाग गया !

कक्षा : कोई बड़ा देवता होगा। ओह ! बड़ा सुन्दर है। अब तो बिल्कुल पास आ गया।

आकाश : हाँ, बहुत सुन्दर है।

[स्पूतनीक आता है]

आकाश : स्वागत, आकाश के यात्री।

स्पूतनीक : धन्यवाद !

कक्षा : मैं भी आपका स्वागत करती हूँ।

स्पूतनीक : आपको भी धन्यवाद।

आकाश : हम लोग आपका परिचय जानना चाहते हैं !

स्पूतनीक : मेरा परिचय ? (मुस्कराकर) मैं अपना परिचय किस प्रकार दूँ ! प्रयोग का परिचय क्या ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश : क्यों ? अभी अणुवम का दैत्य आया था, उसने भी अपने प्रयोग की बात कही थी। वह तो बड़ा भयानक था और अपना परिचय भी बड़ी भयानकता से दे रहा था।

कक्षा : मुझे तो उससे बड़ा भय लग रहा था।

स्पूतनीक : मेरा विश्वास है कि वह अणु का दैत्य भी कभी देवता बनेगा।

कक्षा : अभी आकाश भी यही बात कर रहे थे। आप भी यही बात कहते हैं। आप स्वयं देवता की भाँति हैं तो दैत्य को भी देवता मानते हैं। आप अपना परिचय देने का कष्ट करें।

स्पूतनीक : मेरा परिचय ही क्या ? मैं एक स्पूतनीक हूँ। सोवियत संघ से आया हूँ। मैं विज्ञान में शान्ति का अग्रदूत हूँ।

आकाश : शान्ति के अग्रदूत ! आपका स्वागत है। आप में बड़ा साहस है। जहाँ अणुबम के दैत्य घूमते हैं, वहाँ आप शान्ति का सन्देश लेकर तारों की तरह भ्रमण करते हैं। आप धन्य हैं !

कक्षा : मैं तो दैत्य से वहुत डर गई थी। कहीं आरम्भ के देवता अन्त के दैत्य तो न बन आएँगे ? आप शायद पहिले आकाश के शान्ति-यात्री हैं जो पृथ्वी से आए हैं। जब पृथ्वी की प्रशंसा आकाश ने की थी तो मैंने विश्वास नहीं किया था। आपको देख-कर पृथ्वी की शक्ति और विशेषता की प्रशंसा करती हूँ।

स्पूतनीक : इस प्रशंसा के लिए धन्यवाद। मैं भी अपनी पृथ्वी से प्यार करता हूँ। और उसकी परिक्रमा ही करूँगा। देखना चाहता हूँ कि मेरी पृथ्वी के चारों ओर जो वायुमण्डल है, वह कैसा है। उसका पता लगाने आया हूँ।

कक्षा : अभी तक तो इस तरह पृथ्वी से कोई नहीं आया। हाँ··· (सोचकर) आपका नाम 'वेनगार्ड' तो नहीं ? यह नाम कुछ समय हुआ आकाश में गूँजा था।

स्पूतनीक : जी नहीं. मेरा नाम 'वेनगार्ड' नहीं। मुझे दुःख है कि वह नहीं आ सका। आना तो वही चाहता था, पर वेचारा आ नहीं पाया। शायद आगे चलकर आए।

आकाश : आपका कोई नाम नहीं है ?

स्पूतनीक : जी नहीं, मैं नाम रूप की अपेक्षा काम में अधिक विश्वास रखता हूँ। मुझे तो विज्ञान की सेवा करना ही अच्छा लगता है !

कक्षा : आप बड़े साहसी हैं। इस स्थान में जहाँ अनेक प्रकार की किरणें आपस में टकराती हैं। जहाँ की परिस्थितियाँ पृथ्वी से इतनी भिन्न हैं, वहाँ आप अकेले वायुमण्डल का पता लेने चले आए !

स्पूतनीक : विना साहस के कभी कोई काम नहीं होता। कुछ समय वाद मेरे और साथी भी यहाँ आवेंगे। हमारा सोवियत संघ विज्ञान का प्रयोग शान्ति के लिए ही करना चाहता है। इसलिए आगे और भी आकाश के यात्री आपसे मिलेंगे। क्षमा कीजिए, मैं आप दोनों का परिचय नहीं पूछ सका।

आकाश : मैं मंगल के आकर्षण का आकाश हूँ और ये उसकी कक्षा। मंगल तो भ्रमण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

करते हुए दूर निकल गए। यह कक्षा उनके जाने से दुःखी है। शायद आपको पाकर इसका दुःख···

स्पूतनीक : क्षमा कीजिए ! मैंने अपनी छोटी कक्षा का निर्माण स्वयं कर लिया है। आप तो मंगल को ही कृतार्थ करें। मैं तो बहुत छोटा हूँ। और फिर मुझे यहाँ से जल्दी ही जाना है। अपनी पृथ्वी की परिक्रमा मुझे आठ घण्टे में ही पूरी कर लेनी है। अच्छा, धन्यवाद, मैं अब आगे जा रहा हूँ।

आकाश : आपके साहस के लिए पुनः साधुवाद !

कक्षा : आप कुछ देर और नहीं ठहर सकेंगे ? आपका संगीत बड़ा मधुर है।

स्पूतनीक : इसके लिए धन्यवाद। मुझे शीघ्र ही जाना है।

कक्षा : फिर कब मिलेंगे ? आपकी कक्षा तो इसी ओर से होगी ! काश, मैं कुछ सहायता कर सकती !

स्पूतनीक : नहीं ! धन्यवाद ! मुझे अपनी परिस्थितियों का निर्माण अपनी ही शक्तियों से करना है। फिर कभी मिलूंगा ! अच्छा, दस विदानिया ! (प्रस्थान)

कक्षा : (आप ही आप) चले गए ! कितने शक्तिशाली और साहसी हैं ! अज्ञात का रहस्य खोजने को जो अपनी यात्रा को ही जीवन का रहस्य बना लेते हैं, वे कितने महान् हैं !

आकाश : क्या सोच रही हो कक्षा ?

कक्षा : (चौंककर) कुछ नहीं ! तुम्हारे साम्राज्य को ही देख रही हूँ, जिसमें न जाने कितने शक्ति और सौन्दर्य से रूप खिलते रहते हैं।

आकाश : यह शक्ति और सौन्दर्य का रूप तुम्हें अच्छा लगा ?

कक्षा : शक्तिशाली और साहसी किसे अच्छे नहीं लगते आकाश ? परन्तु वे किसी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते। वे कदाचित् कठिनाइयों को खोजते रहते हैं, और कठिनाइयाँ उसे पाने को व्याकुल रहती हैं ! (विस्फोट। चौंककर) वह देखो—कहाँ से अग्नि की लपट उठ रही है ?

आकाश : (देखकर, भौंहें सिकोड़कर) पृथ्वी से उठी हुई ज्ञात होती है। कहीं फिर किसी दैत्य की क्रोधाग्नि तो नहीं है ?

कक्षा : मुझे डर लग रहा है।···नहीं वैसी अग्नि नहीं है। इस अग्नि से तो एक यान चल रहा है ! ओह, कितने वेग से चल रहा है ! सारे गुरुत्वाकर्षण और अन्तरिक्ष की किरणों को चुनौती देता हुआ, यह उल्का-पिंड तो समीप ही आ गया।

आकाश : उसके भीतर कोई व्यक्ति ज्ञात होता है।

[मानव का प्रवेश]

आकाश : कितना निर्भीक ज्ञात होता है। (आगे बढ़कर) तुम कौन हो ज्योति किरण ?

मानव : मैं मानव हूँ। पृथ्वी से आ रहा हूँ (रुककर) क्या मुझे तुमसे भी युद्ध करना होगा ? अभी तक किए गए युद्धों की क्या समाप्ति नहीं हुई ? युद्ध···युद्ध···

कक्षा : न···न···युद्ध···युद्ध···नहीं। मैं···मैं तो शक्ति और सौन्दर्य की उपासिका हूँ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी यहाँ एक दैत्य आया था, वह बिना युद्ध के ही संहार करना चाहता था।...ये स्थिर रहने वाले आकाश हैं और मैं...मैं...तो परिक्रमा करने वाली हूँ।

मानव : मैं किसी को भी अपनी परिक्रमा करने का अधिकार नहीं देता। किसी भी परिधि का केन्द्र बन जाना स्थिरता है, और मैं स्थिरता में विश्वास नहीं करता।

कक्षा : न...न...तुम स्थिर न रहो मानव! तुम गतिशील बने रहो। मैं तुम्हारी गति को ही केन्द्र मानकर उतने ही वेग से तुम्हारी परिक्रमा करूँगी।

मानव : तुम बुद्धिमती ज्ञात होती हो! तुम्हारा परिचय?

कक्षा : (लज्जित होकर) मेरा...मेरा...परिचय क्या? मैं कक्षा हूँ। साहसी व्यक्तियों के चरणों की रेखा हूँ! अभी एक स्पूतनीक आया था!

मानव : मैंने ही उसे वायुमण्डल का पता लेने के लिए भेजा था। वह तो अब अपनी परिक्रमा समाप्त कर रहा होगा!

आकाश : तुम कहाँ जा रहे हो मानव?

मानव : चन्द्रलोक! अपनी ही पृथ्वी के उस भाग में जो सृष्टि के प्रारम्भ में ही हमसे बिछुड़ गया था। हम उससे पुनः अपना सम्बन्ध जोड़ेंगे।

आकाश : क्या पृथ्वी तुम्हारे निवास के लिए यथेष्ट नहीं?

मानव : छोटी से छोटी वस्तु यथेष्ट हो सकती है, और बड़ी से बड़ी वस्तु भी यथेष्ट नहीं! यह तो प्रवृत्ति की दिशा है। क्या आप भी परिस्थितियों के अनुसार घटते और बढ़ते नहीं हैं?

आकाश : परिस्थितियों को रूप देने के लिए मुझे अनेक रूप धारण करने पड़ते हैं।

मानव : तो फिर मानव भी तुम्हारी प्रकृति का अधिकारी है। एक बात पूछता हूँ!

कक्षा : मुझसे भी तो कुछ पूछो मानव!

मानव : चलते समय तुमसे भी पूछूँगा, कक्षा रानी! लेकिन यह प्रश्न आकाश के लिए है!

आकाश : मैंने सृष्टि के आरम्भ से ही प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दिया है।

मानव : इतना गम्भीर प्रश्न नहीं है। मैं तो यही पूछना चाहता हूँ कि यदि कोई वस्तु या व्यक्ति अपने घर में ही सन्तुष्ट होकर बैठ जाए, और उनके समीप रहने वाले जो अनेक पड़ोसी हों, उनसे बात भी न करे, तो ऐसे व्यक्ति को तुम क्या कहोगे?

आकाश : जड़!

मानव : तो हमारी पृथ्वी के पड़ोस में जो अनेक नक्षत्र हैं, जो हमें प्रति रात्रि को निमन्त्रण देकर बुलाते हैं, क्या उनके समीप जाना कोई अभद्रता है?

आकाश : नहीं!

मानव : तो हमारे सबसे समीप चन्द्र है। आज हम वहाँ जा रहे हैं। कल बुध, मंगल, बृहस्पति और शुक्र का निमन्त्रण भी स्वीकार करेंगे।

आकाश : मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, मानव! तुम्हारे साहस की कथा अमर रहेगी!

कक्षा : मैं भी तुमसे प्रसन्न हूँ, मानव! तुम महान हो!!

मानव : अब तुमसे पूछता हूँ, कक्षा रानी! मानव की इच्छा का क्या महत्त्व यदि वह

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य में परिणत न हो ?

कक्षा : इच्छा तो वही सार्थक है, जिसकी सेवा में कार्य सेवक की भाँति पहुँच जाता है।

मानव : तो कार्य को मैं सेवक बनाना चाहता हूँ।

कक्षा : यदि कोई सेविका बनना चाहे तो ?

मानव : (मुस्कराकर) इसका निर्णय तो सेविका पर ही है। मेरे पास इतना समय नहीं है ! मैं अब आगे बढ़ूँगा ! दोनों को नमस्कार करता हूँ ! (प्रस्थान)

आकाश : तुम्हारी यात्रा मंगलमय हो मानव !

कक्षा : मानव ! तुम्हारी जय हो ! आज से मैं तुम्हारी गति की ही कक्षा बनूंगी ! तुम्हारे चरणों की रेखा में मैं रंग भरूँगी ! आकाश ! तुम मानव की गति के लिए और भी विस्तृत बनो ! मैं उसकी प्रगति के चरणों में माला बन कर समर्पित हो जाऊँगी ! चलो !

[दोनों का प्रस्थान।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम की आँखें

पात्र-परिचय

मदनमोहन :	नगर के प्रतिष्ठित वकील	(आयु 32 वर्ष)
रेखा :	उनकी पत्नी	(आयु 26 वर्ष)
बैजनाथ :	मुवक्किल	(आयु 40 वर्ष)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय : संध्या 5 बजे

स्थान : मदनमोहन वकील के बँगले का बैठकखाना।

[रेखा एक आराम-कुर्सी पर बैठी हुई एक पुस्तक 'दि एपिक आफ माउंट एवरेस्ट' पढ़ रही है। मदनमोहन के आने की पग-ध्वनि। रेखा पढ़ना बन्द कर सिर उठाती है।]

रेखा : अच्छा आप हैं, कहिए, आ गए !

मदन : हाँ, अभी ही चला आ रहा हूँ। कोर्ट आज देर से उठा और मेरा केस सबसे आखीर में था। इसीलिए कुछ देरी हो गई। और तुम्हारा पढ़ना तो खतम नहीं हुआ ! क्या पढ़ रही हो ?

रेखा : कुछ नहीं, यों ही। यह पुस्तक हाथ लग गई ! बड़ी रोचक है, बैठ जाइए न !

मदन : (बैठते हुए) हाँ, आज दिन भर इस कोर्ट से उस कोर्ट जाते-जाते थक गया। काम बहुत था, खड़े-खड़े पैर दर्द करने लगे। ये लो ! (बैठते हैं।)

रेखा : इस आराम-कुर्सी पर !

मदन : नहीं, इसी पर आराम से हूँ। हाँ, तुम किसी पुस्तक के बारे में कह रही थीं ?

रेखा : यह पुस्तक आपकी आलमारी में ही तो रखी हुई थी, 'दि एपिक आफ माउंट एवरेस्ट' ! बड़ी अच्छी पुस्तक है ! सबसे अच्छी बात जो इस पुस्तक में है वह यह है कि मनुष्य असफल होने पर भी हर बार अपनी शक्ति को बढ़ाता हुआ अजेय प्रकृति को अपनी अनुचरी बना लेता है। और हुआ भी यही, शेरपा तेनसिंह ने अंत में उस पर विजय प्राप्त कर ही ली ! अभी तक माउंट एवरेस्ट ने मानव को पराजित किया था, वह उसके मस्तक पर अभी तक तिलक नहीं कर सका। उसके चरणों पर चींटियों की तरह ही रेंगता था। किन्तु मनुष्य की शक्तियाँ असीम हैं, और आज वह माउंट एवरेस्ट के मस्तक का अभिनन्दन करके ही रहा।

मदन : अभिनन्दन किया या उसे अपने पैरों से कुचला ?

रेखा : मनुष्य अपनी विजय में तो यह सब करता ही है किन्तु माउंट एवरेस्ट के शिखर पर चढ़कर जब उसने अपनी शक्ति की घोषणा की तो उसकी वाणी विश्व-भर में फैल गयी।

मदन : किन्तु एवरेस्ट के शिखर पर चढ़ा हुआ मनुष्य कितना छोटा लगा होगा ! जैसे विशाल हिमशिखर के ऊपर एक काला धब्बा ! मनुष्य ने अभी तक प्रकृति पर जितनी विजय प्राप्त की है, उसमें वह स्वयं काला धब्बा होकर रह गया है !

रेखा : लेकिन यह भी तो सोचिए कि प्रकृति पर विजय प्राप्त करने में उसे कितनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुविधाएँ प्राप्त हो गई हैं ! उसने संसार के दूर से दूर देश को अपने ही घर का एक कोना बना लिया है, जहाँ छोटे से छोटे समाचार उसे एक क्षण में मिल जाते हैं। एरोप्लेन पर चढ़कर वह देश की सीमाओं को ऐसे पार कर जाता है, जैसे आप स्वदेशी नुमायश की एक दुकान से दूसरी दुकान पर पहुँच जाते हैं !

मदन : हाँ ! वह पुरानी बात तो नई होती जान पड़ती है कि वामन भगवान ने साढ़े तीन पैर में ही सारे ब्रह्मांड को नाप लिया ! पहले यह शरीर की शक्तियों से होता था, अब मशीनों से होता है।

रेखा : तो उसमें हानि क्या है ? समय तो ऐसा आने वाला है कि आप यहाँ जबलपुर में बैठे न्यूयार्क की कोर्ट में अपनी प्रैक्टिस कर सकें। अभी यह आश्चर्यजनक मालूम होता है, आगे चलकर यह जीवन का एक साधारण और स्वाभाविक क्रम हो जाएगा !

मदन : तब तो मनुष्य मशीनों की तरह काम करने लगेगा और हम चुम्बक की एक ऐसी मशीन बन जावेंगे जो गरीबों के रक्त-बिन्दुओं को रुपयों में बदल कर खींचने लगेगी !

रेखा : खैर ! ऐसी प्रैक्टिस तो आपकी चली नहीं है। लेकिन अगर ऐसा हो जाए कि प्रत्येक क्षेत्र में मशीन मनुष्य के हाथों की जगह ले ले, तो मनुष्य का कितना परिश्रम बच जाए। छोटे कामों की उलझनों से उसका दिमाग स्वतन्त्र हो जाए और वह नई-नई बातों को सोचने के लिए सदैव उत्सुक और प्रफुल्लित रहे।

मदन : लेकिन परिश्रम से बचकर मनुष्य का दिमाग अवकाश की उच्छृंखलता में दानव भी बन सकता है। जहाँ विज्ञान के सहारे वह अपनी सुविधाओं को बढ़ाने की चेष्टा करेगा, वहाँ वह अपने विनाश को भी निमंत्रण देगा। सुख और संतोष के अनुपात में उसकी चिन्ताएँ भी बढ़ेंगी ! मित्रता में वह एरोप्लेन पर चढ़कर किसी दूसरे देश में अपने मित्र से क्षण भर में मिल सकता है तो शत्रुता में वह उतने ही कम समय में आग भी बरसा सकता है या अपने ऊपर आग बरसाने का निमंत्रण भी दे सकता है। हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम की घटना से आज भी इतिहास जल रहा है !

रेखा : तो यह तो मनुष्य के स्वभाव का दोष है ! विज्ञान का दोष कैसे कहा जा सकता है ? मनुष्य सहानुभूति के बदले शत्रुता मोल न ले ! यदि एक एटम बम अपनी ज्वाला से हिरोशिमा और नागासाकी को खँडहर बना सकता है, तो दूसरा कोई हाइड्रोजन बम एक सेकिण्ड में अपनी शीतलता से संसार भर की खेती को हलकी फुहारों से सींच सकता है और दूसरे दिन ही संसार के खेतों में नन्ही-नन्ही बालों को लहराने का अवसर दे सकता है !

मदन : हो सकता है ! लेकिन मनुष्य में पशुत्व अभी बाकी है। वह अपना स्वार्थ इतनी जल्दी भुला नहीं सकता ! इंच भर शक्ति और फुट भर अधिकार मिलते ही वह एक पिशाच में बदल जाता है !

रेखा : पशु एक पिशाच में बदल जाता है !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदन : हाँ, क्योंकि वह स्वार्थी है !

रेखा : तो इतने वर्षों की सभ्यता और संस्कृति मनुष्य को पिशाच बनने से नहीं रोक सकी ?

मदन : रोकना तो दूर की बात है ! मैं तो कहूँगा कि आज की सभ्यता मनुष्य को पिशाच बनाने की मशीन है। यह बुद्धि की सभ्यता है, श्रद्धा की नहीं। स्वार्थ-बुद्धि में मनुष्य किसी भी क्षण, पशु से पिशाच बन किसी दूसरे का गला काटने लगता है। इसीलिए महात्मा गांधी ने हृदय के परिवर्तन को सच्ची सभ्यता की कसौटी समझा ! और इस दृष्टिकोण से मैं तो कहूँगा कि शहर से अधिक गाँव के लोग सभ्य हैं।

रेखा : शहर से अधिक गाँव के लोग सभ्य हैं !

मदन : हाँ, क्योंकि वे बुद्धिवादी होकर अपने स्वार्थ में अँधे नहीं हो गए हैं ! उनमें परस्पर सहानुभूति है, श्रद्धा है ! स्वार्थ-साधन में रुपयों का बड़ा हाथ है, जो बेचारे गाँव वालों के पास नहीं है ! नगर-लक्ष्मी ने शहरों को गाँवों से बहुत दूर कर दिया है ! और दोनों को दूर करने में यह रुपयों की विभाजन-रेखा है ! नगरों की सभ्यता तो रुपयों की गोलाई में पृथ्वी की गोलाई देखती है !

रेखा : तो हम लोग जो नगरों में रहते हैं, असभ्य हैं ?

मदन (कुछ हँसकर) मैं नगरों में रहने वाले सभी आदमियों के सम्बन्ध में ऐसा तो नहीं कह सकता ! नियम में अपवाद होते ही हैं, लेकिन साधारणतः तो ऐसा कहा ही जा सकता है कि नगरों की अपेक्षा गाँव के लोग कहीं सच्चे और कहीं आत्मीय हैं ! आधुनिक सभ्यता जो नगरों में फैली है भौतिक है, जिसने मनुष्य का अंतः-करण दबाकर इंद्रियों को उभार दिया है और इंद्रियों ने उसकी शारीरिक इच्छाओं और वासनाओं में पंख लगा दिए हैं—पंख, जिनसे वे दूर-दूर तक उड़ने लगी हैं ! मनुष्य पर आज इंद्रियों का ही अधिकार है; यहाँ तक कि प्रत्येक पुरुष की ग्यारह स्त्रियाँ हो गई हैं; और प्रत्येक स्त्री के ग्यारह पति !

रेखा : ग्यारह स्त्रियाँ और ग्यारह पति !

मदन : हाँ, पुरुष पर शरीर की दस इंद्रियाँ वैसे ही अधिकार जमा कर काम कराती हैं। दस इंद्रियाँ और एक तुम—ग्यारह। मेरी ग्यारह स्त्रियाँ हुईं या नहीं।

रेखा : (व्यंग्य से) और मेरे ग्यारह पति ?

मदन : तुम अपने सम्बन्ध में सिर्फ दस कह सकती हो ! मुझे छोड़ दो ! तुम्हारी दस इंद्रियाँ तुमसे वैसे ही सेवा लेती हैं जैसे दस पति अपनी स्त्रियों से सेवा लेते हैं। मेरी तो खैर कोई हस्ती नहीं ! अगर होती तो मैं ग्यारहवाँ पति होता !

रेखा : (झुंझलाहट-भरी हँसी हँसते हुए) देखिए, आप मेरा अपमान कर रहे हैं !

मदन : मैं तुम्हारा अपमान नहीं कर रहा हूँ रेखा ! सिद्धान्त की बात कह रहा हूँ ! आज की सभ्यता की आलोचना कर रहा हूँ !

रेखा : कभी गाँव वालों की अपेक्षा मुझे असभ्य कह रहे हैं, कभी मेरे ग्यारह पतियों की बात कर रहे हैं। यह मेरा अपमान नहीं है ?

मदन : मैं सब स्त्रियों और पुरुषों के सम्बन्ध में कह रहा हूँ रेखा ! केवल तुम्हारे सम्बन्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में नहीं। आज बार-लाइब्रेरी में महात्मा गांधी के 'हरिजन' में एक लेख पढ़ रहा था !

रेखा : (बीच ही में) तो आजकल बार-रूम में यही होता है ! आप लोगों की वकालत चलती नहीं है। अखबार और समाचारपत्र ही पढ़े जाते हैं ! इसीलिए ये सब बातें सूझती हैं ! किसी को असभ्य कहना, किसी को लांछित करना ! आज कितने रुपये मिले ?

मदन : आज तो रुपये नहीं मिले। जब मुकदमा पूरा हो जाता है, तब कहीं रुपये मिलते हैं। परसों जो पेशगी रुपये मिले थे, वे मैंने तुम्हें दे ही दिए थे।

रेखा : तो वे थे कितने ! सिर्फ पचास ! सो वह कपड़े वाला ले गया !

मदन : तो तुम चाहे जिसे दे दो ! रोज तो रुपये मिलने से रहे ! आजकल वकालत भी ऐसी चौपट हो रही है कि पहले जहाँ 600 रुपये मिलते थे वहाँ मुश्किल से तीन-साढ़े तीन सौ पर मामला खत्म हो जाता है। मेहनत उतनी ही, लेकिन पैसे उससे आधे भी नहीं और अब न्याय-पंचायत और ग्राम-पंचायत सिर पर सवार। अब ···अब तो आत्महत्या करने पर ही वकीलों की इज्जत-आबरू बचेगी !

रेखा : कोई विशेष अन्तर नहीं होगा ! पहले वकील दूसरों की हत्या करते थे, अब अपनी करेंगे ! और पर-हवन की अपेक्षा आत्म-हवन कहीं अच्छा है !

मदन : अच्छा तो तुम मुझे आत्महत्या के लिए उत्साहित करती हो ?

रेखा : मैं क्यों उत्साहित करूँगी ! आपकी तरह मैं भी सिद्धान्त की बात कर रही हूँ ! जैसी ग्यारह पतियों की बात थी, वैसी ही आत्महत्या की बात है !

मदन : अच्छा, तो तुम मुझसे बदला ले रही हो !

रेखा : बदला लेने का मेरा स्वभाव है भी नहीं ! मैं तो 50 रुपये की बात कर रही थी, जो कपड़े वाला ले गया !

मदन : तो कपड़ों पर इतना खर्च क्यों करती हो ?

रेखा : इसकी भी आलोचना आप कीजिए ! आपके एक सूट में चाहे दो सौ रुपये खर्च हो जाएँ, कोई बात नहीं ! अगर एक साड़ी मैं 50 रुपये में खरीद लूँ तो आप उसकी आलोचना करेंगे ! कहाँ संसार के लोग अपनी स्त्रियों की सुविधा के लिए जमीन-आसमान एक कर देते हैं; एक आप हैं कि 50 रुपये की एक साड़ी की बात पर कहते हैं, कपड़ों पर इतना खर्च क्यों करती हो ?

मदन : मेरी बात तुम उलटी समझती हो, रेखा ! मैं तो यह सिर्फ इसलिए कह रहा था कि एक मद पर अधिक खर्च होने पर तुम्हें ही और चीजों का प्रबन्ध करने में कठिनाई होगी। मुझे तो जितना भी मिलता है, वह तो मैं तुम्हारे हाथों में रख ही देता हूँ !

रेखा : आप तो यह कहकर फुर्संत पा जाते हैं, मुसीबत होती है मेरी ! घर का सारा प्रबन्ध भी करूँ और आपकी आलोचनाएँ भी सुनूं !

मदन : यह तुम्हारी उदारता है, रेखा !

रेखा : (बीच ही में) कि मैं आपकी आलोचनाएँ सुनूं ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदन : तुम तो बीच ही में बात काट देती हो ! मैं तो यह कह रहा था कि…

रेखा : (बीच ही में) अच्छी बात है ! मैं अब कभी बीच में बोलूंगी भी नहीं !

मदन : तुम तो थोड़ी-सी बात में बुरा मान जाती हो, रेखा ! मैं तो यह कह रहा था कि आदमी को सब तरह से सम्हालना चाहिये। अच्छे दिनों में खुश रहे और बुरे दिनों में भी घर की खुशी कम न होने दे !

रेखा : (अन्यमनस्कता से) हूँ !

मदन : और पत्नी तो जिन्दगी की वह नियामत है जो जिन्दगी की राह के काँटों को भी छूकर फूल बना देती है !

रेखा : (अन्यमनस्कता से) हूँ !

मदन : आज के अखबार में ही यह खबर छपी है कि छपरे के एक गाँव में एक स्त्री सती हो गई ! पति महाशय बीमार थे, चार महीने से दवा हो रही थी। अन्त में डाक्टर ने जवाब दे दिया—'आज की शाम इनकी आखिरी शाम है !' स्त्री ने दुःख से अपने शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़क लिया और आग लगा ली ! पति के पहले ही स्त्री चल बसी !

रेखा : (अन्यमनस्कता से) हूँ !

मदन : इसी तरह कल के अखबार में था कि पति के शरीर में खून नहीं था। डाक्टरों ने कहा, कि इनके शरीर में खून पहुँचाया जाए, तो बच सकते हैं ! स्त्री ने अपने शरीर से आधा पौंड खून दे दिया। स्त्रीं खुद मूर्छित है। (रुक कर) तुम तो कुछ बोलती भी नहीं हो !

रेखा : क्या बोलूं ? बोलती हूँ तो आप कहते हैं कि तुम बीच ही में बात काट देती हो !

मदन : तो हमेशा तुम मेरी बात को काटती नहीं हो ! अब इन स्त्रियों के समाचारों को ही लो !

रेखा : क्या इस तरह की स्त्रियों की खबरों के सिवाय अखबार वाले पुरुषों की खबर नहीं छापते ?

मदन : छापते क्यों नहीं ? किन्तु मैं तो यह सिद्ध करना चाहता था कि पत्नी जिन्दगी की वह नियामत है जो जिन्दगी की राह के काँटों को छूकर फूल बना देती है !

रेखा : और पति जिन्दगी की राह पर उछल-कूद मचाता हुआ बन्दर की तरह चले और पत्नी जिन काँटों को फूल बना दे, उन्हें सूंघने के बजाय खा जाए !

मदन : रेखा ! अब तुम मेरा अपमान कर रही हो !

रेखा : मैं अपमान नहीं करती ! लेकिन पतियों के लिए भी तो कुछ कर्तव्य होने चाहिये ! समाज का काम सिर्फ स्त्रियों को शिक्षा देना है, पुरुषों को नहीं ! जो समाज पक्ष-पात करे, उसे नष्ट हो जाना चाहिये !

मदन : लेकिन समाज कब पुरुषों पर अनुशासन नहीं रखता ! पुरुष सारे संसार में घूमता है, हजारों आदमियों से मिलता है। उसकी व्यवहार-बुद्धि अधिक पैनी हो जाती है। इस प्रकार का अवसर स्त्रियों को कम मिलता है। वे स्वभाव से ही लज्जा करने वाली होती हैं। संसार के संघर्षों में पुरुषों की तरह भाग नहीं ले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकतीं। इसलिए उनकी बुद्धि···

रेखा : अधिक निश्चल रहती है। पुरुष सारे संसार में घूमता है, सब तरह के लोगों से मिलता है, तो उसकी बुद्धि अधिक उच्छृंखल हो जाती है ! वह धोखेबाज और फरेबी हो जाता है !

मदन : मुझमें कौन सा धोखा-फरेब है ?

रेखा : मैं कहूँ, आप बुरा तो न मानेंगे ? आपने मेरा कब ध्यान रक्खा है ? दूसरे पुरुष की कुरूपा स्त्री भी आपको आकर्षित कर सकती है, लेकिन ! ···

मदन : (बीच में ही कुछ तीव्र स्वर में) रेखा ! ···

रेखा : बस, स्वर बदल गया ! मैं इधर बीमार रहूँ, आपको अपने कोर्ट के काम से एक दिन की फुर्सत नहीं। जब पिता के घर थी, तो मामूली सिरदर्द होने पर सिविल सर्जन आते थे, इंजेक्शन लगते थे; अब तो यहाँ बुखार भी आ जाय तो डाक्टर नहीं आता !

मदन : मैं तुम्हारे पिता से अगर आधा भी धनवान होता, तो सब कुछ करता ! लेकिन अब भी क्या कुछ नहीं करता ! फिर सिरदर्द तो अमृतांजन से भी अच्छा हो सकता है ! सेरिडान से भी काम चल सकता है ! मैं व्यर्थ पैसा बहाने का आदी नहीं हूँ।

रेखा : तो क्या मेरे बाबूजी पैसा बहाने के आदी हैं ? देखिये। आप मेरे पिता के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते !

मदन : मैं तुम्हारे पिता जी के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह रहा हूँ ! मैं तो अपनी स्थिति के बारे में कह रहा हूँ ! जैसे रहते बनता है, वैसे रहता हूँ !

रेखा : क्या कहते हैं ? आपने मुझे इतने सुख भी तो नहीं दिए कि मैं आपकी अच्छी-बुरी बातें चुपचाप देखूँ और सुनूँ ! जब बाबूजी के साथ कहीं जाती थी तो सेकेंड क्लास से कम में कहीं गई भी नहीं ! आपने कभी मुझे इन्टर से ऊँचे दर्जे में बिठलाया है ? मेरा तो दम घुट जाता है उस भीड़ में !

मदन : तब तो शायद थर्ड क्लास में बैठने वाले ट्रेन में बैठते ही दम घुटने से मर जाते हैं ! हिन्दुस्तान की इस गरीबी में कम से कम इतनी शान शोभा नहीं देती ! इतनी सुकुमारता से जीवन कट नहीं सकता !

रेखा : तो ऐसी मैं क्या सुकुमार हूँ जो आपकी जिन्दगी के कटने में बाधा डाल रही हूँ ? आपके कमरे में मखमली गद्दे तो बिछे हैं नहीं कि मैं उन्हीं पर आराम करूँ और दीन-दुनिया की खबर भूल जाऊँ ! मेरे सिर पर यूडिकोलोन मला जाय और मुझे नींद न आय ! फूल की कली चिटखे और कान में दर्द बढ़ जाय !

मदन : ये बातें रहने दो ! लेकिन रात-दिन शीशे के सामने बैठकर अपनी आँखें देखना, सुरमा लगाना, भौंहों के बाल चुनना, बाल सँवारना, पौमेड-रूज लगाना···इन सब की भी एक हद होती है !

रेखा : (तड़पकर) आपको क्या अधिकार है मेरी इस तरह आलोचना करने का ? ऐसी बातें मैंने कभी नहीं सुनीं ! मामूली शरीर की सफाई करने में भी आपको एतराज होता है ? और ऐसे एतराज की मैं परवाह क्यों करूंगी ? बाल सँवारना पौमेड-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

रूज़ लगाना ! इनमें कौन-सी नई बात हो गई ? ऐसे पति को मैं क्या कहूँ, जिसे साफ़-सुथरी पत्नी भी अच्छी नहीं लगती ! ऐसे पति को चाहिये थी गाँव की एक गँवारिन···जिसको कपड़े-लत्ते पहनने का ढंग भी न आता हो !

मदन : ठीक, मुझे गाँव की गँवारिन ही चाहिये थी ! मुझे सुरमे-भरी आँखें नहीं चाहिये, मुझे प्रेम की आँखें चाहिये ! जिन आँखों में जीवन की करुणा हो, जिनमें छिद्रान्वेषण न हो, किन्तु मेरे दोषों के प्रति सहानुभूति हो ! जिन प्रेम की आँखों में दर्द के आँसू हों···और जिन आँखों की शीतल छाया में कोर्ट के कामों से थका हुआ आकर सो रहूँ !

रेखा : तो ले आइये ऐसी कोई गाँव की गँवारिन ! अभी कुछ नहीं बिगड़ा है !

मदन : अब क्या लाऊँगा ! हमारा विवाह तो ऐसा होता है कि उसमें जिन्दगी का फैसला एक बार ही हो जाता है (गहरी साँस लेकर) ओफ ओह ! पिताजी कहते थे कि हमेशा अपने घर से गरीब घर में शादी करना अच्छा होता है ! लड़की अपने पिता के घर से पति का घर मिलान कर, पति को मन ही मन देवता समझती है··· 'दि एपिक आफ माउंट एवरेस्ट' पर बहस नहीं करती ! अपने से अधिक धनवान लड़की के मिजाज ही नहीं मिलते ! दिमाग सातवें आसमान पर रहता है; पति का घर उसे अपने पिता के बँगले के आउट हाउस जैसा दिखता है !

रेखा : जब आपके ऐसे विचार हैं, तब तो मेरे लिए इस घर में जगह ही नहीं होनी चाहिये ! आप इन विचारों को अभी तक मुझसे छिपाये क्यों रहे ? मैं बहुत पहले ही आपके रास्ते से हट जाती ! मैं भी इस प्रकार कभी लांछित न होती ! ठीक है, मैं यहाँ से चली जाऊँगी ! मुझे भी अपने आत्मसम्मान का ख्याल है !

मदन : तो कहाँ जाने का विचार है ?

रेखा : आप मुझे समझते क्या हैं, कि मैं कहाँ जाऊँगी ! जाऊँगी अपने पिताजी के घर पर ! जिन पिताजी को मेरे पीछे आपकी कटु आलोचना मिला करती है और ऐसी आलोचना···(बाहर दरवाजे पर खट्-खट् की आवाज सुनकर अपना स्वर कुछ नीचा करके) अच्छी बात है ! तो मैं जाने की तैयारी करती हूँ ।

[मदनमोहन दरवाजे के समीप जाता है । रेखा का प्रस्थान ।]

रेखा : (तीव्र स्वर में) कौन है ?

स्वर : वकील साहब घर में हैं ?

मदन : कौन पुकारता है ? मैं इस समय किसी से बातचीत नहीं करना चाहता !

स्वर : सरकार, एक मुकदमा है ।

मदन : जाओ, इस वक्त यहाँ से दूर हटो ! मेरे सिर में दर्द है !

स्वर : सरकार, मर जाऊँगा ! आपकी सरन में आया हूँ भगवान की दया से···

मदन : (दरवाजा खोलकर) कौन है ?

स्वर : मैं हूँ, सरकार ! एक मुसीबत का मारा गरीब आदमी । सरकार गरीब-परवर हैं ! भगवान की दया से···

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[एक व्यक्ति का प्रवेश ।]

मदन : मैंने कह दिया कि इस वक्त मैं कोई बातचीत नहीं करना चाहता, मेरे सिर में दर्द है !

आगन्तुक : नहीं सरकार ! एक मिनट सुन लें । बहुत जरूरी मुकदमा है ।

मदन : जाओ जी, तुम खामखा मेरा दिमाग चाट रहे हो । मैं इस वक्त कोई बात नहीं करूँगा । अभी तो आया हूँ कोर्ट से । फिर उसी चक्की में पिसने लगूँ ।

आगन्तुक : (शिथिलता से) अच्छी बात है, सरकार ! जैसी मरजी ! भगवान की दया से, मैं घर जा के क्या मुँह दिखलाऊँगा···कह दूंगा कि सरकार बहुत थक गये थे । मेरा भाग ही चुल्लू भर का है, तो समन्दर का क्या दोष !

मदन : एक मिनट को चैन नहीं (कुछ रुक कर) अच्छा बोलो, क्या कहना चाहते हो ?

आगन्तुक : वाह सरकार ! बहुत दीन-दयालु हैं । जब सरकार ने पूछ लिया, तो भाग फिर गये, पुराने जमाने की बात झूठी थोड़ी हो सकती है । 'बड़े बड़ाई न तजें, कोटिक लहै कलेस ।'

मदन : अरे कहोगे भी, बात क्या है ?

आगन्तुक : सरकार ! बहुत जबर मुकदमा है, आपके ऊँचे नाम ने बुला लिया सरकार ! ···'तरुवर सोई बिलम्बिये, बारह मास फलेत ।'

मदन : देखो ! जरूरत से ज्यादा बात मत करो । मेरे पास वक्त ज्यादा नहीं है । क्या नाम है तुम्हारा ?

आगन्तुक : बैजनाथ, सरकार !

मदन : हाँ, तो क्या बात है ?

बैजनाथ : सरकार ! जायदाद का मामिला है । अब आपई पार लगाएँ, सरकार ! भगवान की दया से ।

मदन : कैसी जायदाद का ?

बैजनाथ : सरकार ! आपके सम्हालने से सम्हल जायेगा, नहीं तो घर-गिरती जायेगी, सरकार ! मंगलिया दानों-दानों को तरस जायगा, सरकार ! मंगलिया की माँ से वचन हार आया हूँ । 'तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार,' सरकार !

मदन : कैसा वचन हार आया है ?

बैजनाथ : सरकार ! उसने कहा—तुमसे कुछ नहीं होने का ! तुम तो घर में बैठे कबीर की बानी बाँचोगे, भगवान की दया से । मंगलिया की जिन्दगी को डुबा के तुम भी सागर के पार नहीं जा सकते ! सरकार ! घरवाली भी तो दाने-दाने को तरस रही है ! उसने कुछ गहने दे के मंगलिया की जिन्दगानी और अपनी इज्जत बचाने के लिए भेजा है, सरकार !

मदन : तो किसलिए भेजा है ?

बैजनाथ : सरकार ! दोनों जून सत्तू भी नहीं मिल पाता । ऐसे हमारे खराब दिन आ गए सरकार ! घरवाली ने दो दिन से ननहीं खाया, सरकार !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदन : तो तुम अपनी घरवाली से कह क्यों नहीं देते कि वह अपने बाप के घर जाकर रहे ! क्यों तुम गरीबों के साथ तकलीफ उठाती हो ?"

बैजनाथ : सरकार ! हमने तो कई बेर उससे कहा, भगवान की दया से कि तुम अपने बाप के घर चली जाओ, हम गरीब के साथ क्यों पिसती हो ! उसका बाप सरकार ! बड़ा आसामी है, भगवान की दया से। दस बीघे की खेती है सरकार ! बैजनाथ क्या है उसके मुकाबले में ! उसको अपने बाप के घर तकलीफ न होगी सरकार ! पानी लौट के समुन्दर में पहुँच जाएगा ! पर सरकार ! भगवान की दया से, उसकी समझ में कुछ आता नहीं ! वो कहती है कि जो तुम्हारी हालत होगी, सो मेरी हालत होगी। जे कौन बात कि तुम तो दाने-दाने को तरसो और मैं मौज से अपने बाप के घर रहूँ ?

मदन : ऐसा कहती है तुम्हारी घरवाली ! और जब वह बीमार पड़ती है, तब डाक्टर-वैद्य बुलाते हो ?

बैजनाथ : सरकार ! एक तो वो बीमार नहीं पड़ती, भगवान की दया से, कभी-कभी सिर में दर्द होता है तो लौंग पीस के···

मदन : खैर, जाने दो इस बात को ! तो तुम्हारी घरवाली ने भेजा है ?

बैजनाथ : हाँ, सरकार ! उसी के कहने से आया हूँ। उसने अपने चार गहने भी दिए हैं, भगवान की दया से कि उनको बेच के वकील साहब की फीस दे देना। सो सरकार ! उसके गहने लाया हूँ। क्या करता, सरकार ? पास में एक पैसा भी नहीं है। गहने न लेता तो सरकार की फीस कहाँ से देता ? पर सरकार ! गहने देते वखत उसकी आँखों में पानी भर आया था सरकार ! सब भगवान की दया है, पै मुकदमा तो लड़ना है, सरकार ! 'पुरजा-पुरजा होई रहे, तऊ न छाँड़ें खेत !' मुकदमा तो जबर है, सरकार !

मदन : तुम्हारा गाँव कहाँ है ?

बैजनाथ : सरकार, बैलखेड़ी हमारा गाँव है, भगवान की दया से। पारसाल बाप मर गए। बड़े भाई हरनाथ ने सब जायदाद ले ली ! दारू पीने में एक लम्बर है सरकार ! जब पी लेता है, सरकार ! औरत को औरत नहीं रहने देता। घरवाली के हाथ-पाँव चूर कर देता है, सरकार ! जबान पर गाली-गलौज की मसाल जला लेता है, और भैरों बाबा की तरह बलकता है, सरकार ! उसने बाप की जायदाद से एक पैसा भी हमको नहीं दिया। खेत से बेदखल करने को कहता है और आसामी भेज के मारने की धमकी देता है; सरकार ! पास में पैसा नहीं, मंगलिया दूध बिना बिलबिलाता रहता है। और जब उससे दूध के लिए पैसा माँगते हैं, सरकार ! तो कहता है कि तुम दोनों को जेहल भिजवा दूँगा।···

मदन : जेल भिजवाना इतना आसान नहीं है !

बैजनाथ : सरकार की छाह छू लूँ तो किसकी हिम्मत है कि मुझको और मंगलिया की माँ को जेहल भेजे। भगवान की दया से दाँत उखाड़ लूँगा उसके गिनके, सरकार ! वो तो मंगलिया की माँ में हिम्मत नहीं है, सरकार ! जो आँखों को गीला किए

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती है, नहीं तो पलक भाँज के मेरे साथ खड़ी जो जाए, तो हरनाथ को दारू पीना भूल जाए !

मदन : तो मंगलिया की माँ रोती क्यों है ?

बैजनाथ : अब सरकार ! धीरज तो मैं बहुत बँधाता हूँ ! धीरज मोटी बात है, पै औरत जात ठहरी, सरकार ! गाली भी देती है, तो रोते-रोते देती है। मैंने आज उसको रोते देखा तो पगड़ी बाँध के उठ खड़ा हुआ, सरकार ! बोला—मंगलिया का हक जीत के लाऊँ, तब तो बैजनाथ नाम ! लाठी कन्धे पै रख के खड़ा हो गया, भगवान की दया से। उसने पहिले तो बोली—देखूँगी तुम्हारा पुरखारत ! फिर गहने उतार के दे दिए। अब बात हार आया हूँ, सरकार !

मदन : खैर, सब ठीक हो जाएगा ! मैं तुम्हारा मुकदमा ले लूँगा।

बैजनाथ : वह, सरकार ! क्या कहना है ! भगवान की दया से बड़ों की बड़ी बातें। 'साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय। सार-सार को गहि रहे, थोथा देय उड़ाय।' ···अब तो सरकार, मैं मंगलिया की माँ से कहूँगा कि दर्शन कर ले, तेरे लिए भगवान धरती पै उतरे हैं !

मदन : ये सब कहने की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हारा मुकदमा कर दूंगा, लेकिन जानते हो, मेरी फीस बहुत ऊँची है ?

बैजनाथ : सरकार का नाम ऊँचा है तो फीस भी ऊँची होगी ! मेहनत-मजूरी करके फीस पटा देंगे। ये तो देवता की पूजा दाखल है। मैंने तो मेहनत करके फीस पटाने की बात घर पे कही थी···पै सरकार ! मंगलिया की माँ ने अपने सगरे गहने उतार के दे दिये और कहने लगी कि इन गहनों के होते हुए तुम्हें मजूरी करते नहीं देखूंगी ! ···सरकार ! आपकी फीस कितनी है ?

मदन : पचास रुपये !

बैजनाथ : सरकार ! भगवान की दया से मेहनत-मजूरी कर के पटा देंगे। हमने मंगलिया की माँ के गहने बाजार में दिखाये थे। दुकानदार कहता था कि सब गहना 20 रुपये का होगा। सरकार ! अब तो उसके तन पै एक गहना भी नहीं रहा !

मदन : तो पहले से जब मुकदमे की फीस नहीं होगी, तो मुकदमा कैसे चलेगा ?

बैजनाथ : सरकार ! अभी गहनों को बेच के 20 रुपया दे दूंगा। बाकी की फीस मेहनत-मजूरी करके दे दूंगा, सरकार ! मंगलिया की माँ के सामने बचन हार आया हूँ, भगवान की दया से।

मदन : अच्छा।

बैजनाथ : और सरकार ! एक दरखास और है। सरकार को पाटन चलना पड़ेगा। मुकदमा वहीं की अदालन में है।

मदन : पाटन ? लेकिन इस वक्त तो मैं पाटन नहीं जा सकता। घर में तबीयत ठीक नहीं है और साथ में कोई है भी नहीं।

बैजनाथ : ऐं सरकार ! घर में तबीयत खराब है ? मैं दौड़ के किसी बैद को बुला लूं ? नहीं मेरे लायक जौन काम···

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदन : खैर, इसकी जरूरत तो नहीं है ? इस वक्त तो तुम्हारे मुकदमे···

बैजनाथ : हाँ, सरकार ! एक दिन की बात है ! सरकार, कोई इंतजाम कर लें तो बड़ी मेहरबानी हो। भगवान दाखल हैं सरकार ! 'चाहें तो मेरु को छार करें और चाहें तो छार को मेरु बनावें।' हाँ, सरकार !

मदन : तो तुम कोई दूसरा वकील कर लो।

बैजनाथ : अब सरकार ! मँझधार में आप ही हाथ लगा सकते हैं और की क्या बिसात सरकार ! हम दूसरे वकील भी कर सकते हैं, पर सरकार ! उनपै हमारा भरोसा कैसे आये ! 'कल्पवृक्ष को छोड़ के कौन थूहर के झाड़ देखै।'

मदन : (सोचते हुए) अच्छा !

बैजनाथ : सरकार ! कोई बात मन में न लायें, भगवान की दया से। जो हुकुम होयगा, उसको करेंगे।

मदन : तुमने अपनी घरवाली के गहने बेचे तो नहीं ?

बैजनाथ : सरकार ! अभी तो नहीं बेचे। पै जब हुकुम करेंगे तो बेच के सरकार की फीस···

मदन : नहीं, उन्हें बेचने की जरूरत नहीं है।

बैजनाथ : काहे सरकार !

मदन : मैं तुम से फीस नहीं लूंगा। गहने अपने पास रक्खो। जब अपने घर जाओ तो गहने अपने हाथ से अपनी घरवाली को पहना देना।

बैजनाथ : (अत्यन्त उल्लास से) अरे, वाह दीन-दयालू ! ···गरीब-परवर ! ···

मदन : और उससे कह देना कि वकील साहब किसी गरीब औरत के गहने बिकवाकर अपनी फीस नहीं लेते।

बैजनाथ : अरे, सरकार ! आप साच्छात भगवान हैं। (पैरों पर गिरता है) वाह-वाह, दीन-दयालू ! मेरी बात रह गई। अरे, मंगलिया की माँ···

मदन : उठो जी, यहाँ मंगलिया की माँ कहाँ है ? यह सब ठीक नहीं है। यह मेरा काम है कि गरीब पर कोई जुल्म न होने पाये।

बैजनाथ : और सरकार ! आपने फीस भी नहीं ली, दीन-दयालू !

मदन : अब आगे चलकर झगड़ों के सुलझाने में कोई फीस भी नहीं ली जायगी। ग्राम-पंचायत में फैसला हो जाया करेगा।

बैजनाथ : सरकार ! आप सब कुछ कर सकते हैं। आप दीनबन्धु !

मदन : मैं नहीं, सरकार करेगी। अब तो अपने देश में अपना राज है। सरकार खुद गरीबों का ध्यान रखकर उसके झगड़े बिना खर्च के पंचायतों से सुलझवा देगी।

बैजनाथ : वाह, धन्य है, आपको और आपकी सरकार को, भगवान की दया से···

मदन : तो कब चलना है ?

बैजनाथ : सरकार ! भगवान की दया से कलई चलें तो बड़ी मेहरबानी हो जाय। 'काल करे सो आज कर···'

मदन : तुम बहुत भगत आदमी मालूम देते हो !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैजनाथ : सरकार ! मैं तो पैर की धूर हूँ, सरकार ! आपके पुण्य परताप से चार बानी सीख गया हूँ । और…

मदन : अच्छा-अच्छा ! अब जाओ ! कल सुबह आना, कल चलेंगे ।

बैजनाथ : और सरकार ! मुकदमे की बातचीत ?

मदन : वह सब सुबह कर लेंगे ।

बैजनाथ : और सरकार, आपकी मेहरबानी से गहने न बिकें, पर चाहे जहाँ से फीस तो भगवान की दया से…

मदन : (तीव्र स्वर से) देखो, बैजनाथ ! जब मैं एक बार कह चुका हूँ तो फिर फीस नहीं लूंगा । जाओ, तुम कल सुबह आना ।

बैजनाथ : सरकार ! हमारे और मंगलिया की माँ के चाम की पैतरी भी आप पहन लें, तो हम आप से उरिन नहीं होयँगे ।

मदन : अच्छा जाओ !

बैजनाथ : (पैर छूते हुए) दीन-दयालू की दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ोतरी होय. भगवान की दया से ! 'मल निर्मल ते रहित ते साधू कोई न और ।' सरकार ! जै राम जी की ! ('सरकार की बढ़ोतरी होय' कहते हुए धीरे-धीरे प्रस्थान)

मदन : (धीरे से टहलते हुए) मंगलिया की माँ के गहने ! सारे गहने वह उतार कर कहती है, इन गहनों के होते हुए तुम्हें मजूरी करते नहीं देखूंगी ? ये हैं प्रेम की आँखें, जो पति को मजूरी करते नहीं देख सकतीं ?…ये आँखें प्रेम की आँखें हैं जो सुरमे-भरी आँखों से अच्छी हैं ? प्रेम की आँखें हैं…

[रेखा का प्रवेश]

मदन : क्यों, तैयार हो गई तुम ? पिता के घर कब जा रही हो ?

रेखा : कल ।

मदन : सब सामान ठीक हो गया ?

रेखा : कल ठीक हो जायगा ।

मदन : किसके साथ जाओगी ?

रेखा : बैजनाथ के साथ ।

मदन : बैजनाथ के साथ ? कौन बैजनाथ ?

रेखा : जो अपनी स्त्री के गहने लाया है ।

मदन : वह तो आसामी है, मुवक्किल है, उसके साथ कहाँ जाओगी ?

रेखा : पाटन !

मदन : पाटन ?

रेखा : हाँ, पाटन !

मदन : मैं तुम्हारी बातें कुछ समझ नहीं रहा हूँ ?

रेखा : इसमें कठिनाई क्या है ? मैं कल पाटन जाऊँगी बैजनाथ के साथ । इच्छा हो तो आप भी चलिए ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदन : मैं तो जाऊँगा ही। मुझे उसका एक मुकदमा करना है!

रेखा : तो ठीक है, आप भी चलिए!

मदन : लेकिन तुम पाटन जाकर क्या करोगी?

रेखा : मैं मंगलिया की माँ की आँखें देखूँगी, जो गहने होते हुए अपने पति को मजूरी करते नहीं देख सकती!

मदन : मालूम होता है, तुमने मुकदमे की सारी बातें सुनी हैं?

रेखा : हाँ, मैंने सारी बातें सुनी हैं और मैं एक बात समझी!

मदन : क्या?

रेखा : बतलाऊँ?

मदन : बतलाओ।

रेखा : वह यह कि गाँव की स्त्री, शहर की स्त्री से अच्छी होती है। सुरमे से भरी आँखों की अपेक्षा उसकी प्रेम-भरी आँखें अच्छी हैं।

मदन : अच्छा! यह तुमने मान लिया? और पुरुष के बारे में क्या समझा?

रेखा : गाँव के पुरुष की अपेक्षा शहर का पुरुष अच्छा होता है।

मदन : यह कैसे?

रेखा : आपने फीस नहीं ली। किसी गरीव स्त्री के गहने बिकवाकर आपने फीस नहीं ली।

मदन : यह तो मेरा कर्तव्य था।

रेखा : मैं ऐसे कर्तव्य को कुछ पुरस्कार देना चाहूँ, तो उसे मना न कीजिएगा!

मदन : वह क्या?

रेखा : दिन भर के परिश्रम से आप थक गए हैं, इसलिए आपके लिए जलपान!

मदन : (हँस कर) अच्छा, जलपान! लेकिन एक शर्त पर।

रेखा : वह क्या?

मदन : वह तैयार करने में माउंट एवरेस्ट पर विजय प्राप्त करने की कठिनाई न उठानी पड़े?

रेखा : (हँसते हुए) आप प्रेम की आँखों से देखेंगे, तो कठिनाई कहाँ होगी?

मदन : मैं क्या देखूँगा? अपनी ही प्रेम की आँखों से देख लेना!

[दोनों की सम्मिलित हँसी। परदा गिरता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रलोक

(विज्ञान और मनोविज्ञान पर आधारित रूपक)

पात्र-परिचय

डा० शेखर : एक महान वैज्ञानिक जिसने गुप्त रूप से अनुसंधान करते हुए चन्द्रलोक तक पहुँचने का सफल प्रयोग किया।

कुमारी मंजुल : डा० शेखर की पुत्री

डा० दिलीप : चिकित्सा-शास्त्र में निपुण डाक्टर

चन्द्रपुरुष : चन्द्रलोक का निवासी मानव

चन्द्रनारी : चन्द्रलोक की मानवी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल : 1959 ई०
समय : चन्द्रलोक में सूर्योदय का प्रथम अंश

[चन्द्रलोक के भू-गर्भ का एक कक्ष। ऊपर लगे हुए एक यंत्र से नीले प्रकाश की एक छोटी-सी झील वन गई है जिसमें प्रकाश जल की भाँति प्रवाहित हो रहा है। कक्ष में वह नीले बादल की भाँति झूल रहा है जिसमें चारों ओर स्वच्छ और निर्मल ज्योति फैल रही है। कक्ष के कोने में स्थित दूसरे यंत्र से जमी हुई पतली हवा तरल होकर प्रवाहित हो रही है। इस्पात और प्लेटिनम से मिली हुई धातु से बैठने के अनेक तारिकाकृत स्थान बने हुए हैं। यद्यपि यह कक्ष चन्द्र के धरातल से तीन हजार फुट से अधिक गहराई में है परन्तु सामने ही पतले रजतपट पर विद्युत तरंगों से आकाश का चित्र खिंचा हुआ है जिसमें नक्षत्रों की चमक सहस्र गुनी होकर जगमगा रही है। दूसरे रजत-पट पर समस्त चन्द्रलोक का दृश्य है जिसमें स्पंज के आकार के ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और बड़ी-बड़ी गहरी खाइयाँ हैं। वहाँ जमी हुई सूक्ष्म वायु की लहरें स्थिर होकर रह गई हैं। गणित और ज्यामिति के सहारे सारा कक्ष ऐसे चुम्बकीय क्षेत्र में सँवारा गया है कि कक्ष के मध्य में रक्खे हुए यंत्र का कोई एक वटन दबाते ही कक्ष का सम्बन्ध चन्द्र के ऊपरी धरातल से हो जाता है और इच्छित नक्षत्र की किरण कक्ष में प्रवेश कर जाती है। वातावरण में लगातार एक ऐसी हलकी ध्वनि हो रही है जैसे आकाशवाणी का प्रसारण समाप्त होने पर खुले हुए रेडियो-सेट से शून्य वायु की ध्वनि निकलती रहती है। बीच-बीच में दूर से किसी गैस के विस्फोट की ध्वनि निकलती है अथवा किसी भटके हुए उल्का का घर्घर नाद सुनाई पड़ता है जो धीरे-धीरे मन्द होकर शून्य में विलीन हो जाता है।

तारिकाकृत मंच पर बैठे हुए डा० शेखर अपने हाथ में एक यंत्र लेकर देख रहे हैं। मंजुल आकाश के चित्रपट को देख रही है। प्रसन्नतापूर्ण शब्दों में मंजुल के कंठ से उल्लास की वाणी निकल रही है—]

मंजुल : (एक पूरी हँसी हँस लेने के बाद) चन्द्रलोक ! इस चन्द्रलोक को छोड़ कर अब कहीं जाने को जी नहीं चाहता पिता जी ! देखिए इस चित्रपट को, विद्युत तरंगों से सारा आकाश प्रतिबिम्बित हो रहा है। आकाश में नक्षत्र मंडल ऐसे जगमगा रहे हैं जैसे पृथ्वी के गुलाब के फूल पर ओस के बिन्दु चमकते रहते हैं और इस दूसरे चित्रपट पर चन्द्रलोक कैसा दीख रहा है ! ओह, बिलकुल स्पंज के आकार का। वड़े-बड़े ऊँचे पहाड़ और गहरी खाइयाँ। ऐसा ज्ञात होता है जैसे किसी बुढ़िया का झुर्रीदार चेहरा हो··· (हँस कर) झुर्रीदार चेहरा ! देखिए न।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० शेखर : (ध्यानमग्न मुद्रा में) हाँ !

मंजुल : और पिता जी ! डा० दिलीप कहते थे कि गणित और ज्यामिति के सहारे सारा कक्ष ऐसे चुम्बकीय क्षेत्र में सँवारा गया है कि कक्ष के मध्य में इस यंत्र का कोई भी बटन दबा दीजिए, मनचाहे नक्षत्र की किरण इस कक्ष में आ जाती है। सूर्योदय के समय मैंने पृथ्वी की किरण का बटन दबाया था। सारी पृथ्वी चित्रपट पर खिंच गई बिलकुल नारंगी जैसी। उसमें मैंने अपना प्यारा भारतवर्ष देखा था। यहीं से मैंने अपना प्यारा भारत देखा था।

डा० शेखर : (पूर्ववत गम्भीरता से) हूँ।

मंजुल : अब यही देखिए पिता जी ! कमरे की छत से प्रकाश पानी की तरह वह रहा है जैसे कोई सरोवर है। बिलकुल निर्मल नीला प्रकाश ! बहुत विचित्र बातें हैं। हवा को ही लीजिए। अपनी पृथ्वी पर तो हम हवा में साँस लेते थे, यहाँ जमी हुई हवा खाते हैं जैसे आइसक्रीम हो ! (हँसती है) हवा की आइसक्रीम। (फिर हँसती है) और अगर चलने के लिए पैर उठाएँ तो उछल जाते हैं बीस गज, बिलकुल मेढ़क की तरह। (कुछ गम्भीरता से) पिता जी ! अगर आपकी तरह मैं भी अनुसंधान करूँ तो कहूँगी कि मेढ़क चन्द्रलोक का ही जीव होगा। उछलते-उछलते चन्द्रलोक के किनारे पहुँचा होगा और फिर जो उछला होगा तो ठीक हमारी पृथ्वी के बीचो-बीच धम से गिरा होगा। तब से बेचारा उछल ही रहा है। कहीं चन्द्रलोक मिलता ही नहीं उसे।

डा० शेखर : (गम्भीरता से) हाँ···!

मंजुल : अरे, आप तो कुछ बोल भी नहीं रहे हैं पिता जी ! कौन-सा यंत्र देख रहे हैं ?

डा० शेखर : अपने राकेट-यान का ही यंत्र है जिसकी हमें लौटते समय आवश्यकता होगी।

मंजुल : क्षमा कीजिए पिता जी, मैंने आपके गम्भीर चिन्तन में बाधा डाली। मैं बहुत दुष्ट हूँ।

डा० शेखर : नहीं मंजुल ! अपनी पृथ्वी पर पुनः लौटने की योजना बना रहा हूँ। कहीं असफल न हो जाऊँ, इसलिए यह नवीन यन्त्र बना रहा हूँ। इसके लिए बहुत सावधानी चाहिए।

मंजुल : यह तो ठीक है किन्तु पिता जी ! अभी हमें यहाँ आए दिन ही कितने हुए हैं ! जितने वर्षों आपने इस यात्रा की साधना की उतने दिन भी तो आप नहीं रुक रहे हैं।

डा० शेखर : हमने अपनी यह यात्रा गुप्त रूप से की है। अपने राष्ट्र को भी इसकी सूचना नहीं दी। डर था, यदि असफल हो जाता तो सारा संसार हमारे राष्ट्र की हँसी उड़ाता।

मंजुल : आपके प्रयोग कभी असफल नहीं हुए।

डा० शेखर : किन्तु यह प्रयोग पिछले सभी प्रयोगों से महान् था। किस कठिनाई से हम लोग यहाँ आ सके हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंजुल : आपके वर्षों की साधना जो थी, पिता जी !

डा० शेखर : दो लाख अड़तालीस हजार मील की यात्रा ! अपनी पृथ्वी से यह चन्द्रलोक ! इस अंतरिक्ष के अनन्त सागर में एक छोटी-सी लहर की तरह हम बढ़े। ऐसी लहर जो कहीं भी भटक सकती थी—कहीं भी टकरा सकती थी। छत्तीस हजार मील प्रति घंटे की गति से हम चले। इस नक्षत्रलोक के यहाँ संगीत में एक छोटे से स्तर की भाँति 'सम' पर आकर ही रुके।

मंजुल : पिता जी ! आपके विज्ञान के इस महायज्ञ का पुण्य लूटने के लिए मैं भी साथ चली आई और डा० दिलीप भी। मैं जानती थी कि आपके प्रयोग कभी असफल नहीं होंगे। मृत्यु का रहस्य खोल कर आपने मृतकों तक को जीवित रूप में दिखला दिया। ओर अन्त में, मेरे पीछे आपने अपना यन्त्र तक तोड़ डाला।

डा० शेखर : किन्तु इस प्रयोग में शायद हम स्वयं टूट जाते। हमारा यान जिस दिशा में चल रहा था, यदि उसी दिशा में आकाश के अन्तराल को भेदता हुआ कोई धूमकेतु हमसे टकरा जाता तो इस महाकाश में एक चिनगारी ही दीख पड़ती और उसके साथ हम भी बुझ जाते। सदैव के लिए। अंतरिक्ष में बिछी हुई कास्मिक किरणें जिस वेग से आकाश का कण-कण भेदती हैं, उससे कौन जीवित रह सकता है ?

मंजुल : किन्तु धातुओं के विचित्र संयोगों से बने हुए आपके कवच हमारे यान और शरीर को सभी संकटों से बचा कर यहाँ ले आए।

डा० शेखर : यह सब प्रभु की कृपा है।

मंजुल : और विज्ञान पर आपका अधिकार भी तो है। यह कितनी बड़ी सफलता है कि जो चन्द्र पहले केवल कवियों की कल्पना का केन्द्र था वही आज जीवन का सत्य है। यहाँ भी प्राणी हैं और वे हमारे जैसे ही हैं।

डा० शेखर : हमसे अधिक सभ्य और सुसंस्कृत।

मंजुल : हाँ, जब हम सब अपने यान से उतर कर सूर्यास्त से पूर्व ही चन्द्रलोक के धरातल पर भटक रहे थे तब यहाँ के निवासियों ने कितने कुतूहल और कितने प्रेम से हमारा स्वागत किया।

डा० शेखर : वे भी जानना चाहते थे कि हम किस लोक से आए हैं और तब दो नक्षत्र आपस में मिले, दो संसार परस्पर जुड़े, एक ही प्रेम के सूत्र में। कितनी शीघ्रता से वे हमें चन्द्र के ऊपरी धरातल से अपने निवास स्थान इस भू-गर्भ में ले आए।

मंजुल : नीचे उतरने का वह छोटा-सा यान कितना सुन्दर था।

डा० शेखर : और कितने शीघ्र हम इस भू-गर्भ में पहुँच गए। धरातल से तीन हजार नौ सौ फुट नीचे।

मंजुल : (आश्चर्य से) तीन हजार नौ सौ फुट ?

डा० शेखर : हाँ, चन्द्रलोक के निवासियों की वैज्ञानिक गति आश्चर्यजनक है। उन्होंने चन्द्र के भीतर निवास करने की कला सीखी है। धरातल से हजारों फुट नीचे। चन्द्र के धरातल पर कोई नहीं रह सकता। न वहाँ हवा है, न पानी। ज्वालामुखी पर्वतों के विस्फोटों और सूर्य की असह्य धूप ने इस छोटे से चन्द्र का सब कुछ छीन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया। जैसे यह प्रकृति का दंड हो। असह्य गर्मी और सह्य शीत। दिन में धरातल का तापमान जानती हो कितना होता है? पानी के उबलने के बिन्दु से 60 डिग्री अधिक और शीतमान होता है बर्फ के जमने के बिन्दु से 210 डिग्री नीचे।

मंजुल : ओफ, इतनी गरमी और इतनी ठंड? जैसे दोनों में होड़ लगी हो। पर पिता जी, आप तो बड़े वैज्ञानिक हैं। कभी मृत्यु का रहस्य खोजते हैं, कभी चन्द्रलोक तक चले जाते हैं। इस तीखी गर्मी और करारी ठंड को भी ठीक कर दीजिए न?

डा० शेखर : इसकी अपेक्षा यही अच्छा है कि भू-गर्भ में निवास किया जाए। चाँद की मिट्टी सड़ कर खोखली हो गई है इसलिए चन्द्र के निवासियों ने भी यहीं रहना ठीक समझा। उन्होंने विज्ञान में जैसी उन्नति की है, वैसी हम लोग भी नहीं कर पाए।

मंजुल : यह आपने कैसे जाना, पिता जी?

डा० शेखर : उनके यंत्रों से। अब यही यंत्र लो (पास से एक यंत्र उठाते हैं) जो यहाँ के लोग हमें कल दे गए हैं। देखो इसे। इस यंत्र से विश्व की कोई भी भाषा समझी जा सकती है। जब चन्द्र का कोई निवासी बोलता है तो यह यंत्र बीच में रख दिया जाता है। उस ओर से उसकी भाषा प्रवेश करती है, इस ओर से वह हिन्दी बनकर निकलती है। इस ओर से हिन्दी प्रवेश कर उस ओर चन्द्रीय भाषा बनकर निकलती है। ध्वनि संचार के लिए उन्होंने विचित्र प्रकार के ईथर का निर्माण किया है जो इस भू-गर्भ में ही संभव है; धरातल पर नहीं। इसी ईथर और आक्सीजन से इस चन्द्र के भू-गर्भ में हवा बनती है। देखो वह यंत्र। (संकेत करते हैं) बिना शब्द किए चल रहा है। इसी हवा में हम और चन्द्र के निवासी साँस ले रहे हैं।

मंजुल : सचमुच! बड़े आश्चर्य की बात है। और यह भी तो देखिए! (ऊपर छत की ओर संकेत करती है) प्रकाश की झील जिससे प्रकाश पानी की तरह बहता है। पिता जी! ये चन्द्र के निवासी मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।

डा० शेखर : लाखों वर्षों का इसका इतिहास है। ये हमसे अधिक सभ्य हैं। चन्द्रमा हमारे पृथ्वी का ही भाग था जो उससे टूट कर अलग हो गया। यह चन्द्र हमारी पृथ्वी से छोटा था इसलिए यह ठंडा हुआ और वह अनेक सभ्यताओं से गुजरा। उन सभ्यताओं से गुजरने के बाद वह प्रकृति और मानवता के सब रहस्य जान गया। इसने ईर्ष्या, घृणा और युद्ध का अन्तिम रूप देख लिया। अब तो वह प्रेम और विश्व-बन्धुत्व का उपासक है। उसका विज्ञान शान्ति और सुख के लिए न जाने कितने आविष्कार कर चुका। मैं समझता हूँ कि एटम बम से अधिक इनके प्रेम में शक्ति है।

मंजुल : पिता जी! इन लोगों के सम्बन्ध में एक बात पूछना चाहती हूँ। इन चन्द्र-वासियों के पैर छोटे और सिर बड़े क्यों होते हैं?

डा० शेखर : प्रकृति ने ही उन्हें यह रूप दिया है। तुम जानती हो कि यहाँ चन्द्रलोक में गुरुत्वाकर्षण बहुत कम है। वह हमारी पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के छठे भाग से अधिक नहीं है। इसलिए चलने में उन्हें न तो मेहनत करनी पड़ती है और न अधिक चलने

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आवश्यकता ही होती है। यहाँ एक डग में बीस गज तक उड़ा जा सकता है।

मंजुल : यह तो मैं स्वयं कह रही थी।

डा० शेखर : तो पैर से परिश्रम न लेने में इनके पैर छोटे रह गए हैं। सिर इसलिए वड़ा है कि ये लोग बड़े बुद्धिमान और मेधावी हैं। इन्होंने सैकड़ों आविष्कार कर डाले हैं। मस्तिष्क से अधिक काम लेने के कारण सिर वड़ा हो गया है। लेकिन देखने में सुन्दर और स्वस्थ हैं।

मंजुल : अगर हम लोग कुछ दिन यहाँ रह गए तो इन्हीं की तरह हो जाएँगे। सिर बड़ा और पैर छोटे! छोटे पैर होने से मैं साड़ी कैसे पहिनूँगी?

डा० शेखर : तुम भी इन्हीं की भाँति सफेद लचीली धातुओं के कपड़े लपेट लेना!

मंजुल : तो फिर खिलौने की गुड़िया और मुझमें अन्तर क्या रह जाएगा? बिलकुल गुड़िया जैसी दिखूँगी।

डा० शेखर : तू तो मेरे लिए सदैव एक छोटी-सी गुड़िया है।

मंजुल : अच्छा पिता जी! एक बात और ध्यान में उलझ गई। यहाँ भू-गर्भ में रहने वाले मानवों में, जो हमें सतह पर मिले थे, इतना अन्तर क्यों है?

डा० शेखर : मैंने कहा न, प्रकृति के प्रभावों से ही शरीर में भेद हो जाता है। जैसे अफ्रीका में रहने वाले हबशियों का शरीर हमारे शरीर से रूपरंग में कितना भिन्न होता है। इसी तरह चन्द्रलोक की ऊपरी सतह पर रहने वालों का चमड़ा अधिक कठोर और मोटा हो जाता है जिससे वे गर्मी और शीत की अधिकता सहन कर सकें, जैसे कछुवे का चमड़ा होता है न, वैसा ही।

मंजुल : अच्छा, यहाँ मानवों के अतिरिक्त और कोई जीवधारी नहीं रहते?

डा० शेखर : नहीं।

मंजुल : क्यों? हमारे यहाँ तो लाखों प्रकार के जानवर हैं, हाथी से लेकर मच्छर तक! आदमी से लेकर ऊदबिलाव तक।

डा० शेखर : चन्द्र के धरातल पर पानी और हवा तो नहीं है। जंगल भी नहीं है। जले हुए पहाड़ और ज्वालामुखी से बने हुए गड्ढे हैं। मछली, मेढ़क, बन्दर, भालू कहाँ रहेंगे? यह तो मानव की बुद्धि है कि वह गर्मी और शीत से अपने को बचाकर भू-गर्भ में चला आया। बड़े-बड़े नगरों का निर्माण किया और अपनी शक्ति से उसने जीवन के लिए सभी आवश्यक वस्तुओं का आविष्कार कर लिया। जीवन के लिए उसने पृथ्वी तल निकाल लिया और पानी के लिए ईथर को तरल कर लिया। भोजन-पानी के बिना साधारण जीव कहाँ से होंगे!

मंजुल : तो प्राकृतिक भोजन होने के कारण यहाँ कोई बीमार तो पड़ता ही न होगा?

डा० शेखर : बिलकुल नहीं। कल एक चन्द्रनिवासी से बातें हुईं थीं। वह कहता था कि यहाँ कोई बीमार ही नहीं पड़ता।

मंजुल : इसी यंत्र से आपने बातें की होंगी।

डा० शेखर : हाँ, और कोई दूसरा साधन ही क्या था? वही तो यह यंत्र लाया था। मैंने उससे यहाँ के जीवन के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें पूछ डालीं। तुम तो दूसरे कक्ष में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वड़े तारों के प्रतिबिम्ब देख रही थी।

मंजुल : मैं होती तो मैं भी बहुत-सी बातें पूछती !

डा० शेखर : फिर कभी पूछ लेना। हाँ, तो वह कह रहा था कि यहाँ कोई बीमार ही नहीं पड़ता। आकाश के तारों की भाँति सभी स्वास्थ्य से चमकते रहते हैं।

मंजुल : तारों की भाँति चमकते रहते हैं पर कभी-कभी तारे टूटते भी तो हैं।

डा० शेखर : हाँ, टूटते हैं ! जब कहीं कोई विस्फोट होता है तो उसकी अग्नि में जल कर या किसी भूमि की दरार में दब कर ये लोग मर जाते होंगे। लेकिन कभी बीमार नहीं पड़ते। सदा तन्दुरुस्त रहते हैं। (रुक कर) डा० दिलीप कहाँ हैं ?

मंजुल : वे एक चन्द्रवासी के साथ किसी गुफा में चले गए हैं। वे यहाँ भी अपनी दवाइयाँ खोज रहे हैं। भला, यहाँ उन्हें कौन-सी दवाइयाँ मिलेंगी ?

डा० शेखर : वे यहाँ की भूमि की परीक्षा कर देखना चाहते हैं कि चन्द्र निवासियों की तन्दुरुस्ती का क्या रहस्य है। मेरी धारणा कुछ और है। यहाँ के निवासी इसलिए तन्दुरुस्त हैं कि उन्हें किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं है। यदि मनुष्य चिन्ता के शिकंजे से छूट जाए तो···

[सहसा एक यंत्र से विचित्र प्रकार की सीटी-सी बजती है।]

मंजुल : (चौंककर) यह कैसा शब्द है, पिता जी !

डा० शेखर : (उठकर) ठहरो, मैं समझने की चेष्टा करता हूँ। (एक क्षण ध्यान से सुनते हैं। सीटी के बन्द होने पर) यह सोवियत संघ का सन्देश है। सुई जिस अक्षांश पर है वहाँ साइवेरिया का अणु केन्द्र है।

मंजुल : सोवियत संघ का क्या सन्देश है ?

डा० शेखर : देखो, मैं अणु-भाष यंत्र सामने रखता हूँ। जो भी भाषा होगी उसका रूपान्तर हिन्दी में हो जाएगा।

[यंत्र रखने की आवाज होती है। सीटी फिर एक बार बजती है और थोड़ी देर के बाद रुक जाती है। फिर एक भारी स्वर में सन्देश सुनाई पड़ता है—]

हलो···हलो···चन्द्रलोक···हमारा ल्यूनिक ठीक स्थान पर पहुँचा···हलो···अब हम आदमी भेजने का प्रयत्न कर रहे हैं···ल्यूनिक में हमारा राज्यचिह्न है···हलो ···राज्यचिह्न···हँसिया और हथौड़ा···ल्यूनिक में एक ट्रांसमीटर भी है। वेव लेंग्थ है 00104 उसी से चन्द्रलोक से संदेश भेजिए। हलो···चन्द्र निवासी, संदेश की तरंग भेजिए। तरंग भेजिए ! हलो···हलो···तरंग भेजिए।

[लगातार किसी तार जैसा कम्पन होता रहता है।]

मंजुल : यह सोवियत संघ कौन-सा संदेश भेजने को कहता है ? आप कोई संदेश भेजेंगे ?

डा० शेखर : संदेश भेजूँ ? लेकिन कैसे भेज सकता हूँ ? अनेक कठिनाइयाँ हैं। पहली कठिनाई तो यह है कि चन्द्र के धरातल पर सूर्य डूबने और शीत बढ़ने से पहले किसी चन्द्रवासी को भेजा जाए जो सोवियत संघ द्वारा भेजे गए ल्यूनिक की खोज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करे और उसमें से ट्रांसमीटर निकाले और दूसरी कठिनाई अपने आप को प्रकट करने की है।

मंजुल : पिता जी ! भावुक तो आप स्वभाव से ही हैं। फिर अपनी इस भावुकता में अपने भारत को ही सन्देश भेज दीजिए।

डा० शेखर : भेजने का प्रयत्न कर सकता हूँ पर ट्रांसमीटर नहीं है। दुवारा जब आऊँगा तब भेजना अच्छा होगा।

मंजुल : और यदि इस बीच सोवियत संघ के लोग आ गए तो यहाँ पहली बार आने का श्रेय उन्हीं को मिलेगा।

डा० शेखर : श्रेय कैसे मिलेगा ? हम लोग अपनी राष्ट्र-ध्वजा यहाँ छोड़ जायेंगे।

मंजुल : तब तो रूसी वैज्ञानिक आश्चर्य में पड़ जायेंगे कि भारत ने विज्ञान में चुपचाप कितनी प्रगति कर ली।

डा० शेखर : अभी तो हमें चलकर संसार को यह संदेश देना है कि चन्द्रलोक में हम सब अपनी शत्रुता भूलकर एकसाथ निवास कर सकते हैं। पृथ्वी और चन्द्रलोक सुख और शान्ति के दो किनारे हैं। यहाँ भी हम अपने निवास के लिए विस्तृत भूमि पा सकते हैं।

मंजुल : ठीक है पिताजी ! हमारे देश की बढ़ती हुई जनसंख्या से हमारे प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल जी बहुत चिन्तित हैं। उनकी चिन्ताएँ कम हो जाएँगी। भोजन और जनसंख्या का प्रश्न हमारे देश के सामने गंभीर रूप से है। (रुक कर) पिता जी ! आपको भूख तो नहीं लगी है ?

डा० शेखर : नहीं बेटी ! यहाँ तो भूख-प्यास, आलस-नींद का अनुभव ही नहीं होता।

[सहसा दूर से विस्फोट की ध्वनि सुनाई देती है।]

मंजुल : यह कैसा विस्फोट हुआ पिता जी ?

डा० शेखर : इस भू-गर्भ में चन्द्रवासियों के अनेक प्रयोग चला करते हैं। इन्हीं प्रयोगों से कोई विस्फोट हुआ होगा ?

मंजुल : इस विस्फोट से हमारा यह कक्ष भी हिल रहा है।

डा० शेखर : चिन्ता की बात नहीं। यह कक्ष ऐसी धातु से बना है जो हमारे यहाँ के रबर की भाँति है। यह झुक तो सकता है, टूट नहीं सकता। कल मैंने इसकी परीक्षा की थी।

मंजुल : यहाँ की सभी बातें विचित्र हैं। जड़ और चेतन एक से हैं। धातुएँ टूट नहीं सकतीं, मनुष्य भूख-प्यास का अनुभव नहीं करते।

डा० शेखर : भू-तत्वों को ग्रहण करने से भूख और प्यास की अनुभूति शरीर भूल ही गया है। जीवन बिना थके ऐसे चलता है जैसे अपनी पृथ्वी पर गंगा जी का प्रवाह है जो बिना थके शताब्दियों से एक सा बह रहा है। (रुक कर) तुम्हें भी शायद भूख न लगी होगी।

मंजुल : मैं आश्चर्य कर रही हूँ पिताजी ! दो दिनों से मैंने कुछ भी नहीं खाया और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति पहले जैसी ही है। न भूख है, न प्यास ?

[सहसा तार के कंपन जैसी ध्वनि होती है। उसके साथ ही डा० दिलीप का प्रवेश]

डा० दिलीप : (आते ही उल्लास के स्वर में) बधाई है, डाक्टर शेखर ! बधाई है ! भारत को बधाई दो।···भारत को बधाई दो ?

डा० शेखर : किस बात की बधाई ?

मंजुल : डा० दिलीप ! आप तो उड़ते हुए से आ रहे हैं। ऐसी कौन-सी बात हो गई जिससे आप बधाई चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे हैं ?

डा० दिलीप : डा० शेखर ! कुमारी मंजुल ! हमने अमृत-रस प्राप्त कर लिया। भारत ने अमृत-रस प्राप्त कर लिया। मैंने तन्दुरुस्ती का रहस्य खोज लिया···खोज लिया। हमेशा के लिए खोज लिया। अमृत-रस···अमृत-रस !

डा० शेखर : अमृत-रस ? किस प्रकार का अमृत-रस।

डा० दिलीप : मैं औषधियों की पहिचान के लिए यहाँ की भूमि की परीक्षा कर रहा था। उसी समय यह हाथ आ गया। अमृत-रस।

मंजुल : कैसे ?

डा० दिलीप : तुमने अभी किसी विस्फोट की आवाज सुनी ?

डा० शेखर : हाँ, अभी-अभी सुनी थी।

मंजुल : अरे, उससे तो हमारा धातु निर्मित कमरा भी हिलने लगा था।

डा० दिलीप : मैंने ही विस्फोट किया था। एक चन्द्रवासी की सहायता से एक अणु-चक्र चलाया। भगवान के सुदर्शन-चक्र की तरह। एक विशाल भू-खंड उखड़ गया। उससे उखड़ते ही घी की भाँति एक चिकना सफेद पदार्थ भूमि की दरार से लटक गया, साथ ही एक हाथ का अंश भी दीख पड़ा।

डा० शेखर : हाथ का अंश ?

डा० दिलीप : हाँ, हाथ का अंश ! पाँचों उँगलियाँ और कलाई। इस हाथ के साथ बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुएँ, अनेक प्रकार के रत्न और बड़े विचित्र यन्त्र निकल पड़े। वे शताब्दियों पूर्व यहाँ की सभ्यता के चिह्न ज्ञात होते थे और वह हाथ बिलकुल हमारे आपके हाथ की भाँति है जो एक पूर्ण विकसित मानव के हाथ की सूचना देता है। प्लेटिनम के अनेक यन्त्र हैं। वह चन्द्रवासी भी नहीं समझ सका कि ये यन्त्र किस आविष्कार के हैं और यह हाथ किसका है ?

मंजुल : वह हाथ स्त्री का है या पुरुष का ?

डा० दिलीप : यह मैं नहीं कह सकता।

मंजुल : उस हाथ में अँगूठी थी ?

डा० शेखर : तुम तो पृथ्वी के शृंगार की बात यहाँ भी सोचने लगी, बेटी !

डा० दिलीप : यन्त्र और हाथ चाहे जिस सत्य की सूचना दे पर मैं तो कहूँगा कि वह सफेद पदार्थ अद्भुत रस ही है।

डा० शेखर : डा० दिलीप ! डाक्टर होकर तुम सहज ही कल्पना कैसे करने लगे ?

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० दिलीप : यह कल्पना नहीं है डाक्टर ! यह वास्तविक सत्य है । जैसे ही यह सफेद पदार्थ भूमि की दरार से लटका, वैसे ही मेरे साथ के चन्द्रवासी ने जिज्ञासा से उसे अपने हाथ में ले लिया और उसका स्वाद चखा ।

डा० शेखर : स्वाद चखा ?

डा० दिलीप : चन्द्रवासी निर्भीक तो होते ही हैं । उसने हाथ में लिया और एक क्षण में उसका गुण पहिचान कर मुख में डाल लिया ।

मंजुल : फिर क्या हुआ ?

डा० दिलीप : पदार्थ के मुख में जाते ही उस चन्द्रवासी के मुख से प्रकाश की किरणें निकलने लगीं और उसमें इतनी शक्ति आई कि वह एक ही छलाँग में दो बार उस गुफा के चारों ओर घूम गया ।

मंजुल : तब तो सचमुच ही वह अमृत-रस है । शायद इसी बात को समझकर हमारे प्राचीन ऋषियों ने चन्द्र को सुधाकर या सुधाधर कहा है । डा० दिलीप, हम लोग पृथ्वी में शरद् पूर्णिमा के दिन खुले आकाश के नीचे दूध रख देते हैं । रात भर चन्द्रमा उस पर अमृत का रस डालता रहता है । सुबह हम लोग वह दूध पी लेते हैं । शायद शरद् पूर्णिमा के दिन चन्द्र के इसी भाग से किरणें निकलती होंगी ।

डा० दिलीप : बिलकुल सम्भव है । डाक्टर शेखर, आप किसी चिन्तन में डूब गए ?

डा० शेखर : वह चन्द्रवासी कहाँ है जिसके मुख से प्रकाश की किरणें निकलने लगी थीं ?

डा० दिलीप : वह उस स्थान से उसी समय चला गया । बड़े-बड़े प्राचीन यंत्रों को दो-तीन उँगलियों से ही उठाकर वह अपने साथियों को सूचना देने चला गया । वहाँ से लौटते समय वह सफेद पदार्थ मैं अपने साथ ले आया । देखिए, इसमें से भी कितनी किरणें निकल रही हैं । हमारी यात्रा तो सफल हो गई डाक्टर ! मैं आपको कितने धन्यवाद दूं कि आप मुझे अपने साथ ले आए । पृथ्वी पर लौटकर जब हम लोग है, जाएँगे तो इससे चाहे जिस रोगी को अच्छा कर सकेंगे ।

मंजुल : जरा मुझे दीजिए, मैं चखूं ।

डा० शेखर : (रोकते हुए) अभी नहीं । पहले मैं इसकी परीक्षा करूंगा । इसका जो प्रभाव यहाँ के मानव पर पड़ा है वह हम पर भी पड़े, यह आवश्यक नहीं है । संभव प्रभाव कुछ दूसरा ही हो । इसकी परीक्षा आवश्यक है ।

डा० दिलीप : डाक्टर, आप चाहे जैसी परीक्षा करें, किन्तु मुझे विश्वास है कि हम पर भी इस रस का प्रभाव वैसा ही पड़ेगा । देखिए यह पदार्थ धातु के इस पात्र में है किन्तु अपने तेज के कारण आर-पार देखा जा सकता है ।

[नेपथ्य में कोलाहल । नारी-पुरुषों का यह कोलाहल ठीक वैसा ही है जैसा बाँसुरी और मृदंग की ध्वनि का मिला-जुला रूप होता है । यह कोलाहल धीरे-धीरे पास आता जाता है ।]

डा० शेखर : यहाँ के निवासियों का कोलाहल ! यह क्यों हो रहा है ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंजुल : यह कोलाहल धीरे-धीरे पास आता हुआ जान पड़ता है।

डा० शेखर : हाँ, पास आता जा रहा है। इस लोक के इतने निवासी यहाँ किसलिए आ रहे हैं ?

डा० दिलीप : मेरा अनुमान है कि विस्फोट से मिली हुई चीजें देखकर ही ये इतने प्रसन्न हैं। अपनी पुरानी सभ्यता के चिह्न देखकर ये फूले नहीं समाते। देखिए, कितनी शीघ्र ये द्वार पर आ गए।

मंजुल : स्त्रियों का कंठस्वर अधिक उभरा हुआ है।

डा० शेखर : तो उन व्यक्तियों की बातें समझने के लिए अपने सामने यह अणु-भाष यंत्र रख लूँ। कोलाहल कुछ शान्त हो रहा है।

[यंत्र रखने की ध्वनि होती है। यंत्र से जो भाषा निकलती है वह बहुत सुरीली है। चन्द्रपुरुष की भाषा सरोद के स्वर की है और चन्द्रनारी की भाषा सितार के स्वर की है। शीघ्र ही कोलाहल शान्त हो जाता है।]

चन्द्रपुरुष : (आगे बढ़ते हुए) भारत के महापुरुषों का यश हमारे लोक के सूर्योदय की भाँति सुख देने वाला हो।

डा० शेखर : धन्यवाद !

चन्द्रनारी : भारत की इस स्त्री का यश तारों की ज्योति की भाँति निखरा रहे।

मंजुल : धन्यवाद !

चन्द्रपुरुष : हम समस्त चन्द्र-जनता की ओर से बोल रहे हैं। भारत के पुरुषों ने यहाँ आकर अपने प्रेम का परिचय दिया है।

डा० शेखर : हमारे प्रेम को पहिचानने में आपकी कृपा है।

चन्द्रनारी : उस प्रेम के कारण मैं आपको अपने लोक का जनगीत सुनाऊँगी।

[सितार की मीड के स्वर में ध्वनि उठती है—]

शून्य की गति बीच
रह-रह नाचते अणु के अखंडित रूप
रह-रह नाचते
शून्य की नीहारिका के केन्द्र बिन्दु अनूप
रह-रह नाचते।
रह-रह नाचते।

[कुछ देर तक ध्वनि लहराती रहती है।]

मंजुल : (उल्लास के स्वरों में) बहुत मधुर है। बहुत सुन्दर है। आपका कंठ कितना कोमल है। आपके इस प्रेम के लिए अनेक धन्यवाद हैं।

डा० दिलीप : तारों के संगीत की ध्वनि से आपने अपना कंठ मिला लिया है। बहुत सुन्दर। आप जितनी सुन्दर हैं, उतना ही सुन्दर आपका कंठ है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रनारी : आप अच्छी बातें करते हैं।

डा० शेखर : चन्द्रलोक के नागरिको ! आप लोगों ने जिस प्रेम से हम भारतवासियों का स्वागत किया है, वह हमारे भविष्य के लिए भी मंगलमय है। हमारी पृथ्वी अपने बिछड़े हुए अंग चन्द्र से फिर मिल रही है और दोनों लोक अलग-अलग रह कर भी मानव-कल्याण के लिए आविष्कार करने में एक ही रहेंगे।

चन्द्रपुरुष : हमारे लोक अलग-अलग भी नहीं रहेंगे। हम लोग अपने आविष्कारों से ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं कि धीरे-धीरे हमारा यह लोक जिसे आप चन्द्रलोक कहते हैं, आपके लोक से—जिसे आप पृथ्वी कहते हैं—बिना किसी झटके के जुड़ जाय और हम दोनों एक ही नक्षत्र के निवासी बन जाएँ।

चन्द्रनारी : आप भी अपने आविष्कारों से यही करें। आप हमारी ओर बढ़ें, हम तो आपकी ओर बढ़ेंगे ही। यदि हम दोनों के लोकों के चुम्बकीय क्षेत्र विचलित नहीं हुए तो हम अपनी कक्षाएँ समीप ले आएँगे और आकाश के किसी अन्य ग्रह से टकराने की संभावना आने ही नहीं पाएगी। केवल सावधानी की आवश्यकता है।

डा० शेखर : हम भी इसके लिए प्रयत्न करेंगे। हमारे लोक में अब भी मानव युद्ध में विश्वास रखता है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की उन्नति सहन नहीं करता किन्तु हमारा देश शान्ति और प्रेम में विश्वास रखता है, आपके सम्पर्क में आकर मानव भावना के प्रति सदैव के लिए अपने प्रेम की निधि खोल देगा और दोनों के बीच में आपके लोक की अमृत-धारा प्रवाहित होगी।

चन्द्रपुरुष : आज हम बहुत प्रसन्न हैं। आपने दूसरे लोक से आकर हमारे लोक का ही अमृत-रस हमें दिया है। हमने भी अपने लोक में अनेक विस्फोट किए किन्तु अमृत-रस हमें नहीं मिला। इसे आप एक अच्छे संयोग की बात समझ लीजिए कि आपके लोक के एक आविष्कारक ने ऐसा भूमि स्फोट किया कि उससे हमें केवल अमृत-रस ही नहीं मिला, वरन् हमारी प्राचीन सभ्यता की अनेक वस्तुएँ मिलीं। आज हमारे हृदय में आत्मगौरव की एक नई ज्योति जागी है। इस उपकार के लिए हम आपको कुछ भेंट करना चाहते हैं। आप स्वीकार करेंगे ?

डा० शेखर : आपका प्रेम ही हमारे लिए बहुत है। हमें आपकी मित्रता चाहिए, इससे अधिक कुछ नहीं।

डा० दिलीप : मैं केवल आपके अमृत-रस का थोड़ा-सा हिस्सा चाहता हूँ जिसे मैं अपने लोक में ले जा सकूँ। आपके लोक में तो किसी प्रकार का रोग नहीं है। हमारे यहाँ अभी तक अनेक रोग हैं। आपके अमृत-रस से मैं अपने लोक के रोगों को सदा के लिए नष्ट कर दूंगा।

चन्द्रपुरुष : आप जितना चाहें उतना अमृत-रस यहाँ से ले जा सकते हैं लेकिन हम कुछ और भी भेंट करना चाहते हैं। उसे भी स्वीकार करें।

डा० शेखर : वह क्या ?

चन्द्रपुरुष : एक चन्द्रकुमारी हम आपकी पृथ्वी को अर्पित करना चाहते हैं। इससे हम लोगों में मिलाप तो होगा ही, पृथ्वी और चन्द्र भी आपस में मिलने के लिए जल्दी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से जल्दी अपनी कक्षाएँ निकट लाएँगे। तब हमारे स्त्री-पुरुष एक होंगे। हमारी जनता एक होगी। हम दो लोकों के बीच में प्रेम और मैत्री के अतिरिक्त फिर कुछ न रह जावे।

मंजुल : मैं आपकी इस भावना की सराहना करती हूँ।

डा० दिलीप : लेकिन यह अणु भाष यंत्र भी हम लोगों के बीच में रहना चाहिए जिससे हम एक दूसरे की भाषा न जानते हुए भी परस्पर बातें कर रहे हैं। बिना इस यंत्र के हम इस चन्द्रकुमारी से किस प्रकार बातें कर सकेंगे। यह चन्द्रकुमारी भी हमसे कुछ नहीं कह सकेगी।

चन्द्रपुरुष : यह मंत्र भी हम आपको भेंट करेंगे।

मंजुल : और फिर मैं इस चन्द्रकुमारी से इसकी चन्द्रीय भाषा सीख लूंगी और इसे मैं अपनी हिन्दी सिखला दूंगी।

चन्द्रपुरुष : यह कुमारी हमारे लोक में सबसे अधिक सुन्दरी है। विज्ञान का आविष्कार करने में इसकी प्रतिभा सराहनीय है। इसकी सहायता से पृथ्वी और चन्द्र परस्पर शीघ्र ही मिलेंगे। इसी ने आपके सामने हमारे लोक का जन-गीत गाया है।

डा० शेखर : मैं इस चन्द्रकुमारी की प्रशंसा करते हुए इसका अभिनन्दन करता हूँ। आपकी भेंट सिर-माथे स्वीकार है किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि हमारी पृथ्वी का जलवायु इस चन्द्रकुमारी के अनुकूल रहेगा अथवा नहीं। इसे हानि हो सकती है और हम आपकी भेंट की सुरक्षा में असमर्थ हो सकते हैं। हमारी पृथ्वी में अनेक प्रकार के रोग हैं। इसे कोई भी रोग हो सकता है। इसकी प्राण-हानि हो सकती है। फिर हम आपको क्या उत्तर देंगे? दीर्घ जीवन पर अभी तक हम अधिकार नहीं कर सके। आपके पास अमृत है, हमारे पास डालडा, जिसके अत्यधिक प्रयोग से हृदय की गति बन्द हो सकती है। जब हमारी पृथ्वी आपकी भेंट स्वीकार करने योग्य हो जाएगी तब हम कृतज्ञता के साथ आपकी यह भेंट स्वीकार करेंगे।

चन्द्रपुरुष : यह बात सुनकर हमारे हृदय में आपके प्रति समवेदना है। हमारे लोक में प्रकृति के अनेकानेक रूप हैं इसलिए हमारे शरीर में सब प्रकार की परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता है। किसी भी देश में जाकर हमारे शरीर स्वस्थ रह सकेंगे। किन्तु हम आपकी इच्छा का आदर करेंगे। यह कुमारी यहीं रहेगी और आज से इसका नाम 'पृथ्वी' होगा।

मंजुल : यह नाम तो बहुत ही अच्छा रहेगा।

चन्द्रपुरुष : हमारी इच्छा का आदर करने के लिए आपको अनेक धन्यवाद। हम भी अपनी ओर से अपनी राष्ट्रीय ध्वजासहित चिह्न के रूप में भेंट करते हैं। कृपया इसे स्वीकार कीजिए। हम लोग तो यहाँ से शीघ्र चले जाएँगे। यदि किसी अन्य लोक का कोई मानव यहाँ आए तो आप इस ध्वजा को दिखला कर कह सकें कि हमारे चन्द्रलोक में सर्वप्रथम भारत जनतंत्र के तीन नागरिक आए थे। यह हमारी राष्ट्र-ध्वजा स्वीकार कीजिए। (ध्वजा देता है) आप इसका सदैव सम्मान करें।

चन्द्रपुरुष : इस राष्ट्र-ध्वजा के लिए अनेक धन्यवाद। हम इस ध्वजा को इसी कक्ष में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापित करेंगे और सदैव ही इसका सम्मान करेंगे ।

डा० शेखर : हम सब आपके इस निर्णय से सुखी हुए। हम कल सूर्योदय होते ही आपसे बिदा लेंगे। हमें आप हमारे यान तक पहुँचा देने का कष्ट करें। इस बीच में अपना यंत्र भी ठीक कर लूंगा जो लौटते समय हमारे राकेट यान को अधिक शक्तिशाली बना सके।

चन्द्रकुमारी : आपकी यात्रा मंगलमय हो। मैं पृथ्वी हूँ। आप अपने आविष्कारों में सफल हों कि पृथ्वी पृथ्वी में आ सके।

मंजुल : वहिन ! मैं सदैव अपने पिताजी को पृथ्वी-चन्द्र मिलन के आविष्कारों के लिए प्रेरित करती रहूँगी।

चन्द्रपुरुष : अब हम सब प्रस्थान करेंगे। आपकी यात्रा मंगलमय हो। आपका अमृत-रस आपके पास अभी पहुँचा दिया जाएगा।

[क्रमशः चन्द्रवासियों के जाने की ध्वनि। कुछ देर शान्ति रहती है।]

डा० शेखर : हमारी यह यात्रा सफल रही। अब हमारी पृथ्वी और चन्द्र का सम्बन्ध अनन्त काल तक रहेगा और मानव युद्ध की बात भूल कर प्रेम और विश्व-बन्धुत्व की भावना से रहना सीखेगा।

मंजुल : पिता जी ! हम लोग फिर यहाँ कब आएँगे !

डा० शेखर : शीघ्र ही ! अपने राष्ट्र को सूचना देकर। दूसरी बार हम यहाँ अधिक दिनों के लिए आएँगे।

डा० दिलीप : तब तक आप अमृत-रस की परीक्षा भी कर लेंगे। हम सब अमृत-रस का प्रभाव लेकर फिर इस चन्द्रलोक में आएँगे।

[कक्ष में चन्द्रलोक के राष्ट्रीय संगीत की तरंग हलकी ध्वनि में फिर आती है।]

मंजुल : यह संगीत फिर क्यों होने लगा ?

डा० शेखर : चन्द्र निवासियों के उल्लास का दिन है। वे नाच-गान में आनन्द-विभोर हैं। चलो हम लोग भी दूसरे कक्ष में चलें।

[सब दूसरे कक्ष में जाते हैं। वातावरण में चन्द्रलोक का संगीत गूँजता रहता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यक्षेत्र में पुकार
(नहीं का रहस्य)

पात्र-परिचय

हरिनारायण : युनिवर्सिटी प्रोफेसर
विष्णुकुमार : हरिनारायण के मित्र, ब्रजकिशोर के पुत्र
मनमोहिनी
राधारानी : बी० ए० की छात्राएँ
मंगल : हरिनारायण का नौकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[आल्मारियों में पुस्तकें सुन्दरता के साथ रक्खी हुई हैं। कमरे के बीचोबीच एक बड़ा टेविल है, जिसके चारों ओर कुर्सियाँ हैं। सामने टेविल पर कलमदान है। बुक-शेल्फ में पुस्तकें हैं। बीच में एक गुलदस्ता सजा हुआ है, जिसमें कुछ ताजे फूल महक रहे हैं। कमरे में पर्शियन कारपेट बिछा हुआ है। दीवारों पर अँगरेजी-साहित्य के प्रमुख कवियों के चित्र लगे हुए हैं, सामने एक घड़ी है, और उसकी बगल में एक कैलेंडर जिसमें मार्च महीने का पृष्ठ दिखाई दे रहा है।

प्रभात का समय है, कमरे में हल्की सुनहली धूप आ रही है। प्रोफेसर हरिनारायण एक अँगरेजी-पुस्तक पढ़ने में लीन हैं। उनकी आँखों पर सुनहले स्प्रिंग का चश्मा है। वस्त्रों में सादगी है। खुले गले की कमीज और धोती। पैरों में फ्लैक्स के स्लीपर हैं। उनकी आयु पचपन वर्ष की है। बाल सफेद हो गए हैं। मुद्रा में अध्ययनशीलता अंकित है।

कुछ देर पुस्तक गम्भीरता से देखने के बाद वह कुछ जोर से वड्र्सवर्थ की कविता पढ़ने लगते हैं—]

ऐट् दि कार्नर आफ् वुड स्ट्रीट, व्हेन डे-लाइट एप्पीयर्स,
हैंग्स ए थ्रश दैट् सिंग्स लाउड इट हैज संग फार थ्री ईयर्स।
पुअर सुसेन हैज पास्ड बाई दि स्पाट् ऐंड हैज हर्ड
इन दि साइलेंस ऑफ् मॉर्निंग सॉंग ऑफ् दि बर्ड।
इट्स ए नोट् ऑफ् एंचैंटमेंट व्हाट एल्स हर शी सीज
ए माउन्टेन एसेन्डिंग, ए विजन ऑफ् ट्रीज।
ब्राइट वाल्यूम्स् ऑफ् वेपर···

[नौकर का प्रवेश। आकर सलाम करता है।]

नौकर : सरकार, मोची आया है।

हरिनारायण : (अपने ही स्वर में) ब्राइट वाल्यूम्स् ऑफ् वेपर···(ध्यान भंग कर) क्या है?

नौकर : मोची।

हरिनारायण : (किंचित् हँसकर) वड्र्सवर्थ और मोची! अच्छा संयोग है! (ठहरकर) अच्छा, कह दो, थोड़ी देर ठहरे। (फिर सोचकर) पॉलिश करने के लिए वे काले जूते दे दो। (पुस्तक को फिर हाथ में लेते हुए) देखो, मैं इस समय पढ़ रहा हूँ। बीच में आकर शोर मत करो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[नौकर का चुपचाप प्रस्थान। हरिनारायण फिर पुस्तक पढ़ने लगते हैं—]

हरिनारायण : ब्राइट वाल्यूम्स् ऑफ् वेपर थ्रू लाथवरी ग्लाइड, ऐंड ए रिवर फ्लोज ऑन थ्रू दि वेल ऑफ…

[नेपथ्य में एक स्वर। हरिनारायण ध्यान से सुनते हैं—प्रोफ़ेसर हरिनारायण का यही मकान है ?]

नौकर : हाँ, पै अबहिन सरकार किछू पढ़ रहे हैं। हम भीतर नहीं जाइ सकित हैं।

वही स्वर : मुझे उनसे इसी समय मिलना है। जरा जाकर अन्दर खबर कर दो।

नौकर : हियन बाहिरे बैंठो। जब फुरसत पैहैं, तब जायकै तुम्हारा नाम कहि देवे। ए कुरसिवा एहर अही।

हरिनारायण : (जोर से) मंगल !

(नेपथ्य से) सरकार !

[नौकर का प्रवेश।]

हरिनारायण : कौन साहब हैं ? उन्हें भीतर भेजो।

[नौकर का प्रस्थान। प्रोफ़ेसर साहब पेंसिल ओंठों के समीप रखकर किसी बात का स्मरण-सा करने लगते हैं।

एक युवक का प्रवेश। आयु चौबीस वर्ष। सिर से पैर तक अँगरेजी लिबास में। नीला सूट। उसी से मिलती हुई टाई। उसी रँग का रूमाल। हाथ में सोने की घड़ी। आकर प्रणाम करता है।]

हरिनारायण : (प्रणाम की स्वीकृति दे, उठकर प्रसन्नता से) ओहो विष्णु ! तुम हो ! वही तो, जब तुमने पुकारा, तो मुझे कुछ परिचित स्वर जान पड़ा। मैंने उसी समय तुम्हें बुला भेजा। कहो, यहाँ कैसे आए ? घर से कब आए ? घर में तो सब अच्छी तरह हैं ? और तुम्हारे पिताजी…?

विष्णुकुमार : (प्रसन्नता के स्वर में) पिताजी बहुत अच्छी तरह से हैं। उन्होंने आपको बहुत-बहुत नमस्ते कहा है। घर पर सब अच्छी तरह हैं।

हरिनारायण : तुम आए कब ? बैठो, बैठो। (कुर्सी की ओर संकेत)

विष्णुकुमार : (कुर्सी पर बैठकर, स्वस्थ होकर, अपनी हाथ-घड़ी देखते हुए) अभी सुबह पाँच बजे की गाड़ी से। वेटिंग रूम में हाथ-मुँह धोया। नाश्ता कर सीधा आपके पास चला आया।

हरिनारायण : क्यों, क्या यहाँ हाथ-मुँह नहीं धो सकते थे ? तुम्हें नाश्ता ती यहाँ भी मिल जाता !

विष्णुकुमार : मुझे यहाँ सब कुछ मिल जाता, पर मैंने सोचा इतने सबेरे मैं आपकी मीठी नींद से क्यों जगाऊं ? कष्ट ही होता। वहाँ बैरा को आर्डर देते ही सब कुछ मिल गया। हॉट टी, केक्सटिड एपिल और सैलड्स भी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिनारायण : यहाँ भी कुछ-न-कुछ मिल ही जाता। तुम्हारा ही घर है। खैर, तुम्हें तकलीफ नहीं हुई, यही सन्तोष है। कहो, तुम्हारे पिताजी आजकल कैसे हैं ?

विष्णुकुमार : कुछ नहीं। 1932 में वह सर्विस से रिटायर हो गए। तैंतीस साल की सर्विस के बाद अब सरकार से पेंशन पा रहे हैं। स्थायी रूप से घर पर ही रहते हैं। कुछ जमीन ले ली है। उसी में काश्तकारी करते हैं। घर का खर्च निकल आता है। फलों का बगीचा भी लगवा लिया है। बीच में छोटा-सा मकान बन गया है। अधिकतर वह अपना समय वहीं व्यतीत करते हैं। काम भी मजे में चलता है, और उन्हें एकान्तवास भी मिल गया। जीवन में बड़ी शान्ति है।

हरिनारायण : अच्छा ! वह भी एकान्तवास पसन्द करने लगे ! मुन्नी कहाँ है ? अब तो बड़ी हो गई होगी ?

विष्णुकुमार : हाँ, अब तो बड़ी हो गई। गर्ल्स स्कूल में मैट्रिक में पढ़ती है। पिताजी उसका विवाह नेक्स्ट ईयर कर देना चाहते हैं।

हरिनारायण : अच्छा है, और उसकी पूसी ? वह बिल्ली ?

विष्णुकुमार : (प्रसन्नता से) आपको बहुत पुरानी बातें याद हैं। पूसी परसाल तक बराबर घर में रही। एक बार दारोगा साहब के टीपू से उसकी झपट हो गई। टीपू और पूसी, दोनों को चोट लगी। टीपू तो अच्छा हो गया, पर पूसी बेचारी मर गई। घाव में 'पायजनिंग' हो गया। मुन्नी तो उसके लिए अब भी कभी-कभी उदास हो जाती है !

हरिनारायण : (गहरी साँस लेकर) हाय, बड़ी अच्छी बिल्ली थी ! जब मैं वहाँ था, तो जाड़े के दिनों में मेरे सिरहाने, तकिए के पास, दुबककर बैठ जाया करती थी। इसी पर तुम्हारी मुन्नी मुझसे लड़ने आती थी। मैं उसकी पूसी को क्यों अपने पास बुला लेता हूँ। ओह, वे दिन भी कितने अच्छे थे !

विष्णुकुमार : हाँ, पिताजी भी आपकी बहुत याद करते हैं। आप तो उनके छुटपन के मित्र हैं। प्रत्येक शुभ घटना में वह आपका स्मरण करते हैं। उन्होंने आपके नाम एक पत्र दिया है।

[पत्र निकालने के लिए पॉकेट में हाथ डालता है।]

हरिनारायण : अभी तक क्यों नहीं दिया मुझे ? कहाँ है वह ?

विष्णुकुमार : (पॉकेट से पत्र निकालते हुए) बातों के प्रवाह में कुछ याद ही नहीं रहा।

[लाल लिफाफे में बन्द पत्र देता है। हरिनारायण उसे उत्सुकता के साथ खोलकर पढ़ने लगते हैं।]

विष्णुकुमार : भेज तो वह किसी और को रहे थे, पर अन्त में उन्होंने यही निश्चय किया कि मैं स्वयं आपकी सेवा में पहुँचूं। इस तरफ मैं भी बहुत दिनों से नहीं आया था। सोचा, अच्छा है, इस तरफ का पर्यटन हो जाएगा, और आपका दर्शन भी।

हरिनारायण : (प्रसन्नता से) अरे, यह तो विवाह का निमन्त्रण है ! और तुम्हारे ही विवाह का !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णुकुमार : (संकुचित होकर) क्या कहूँ, पिताजी ने मेरे एम० ए० पास होते ही यह स्वाँग रच डाला। मैंने अनेक बार कहलाया कि मुझे कुछ कमाने योग्य हो जाने दीजिए, फिर मुझे इस बन्धन में बाँधिए, पर उन्होंने अपनी ही इच्छा पूरी की।

हरिनारायण : अच्छा है, वृद्ध पिता की इच्छा पूरी करना ही पुत्र का आदर्श होना चाहिए। फिर पिता की इच्छा का अन्तिम लक्ष्य भी तो यही है कि अपनी आँखों के सामने तुम्हें सब प्रकार से सुखी कर जाएँ। तुम पढ़-लिखकर समझदार भी हो गए हो। युवक भी हो। विवाह के दिन भी यही हैं। अधिक बढ़ जाने पर शादी होने में हम लोगों को वह सुख कहाँ, जो अब होगा!

विष्णुकुमार : (नीची दृष्टि करके) आप भी पिताजी ही के पक्ष के निकले।

हरिनारायण : क्यों? तुम्हें यह क्या कम सन्तोष होगा कि तुमने अपने वृद्ध पिता की इच्छापूर्ति के लिए ही अपना विवाह किया? तुम्हारी अनिच्छा होते हुए भी इस स्वीकृति से पिता को भी क्या कम सन्तोष होगा? फिर यह जीवन भी चार दिन का है। इन्द्र-धनुष का बना हुआ। रंग बनते और बिगड़ते देर ही कितनी लगती है? ये मांगलिक कार्य हैं, इनके करने में आपत्ति क्यों?

विष्णुकुमार : यदि मांगलिक कार्य हैं, तो आपने अपने जीवन को क्यों एकाकी बना रखा है? इन मांगलिक कार्यों में आपने भाग क्यों नहीं लिया? पिताजी कहते थे, न जाने क्यों आपने अपना विवाह नहीं किया?

हरिनारायण : विवाह? क्या कहूँ, मैंने अपना विवाह क्यों नहीं किया! विवाह न करने में ही सुख था। ठीक ही किया, मैंने अपना जीवन एकाकी रखा।

विष्णुकुमार : क्या मैं कारण पूछ सकता हूँ? (जिज्ञासा की दृष्टि)

हरिनारायण : विष्णु! बहुत दिनों की कहानी याद दिला रहे हो। मत पूछो। यह मेरे जीवन की सबसे अधिक दुःखद घटना है।

विष्णुकुमार : क्षमा कीजिए। आप मेरी उत्सुकता बहुत बढ़ा रहे हैं।

हरिनारायण : अच्छा, तो सुनो विष्णु! मैं भी जब तुम्हारे बराबर था, तब मेरे लिए विवाह परी के पंखों से भी अधिक सुनहला था। विवाह की भावना खून के साथ सारे शरीर में तड़प रही थी। प्रत्येक दिन सोने का था, और प्रत्येक रात चाँदी की। साँस में आनन्द की गंगा बहा करती थी। विवाह की याद आते ही आँखें झूम उठती थीं, और कल्पना में एक चित्र खिंच जाता था कि मैं धीरे-धीरे दबे पाँव अपनी सौभाग्य-सुन्दरी के पास पहुँच गया हूँ, और उसकी लज्जित आँखों को हँसाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। पर विवाह नहीं हुआ···मेरा विवाह नहीं हुआ!

विष्णुकुमार : क्यों?

हरिनारायण : क्या कहूँ कि क्यों नहीं हुआ! (गुलदस्ते का फूल हाथ में लेकर अन्य-मनस्कता से मसलते हुए) जब मेरा विवाह होनेवाला था, तब वे दिन बहुत पुराने थे। हम लोग बड़ों के सामने विवाह के नाम से वैसे मुरझा जाते थे, जैसे उँगली के स्पर्श-मात्र से छुईमुई। विवाह मेरा उसी लड़की के साथ होनेवाला था, जो मेरी कल्पना की रानी थी। पर मैंने बनावट से कह दिया 'नहीं', यद्यपि मेरा रोम-रोम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने न समझे जाने वाले स्वर में पुकार-पुकार कर कह रहा था कि मेरा विवाह इसी लड़की के साथ कीजिए, अवश्य कीजिए, नहीं तो मैं विवाह ही नहीं करूँगा। वह 'नहीं' मेरे मुख की थी, हृदय की नहीं। पर मेरे पिता इस पिशाचिनी 'नहीं' को सचमुच की 'नहीं' समझ गए, और उन्होंने उस लड़की के साथ मेरा विवाह नहीं किया। मैं पत्थर का दिल लेकर यह देखता रहा कि उस लड़की का विवाह किसी दूसरी जगह हो गया। मेरे फूलों के संसार में आग लग गई। फिर जब मेरा विवाह किसी दूसरी जगह स्थिर हुआ, तो मैंने सचमुच की—हृदय की—'नहीं' की, पर मेरे पिताजी उसे झूठ 'नहीं' समझे। मैं अपने प्रण पर अटल रहा। मैंने अपना विवाह नहीं किया। मैं सोचता था, पिताजी ने मेरी पहली 'नहीं' को सचमुच की 'नहीं' क्यों समझ लिया!

विष्णुकुमार : तब तो मेरे पिताजी अच्छे हैं, जिन्होंने मेरी 'नहीं' को सचमुच की 'नहीं' नहीं समझा।

हरिनारायण : ईश्वर करे, ऐसे कार्यों में तुम्हारी 'नहीं' सदैव 'हाँ' का फल दे। तुम्हारा विवाह तुम्हें सुखी करे।

विष्णुकुमार : (दुःखपूर्ण स्वर में) बड़ी करुणापूर्ण कहानी है आपकी। तब तो आप एकाकी जीवन व्यतीत करते हैं न?

हरिनारायण : (साँस लेकर) हाँ, एकाकी। नहीं तो मोची और धोबी के आने पर नौकर मेरे पढ़ने के कमरे में आकर खबर न देता। पर अब मुझे यही जीवन सुखकर हो गया है। रात के समान दिन में भी सपना देखता हूँ, और अपने जीवन की घटनाओं के साथ हँसता हुआ दिन व्यतीत करता हूँ। सौभाग्य से जीवनचर्या भी बड़ी शांति-मय है। तीन घंटे विद्यार्थियों को पढ़ा आता हूँ। उनके जीवन को अधिक-से-अधिक आदर्शमय बनाने का प्रयत्न करता हूँ। देश के भावी निर्माताओं का निर्माण करने में भी कितना सुख है! उनके उत्साह को देखकर इन सूखी नसों में भी रक्त का संचार हो जाता है! और, उनकी क्रियाशीलता देखकर मेरे उपदेश में भी सजीवता आ जाती है! सच मानो, ये ही युवक और युवतियाँ मेरे जीवन को सँभाले हुए हैं। इन्हीं के सहयोग में रहकर जीवन को जीवन समझता हूँ। ये ही बच्चे मुझे संसार में जीवित रख रहे हैं।

[नौकर का डरते हुए प्रवेश। वह आकर एक विजिटिंग कार्ड देता है।]

विष्णुकुमार : तो अब चलूँ। (चलने को उद्यत होता है।)

हरिनारायण : नहीं, बैठो। जल्दी क्या है? अभी आए, और अभी चले? (कार्ड देख-कर नौकर से) भेज दे उन्हें।

[नौकर का प्रस्थान]

हरिनारायण : तुमने अपना सामान कहाँ रखा? क्या यहाँ नहीं ठहरोगे?

विष्णुकुमार : मैं तो इसी तरह आया हूँ। अभी दोपहर की गाड़ी से लौट जाऊँगा। आपके दर्शन कर ही चुका। कुछ मित्रों से मिलकर चला जाऊँगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिनारायण : नहीं-नहीं, कम-से-कम आज तो तुम्हें ठहरना होगा।

[दो लड़कियों का प्रवेश। दोनों की वय सोलह-सत्रह के लगभग है। वे साफ-सुथरी साड़ियाँ पहने हुए हैं। उनके वेश में सौजन्य है। शरीर में कोमलता और सौंदर्य। उनकी भाव-भंगी से ज्ञात होता है कि वे यौवन और आनन्द का प्रभाव देख रही हैं।]

हरिनारायण : (किंचित् हाथ उठाकर) कहो मनमोहिनी ! कैसे आईं ? और तुम राधा ?

[दोनों प्रणाम करती हैं। हरिनारायण प्रणाम स्वीकार कर विष्णु से परिचय कराते हुए—]

मेरे मित्र ब्रजकिशोर के सुयोग्य पुत्र श्री विष्णुकुमार, एम० ए० और बी० ए० की छात्राएँ मिस मनमोहिनी और मिस राधारानी।

[परस्पर अभिवादन। दोनों हरिनारायण के समीप की कुर्सियों पर बैठती हैं।]

हरिनारायण : कहो, कैसे आना हुआ ?

मनमोहिनी : पिताजी ! आज सन्ध्या-समय हम लोग आपको कष्ट देना चाहती हैं।

हरिनारायण : पुत्रियों की ओर से पिता को कष्ट ?

मनमोहिनी : आज राधा की वर्ष-गाँठ है। वह आज से सोलहवें वर्ष में पदार्पण करेंगी। इसी खुशी में उन्होंने अपनी सखियों को सन्ध्या-समय छः बजे आमंत्रित किया है। आप भी आइए।

हरिनारायण : मैं भी सखी हूँ, राधारानी ? (हास्य)

राधारानी : मनमनोहिनी को तो बात करना भी नहीं आता। वहाँ मेरी सखियाँ आमंत्रित अवश्य हैं, पर सबकी प्रार्थना है कि आपके पवित्र चरण भी वहाँ हों, इस अवसर पर हमें कुछ उपदेश भी सुनने को मिल जाएगा। सभी छात्राएँ आ रही हैं। लेडी सुपरिन्टेंडेंट भी अपने मित्रों के साथ वहाँ होंगी। आपका उस समय कुछ कहना जरूरी है।

हरिनारायण : बच्चियो ! इसके अतिरिक्त मैं कहूँगा ही क्या कि तुम सब सुखी रहो, दीर्घजीवी हो और भारतवर्ष की सच्ची ललना बनने का गौरव प्राप्त करो !

राधारानी : इन अमृतमय शब्दों के साथ न जाने कितनी बातें आपके मुख से स्वयं निकल आवेंगी। जो बातें अभी आप सोचकर भी न कह सकेंगे, वे उस समय आपके मुख से धारा-प्रवाह निकलेंगी। वक्तृता अवसर-विशेष के प्रभाव से प्रभावित होकर बनती है।

हरिनारायण : अच्छा, यह पार्टी कहाँ होगी ?

राधारानी : उसी होस्टल-क्वाडरेंगल में। जहाँ सरोजिनी नायडू का भाषण हुआ था। आप भी प्रारम्भ में बहुत अच्छा बोले थे। सभी लड़कियाँ आपकी तारीफ कर रही थीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिनारायण : (हँसते हुए) लड़कियाँ तो चाहे जिसकी तारीफ कर दें, और चाहे जिसकी निंदा। उन्हें रोकने वाला कौन है ? बीसवीं शताब्दी की लड़कियों की शक्ति का अन्दाजा कौन लगा सकता है। खैर, इस शुभ निमन्त्रण के लिए धन्यवाद !

राधारानी : हमें धन्यवाद देकर लज्जित न कीजिए पिताजी ! हमें आपका आशीर्वाद चाहिए, धन्यवाद नहीं। (विष्णु की ओर देखकर) श्रीमान्, आपको भी सादर निमन्त्रण है।

विष्णुकुमार : धन्यवाद ! मैं न आ सकूँगा। मुझे आज ही संध्या की गाड़ी से सहारनपुर जाना है।

मनमोहिनी : कोई आवश्यक कार्य है ?

हरिनारायण : (विष्णु की ओर संकेत करते हुए) इनका विवाह होने वाला है। पर (विष्णु से) विष्णु ! अभी तो काफी समय है। 24 मार्च! (कलेंडर की ओर दृष्टि)

मनमोहिनी : (हँसकर) पर कुछ जल्दी पहुँच जाने में हानि ही क्या है ! अच्छी बात है। तब वर्ष-गाँठ से विवाह का मूल्य अधिक है। आपको मेरी बधाई है !

राधारानी : मेरी भी बधाई स्वीकार कीजिए !

विष्णुकुमार : धन्यवाद ! आप दोनों को भी भी मैं विवाह का निमंत्रण देता हूँ।

मनमोहिनी : धन्यवाद ! खेद है, हम लोग न आ सकेंगी। जिस प्रकार आज ही संध्या की गाड़ी से आपको सहारनपुर लौट जाना है, उसी प्रकार आज ही संध्या से हमें अपनी पढ़ाई प्रारम्भ करनी है। आपकी सहारनपुर वाली गाड़ी और हमारी पढ़ाई आज ही साथ-साथ चलेगी।

विष्णुकुमार : पर परीक्षा तो चौबीस एप्रिल से होगी। आज तो मार्च की दूसरी तारीख है।

राधारानी : चौबीस एप्रिल से नहीं, चौदह एप्रिल से। आपको अपने विवाह की तारीख चौबीस हर जगह याद आ जाती है। (हास्य)

विष्णुकुमार : (लज्जित होकर) खैर, चौदह एप्रिल सही। पर आज तो दो मार्च है।

मनमोहिनी : पर जल्दी पढ़ाई करने में हानि ही क्या ? शुभ कार्यों के प्रारम्भ में अक्सर लोग जल्दी कर ही दिया करते हैं। जब किसी कार्य के करने में कुछ लोग समय से पहले अपने स्थान पर पहुँच जाते हैं, तो यदि हम लोगों ने पढ़ाई जरा जल्दी शुरू कर दी, तो हानि ही क्या है ?

हरिनारायण : व्यंग्य मत करो मोहिनी ? यदि आज यह यहाँ रह जाएँगे, तो मैं इन्हें अपने साथ लेता आऊँगा।

राधारानी : तब ठीक है। आप इन्हें अपने साथ लेते आइए, और यह अपने साथ मिठाई लेते आवें। इनकी मिठाई का मूल्य मेरी वर्ष-गाँठ की मिठाई से बहुत अधिक होगा।

विष्णुकुमार : (चपलता से) यदि आपकी यह सजीली सोलहवीं बर्ष-गाँठ न होती, तो शायद मैं यह बात मान लेता।

हरिनारायण : चुप विष्णु ! दोनों मिठाइयाँ बहुत मीठी होंगी। मुझे इसका विश्वास है। तुम लोग तो छोटे-छोटे बच्चों की तरह लड़ने-झगड़ने लगे। (राधा की ओर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर) क्यों राधा, आज तो युनिवर्सिटी है ?

राधारानी : (घड़ी की ओर देखकर) जी हाँ, अब हमें आज्ञा दीजिए। सत्रह मिनट रह गए हैं दस बजने में।

हरिनारायण : (हाथ उठाकर) अच्छा, अब तुम लोग जाओ। तुम्हारे समारोह में सम्मिलित होने का प्रयत्न अवश्य करूँगा। सम्भव होगा, तो विष्णु को भी लेता आऊँगा।

राधारानी : कृपा होगी। (हाथ जोड़कर) प्रणाम।

मनमोहिनी : (हाथ जोड़कर) प्रणाम।

[हरिनारायण और विष्णुकुमार प्रणाम स्वीकार करते हैं। मनमोहिनी और राधारानी का प्रस्थान।]

विष्णुकुमार : ये दोनों बी० ए० क्लास में हैं ?

हरिनारायण : हाँ, इसी वर्ष इण्टर पास होकर आई हैं। राधा तो आगरा-निवासी मेरे एक वकील मित्र की बहन है, और मनमोहिनी वकील साहब के किसी सम्बन्धी की लड़की। उन्होंने दोनों को मेरे पास भेज दिया है। मैंने उन्हें होस्टल में जगह दिला दी है। दोनों बड़ी ही सुशील और नम्र हैं। अपने निश्छल व्यवहार से उन्होंने एक अलग संसार-सा बना लिया है। तभी तो आज राधा की वर्ष-गाँठ पर सारे होस्टल में समारोह है। लेडी सुपरिन्टेंडेंट भी उत्साह-सहित अपने मित्रों के साथ वहाँ होंगी। मैं तो इन्हें देखकर बहुत ही प्रसन्न होता हूँ। अनुभव करता हूँ, मेरी ही पुत्रियाँ हैं। पढ़ती हैं। खाती हैं। खेलती हैं। अपने सुख-दुख में मुझे पूछ लिया करती हैं। मेरे लिए यही बड़े सन्तोष की बात है। मैं उन्हें अपने पास नहीं रखना चाहता। अपने नीरस और वैराग्यमय जीवन की छाया उन पर नहीं डालना चाहता। वे फूल-सी, सुकुमार बेटियाँ हैं। क्यों अपना जीवन-भार उनके सिर पर डालूँ—अभी से उन्हें चिंतित क्यों करूँ ? ये दिन तो उनके पहनने-खाने के हैं।

विष्णुकुमार : (गहरी साँस लेकर) आपने तो संसार से नाता तोड़ लिया। आपको एकांत अच्छा लगता है ?

हरिनारायण : हाँ, अब जीवन के दिन ही कितने रह गए हैं ! जीवन के बाद तो फिर शायद एकाकी ही रहना पड़े। फिर किसका साथ होगा ? अभी से एकान्त सही। तुम लोग सुख और आनन्द से रहो। तुम्हारे लिए संसार अभी सुनहला है। जितना हँसते बने, हँसो। तुम लोग फूलों से बने हुए हो। बिजली के पंखों के समान तुम्हारे जीवन के दिन रंगीन हैं। प्रभात के समान उज्ज्वल, चाँदनी की तरह निर्मल। तुम्हारे ओंठों में आनन्द घुला हुआ है, और आँखों में हँसी। काँटों को भी तुम लोग फूल समझ सकते हो। पर मैं ? मेरे लिए अब संसार में फूल नहीं हैं। हैं भी, तो वे काँटे हो गए हैं। अब मैं एकाकी हूँ, और एकांकी ही रहना चाहता हूँ। और, केवल स्मृतियों का शव मेरे पास है। उसी को चूमता हूँ, और उसी को प्यार करता हूँ। अब जीवन एक अँधेरा प्रदेश है, जहाँ दिन एक ही महीने का होता है, रात एक वर्ष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की। हाँ, तुम्हारे विवाह की तारीख क्या है ? चौबीस मार्च ! (कैलेंडर की ओर दृष्टि)

विष्णुकुमार : हाँ, (अन्यमनस्क होकर) आपने मेरे मन को न जाने कैसा कर दिया ! आह, आपका जीवन भी एक रहस्य है। यह सब सुनकर तो अब···!

हरिनारायण : विष्णु, तुम अपने माता-पिता की आशा हो, और भारत के भाग्य। तुम्हारे लिए कार्यक्षेत्र में पुकार है। दौड़कर जाओ। मेरी कहानी से क्या तुम अपने कर्तव्य को भूल जाओगे ? मैं तुम्हारे विवाह में अवश्य आऊँगा। वधू के लिए स्वदेशी प्रदर्शनी से कम-से-कम 150 रुपये की साड़ी तो अवश्य लाऊँगा। तुम्हारे विवाह के लिए मेरी सबसे बलवती मंगल-कामना है। क्या आज तुम रुक सकोगे ?

विष्णुकुमार : नहीं, मुझे आज ही जाने की आज्ञा दीजिए। पिताजी ने एक दिन भी ठहरने की आज्ञा नहीं दी।

हरिनारायण : तो फिर तुम्हें उनकी आज्ञा के विरुद्ध कैसे रोकूं ? उनसे मेरा सप्रेम नमस्ते कहना। मुन्नी को आशीर्वाद। उससे कह देना कि वह अपवी पूसी के लिए ज्यादा रंज न करे, और कहना कि अपने चाचा को तू बिलकुल भूल गई !

विष्णुकुमार : अवश्य। अच्छा, तो अब मैं जाता हूँ। प्रणाम। (हाथ जोड़ता है।)

हरिनारायण : सुखी रहो।

[विष्णु का प्रस्थान।]

हरिनारायण : (सोचते हुए पुस्तक उठाकर पढ़ने लगते हैं—)

ऐंड ए रिवर फ्लोज आन थ्रू द वेल ऑफ् चीपसाइड
ग्रीन पाश्चर्स शी व्यूज इन दि मिड्स्ट आफ् डेल
डाउन विच शी सो आफ़ेन हैज ट्रिम्ड विद् हर पेल
ऐंड ए सिंगिल स्माल काटेज, ए नेस्ट लाइक ए डोव्ज
दि वन् ओन्ली ड्वेलिंग आन अर्थ दैट शी लव्ज शी लुक्स······

[घड़ी में दस बजते हैं। नौकर का प्रवेश।]

नौकर : सरकार, खाना तैयार अही।

हरिनारायण : (पुस्तक बंद करते हुए) मंगल, मैं खाना नहीं खाऊँगा। आज मुझे युनिवर्सिटी जल्दी जाना है। (उठ खड़े होते हैं।)

[पटाक्षेप]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहनाई की शर्त

पात्र-परिचय

राजन
राजन की माँ
आगन्तुक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान : कानपुर का एक मोहल्ला   समय : रात के तीन बजे
काल : शीतकाल का प्रारंभ, 1 अक्तूबर, 1960

[एक सामान्य कमरा। राजन इसी में सोता है। बायीं ओर का दरवाजा राजन की माँ के कमरे की ओर जाता है। दाहिनी ओर का दरवाजा बाहर सड़क की ओर खुलता है। कमरे के बीचोबीच एक खिड़की है जो पीछे की गली की ओर खुलती है।

कमरे में कोई सजावट नहीं है। बायें कोने में एक साधारण-सी चारपाई है जिस पर दरी और चादर बिछी हुई हैं। सिरहाने एक तकिया और पैताने एक ऊनी चादर। सामने की दीवाल पर चारपाई के समीप तीन खूँटियाँ लगी हुई हैं जिन पर अलग-अलग कुरता, कमीज और कोट टँगे हुए हैं। खिड़की के दाहिनी ओर एक कैलेंडर है जिसमें अक्टूबर महीने का पृष्ठ है। चारपाई के समीप ही एक छोटी टेबिल है जिस पर टाइमपीस घड़ी रखी है। आसपास दो कुर्सियाँ, रेलवे टाइम-टेबिल और कुछ पुस्तकें, अखबार और पत्रादि रखे हैं। दीवाल पर महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस के चित्र लगे हैं जो पुराने कैलेंडरों से काट कर कार्डबोर्ड पर चिपकाए गए हैं। उस फर्श पर एक दरी बिछी हुई है।

एक 52 वर्षीया स्त्री फर्श पर बैठी हुई स्वेटर बुन रही है। उसके पास ही मोढ़े पर एक लैम्प रखा हुआ है। उसकी रोशनी अधिक तो नहीं है, किन्तु उस स्त्री को बुनने में कोई कठिनाई नहीं हो रही है। बीच-बीच में स्त्री रुककर शून्य में देखने लगती है फिर बुनने में लीन हो जाती है।

वातावरण में सन्नाटा और शान्ति है। कभी-कभी पक्षी के पंख फड़फड़ाने की आवाज और झींगुर की झनकार सुनायी पड़ जाती है। रात के तीन बजे का घंटा दूर से सुनाई देता है। घंटा सुनने पर वह स्त्री बुनना छोड़ कर दरवाजे की ओर देखती है फिर उठकर बाहर खुलने वाले दरवाजे तक जाकर बाहर देखती है। दो क्षण रुककर शिथिल पैरों से फिर अपनी जगह लौट आती है। बैठकर अन्यमनस्कता से फिर बुनने लगती है।

कुछ क्षणों बाद दरवाजे पर किसी के आने की आवाज, दरवाजा खटखटाया जाता है लेकिन खुले होने के कारण स्त्री नहीं उठती, वह दरवाजे की ओर देखने लगती है। कहती है—खुला है।

राजन का प्रवेश। स्वस्थ और देखने में आकर्षक। आयु 28 वर्ष। सामान्य कुर्ता, जवाहर वास्केट, धोती और चप्पलें पहने हुए है। आते ही ठिठक जाता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजन : (आग्रह के स्वर में, प्रश्न की मुद्रा) माँ, तुम अब तक सोई नहीं ?

[माँ कुछ नहीं बोलती ।]

राजन : रिक्शेवाले ने बड़ा तंग किया । (वास्केट उतार कर टाँगते हुए) तीन मील का रास्ता ! महाशय रिक्शा ऐसे चला रहे थे मानो बारात के साथ चल रहे हों ! (चट्टी कोने में उतारकर माँ के पास आते हुए) मैंने कहा—भाई ! कुछ पैसे ज्यादा ले लेना, तेजी से चले चलो—लेकिन बेचारा कैसे चले ! खाने को मिलता नहीं, ताकत कहाँ से आए ? और अब ठंड भी पड़ने लगी है । (सहसा) माँ ! तुम कुर्सी पर बैठ जाओ । दरी ठंडी हो गयी होगी । मैं तो समझता था कि तुम सो गयी होगी । यहाँ तुम स्वेटर ही बुन रही हो । रात के तीन बज गए हैं । जानती हो ?

माँ : (भरे कंठ से) शीला चली गयी, राजन !

राजन : (टहलते हुए) माँ को तो बच्चों के जाने का दुःख होता ही है ।

माँ : चलते समय उसकी आँखों से कितने आँसू गिरे ! वह मेरी आँखों में समा गए हैं । (शब्द कंठ में रुक जाते हैं ।)

राजन : दीदी से बड़ी ममता है !

माँ : चलते समय कैसे लिपट कर रोई थी मेरे गले से ?

[आँखों में आँसू झलक उठते हैं । आँचल से पोंछती है ।]

राजन : अब तुम भी रोने लगी, माँ ! रास्ते में भी दीदी की आँखों में आँसू थे । मैंने समझाया—बहुत रो चुकी, दीदी ! हरएक काम की हद होती है, अब चुप हो जाओ । दीवाली में फिर तुम्हें लेने आऊँगा । तुम्हारे ही हाथों से इस छोटे-से घर में दिए रखे जाएँगे । तुम्हीं लक्ष्मी जी का पूजन करोगी । जीजा तुम्हें जल्दी भेजते नहीं, इसलिए जीजा जी को बस में करने का मंत्र जगाऊँगा । रात भर एक पैर से खड़े होकर माँ ! दीदी आँसुओं में भी मुस्करा उठी ।

माँ : (मुसकराकर) बातें करने में तो तू एक ही है । अच्छा किया तूने, जाते वक्त अपनी दीदी को हँसा दिया । गाड़ी में उसे जगह मिल गयी थी ? (फिर बुनने लगती है)

राजन : बड़ी भीड़ थी माँ ! गाड़ी में । एक बजे की गाड़ी दो बजे आई, तीन नम्बर के प्लेटफार्म पर । चार थे हम लोग । दीदी, मैं, नौकर और सामान । पाँच बार गाड़ी की सूचना हुई, तब छठीं बार गाड़ी आई ।

माँ : तूने तो सारी गिनती ही गिन डाली ।

राजन : मैंने दीदी को खूब हँसाया । अपने मित्र टिकट इन्सपेक्टर से कह रखा था । अच्छी जगह मिल गयी । मैंने बर्थ पर दीदी का बिस्तर खोल दिया और कहा—दीदी ! शकुन्तला के पत्र-लेखन की मुद्रा में लेट जाओ । वे लेट गयीं । जैसे आरती के बाद देवी शयन कर रही हों ।

माँ : बड़ा भक्त है अपनी बहिन का !

राजन : भक्ति में बड़ा रस होता है, माँ । तुम तो जानती हो, हमेशा कीर्तन करती हो ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता हूँ कि रात भर दीदी के गुणों का कीर्तन करूँ, लेकिन (घड़ी की ओर देखते हुए) सवा तीन बज चुके। माँ, अब तुम भी सो जाओ।

माँ : मुझे नींद नहीं आएगी, बेटा! आज शीला के बिना कुछ अच्छा नहीं लगता। अच्छी-अच्छी बातें करे तो मेरा मन कुछ बहल जाय।

राजन : इतनी रात गए? (हाथ झुलाकर) ठीक है। मन ही बहलाना है सो मैं दस तरह की बातें कर सकता हूँ। जिन्हें तुम अपने स्वेटर के साथ बुन लो। लेकिन, माँ! कुर्सी पर बैठ जाओ। नहीं तो फर्श की ठंड तुम्हें तकलीफ देगी।

माँ : अच्छा, बेटा! बैठ जाऊँगी कुर्सी पर। ठंड से क्या, जीना ही कितने दिन है! (उठकर कुर्सी पर बैठते हुए) तू तो ऐसी बातें करता है कि हजार मन उदास हो, हँसी आ ही जाती है। नहीं तो शीला के बिना यह सूनापन मुझे चैन न लेने देता! (फिर बुनना आरम्भ करती है।)

राजन : तो यह बुनना तो बंद करो।

माँ : तेरे लिए ही तो बुन रही हूँ, बेटा। बाँह उतार लूँ तो एक काम खतम हो जाए! शीला भी तेरे लिए बुन रही है। देखूँगी मैं जल्दी खतम करती हूँ कि शीला। यहाँ रहती तो जल्दी खतम कर लेती। वहाँ इलाहाबाद में हजार झंझटें। (बुनती है।)

राजन : तो दीदी हमेशा तो यहाँ रह नहीं सकतीं। उन्होंने पंद्रह दिन रह लिया, यही बहुत किया। सारी गृहस्थी दीदी ही को तो देखनी पड़ती है। जीजा जी को तो आफिस के काम से ही फुरसत नहीं। वे कब तक रहतीं यहाँ, आखिर किसी न किसी दिन तो उन्हें यहाँ से जाना ही पड़ता!

माँ : ठीक है, बेटा! लड़की पराये घर के लिए ही तो होती है। मधुमक्खी अपने छत्ते में शहद सँजोती है, चाहे जो तोड़ कर ले जाए! जिसको न कभी देखा, न समझा, उसी के हाथ बिक जाओ। चोर की खुशामद करके उसे चाबी सौंप दो और हाथ जोड़ कर कहो कि हमारी तिजोरी का धन तुम्हारे लिए ही है, ले जाओ।

राजन : (हँसते हुए) लेकिन जीजा जी चोर नहीं हैं, माँ! बहुत बड़े अफसर हैं। मोटर, बँगला, नौकर सभी कुछ तो है उनके पास। फिर जीजा जी भी दीदी को बहुत मानते हैं, माँ! ज्यादा दिनों उनके बिना नहीं रह सकते। इधर पंद्रह दिनों में ही बुलावा भेज दिया, दीदी बहुत सुखी हैं, माँ!

माँ : उसका भाग है, बेटा! लेकिन तेरे पिताजी ने कितनी दौड़-धूप की तब ऐसा घर पाया!

राजन : आज पिताजी होते…!

माँ : (विह्वल होकर) राजन्! (बुनना छूट जाता है।)

राजन : (अपनी गलती महसूस कर) ओह, माफ करो, माँ! कैसी बात कह दी! (बात पलटने के विचार से) अच्छा माँ! दीदी ने जाते समय फिर तुमसे प्रणाम कहा। (सहसा स्मरण कर) हाँ, माँ! दीदी अपना हाथी-दाँत की मूठवाला चाकू तो यहाँ नहीं भूल गयीं?

माँ : हाँ, भूल गयी है, बेटा! आज उसने इस स्वेटर का ऊन काटने के लिए चाकू निकाला

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था—फिर यहीं छोड़ गयी। न उसे याद रहा, न मुझे। सहेज कर अपने पास रख ले। वह वहाँ पीले ऊन के पास दरी पर है।

राजन : (दरी पर पड़े ऊन के नीचे से चाकू उठाकर) यह रहा। अच्छा चाकू है! (देखता है) कहाँ रखूँ इसे? अभी तो तकिए के नीचे रख लेता हूँ। सोते में दीदी के बहुत अच्छे-अच्छे सपने ही देखूँगा। सुबह ठिकाने से रख दूँगा। (तकिए के नीचे रखने के लिए बिस्तर के समीप जाता है, रखकर लौटते हुए) जब कोई घर से जाता है, माँ! तो सब के मन पर जाने की बात ही छा जाती है। और सब बातें भूल जाती हैं। दीदी अपना चाकू ही भूल गयीं।

माँ : शीला का जाना भी कैसा हुआ, बेटा। शाम तक कोई बात नहीं थी। तुम्हारे जीजा जी का तार आया और शीला की तैयारी हो गई। इसी रात की गाड़ी से।

राजन : हाँ, आखिरी गाड़ी तो रात ही की थी। रेलवे वालों ने भी कानपुर जैसे शहर के लिए कैसा आधी रात का वक्त चुना है! आधी रात—पहले यहाँ खूब व्यापार होता था। अब चोरबाजार होता है। ठीक है, कानपुर में चोरबाजारी आधी रात के वक्त ही ठीक होती है। इसीलिए गाड़ी का टाइम भी यही रखा।

माँ : हम लोगों को चोरबाजारी से क्या करना है, बेटा! यह तो चोर लोग ही सोचें और फिर जो चोर होता है उसे क्या दिन, क्या रात!

राजन : हाँ, चोर होते भी कई तरह के हैं, माँ! एक चोर तो वे होते हैं जो···

माँ : (बीच ही में) बेटा! रात में चोरों का नाम लेना ठीक नहीं। कहते हैं 'चोर-चोर' कहने से रात में चोर आ जाते हैं।

राजन : आएँ भी तो क्या ले जाएँगे! आपके पास धरा ही क्या है! (चारपाई की ओर संकेत करते हुए) यह टूटी चारपाई! जिस पर गद्दा भी नहीं है, सिर्फ दरी, चादर और तकिया! यह टूटी-सी टेबल, पुरानी घड़ी, एकाध कुर्सी—यह फटी दरी जिस पर बैठकर तुम स्वेटर बुन रही हो—

माँ : अरे, चोरों की कुछ न पूछो! वे तो गरीबों का घर भी लूट लेते हैं!

राजन : तो मेरा ही घर लूट के देखें। माँ! मैं तो बड़ा प्रसन्न होऊँ अगर चोर यहाँ आएँ। मैं कहूँगा—शाबाश, मेरे दोस्त! तुमने तो मुझे बड़ा आदमी समझा। दुनिया के सब लोग तो मुझे गरीब क्लर्क समझते हैं, एक तुम हो जिसने मुझे बड़ा आदमी समझा! आओ, मुझे लूटो। लेकिन अगर तुम्हें कुछ न मिले तो नाराज मत होना। मेरे दोस्त बन के जाना।

माँ : चोरों को देख कर तो लोग घबरा जाते हैं, राजन!

राजन : वे लोग घबरा जाते हैं, माँ! जिनके पास लाखों का माल होता है। माल लेने की जबर्दस्ती में चोर हथियार भी चलाते हैं—पिस्तौल खींच लेते हैं। यहाँ, है क्या? जब पैसे ही नहीं हैं तो डर किस बात का! और चोर इतने मूर्ख नहीं होते, माँ! कि हम लोगों के साथ अपना वक्त बरबाद करें। वही वक्त वे सेठों की तिजोरियाँ लूटने में लगा सकते हैं। मेरी तनख्वाह में तो उन तिजोरियों का ताला भी न आएगा!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ : तेरी तनख्वाह तो मिल गई होगी। आज पहली तारीख है।

राजन : हाँ, माँ ! मिल गई। दीदी की विदा में तुम्हें देना ही भूल गया। लेकिन है ही कितनी ! महँगाई मिलाकर सिर्फ 82 रुपये। एक छोटे से लिफाफे में तनख्वाह ऐसे समा जाती है जैसे मुँह में लेमनड्राप। अपनी यह तिजोरी है न, तकिया—उसके नीचे रख लेता हूँ। दिमाग के नीचे दिमाग की कीमत !

माँ : तेरे दिमाग की कीमत तो बहुत है, राजन ! कभी तू भी ऊँची तनख्वाह पावेगा।

राजन : आगे की देखी जाएगी, माँ ! अभी तो सिर्फ 82 रुपये मिलता है। फिर इस महीने में तुम्हारी साड़ी के पिछले हिसाब के 20 रुपये भी देने हैं।

माँ : तू तो जबर्दस्ती साड़ी ले आया। बुढ़ापे में क्या महीन, क्या मोटी ! तेरे 20 रुपये किसी और काम आते।

राजन : किस काम आते ! आजकल 20 रुपये क्या होते हैं, माँ ! रुपया तो ओस की बूंद बन गया है। जरा खर्च की गर्मी आई कि साफ। देखने भर में अच्छा लगता है। हाथ में उठाओ तो पानी। फिर 82 की बिसात क्या, माँ ! तनख्वाह तो ऐसी लगती है जैसे सेमल की रुई। फूंक मार दो तो कहीं भी उड़ जाए।

माँ : कोई इसे सम्हालने वाला नहीं है, बेटे ! तू ब्याह कर ले तो तेरा रुपया भी बचने लगेगा। और तरक्की भी हो जाएगी। कहते हैं कि घर की लक्ष्मी आकर तनख्वाह बढ़वा देती है।

राजन : (हँसकर) घर की लक्ष्मी ! घर की लक्ष्मी क्या कोई अफसर है जो तरक्की दे देती है ? छोड़ो, माँ ! ये बातें। मुझे ब्याह करना ही नहीं। 82 रुपये में हम दोनों का खर्च तो चलता नहीं। तीसरा आदमी आकर तुम्हारी दो रोटियों में भी हिस्सा बँटा लेगा !

माँ : यह तो अच्छा है, बेटा ! अगर मेरे मुँह का अन्न किसी दूसरे के पेट में जाए तो इससे बढ़कर मुझे क्या खुशी होगी।

राजन : तुम तो माँ हो। बड़ी मीठी बातें कर लेती हो। कोई कड़वी बात कहने वाली मिली तब ?

माँ : मैंने ऐसे कौन पाप किए हैं जो कड़वी बात कहने वाली मिलेगी। फिर पढ़ी-लिखी लड़की कड़वी बात को भी मीठी बना लेती है !

राजन : (उठकर) पढ़ी-लिखी लड़की ! ना, माँ ! पढ़ी-लिखी लड़की से भगवान बचाए ! आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियाँ तो ऐसी हैं जैसे इंश्योरेन्स पालिसी। हर महीने एक भारी प्रीमियम भरते जाओ। फिर आज यह चाहिए—कल वह चाहिए—जब बाहर निकलेंगी तो मालूम होगा कि चलती-फिरती नुमाइश जा रही हैं। कहीं नरगिस की नकल, कहीं शीला की शकल। ऐसे महँगे सौदे को इस टूटी चारपाई पर सजाऊँगी ? तुम्हीं बोलो, माँ ! इस इन्द्रधनुष को अपने जैसे गधे की पूँछ से बाँधूंगा ?

माँ : (हँसकर) तू तो लेक्चर देने लगा ! अरे, किसी सीधी-सादी लड़की को घर की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मी बना ले। जो हँसे तो फूल गिरें और रोए तो मोती बरसें। पूरी घर की देवी हो।

राजन : अरे, माँ ! ये परियों की कहानियाँ हैं। मुझ जैसे निराश आदमियों ने ही ये कहानियाँ लिखी होंगी।

माँ : ये कहानियाँ नहीं, बेटे ! ये बातें सच हैं। हमारे घरों में आज भी ऐसी देवियाँ हैं। मैंने एक लड़की की माँ से बातें की हैं। और अच्छी बातें की हैं।

राजन : क्या बातें की होंगी, माँ ! यह तो तुम्हारी ममता है। अच्छा, छोड़ो इन बातों को ! न कोई सीधी लड़की मिलेगी, न मैं शादी करूँगा।

माँ : बस, ऐसा कहने में आजकल के लड़के अपनी शान समझते हैं। 'मैं शादी-वादी कुछ नहीं करूँगा।' कहते तो ऐसा हैं लेकिन लड़कियों के पसन्द के कपड़े पहनते हैं। छपे बुशर्ट दिखाते फिरते हैं। कितने ठाट-बाट से रहते हैं !

राजन : दूसरों की बात छोड़ो, माँ ! मैं क्या कपड़े पहनता हूँ ! (खूँटी की ओर संकेत कर) कुरता, जैकेट, कमीज। न फैशन—न ठाट-बाट ! एक मामूली क्लर्क कहाँ से ठाट-बाट करेगा ?

माँ : तो क्या जो ठाट-बाट नहीं करते, उनकी शादी नहीं होती ? उनकी शादी में जो सुख है, वह ठाट-बाट करने वालों की शादी में नहीं है।

राजन : अब मैं शादी की बातें क्या जानूं !

माँ : आगे जान लेगा। देर-सवेर तो तुझे शादी करनी ही पड़ेगी। एक पहिए से गाड़ी कब चली है !

राजन : मैं तो माँ ! एक पहिए पर ही सैर कर रहा हूँ।

माँ : जगह-जगह की ठोकरें खा रहा है कि सैर कर रहा है ! अच्छी बात है, अब मैं उठती हूँ। तेरी बातों में बड़ा काम हो गया। (उठने का उपक्रम करती है) इस छोटी-सी तिपाई पर मैंने दूध रख दिया है। इसे पी लेना।

राजन : इतनी रात गए ? अब दूध नहीं पियूंगा, माँ !

माँ : अगर कोई कहने वाली होती तो पी लेता। खुद न पीता तो उसे पिला देता। अच्छी बात है, जब इच्छा हो तब पी लेना। तेरे सिरहाने रख देती हूँ। (सिरहाने की टेबल पर रखने के लिए चलती है।)

राजन : (रोककर) मैं रख लूंगा, माँ ! मन हुआ तो सोते वक्त पी लूंगा। अब तुम जाकर सोओ।

माँ : मैं सोऊं ? अब क्या सो सकूंगी ! मैं सोचती हूँ, बेटा ! कि अब सुबह होने ही वाली है। नींद तो आएगी नहीं। मैं गंगास्नान के लिए चली जाऊँ। काशी की माँ भी जाग उठी होगी और गंगा-स्नान की तैयारी कर रही होगी।

राजन : नहीं, माँ ! सुबह होने में अभी देर है। एक घंटे की नींद भी बहुत है।

माँ : लेकिन आँखों में नींद कहाँ है, बेटा ! गंगा-स्नान में मेरा मन भी बहल जाएगा, शीला के नाम की भी डुबकी लगा लूंगी।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

राजन : अच्छी बात है। तुम्हारे आशीर्वाद से ही तो हम लोग जी रहे हैं। जाओ, गंगा-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नान के लिए। लेकिन अँधेरा है। मैं चलूँ तुम्हें पहुँचाने के लिए ?

माँ : इसकी क्या जरूरत है, वेटा ! काशी की माँ का घर वगल में ही तो है। दस वार मैं आई-गई हूँ। मैं चली जाऊँगी। तुम आराम से सो जाओ। मैं भीतर से अपनी धोती ले आऊँ।

[बायें दरवाजे से भीतर प्रस्थान।]

राजन : (सोचता हुआ) माँ का हृदय···बच्चों की याद में आँखों से नींद गायव···मुँह अँधेरे गंगा-स्नान···(टहलते हुए) दीदी के नाम की डुवकी लगाएँगी, ठीक है— जाओ, गंगास्नान के लिए···(अपना बिस्तर ठीक करने लगता है। बीच-बीच में गुनगुनाता जाता है) गंगा तेरी लहर हमारे मन भाई—गंगा तेरी धारा हमारे···

[धोती-तौलिया लेकर माँ का प्रवेश]

माँ : अच्छा, वेटा ! अव जा रही हूँ।

राजन : माँ ! जाओ, मेरे नाम की डुवकी भी लगा लेना। दीदी तुम्हारी वेटी हैं तो मैं भी तो तुम्हारा वेटा हूँ।

माँ : वेटा ही नहीं, प्यारा वेटा है—मैं तेरे नाम की भी डुवकियाँ लगाऊँगी।

राजन : माँ ! गिन कर लगाना।

माँ : हाँ, हाँ, गिन कर—भूल जाऊँगी तो फिर से गिनना शुरू करूँगी।

राजन : अच्छी वात है, तो जाओ—यह टार्च लेती जाओ, रास्ते में काम देगा। (तकिये के नीचे से टार्च निकाल कर देता है।)

माँ : गंगा की गली तो ऐसी है आँख मूँद कर चली जाऊँगी। और अब कुछ दिनों वाद तो इसी गली से जाना है। आँख मूँद कर लेकिन—खैर, दे दे। ले जाऊँगी—(टार्च लेती है) तुझे और कुछ तो नहीं चाहिए ?

राजन : और कुछ नहीं चाहिए, माँ !

माँ : मन हो तो दूध पी लेना। अच्छा, अब तू भी सो। कल तेरा आफिस है। सोयेगा नहीं, तो काम कैसे करेगा ! अच्छा, अब मैं चलती हूँ। राधे गोविन्द—राधे गोविन्द···(प्रस्थान)

राजन : (माँ को द्वार तक पहुँचा कर लौटता हुआ) मेरी अच्छी माँ···मेरी कितनी चिन्ता···यह दूध···खुद नहीं पिया···कहती हैं—'कहने वाली होती तो पी लेता' और कहती हैं—व्याह कर लूँ—मैं क्या व्याह करूँगा ! व्याह करने वालों के रंग-ढंग ही दूसरे होते हैं। खैर, देखा जायगा। अब मैं भी सोऊँ—(चारों ओर देखता है) खिड़की खोल दूँ—ठंडी हवा आए—(खिड़की खोलता है) दरवाजा वन्द कर दूँ ! (दरवाजा बन्द करना है। लौट कर चारपाई के समीप आता है। दूध पीने के लिए उठाता है। एक क्षण रुककर) अब नहीं पियूँगा। सुवह चाय के काम आयेगा। अब सोऊँ। ईश्वर किसी को गरीव न बनाये ! (लैंप की बत्ती कम करता है) कमरे में बहुत हल्का उजेला रह जाता है। राजन चारपाई पर बैठता है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर चद्दर फैला कर ओढ़ता है और 'जय श्री राम' कह कर लेट जाता है ।)

[दो क्षण की शान्ति। खुली हुई खिड़की से टार्च की रोशनी आती है । फिर वह रोशनी भिन्न-भिन्न स्थानों पर पड़ती है। धीरे-धीरे एक व्यक्ति अपने को काले ओवरकोट में छिपाए खिड़की से उतर कर कमरे में प्रवेश करता है । कोट का कालर उठा हुआ है और उसकी आँखों पर काला जालीदार कपड़ा है । वह टार्च से चारों ओर देखता है । उसके हाथ में रिवाल्वर है। वह रिवाल्वर सतर्कता से हाथ में साधे हुए आगे बढ़ता है। खटका होता है ।]

राजन : (चौंक कर सिर उठाते हुए) कौन ? कौन है ?

[आगन्तुक रिवाल्वर आगे बढ़ाता है और भारी आवाज में बोलता है ।]

आगन्तुक : चुप ! रिवाल्वर चला दूंगा । रुपया निकालो ।

राजन : रुपया ! (ऊँचे स्वर में) चोर ! (उठता है ।)

आगन्तुक : वहीं रहो। आवाज निकाली तो गोली मार दूंगा। रुपया निकालो । (रिवाल्वर उठाता है ।)

राजन : (चारपाई पर बैठ जाता है) रुपया ? रुपया नहीं है । मैं गरीब हूँ···मैं गरीब क्लर्क हूँ···

आगन्तुक : (भारी आवाज में) चुप ! रुपया निकालो (रिवाल्वर सामने करता है)। तुम्हारे तकिये के नीचे लिफाफा है । कल तुम्हें तनख्वाह मिली है ।

राजन : तनख्वाह के रुपये ! लेकिन···लेकिन तकिये के नीचे···

आगन्तुक : मैंने दीवाल के पीछे से सब बातें सुनी हैं । (रिवाल्वर तान कर) निकालो लिफाफा ।

राजन : (गिरे हुए स्वर में) मेरा महीने-भर का खर्च—20 रुपये माँ की धोती के···

आगन्तुक : शोर नहीं—मेरे पास ज्यादा वक्त नहीं है ।

राजन : रुपया ले लीजिए। कोई बात नहीं—महीना-भर भूखा रहूँगा—आपने मुझे बड़ा आदमी समझ लिया ! जो थोड़ा-सा रुपया मेरे पास है, ले लीजिए ।

आगन्तुक : जल्दी करो ।

राजन : मालूम होता है, आप गलती से मेरे घर में आ गए हैं। किसी बड़े सेठ के घर जाते तो 82 रुपये के बदले 82 हजार मिलते ! मेरा मकान सुनसान में है, जो चाहे चला आए !

आगन्तुक : बातें मत करो। लिफाफा मेरे पास फेंक दो ।

राजन : अच्छा, निकालता हूँ। (उठ कर तकिये के नीचे हाथ डालता और तकिये के नीचे ही चाकू खोल कर खड़ा हो जाता है) यह चाकू देखा ? भोंक दूंगा ।

आगन्तुक : (दबी हँसी हँसकर) बेवकूफ ! रिवाल्वर के सामने चाकू । एक कदम आगे बढ़े तो गोली तुम्हारी छाती के आरपार होगी । निकालो लिफाफा ।

राजन : (शिथिल होकर) अच्छा, लिफाफा ही ले लीजिए—(तकिये के नीचे से लिफाफा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाल कर आगन्तुक के आगे फेंतका है) एक क्लर्क डाँट खाते-खाते कायर बन जाता है। चाहे आफिसर हो, चाहे चोर हो। उसके लिए दोनों एक हैं। लीजिए, यह चाकू भी ले लीजिए, गोली मार कर गला भी काट दीजिए! (चाकू भी फेंक देता है) मैं इसी लायक हूँ। कायर क्लर्क!

आगन्तुक : (लिफाफा उठाते हुए) मैं कातिल नहीं हूँ और चोर भी नहीं हूँ।

राजन : चोर नहीं है? किसी गरीब से रात में जबर्दस्ती रिवाल्वर के जोर से रुपये छीनते हैं और कहते हैं, मैं चोर नहीं हूँ।

आगन्तुक : (जोर देकर) नहीं। मुझे रुपये की जरूरत है। कहीं और रुपये हैं?

राजन : माँ के पास हैं। वे गंगा नहाने चली गयी हैं।

आगन्तुक : मैं जानता हूँ। कितना रुपया है उनके पास?

राजन : (सोचते हुए) तीन रुपया, पच्चीस नये पैसे···

आगन्तुक : (व्यंग्य से) तीन रुपया, पच्चीस नये पैसे! बहुत बड़ी जमा है! (सहसा चीख कर) ओह, किसने मेरे कंधे में जोरसे काटा? (कंधे पर हाथ रखकर कराहते हुए) ओह, किसने काटा···

[वह कराहता है, हाथ से रिवाल्वर गिर जाता है। राजन शीघ्रता से रिवाल्वर और चाकू उठा लेता है और लैम्प की बत्ती तेज कर देता है।]

राजन : (रिवाल्वर सामने साध कर) अब रिवाल्वर मेरे हाथ में है। निकालो मेरा लिफाफा! (जोर से) पुलीस-पुलीस···

आगन्तुक : (अनुनय के स्वर में) देखिए, पुलीस को आवाज न दीजिए। किसी ने मेरे कंधे में बड़े जोर से काट लिया! (कराहते हुए) आह···

राजन : किसने काट लिया—आप कौन हैं?

आगन्तुक : मैं···मैं···उफ, फिर किसी ने जोर से काटा! आह···

राजन : बहुत अच्छा काटा। अच्छे मौके पर काटा! आपको मालूम होना चाहिए कि गरीबों का पहरेदार भगवान है जो जहरीला कीड़ा बनकर चोरों को काट भी सकता है।

आगन्तुक : (कराहते हुए) जहरीला कीड़ा?

राजन : हाँ, आप कोट उतार कर देखिए।

आगन्तुक : मैं···मैं ··कोट उतारूँ? नहीं, नहीं, मैं कोट नहीं उतारूँगा···फिर चीख कर) उफ, फिर काटा···आह···!

राजन : शाबाश! मेरे प्यारे कीड़े! तुम इसी तरह काटते रहना! जब तक कि ये चोर महाशय अपना कोट न उतारें।

आगन्तुक : अच्छा, अच्छा। उतारता हूँ, उतारता हूँ···

राजन : पर कोट उतारने के पहले मेरा 82 रुपये का लिफाफा हाजिर कीजिए। फिर चिल्लाइए, नहीं तो मेरे हाथ में रिवाल्वर है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगन्तुक : वह नकली रिवाल्वर है, पाँच रुपये वाला। असली रिवाल्वर खरीदने के लिए पैसा कहाँ ?

राजन : (गौर से देखता हुआ) अच्छा, यह नकली रिवाल्वर है! सचमुच बच्चों का खिलौना! (घुमा-फिरा कर देखता है) अँधेरे में इसी के बल पर आप हजारों रुपये लूटते हैं? यह पाँच रुपये वाला रिवाल्वर! (फेंक देता है) आप बहुत होशियार मालूम देते हैं।

आगन्तुक : (कराहते हुए) ओह, माफ कीजिएगा। मैं कोट उतारता हूँ—आप बहुत सज्जन हैं। मुझे पुलिस के हवाले न करें—परिस्थितियों से लाचार होकर यहाँ आया। मैं चोर नहीं हूँ। (आह भर कर) ओह, न जाने कौन-सा कीड़ा मुझे काट रहा है!

[आगन्तुक जैसे ही अपना ओवरकोट उतारता है वैसे ही उसकी साड़ी दृष्टिगत होती है। राजन चौंक कर पीछे हटता है।]

राजन (कौतुक से) आप स्त्री हैं?

आगन्तुक : दुर्भाग्य से! स्त्री हूँ (कोट को उलट कर देखती है) यह काली चींटी है। ओह, बहुत जोर से काटा है!

राजन : लेकिन आपने धोखा खूब दिया! आवाज भी खूब बदली!

आगन्तुक : मैंने अनेक बार पुरुषों का अभिनय किया है। आवाज बदलने का अभ्यास महीनों किया है लेकिन इस क्रूर चींटी ने मेरा भेद खोल दिया! किस बुरी तरह से काटती है यह कलमुँहीं चींटी!

राजन : इस समय तो वह चींटी किसी हाथी से कम नहीं है जिसने मौके पर आपको वेकाबू कर दिया। नहीं तो मैं तो लुट ही गया था! लेकिन स्त्री होकर आपका इतना साहस! आप मानसिंह डाकू की बहन हैं?

आगन्तुक : (सिर नीचा कर) नहीं, एक अनाथ लड़की! भूख की ज्वाला से तड़पती हुई एक अनाथ लड़की।

राजन : अनाथ लड़की? ऐसी अनाथ लड़की जो दूसरों को अनाथ बना दे! लेकिन महाशया जी! भूख की ज्वाला ने आज तक किसी लड़की को पुरुष नहीं बनाया यानी मेरे कहने का मतलब यह है कि पुरुष का वेश धारण नहीं कराया।

आगन्तुक : यह मेरे भाग्य का दोष है!

राजन : चाहे जिसका दोष हो, अब तो भेद खुल गया। यह आँखों की पट्टी भी उतार दीजिए।

आगन्तुक : देखिए, अब तो मैं आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। आप से प्रार्थना करती हूँ कि आप पुलिस में रिपोर्ट न करें। फिर आप जो आज्ञा देंगे, उसका पालन करूँगी। लीजिए, यह आँखों से पट्टी भी उतार देती हूँ।

[वह आँखों से पट्टी उतारती है। देखने में अत्यन्त सुन्दरी है। राजन भौचक होकर उसकी ओर देखता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मेरे स्वर्गवासी पिता का यह ओवर कोट जो मुझे पूरी तौर से छिपा लेता है। (टेबिल पर रखती है।)

राजन : आप इतनी सुन्दर हैं! इतनी सुन्दर लड़की को भी चोरी करने की आवश्यकता आ पड़ी? आप मुझे लूटने आईं थीं—लेकिन शिष्टता के नाते कहना चाहता हूँ कि आप इस कुर्सी पर बैठ जायँ।

आगन्तुक : जी नहीं, लेकिन मैं कहना चाहती हूँ कि मैं चोर नहीं हूँ।

राजन : तो फिर आप कौन हैं? रात के तीसरे पहर आप इस तरह अपने स्वर्गवासी पिता के वस्त्र धारण कर घूमती हैं और नकली पिस्तौल से लोगों को डरा कर रुपए लूटती हैं। क्या आपके पिताजी भी चोरी करते थे?

आगन्तुक : जी नहीं, वे चोरों को सजा देते थे। वे ईमानदार थे इसलिए उनके मरने के बाद मैं और मेरी माता पैसे-पैसे को मुहताज हो गयीं। जीवन में कोई सहायता नहीं घर पर बूढ़ी माँ दो-दो दाने को तरस रही हैं।

राजन : आप किसी भी दिन मेरे पास आ सकती थीं। मैं आपकी थोड़ी-बहुत सहायता अवश्य कर देता।

आगन्तुक : आप क्या सहायता करते? संसार में जो व्यक्ति सहायता करता है वह पहले सहायता की कीमत चाहता है···

राजन : आप सच कहती हैं। जमाना बहुत खराब है लेकिन मैं व्यापारी नहीं हूँ। क्लर्क हूँ लेकिन ईमानदार इंसान हूँ।

आगन्तुक : मैं नहीं जानती थी कि आज के जमाने में एक क्लर्क भी ईमानदार और सज्जन होता है।

राजन : मौके पर तो सभी सज्जन हो जाते हैं। मैं भी सज्जन सही लेकिन अगर आप मुझे सज्जन समझती हैं तो इस कुर्सी पर बैठ जाइए और अपना परिचय दीजिए।

आगन्तुक : देखिए, आप पुलिस को खबर तो नहीं देंगे?

राजन : आप इतनी घबराई हुई क्यों हैं? आपको मुझ पर विश्वास क्यों नहीं होता? आप 82 रुपये का लिफाफा अपने ही पास रखिए। मैं पुलिस को खबर नहीं दूँगा।

आगन्तुक : (कुर्सी पर बैठ कर) धन्यवाद! मेरा नाम करुणा है। मैं एक अनाथ लड़की हूँ, पर भिक्षा लेना मनुष्यता का अपमान समझती हूँ, आप अपना रुपया वापस ले लीजिए।

[कोट से लिफाफा निकाल कर टेबल पर रखती है।]

राजन : (दूसरी कुर्सी पर बैठ कर) बातचीत से मालूम होता है कि आप पढ़ी-लिखी भी हैं।

करुणा : अपने ही परिश्रम से मैंने बी० ए० तक शिक्षा पाई है।

राजन : (चौंक कर) बी० ए० तक? इसीलिए इतनी साहसी हैं?

करुणा : साहसी तो प्रत्येक लड़की को होना चाहिए लेकिन बी० ए० तक पढ़ने के बाद भी यह अभागिन अपनी बूढ़ी माँ का पेट इज्जत से नहीं भर सकी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजन : इज्जत से नहीं भर सकी ? चोरी करना कौन-सी इज्जत की बात है ?

करुणा : (शिथिल स्वर से) माँ को भूखी नहीं रख सकती। हिन्दी की किसी फिल्म में चोरी का यह ढंग देखा था ! स्वर्गीय पिता जी का वह ओवर कोट जो मेरे पूरे शरीर को ढँक लेता है, मेरे बचपने के कपड़ों की यह जाली, यह दिखाने का रिवाल्वर—सभी का उपयोग मैं कर सकी।

राजन : अच्छा उपयोग हुआ ! आजकल की वहुत सी हिन्दी फिल्में चोरी की कला ही सिखाती हैं। लेकिन आपको चोरी करने की जरूरत ही क्या थी ! आप बी० ए० पास हैं, कहीं भी आपको नौकरी मिल सकती थी !

करुणा : नौकरी का नाम आप मेरे सामने न लें।

राजन : क्यों ? अपना देश तो अब स्वतन्त्र है ! (चित्रों की ओर संकेत कर) बापू, जवाहर, सुभाष का देश है—अपनी सरकार की नौकरी।

करुणा : अपनी सरकार की नौकरी ! उसकी याद आते ही मेरा हृदय घृणा और शोक से भर जाता है।

राजन : क्यों, मैं भी तो नौकरी करता हूँ। घृणा और शोक की तो कोई बात नहीं।

करुणा : लेकिन आप पुरुष हैं, स्त्री नहीं। स्त्रियों के लिए नौकरी अभिशाप है। यहाँ रुपये का मूल्य है, इंसान का मूल्य नहीं। जहाँ अधिकार के सामने इंसान की इज्जत धूल में लोट सकती है।

राजन : अच्छा, क्या आपने कहीं नौकरी की ?

करुणा : की ! एक वार नहीं, सात बार !

राजन : योग्यता नहीं दिखला सकीं ?

करुणा : यहाँ योग्यता कौन देखता है ! यहाँ तो दूसरी ही वातें देखी जाती हैं।

राजन : सत्य है, मुझे भी थोड़ा बहुत अनुभव है। लेकिन आपकी नौकरी क्यों नहीं चल सकी ?

करुणा : यही भयंकर अभिशाप है।

राजन : मुझे सुना सकती हैं ?

करुणा : कैसे कहूँ ! मैंने एक नहीं—सात-सात स्कूलों और कालिजों में नौकरी की—लेकिन कहीं भी पन्द्रह दिन से अधिक नौकरी नहीं कर सकी।

राजन : कारण ?

करुणा : जिस स्कूल या कालेज में मुझे काम मिला उसके अधिकारी और मैनेजर मुझे ऐसी दृष्टि से देखते थे कि मैं सम्मान के साथ वहाँ नहीं रह सकती थी। नौकरी पाने के कुछ दिन वाद ही मुझे नौकरी छोड़ देनी पड़ती थी। ये पढ़े-लिखे लोग इतने पतित होते हैं, यह मैं नहीं जानती थी।

राजन : (सिर नीचे कर) वास्तव में वड़े दुःख की बात है।

करुणा : मैं कलंकित जीवन व्यतीत करना नहीं चाहती थी। तितलियों की तरह घूमना, बापू के देश का आचरण नहीं है। (गांधी जी के चित्र की ओर देखती है।)

राजन : आप वास्तव में देवी हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करुणा : (अपने ही प्रवाह में) मेरे पिता जी नहीं है। मैं निर्धन हूँ। इसलिए मेरा विवाह नहीं हो सकता था। मेरे परिवार में कोई नहीं है, भाई नहीं, वहिन नहीं, केवल एक बूढ़ी माँ है जिन्होंने मुझे इज्जत के साथ रहने की शिक्षा दी। आज के जमाने में सुखी वह है जो अपनी इज्जत बेच देता है, बड़ा वह है जो दूसरों की खुशामद में सब कुछ खो देने के लिए तैयार रहता है। और जिसने इज्जत की बात सोची उसकी किस्मत में दर-दर की ठोकरें खाना अपमान, तिरस्कार, भूख और सब तरह की यंत्रणा! आज वही इज्जत लेकर मैं अपनी बूढ़ी माँ को अन्न के दो दाने नहीं दे सकी! कीर्तन करने के लिए हम दोनों राम-मन्दिर में चली जाती हैं। जो प्रसाद मिल जाता है वही हम दोनों के दिन-भर का भोजन हो जाता है। मेरी माँ आज मेरे साथ तीन दिनों से भूखी हैं। पुजारी जी ने प्रसाद देना बन्द कर दिया। इसीलिए मैंने आज यह साहस का कार्य किया। माँ की भूख नहीं देख सकी! गला भर आता है, हलकी सिसकी।)

राजन : आप दुखी न हों। मुझे बहुत दुःख है कि आप तीन दिन से भूखी हैं। देखिए, मेरी माँ गंगास्नान को जाते समय मेरे लिए दूध रख गयी थीं। मैंने इसे नहीं पिया। भगवान ने शायद आपके लिए ही इसे बचा रक्खा है, लीजिए। (दूध का गिलास उठा कर लाता है) आप यह दूध पी लीजिए।

करुणा : मैं दूध पियूँ ? मेरी माँ घर पर तीन दिन से भूखी हैं। यहाँ मैं अपनी भूख बुझाने के लिए दूध पी लूँ। आपने मुझे क्या समझा है ?

राजन : आप वास्तव में ऊँचे चरित्र की लड़की हैं। आपसे क्या कहूँ! एक काम करें। आप यह दूध अपने साथ लेती जाएँ और अपनी माँ को दे दें। सुबह होने को है, दूध वाला आएगा। मैं सारा दूध आपके लिए आपके घर पहुँचा दूँगा। आप अपने मकान का पता बतला दीजिए।

करुणा : मकान का पता ? ऐसी अभागिन लड़की के मकान का क्या पता। लेकिन अगर आप वास्तव में सज्जन हैं तो मैं परिश्रम का पैसा लूँगी। अब आठवीं बार नौकरी करूँगी। आपके यहाँ नौकरी करूँगी और आपकी माँ को धर्म-ग्रंथ सुनाऊँगी। दो व्यक्तियों के उदर-पोषण के लिए जो उचित समझिए, मुझे दे दीजिएगा।

राजन : अवश्य दूँगा। यदि माँ की इच्छा होगी तो ऐसा प्रबन्ध हो जाएगा लेकिन नौकरी से पहले आपका विवाह अवश्य हो जाना चाहिए मैं एकाकी आदमी हूँ। अपने घर में किसी अविवाहिता लड़की को काम नहीं करने दूँगा। लोग दस तरह की बातें कह सकते हैं। फिर आप इतनी शिक्षिता हैं, यह नाम, रूप, स्वभाव। करुणा देवी! आपका विवाह अवश्य हो जाना चाहिए।

करुणा : यह मेरे भाग्य का विधान नहीं है।

राजन : तो फिर भाग्य का विधान क्या है ? आप भूखी रहें ? अपनी माँ को भूखी रखें ? और सिनेमा के ढंग से चोरी करें ?

करुणा : अब चोरी नहीं करूँगी। यदि ढंग की नौकरी नहीं मिली तो·· (रुक जाती है।)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजन : (प्रश्न की मुद्रा में)···तो ?

करुणा : ···तो···तो आत्महत्या करूँगी।

राजन : आत्महत्या ?···इतनी शिक्षा पाने के बाद आत्महत्या ? (विनोद के स्वर में) आजकल आत्महत्या तो शायद फैशन में दाखिल हो गया है। बात-बात में आत्म-हत्या। हर गली, कूचे, मुहल्ले में आत्महत्या होती है। छुट्टी की अर्जी देना और आत्महत्या करना—बराबर। हम इतने कमजोर हो गए हैं कि जीवन से संघर्ष नहीं ले सकते।

करुणा : लेकिन मृत्यु से संघर्ष ले सकते हैं।

राजन : इसी संघर्ष का नाम आत्महत्या है। आजकल आत्महत्याएँ पाँच तरह से की जाती हैं··· (उँगली पर गिनता हुआ) पहली ट्रेन से कटकर—अंग्रेजों ने बहुत पहले हमारी मनोवृत्ति समझ ली थी—इसलिए ट्रेन चला दी—यात्रा तो एक बहाना है। दूसरा ढंग है कुएँ में कूद कर—हमारे बुजुर्ग भी कुछ-कुछ कुएँ की ऐसी उपयोगिता समझते थे। तीसरा ढंग है जहर खाकर। चौथा है रस्सी से लटक कर और पाँचवाँ है मिट्टी का तेल कपड़ों पर छिड़क कर। तो आपको कौन-सा तरीका पसन्द है ? मिट्टी के तेल के लिए तो आपके पास पैसे होंगे नहीं।

करुणा : (खड़े होकर) आप मेरी बात का मजाक उड़ाते हैं ?

राजन : जी नहीं, आत्महत्या बहुत गम्भीर होती है। उतनी ही गम्भीर जितना विवाह। विवाह भी एक तरह की आत्महत्या है। पहले उसे कर देखिए।

करुणा : यह असम्भव है।

राजन : पूरी तरह सम्भव है। मैं उसका प्रबन्ध कर सकता हूँ। मैं गरीब हूँ लेकिन मंगल कामनाएँ मेरे पास भरपूर हैं। अपनी हैसियत से मैं आपकी शादी के लिए यह तकिया भेंट कर सकता हूँ।

[विस्तर से तकिया उठा लेता है।]

करुणा : (तीक्ष्णता से) तकिया ? क्या मतलब ?

राजन : कोई खास मतलब नहीं। यह तकिया ही मेरी सारी सम्पत्ति है। अपनी सद्-भावना में मैं और क्या भेंट कर सकता हूँ ?

करुणा : आपसे भेंट चाहता ही कौन है ? आप अपना तकिया अपने पास रक्खें और चाहें तो स्वयं अपना विवाह करें। आपके कमरे में आने से पहले मैंने आपकी माँ से सब कुछ सुन लिया था। आपको विवाह करना चाहिए।

राजन : मुझे कोई अच्छी लड़की ही नहीं मिल रही है, विवाह किससे करूँगा ?

करुणा : तो मत कीजिए।

राजन : लेकिन आपको करना चाहिए और मेरी ओर से यह भेंट स्वीकार कीजिए। (तकिए की ओर संकेत)

करुणा : देखिए, मैं मजाक पसन्द नहीं करती। यदि आपने मुझे पुलिस से बचाने का विश्वास न दिलाया होता तो मैं आपको इस मजाक का मजा चखा सकती थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजन : मजा तो आप अब भी चखा सकती हैं। लेकिन मैं स्वयं एक अपरिचित लड़की से मजाक नहीं कर सकता। आपके चरित्र की पवित्रता से, आपकी शिष्टता से, आपके स्वभाव से मैं बहुत प्रभावित हूँ। इसलिए मैंने अपनी भेंट प्रस्तुत की थी। देखिए, तकिए की भेंट यह है।

[चाकू से तकिया फाड़ता है और सौ-सौ रुपए के दस नोट निकालता है।]

लीजिए, यह मेरी भेंट! सौ-सौ के दस नोट—एक हजार! चोरों के डर से यह रुपया किसी सन्दूक में रख नहीं सकता था—आप ही रिवाल्वर दिखलाकर यह रुपया छीन सकती थीं। यह एक हजार रुपया है जो तकिए के भीतर मैंने सहेज कर रखा था। वही मैं भेंट करना चाहता था। इतने में तो आपका विवाह हो सकता है।

[करुणा कुछ नहीं बोलती।]

मेरे पिछले दस वर्षों की कमाई है। माता जी उठते-बैठते आग्रह करती हैं कि मैं कोई अच्छी लड़की देखकर विवाह कर लूं। कोई अच्छी लड़की मिलती नहीं, विवाह किससे करूँ! अच्छी लड़की मिलने की आशा में मैंने अपनी गाढ़ी कमाई के एक हजार रुपए इकट्ठे किए थे।

करुणा : तो जैसे भी हो। आप इन रुपयों से अपनी माता जी का ही आग्रह पूरा करें। (सहसा) अच्छा, अब मैं जाऊँगी। आपकी कृपा के लिए धन्यवाद। (जाने को उद्यत)

राजन : अच्छी बात है, आप जाएँ। यदि कष्ट न हो तो अपना यह कोट और आँखों की यह जाली लेती जाएँ। साथ ही यह रिवाल्वर भी। अपने पिता जी और अपने शैशव जी की ये स्मृतियाँ! शायद फिर कभी काम आएँ।

करुणा : अब ये कभी काम नहीं आएँगी। (कोट उठाती है।)

राजन : तभी जब आप ऐसी ही नौकरी करें। हाँ, आप मेरी माँ को धर्म-ग्रन्थ सुनाने की बात कह रही थीं, यदि आप यह कृपा करें तो इन रुपयों में से कितना स्वीकार करेंगी?

करुणा : यह कुछ नहीं कह सकती। मैं अपनी माँ से पूछ कर बताऊँगी।

राजन : ठीक है, मैं भी अपनी माँ से पूछ लूंगा। (स्मरण कर) हाँ, आपको अपनी माता जी के लिए यह दूध भी तो ले जाना है…

[बाहर किसी के आने की आवाज।]

करुणा : (सशंकित स्वर में) कोई आ रहा है!

राजन : आप घबराएँ नहीं—दूध वाला होगा। रुक जाइए, अपनी माता जी के लिए यह ताजा दूध भी लेती जाएँ। आपको अपने मकान का पता देने की जरूरत नहीं पड़ी। चाहें तो दूध वाले को बतला दें। मुझे न बतलाएँ।

[नेपथ्य से स्वर—बेटा राजन! सो रहा है क्या?]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[माता का स्वर सुनकर दोनों के मुख पर घबराहट के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगते हैं। करुणा मुख फेर कर तिरछी होकर खड़ी हो जाती है। माता का स्वर चल रहा है—]

अरे, मैं पैसे ले जाना भूल गई, बेटा ! नाव वाला पैसे माँगेगा, पंडित जी पूजा के लिए पैसे चाहेंगे। उसी थैली में रखे हैं पैसे—तीन रुपया 25 नये पैसे। (मुख नीचा किए प्रवेश) सरकार ने भी क्या नए पैसे चलाये हैं, बूंद-बूंद भर के। शीला क्या चली गई—मेरा सिर ही फिर··· (सामने देखते ही) एँ, यह कौन है ? शीला ? (कोई नहीं बोलता राजन से) एँ, कोई नहीं बोलता। अरे राजन ! तू तो शीला को पहुँचा के न आ गया था ? फिर यहाँ कैसे आ गई ? और कुछ बोलती भी नहीं।

राजन : दीदी नहीं है, माँ !

माँ : दीदी नहीं है तो फिर कौन है ? इतने सवेरे यहाँ, इस जगह ! तू तो ऐसा नहीं है, राजन !

राजन : यह लड़की भी ऐसी नहीं है, माँ ! गंगा-जल की तरह पवित्र, केसर की तरह सुगंधित, कपूर की तरह शीतल।

माँ : लेकिन यह लड़की है कौन ?

करुणा : यह अभागिन लड़की चोर बनकर आई थी, माँ ! मुझे पुलिस में दे दो।

माँ : चोर बनकर ?

राजन : हाँ, मैं तुमसे चोरी की बातें कर रहा था न ? तुमने कहा था—रात में चोरों की बातें करने से चोर आ जाते हैं—तो चोर आ गया !

माँ : चोर आ गया ! तो यह लड़की कौन है ? और चोर ? चोर आया, तो यह लड़की क्यों आई ? यह झूठ है—यह लड़की कौन है ? (गहरी दृष्टि से देखती है) एँ, इस लड़की को मैंने कहीं देखा है ! कहाँ देखा है—कहाँ देखा है—मन्दिर में ? हाँ, हाँ, मन्दिर में। फिर तू यहाँ कहाँ, बेटी ! तू तो मन्दिर में कीर्तन करती है।

राजन : अरे वाह, माँ ! मैं इसे अभी तक नहीं जान सका और तुम इसे 'बेटी' कह रही हो ? यह मुझे भव-सागर से पार करने आई थी।

माँ : सचमुच, इसमें यही गुण है, बेटा ! बड़ा सुन्दर कीर्तन करती है। तुम्हारा (सोचते हुए लड़की से) नाम करुणा है न !

राजन : अच्छा, नाम भी जानती हो, माँ !

करुणा : माता जी, मैं करुणा ही हूँ। मैंने मन्दिर में आपके दर्शन किए थे। आपका घर नहीं जानती थी, इसलिए यहाँ आ गई ? क्षमा करें।

माँ : अरे, तो गंगा जी के रास्ते में ही तो मेरा घर है। स्नान के समय आ गई तो अच्छा किया। लेकिन मैं कुछ पहले चली गई थी।

राजन : माँ ! यह लड़की तो योग-बल से यहाँ आ गई ! तुम्हारा घर नहीं जानती थी, फिर भी तुम्हारे यहाँ आ गई ! (हाथ जोड़कर करुणा से) धन्य हो देवी ! अच्छा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीर्तन करती हो !

माँ : राजन ! यह बहुत ही अच्छी लड़की है। मैंने कहा था न तुमसे कि मैं इसकी माँ से बातें कर चुकी हूँ। अपनी ही जाति के बड़े ऊँचे कुल के हैं ये लोग ! ···

[राजन विस्फारित नेत्रों से करुणा की ओर देखता है।]

बेचारे बुरे दिन काट रहे हैं।

राजन : अरे, माँ ! तुम तो इन्हें इतना जानती हो कि उतना शायद मुझे भी न जानती हो !

माँ : नहीं, बेटा ! गंगा जी ने शायद तुम दोनों को अच्छी तरह से जानने के लिए ही लौटा दिया है। पैसा भूलने का तो एक बहाना बना दिया उन्होंने।

राजन : यह सब इन निर्धन देवी के कीर्तन का फल है !

माँ : होगा। कीर्तन का बड़ा फल होता है, बेटा ! और कोई धनी है, कोई निर्धन ! यह तो सब काल-चक्र का फेरा है।

राजन : माँ ! आज ब्राह्म मुहूर्त में ये अपनी निर्धनता दूर करने यहाँ आईं।

[करुणा अपने ओंठों पर उँगली रखकर चुप रहने का संकेत करती है।]

शायद ये भी गंगा-स्नान करने के लिए जा रही थीं। इन्होंने मुझसे कहा कि ये आपको धर्म-ग्रन्थ सुनाने की नौकरी चाहती हैं। मैंने कहा कि मैं गरीब क्लर्क हूँ। तुम्हें कोई पारिश्रमिक तो दे नहीं सकता फिर तकिए के रुपयों की याद आई ! मैंने देखने के लिए तकिए के रुपये निकाले···

माँ : (प्रसन्न होकर) तकिए के रुपये ! तूने अच्छी याद दिलाई। (हँस कर) बेटे ! अब तो मैं जिन्दगी भर इसी लड़की से धर्म-ग्रन्थ सुनूँगी। इसे मेहनत के पैसे न देकर ये सारे रुपये दे दूँगी। मैं इसकी माँ से सब बातें कर चुकी हूँ। लेकिन रुपये देने के पहले एक शर्त होगी।

राजन : वह क्या, माँ ?

माँ : कहूँ ?

राजन : हाँ, माँ ! कहो न, क्या शर्त होगी ?

माँ : दरवाजे पर शहनाई बजेगी। शहनाई की शर्त होगी !

राजन : अरे, वाह माँ ! तुम तो अन्तर्यामी हो ! सबके मन की बात जान गईं ! मेरी अच्छी माँ !!

[राजन माँ से लिपट जाता है। करुणा मुस्कराकर, सिर का कपड़ा सँभाल कर, प्रणाम की मुद्रा में सिर झुका लेती है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐक्ट्रेस

पात्र-परिचय

प्रभा : पच्चीस वर्षीया सुन्दरी अभिनेत्री
किशोरी : प्रभा की सेविका
अनंगकुमार : 'चारुचित्र' का संपादक
कमलकुमारी : अनंगकुमार की पत्नी
सेविका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[प्रभात का समय। वन-प्रदेश। विश्वप्रभा-सिनेटोन अपने नए चित्रपट 'रक्षा-बंधन' की शूटिंग करने जा रही है। प्राकृतिक दृश्यों का चित्र लेने के लिए यही सुन्दर स्थान चुना गया है। एक सुन्दर पहाड़ी है, जिसके निम्न प्रदेश में एक निर्झर सुमधुर ध्वनि से प्रवाहित हो रहा है। इसी पहाड़ी पर एक सुन्दर तंबू तना हुआ है। उसमें प्रधान अभिनेत्री के ठहरने का प्रबंध है। उसी में एक सुसज्जित कमरा, जिसमें अनेक स्थानों पर प्रमुख अभिनेत्रियों के चित्र। खिड़कियों और दरवाजों पर सुनहले परदे। मनुष्य के पूरे शरीर का प्रतिबिंब दिखलाने वाले तीन बड़े-बड़े शीशे। एक सम रूप से सामने है, और दो उसके बगल में। एक कोने में चमकती हुई टेबिल रक्खी है, जैसे उस पर अभी ही पालिश हुई हो। टेबिल पर एक बड़ा फूलदान है, जिसमें ताजे फूल सजे हुए हैं। पास ही कलमदान रखा हुआ है है। पेपर-रैक में कुछ कागज और लिफाफे। टेबिल के समीप चार कुर्सियाँ हैं, जिन पर मखमली गद्दे सजे हुए हैं। कमरा बहुत ही सुन्दर है। ज्ञात होता है, वह किसी निपुण चित्रकार की छवि-प्रसूता तूलिका से निर्मित एक स्पष्ट चित्र है।

कमरे में पच्चीस वर्षीया एक सुन्दर युवती। उसका नाम है प्रभा। सुन्दर और सुडौल शरीर। रेशमी वस्त्र। माथे में कस्तूरी-बिंदु, जैसे ईश्वर ने यौवन को माथे ही में कील दिया है। बाल बिखरे हुए, जो उसके अरुण कपोलों को छूते हुए कुछ तो उभरे हुए वक्षःस्थल पर सिमिट गए हैं, और शेष पीठ पर लहरा रहे हैं। नेत्रों में 'अमी-हलाहल मद'। साड़ी कुछ अस्तव्यस्त हो गई है। वह शीशे के सामने खड़ी होकर अभिनय कर रही है। दृढ़ता से—]

मैं तुम्हें प्यार नहीं कर सकती। (जोर से) तुम दानव हो। पिशाच हो। रूप और यौवन से ढके हुए पशु, एक हिंदू नारी पर अत्याचार! वहीं खड़े रहो! एक कदम भी··· (अस्थिर होकर) अहः, दौड़ो! मदन, (रुककर स्वागत) नहीं, मदन जरा और करुण स्वर में होना चाहिए। (करुण स्वर से) म···द···शीशे के समीप जाकर, भाव-भंगिमा से···म···द···ा···न ा···न।

[किशोरी का प्रवेश। आयु 22 वर्ष, साधारणतः सुन्दर। भाव-मुद्रा से ज्ञात होता है कि वह आवश्यकता से अधिक गंभीर है। वह प्रभा की सेविका है।]

किशोरी : श्रीमतीजी, आप कितनी देर और अभ्यास करेंगी? जल-पान का समय तो हो गया।

प्रभा : (चौंककर रुष्टता से) किशोरी?

किशोरी : श्रीमतीजी!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभा : (रूखे स्वर से) इस समय तुम्हारा आना अच्छा नहीं हुआ। (कुर्सी पर बैठ जाती है।)

किशोरी : (नम्रता से) मैं क्षमा चाहती हूँ। श्रीमतीजी, कल रात आपने कुछ खाना नहीं खाया। दो बजे रात तक जागती रहीं। सुबह से फिर आप अपने अभ्यास में लग गईं। जब तक आप ठीक तरह से भोजन नहीं करेंगी, तब तक···

प्रभा : (बीच ही में) अगर मुझे भूख न हो, तो ?

किशोरी : आपको भूख न जाने क्यों नहीं लगती। नाम-मात्र को भोजन करती हैं। मैं तो तीन वर्ष से यही देखती आ रही हूँ। श्रीमतीजी से कारण पूछने का साहस भी नहीं हुआ।

प्रभा : किशोरी, मुझे भूख नहीं लगती। क्या कारण बतलाऊँ ? समझ लो, मैं अपनी भूमिका में अपने प्राणों को डालकर अपने को भूल जाना चाहती हूँ। मैं अपने अभ्यास में अपने अस्तित्व को घुला देना चाहती हूँ। शरीर को मन में सन्निहित कर देना चाहती हूँ।

किशोरी : (गर्व से) इसमें कोई संदेह हो नहीं सकता कि आपके अभिनय में जीवन जैसे झरने की तरह फूट पड़ता है। आपकी वाणी में प्राणों की गहराई छिपी हुई है। वीणा-झनकार-सी अनंत स्वरलहरी कितने माधुर्य से गूँजती है। आपकी भाव-भंगी में जैसे मूक विचार तड़प रहे हैं। स्वाभाविकता और सौंदर्य जहाँ अपनी एक ही परिभाषा पाते हैं।

प्रभा : (मुस्कराकर) भाषण तो अच्छा दे सकती हो किशोरी ! शुद्ध हिंदी। तुम छायावाद की कवयित्री बन सकती हो।

किशोरी : आप हँसी समझती हैं, पर वास्तव में मैं सच कह रही हूँ। हिंदी सिनेमा-संसार में आप ही की विजय-श्री मुस्करा रही है। आपके अभिनय की प्रशंसा से कितने पत्रों के पृष्ठ सजाए जाते हैं ! कितने पात्र आपके साथ अभिनय करने को उत्सुक हैं।

प्रभा : (व्यंग्य से) सचमुच ?

किशोरी : (गम्भीरता से) 'चारुचित्र' में प्रकाशित हुआ है कि 'मेरे प्रियतम' नाम के फिल्म में आपकी भूमिका ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत में भी हिंदी के अच्छे चित्रपट बन सकते हैं, जिनकी समानता पश्चिम के अच्छे चित्रपटों से की जा सकती है। उस चित्र में न तो चुम्बन ही है, और न आलिंगन ही। प्रेम की कितनी सजीव मूर्ति है ! युवकों के सामने देश-प्रेम और शक्ति का आदर्श है, और युवतियों के सामने साहस और सच्चे प्रेम का।

प्रभा : (किशोरी के स्वर को दुहराते हुए) युवकों के सामने देश-प्रेम और शक्ति का आदर्श है, और युवतियों के सामने साहस और सच्चे प्रेम का।

किशोरी : आप तो यहाँ भी अभिनय करने लगीं। पर सचमुच 'चारुचित्र' ने लिखा कि श्रीमती प्रभा के अभिनय की उत्कृष्टता से उनके साथ अभिनय करनेवाले ने स्थायी कीर्ति प्राप्त कर ली है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभा : (हँसते हुए) हिंदी के संपादकजी जो चाहें, लिख सकते हैं। संपादकजी ही तो हैं।

किशोरी : अच्छा, तो थोड़ा-सा जल-पान लाऊँ? यहीं पर?

प्रभा : मैंने प्रण कर लिया है कि जब तक मैं अपनी भूमिका के सबसे कठिन भाग का सफलतापूर्वक अभिनय न कर लूँगी, तब तक जल-पान भी न करूँगी।

किशोरी : कौन-सा कठिन भाग?

प्रभा : वही—'मैं तुम्हें प्यार नहीं कर सकती···।'

किशोरी : (प्रभा का मनोरंजन करने के लिए) मैं प्यार के योग्य भी तो नहीं हूँ।

प्रभा : (हँसकर) पगली, मैं अपनी भूमिका के विषय में कह रही हूँ।

किशोरी : अच्छा, कीजिए, मैं देखूँ।

प्रभा : देखोगी? अच्छा, अपनी निष्पक्ष सम्मति देना।

किशोरी : अवश्य!

प्रभा : देखो, (कुर्सी से उठकर, अभिनय करती हुई) मैं तुम्हें प्यार नहीं कर सकती। (जोर से) तुम दानव हो, पिशाच हो। रूप और यौवन से ढके हुए पशु, एक हिंदू-नारी पर यह अत्याचार! वहीं खड़े रहो! एक कदम भी··· (अस्थिर होकर) अहः, दौड़ो, म···द···।···न,···म···द···न।

किशोरी : (उमंग से) वाह! बहुत सुन्दर—क्रोध और करुणा का इतना सुन्दर मिलाप! आप मदन किस प्रकार कातर होकर पुकारती हैं। एक पत्थर से ठोकर खाकर जैसे जल विचलित हो उठा है। आँखें इस तरह झुक जाती हैं, जैसे उषा में रँगी हुई पानी की लहर।

प्रभा : (मुस्कराकर) सचमुच?

किशोरी : मेरे कथन को प्रमाणित करने के लिए ये शीशे मौजूद हैं। आप अपने अभ्यास में पूर्ण सफल हुईं। अब थोड़ा-सा जल-पान कर लीजिए। फिर बारह बजे से रिहर्सल और शूटिंग है।

प्रभा : कहाँ? इसी पहाड़ी के नीचे?

किशोरी : हाँ, इसी स्थान पर।

प्रभा : किशोरी, सच जानो, कितनी मोहक जगह है यह! कैसी सुन्दर पहाड़ी है! ज्ञात होता है, मानो वन-श्री ने अपने यौवन-रस से सींच-सींचकर वृक्षों को बड़ा किया है। एक-एक फूल अपने अंग में एक-एक काश्मीर को समेटकर बैठा है। लताओं के कुंज कितने सुन्दर हैं। श्रीकृष्ण होते, तो एक बार इन कुंजों में बैठकर अपनी योग-माया-सी मुरली अवश्य बजाते।

[किशोरी प्रशंसात्मक दृष्टि से प्रभा को देख रही है।]

प्रभा : (उसी स्वर में) और वह निर्झर! बीस फुट से नीचे गिर रहा है। शायद यह बतलाने के लिए कि सौंदर्य का भी पतन होता है। जल जैसी कोमल वस्तु को भी संसार के संघर्ष का अनुभव करना पड़ता है। झरने का नाम क्या है किशोरी? मंदार?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोरी : हाँ, मंदार।

प्रभा : और किशोरी, जब मंदार का जल पत्थर के नीचे से उमड़कर बढ़ता है, तो ऐसा मालूम होता है, जैसे पानी से दूध की धारा निकल रही है।

किशोरी : सचमुच इतना सुन्दर दृश्य तो मैंने कहीं नहीं देखा।

प्रभा : और किशोरी, यदि अभिनय करते-करते मैं उसी में डूब जाऊँ, तो तुम क्या करो ? (हास्य)

किशोरी : श्रीमतीजी, आप कैसी बातें करती हैं ?

प्रभा : सच मानो किशोरी ! वह इतनी सुन्दर जगह है कि वहाँ मरने में भी आनन्द मिलेगा। निर्झर की धारा इतनी निर्मल है कि उसमें डूबना भी गौरव की बात है।

किशोरी : (हँसकर) वाह श्रीमतीजी !

[एक सेविका का प्रवेश। आकर एक विजिटिंग कार्ड देती है।]

प्रभा : (विजिटिंग कार्ड की ओर देखती हुई) कौन है ? (कार्ड देखकर) 'चारुचित्र' के संपादक। सपत्नीक।

किशोरी : अच्छा, उसी सिनेमा-पत्र के संपादक ! कैसे आए ?

प्रभा : शायद इंटरव्यू के लिए आए होंगे। आजकल यह तो संपादकों का एक रोग-सा हो गया है।

किशोरी : तो मैं उन्हें बाहर ठहरने के लिए कह दूँ। इस बीच में आप जल-पान कर लें।

प्रभा : नहीं, जल-पान की ऐसी कोई जल्दी नहीं है। इन लोगों से मिल लूँ, फिर जल-पान की बात सोचूँगी।

किशोरी : (उदास होकर) आप न जाने क्यों विपन्न-सी रहती हैं !

प्रभा : (सेविका की ओर देखकर) भेज दें उन्हें।

[सेविका का प्रस्थान। प्रभा कुर्सी पर बैठ जाती है।]

प्रभा : (पिछली बातों को सोचती हुई) किशोरी, मैं इस जीवन से न जाने क्यों ऊब-सी गई हूँ। इस दैनिक हँसी के भीतर से एक करुणा सिसक रही है, जो मुझे अज्ञात प्रदेश में बुला रही है। उस करुणा पर शायद अपने जीवन में किसी समय भी विजय प्राप्त न कर सकूँगी।

[किशोरी विषाद-मुद्रा से प्रभा की ओर देखती है। एक संभ्रांत दंपति का प्रवेश। पुरुष की आयु छब्बीस वर्ष की है। वह स्वच्छ वस्त्रों से सुसज्जित है। अँगरेजी वेश-भूषा। हाथ में सोने की घड़ी। उँगली में बहुमूल्य रत्न की अँगूठी। ऐसा ज्ञात होता है कि वह एक बड़ी संपत्ति का स्वामी है। नाम है अनंगकुमार।

स्त्री की आयु अठारह वर्ष की। वह यथेष्ट सुन्दर है। उसके उज्ज्वल शरीर पर नीली साड़ी। शरीर पर, कम, किंतु बहुमूल्य आभूषण। माथे में लाल बिंदु। उसी के समीप तिलक के रूप में एक छोटा-सा चिह्न। परस्पर अभिवादन।]

अनंगकुमार : आप ही श्रीमती प्रभा हैं ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभा : (मुस्कान के साथ सिर हिलाकर स्वीकृति देते हुए) जी हाँ।
कमलकुमारी : आपके दर्शनों से मुझे विशेष प्रसन्नता हुई।
प्रभा : धन्यवाद ! बैठिए।

[दोनों समीप की कुर्सियों पर बैठते हैं।]

अनंगकुमार : क्षमा कीजिए। हम लोगों ने आपके कार्यों में बाधा तो नहीं पहुँचाई ?
प्रभा : (अनंग को देखकर उद्विग्न होकर) नहीं तो, मैं स्वयं एकाकीपन से ऊब रही थी। आपका आना मुझे सुखी ही कर रहा है।
अनंगकुमार : मैं आपको अपना पूरा परिचय दे दूं। मैं 'चारुचित्र' का संपादक हूँ। मेरा नाम है अनंगकुमार वर्मा। वह मेरी पत्नी है। इनका नाम है कमलकुमारी। मैं आपका चित्र और इंटरव्यू लेने के लिए आया हूँ। आपकी कीर्ति तो भारत ही में नहीं, विदेशों में भी व्याप्त हो गई है। मैं स्वयं यह प्रार्थना करने आया हूँ कि हमारे पत्र पर आपकी विशेष कृपा रहे।
प्रभा : (उदास होकर) मैं तो केवल एक साधारण अभिनेत्री हूँ।
अनंगकुमार : साधारण अभिनेत्री ? आप क्या कह रही हैं ? आप कितने हृदयों की एकमात्र सम्राज्ञी हैं।
कमलकुमारी : मैंने जितने चित्रपट देखे हैं, उनमें सर्वोत्तम आप ही के हैं। मैं आपके दर्शनों का लोभ न रोक सकी, अतएव मैं भी इनके साथ चली आई।
प्रभा : धन्य !

[किशोरी मुस्कराती है।]

अनंगकुमार : आप कृपया अपना जीवन-विवरण दे दें, तो बड़ी दया होगी।
प्रभा : क्षमा कीजिए। मैं किसी को अपना जीवन-विवरण नहीं देना चाहती। (सोचकर) बहुतों ने मुझसे इसी प्रकार प्रश्न किए, पर मैंने इस प्रश्न पर सबको एक-से उत्तर दिए। मैं अपने तुच्छ जीवन का चित्र किसी के सामने रखने में असमर्थ हूँ।
अनंगकुमार : क्यों ?
प्रभा : मेरी इच्छा।
अनंगकुमार : यदि मैं विनय करूँ ?
कमलकुमारी : यदि मैं प्रार्थना करूँ ?
प्रभा : असंभव। एकमात्र असंभव।
अनंगकुमार : तो मैं निराश हो लौट जाऊँ ?
प्रभा (नीची दृष्टि कर) मैं विवश हूँ।
अनंगकुमार : इस इंटरव्यू के लिए आपका पुरस्कार 1000 रुपये है। मुझे यह गौरव मिलने दीजिए कि जिस प्रभा का परिचय अभी तक कोई संपादक पाने में समर्थ न हो सका, उसी को 'चारुचित्र' के संपादक ने विस्तृत रूप में पा लिया। इस इंटरव्यू के लिए आपका पुरस्कार 1000 रुपये है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभा : (शांति से) कमलजी के लिए उतने मूल्य का एक नया आभूषण ला दीजिए।
अनंगकुमार : मैं निराश तो नहीं हो सकता। मैं कुछ-न-कुछ सामग्री तो लेकर ही जाऊँगा। आप न बतलाएँगी, तो मैं डाइरेक्टर से पूछूँगा।
प्रभा : आप पूछने के लिए स्वतंत्र हैं।
अनंगकुमार (किशोरी से) डाइरेक्टर साहब कहाँ हैं ?
किशोरी : अपने टेंट में।
अनंगकुमार : यहाँ से कितनी दूर हैं ?
किशोरी : कम-से-कम आधा मील।
अनंगकुमार : इस समय मिल सकेंगे ?
किशोरी : हाँ, इस समय तो मिल सकते हैं। पर दो घंटे के बाद वह अपने स्थान से चले जाएँगे। आज बारह बजे से रिहर्सल है। दस बज रहे हैं।
अनंगकुमार : (कमल से) तो कमलाजी, आप यहाँ रुकिए। मैं जल्दी ही आता हूँ। सब काम मैं आज ही समाप्त कर लेना चाहता हूँ, क्योंकि आज ही शाम की गाड़ी से हम लोगों को चले जाना है।
कमलकुमारी : मैं भी चलूँ ?
अनंगकुमार : इस अज्ञात स्थान में आपको यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ बार-बार आने में कष्ट ही होगा। फिर हम लोगों का परिचित भी कोई नहीं है, जिसकी कार पर मैं आपको आराम से सभी स्थानों में ले चलूँ।
प्रभा : (बीच ही में) मैं अपनी कार मँगवा दूँ ?

[रहस्यमय नीची दृष्टि।]

अनंगकुमार : धन्यवाद ! कष्ट ही होगा।
प्रभा : नहीं, कष्ट कुछ नहीं। (किशोरी की ओर) किशोरी !
अनंगकुमार : रहने दीजिए। मैं अभी बीस मिनट में आया, तब तक (कमल से) आप प्रभा के स्थान पर ही ठहरिए। (प्रभा से) आपको आपत्ति तो न होगी ?
प्रभा : मुझे क्या आपत्ति ! आप प्रसन्नतापूर्वक रुक सकती हैं।
अनंगकुमार : धन्यवाद ! (प्रस्थान)
प्रभा : (कमल को कुछ क्षण मौन देखकर) आपको आने में कष्ट तो नहीं हुआ ?
कमलकुमारी : कष्ट ? जिनके दर्शनों के लिए न जाने कितने दिनों से लालसा थी, उनसे मिलने पर कष्ट ? यह पूछिए, आनन्द कितना हुआ। आपके दर्शन पाने के लिए न जाने कितने स्थानों पर हमें जाना पड़ा। पहले तो हम लोग आपके स्थान पर गए दादर, बम्बई। वहाँ मालूम हुआ, आप लोग 'रक्षा-बंधन' नामक नए चित्रपट की शूटिंग के लिए रीवाँ के गोविन्दगढ़ स्थान पर गए हैं। शायद कुछ पहाड़ी और झील के तट के दृश्य लेने हैं। गोविंदगढ़ आने पर भी पता न चला कि आप सब किस दिशा में गए हैं। कठिनता से आपके डेरे नजर आए। जैसे किसी भक्त को भगवान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उपासना में अनेक जगह भटकना पड़ता है, अन्त में भगवान् के दर्शन हो ही जाते हैं।

प्रभा : (मुस्कराकर) आप मुझे बहुत लज्जित न कीजिए। आपको यहाँ आने में वास्तव में बड़ा कष्ट हुआ।

कमलकुमारी : कष्ट ? कहाँ हुआ ! रास्ते-भर प्रकृति के इतने दृश्य देखे, जो हम लोगों को स्वप्न में भी देखने को न मिलते। हम लोग रहते हैं, तो जैसे प्रकृति से बहुत दूर। यहाँ एक-एक कदम पर पहाड़ी है। इतने ऊँचे पेड़ हैं, जैसे उन्हें किसी का डर ही नहीं है। बढ़ते चले जाते हैं। छोटी-छोटी झाड़ियाँ तो इतनी देखने में आईं कि हिसाब ही नहीं। वे सर्वव्यापी हैं, जैसे हमारे यहाँ शहरों में धूल।

प्रभा : वाह, आप बड़ी हास्य-प्रिय हैं।

कमलकुमारी : सच मानिए, रास्ते-भर प्राकृतिक दृश्यों से हमारा मनोरंजन होता रहा। इच्छा होती है कि हम लोग भी ऐसे स्थान पर रहें। न जाने कहाँ-कहाँ से फूल निकलकर कहते हैं, लो, हमें देखो। वन के पेड़ों की स्वाभाविक, भीनी-भीनी सुगंधि तो जैसे नदी की तरह बहती रहती है। अजीब तरह के पेड़ नजर आए। कोई टेढ़ा है, तो कोई लम्बा। कोई बुड्ढे की तरह झुका हुआ है। किसी की शाखें ऐसी चारों ओर फैल गई हैं कि छोटी-छोटी झाड़ियों को हँसाने के लिए अपने हाथ फैलाकर नाचना ही चाहता है। सच मानिए, रास्ते-भर बड़ा आनन्द रहा। हम लोग किसी ऊँचे पेड़ की तारीफ करते, कभी किसी अष्टावक्र पेड़ को देखकर हँसते, कभी परिंदों की मनभावनी बोली सुनते। ओह, ऐसे दृश्य हम लोगों को शहरों में कहाँ नसीब होते हैं ! तबियत होती है, अपना घर छोड़कर यहीं एक झोंपड़ी डाल लें। आलीशान बँगले इतना सुख नहीं दे सकते, जितना सुबह की हिलकोरें लेती हुई मस्तानी हवा। यदि किसी तरह यहाँ आने का संयोग न मिले, तो (मुस्कान के साथ) अभिनेत्री ही बनने का प्रयत्न किया जाए।

[प्रभा किसी बात के सोचने में लीन है। वह जैसे कमल की बातें सुन ही नहीं सकी है। कमल कहती जाती है—]

कमलकुमारी : आप क्या सोच रही हैं ?

प्रभा : कुछ नहीं

कमलकुमारी : मालूम तो ऐसा होता है, आप किसी समस्या के सुलझाने में लगी हैं।

प्रभा : समस्या क्या, जीवन में तो सोचना-ही-सोचना है। मन ही तो है, स्थिरता कहाँ मिलती है ?

कमलकुमारी : मैं समझी, शायद किसी फिल्म का कथानक सोच रही हैं।

प्रभा : जीवन पर ही सोचने के लिए काफी सामग्री है। फिर आपके समीप फिल्म का कोई महत्त्व ही नहीं।

कमलकुमारी : क्यों ?

प्रभा : (मुस्कराकर) आप सजीव फिल्म हैं। अपने नायक के साथ हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमलकुमारी : (हँसकर) आप हँसी करना भी जानती हैं। इतने गुणों के साथ संयुक्त होने के कारण ही तो आप अमर होने जा रही हैं।

प्रभा : अगर अमर ही होगा, तो मेरा अभिनेत्री-रूप। मैं इसमें अपना अमरत्व नहीं मानती। मेरा आंतरिक जीवन इस बाह्य जीवन से बिलकुल ही भिन्न है। इस जीवन से मुझे मानसिक तुष्टि नहीं मिल सकती। ओह, मेरे इस रूप में भी कितनी विडम्बना है।

कमलकुमारी : (आश्चर्य से) क्यों ?

प्रभा : (सँभलकर) कुछ नहीं। (स्वागत) मैं क्या कह गई ? (बात बदलने के विचार से) आपका निवास-स्थान कहाँ है ?

कमलकुमारी : नागपुर।

प्रभा : ना···ग···पु···र ? (कौतूहलजनक जिज्ञासा)

कमलकुमारी : क्यों, आप अस्थिर क्यों हो उठीं ?

प्रभा : कुछ नहीं। न जाने क्यों आपसे मेरा इतना अनुराग बढ़ता जा रहा है। आप जानती हैं, मेरे पास समय की कितनी कमी है। मुझे स्टूडियो के कितने काम करने पड़ते हैं। मैं अन्य किसी व्यक्ति को मिलने के लिए पाँच मिनट से अधिक का समय नहीं देती। पर न जाने आपके पास मुझे इतना आनन्द क्यों मिल रहा है ?

कमलकुमारी : यह आपकी कृपा।

किशोरी : (बीच ही में धीरे से) श्रीमतीजी भोजन···।

प्रभा : (नाराज होकर) जाओ किशोरी, मुझे तंग मत करो। मुझे इस समय कुछ जरूरत नहीं।

[किशोरी का चुपचाप प्रस्थान।]

कमलकुमारी : श्रीमतीजी, आप जाइए, भोजन कर लीजिए।

प्रभा : आप से मिलकर मेरी भूख-प्यास सब जाती रही। मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं। कहिए, आपके लिए कुछ मँगवाऊँ ? देखिए, परिश्रम से आपके माथे पर पसीने की बूँदें छा रही हैं।

कमलकुमारी : नहीं, मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं। और, अब तो वह आते ही होंगे। कहेंगे, एक मिनट में यह रंग !

प्रभा : वह भी आपके जल-पान में शरीक हो जाएँगे। क्या हानि है। मन ही तो है, मिल गया आपसे। चुम्बक तो एक सेकण्ड में लोहे को अपनी ओर खींच लेता है। मुझे तो आपकी ओर आकृष्ट होने में देर लगी। एक मिनट तो बहुत है। मालूम होता है, मैं लोहे से भी गई-बीती हूँ।

कमलकुमारी : नहीं, आप एक मणि हैं, जिससे प्रभा सदैव फूटा करती है। (मुस्कान)

प्रभा : (हँसकर) खूब, फिर कहिए, आपके लिए क्या मँगवाऊँ ?

कमलकुमारी : श्रीमतीजी, कुछ नहीं। यदि कुछ आवश्यकता होती, तो मैं स्वयं आपसे निवेदन करती। धन्यवाद !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभा : तो यह पसीना तो माथे पर से पोंछ डालिए। आपके कुंकुम-बिन्दु की शोभा बिगाड़ रहा है। अच्छा, यह कुंकुम के पास घाव का निशान कैसा है? (तीव्र दृष्टि)

कमलकुमारी : (पसीना पोंछते हुए) कुछ नहीं, यों ही चोट लग गई थी।

प्रभा : कैसे ?

कमलकुमारी : (सोचकर) यह जानकर क्या करेंगी ?

प्रभा : इच्छा ही तो है।

कमलकुमारी : मैं जब नागपुर में थी, तो मेरे पतिदेव एक बड़े भारी बैंकर थे। इंपीरियल बैंक से उनका बड़ा व्यवहार रहता था। अब तो उन्होंने वह कारोबार छोड़ ही दिया है—एक महान् घटना के कारण। हाँ, तो बैंक के एजेंट मिस्टर खन्ना पास ही के मकान में रहा करते थे।

प्रभा : (हँसकर) अच्छा !

कमलकुमारी : खन्ना जब-कब मेरे पति के यहाँ आया करते थे, घंटों बैठते थे। अविवाहित थे। घर पर कोई काम न था।

प्रभा : ......

कमलकुमारी : आपको शायद मालूम न होगा, मैं अपने पति के दूसरे विवाह की स्त्री हूँ। उनका जीवन पहले बड़ा विषमय था—कुरुचिपूर्ण था। पत्नी के स्थान पर उनकी प्रेयसी थी मदिरा। विवाह के केवल एक महीने के भीतर ही उन्होंने अपनी पहली पत्नी का परित्याग कर दिया था।

प्रभा : (मुस्कराकर) सचमुच, बड़े निष्ठुर थे।

कमलकुमारी : आप बड़ी हास्य-प्रिय हैं। बात-बात पर मुस्कराती हैं।

प्रभा : मैं अभिनेत्री हूँ।

कमलकुमारी : दूसरों की वेदना पर आप क्या अभिनेत्री का बहाना लेकर हँस सकती हैं। किसी के आँसुओं पर आपकी यह मुस्कान ?

प्रभा : मैं संसार के दुखों को अब नहीं समझती। अच्छा, उन्होंने अपनी पहली पत्नी का परित्याग क्यों कर दिया कमलजी ?

कमलकुमारी : उनकी पत्नी का यही अपराध था कि वह अपने पति के मित्रों के सामने नहीं निकलना चाहती थीं। इसीलिए मिस्टर खन्ना के सामने भी वह कभी नहीं गईं। वह बहुत धर्माचरण करने वाली थीं। अपने परिजनों के अतिरिक्त वह अन्य किसी से हँसी-मजाक पसंद नहीं करती थीं। पतिदेव आधुनिक रंग में रँगे हुए थे। वह उन्हें अपने क्लब ले जाना चाहते थे। उन्हें जैसे मालूम हुआ, यह पत्नी उनके जीवन की संगिनी नहीं बन सकती। इसी पर उन्होंने उनका परित्याग कर दिया। वह महीनों उन्हें दर्शन न देते थे। इस पर पत्नी को बहुत दुःख हुआ। अंत में एक दिन वह कहीं न दिखाई पड़ीं। शायद उन्होंने आत्महत्या कर ली।

प्रभा : (आतंक से) आत्महत्या कर ली ?

कमलकुमारी : लोगों ने यही सोचा, उनके पिताजी तो थे ही नहीं। कुछ लोग दूर के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंधी थे। उनके पास से भी कोई समाचार नहीं आया। वे लोग भी शांत होकर बैठ रहे।

प्रभा : (गहरी साँस लेकर) आह, बेचारी पत्नी !

कमलकुमारी : कुछ दिनों बाद जब पति की उच्छृंखलता दूर हुई, तो वह अपनी पत्नी के गुणों का स्मरण कर बहुत दुखी रहने लगे। उन्होंने अपना सब कारबार बंद कर दिया। ऐसा ज्ञात होने लगा कि अब वह अधिक दिनों तक जीवित न रह सकें गे। उनके पिताजी ने उनके शोक को दूर करने के लिए दूसरा विवाह कर दिया।

प्रभा : उपाय तो अच्छा था। (मुस्कान)

कमलकुमारी : (प्रभा की मुस्कान को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए) मैं जब से आई हूँ, देखती हूँ, कभी-कभी वह अपनी पहली पत्नी के ध्यान में इतने डूब जाते हैं कि उन्हें अपने शरीर का ध्यान भी नहीं रहता। एक बार तो शोक के आवेग में एक बड़ा-सा पत्थर अपने सिर पर मारना चाहा। मैंने उसे बीच ही में रोक लिया। उनके माथे के बजाय वह पत्थर मेरे माथे में लगा। उसी का चिह्न आप मेरे कुंकुम-विन्दु के समीप देख रही हैं।

प्रभा : तो आप तो बड़ी पतिपरायणा हैं ! (मुस्कान)

कमलकुमारी : (लज्जित होकर) नहीं, पर मुझे भी अपनी प्रथम बहन का बड़ा शोक है। उनके दर्शन होना तो असंभव है।

प्रभा : उनका नाम क्या था ?

कमलकुमारी : नाम···नाम···था।

प्रभा : प्रभातकुमारी तो नहीं ?

कमलकुमारी : (आश्चर्य से) हाँ, यही था। आपको ये सब बातें कैसे मालूम हैं ?

प्रभा : मैं अन्तर्यामिनी हूँ।

कमलकुमारी : (प्रभा की ओर ध्यान से देखती हुई) कहीं आप तो प्रभातकुमारी नहीं हैं ? घर पर मेरे पास सुरक्षित आपके फोटो से आपकी रूप-रेखा अब मुझे मिलती हुई जान पड़ती है। आप ही तो प्रभातकुमारी जी नहीं हैं।

प्रभा : (नीची दृष्टि कर) यदि मैं वही अभागिनी होऊँ ?

कमलकुमारी : (आगे बढ़कर) बहन ! (गले से लगाना चाहती है)

प्रभा : (अलग हटकर) श्रीमती कमलकुमारीजी, मैं उस पद से अब हट गई हूँ। उस महान् नारीत्व-गौरव से अलग हो गई हूँ। अब बहुत छोटी हो गई हूँ। प्रभात-कुमारी से केवल प्रभा। गौरवशालिनी नारी से केवल एक नटी, अभिनेत्री। पर भावोन्माद में मैं यह क्या कर बैठी। अपना परिचय···।

कमलकुमारी :(हर्षोद्वेग से) मेरी बहन, पर तुम अभिनेत्री···!

प्रभा : हाँ, मैं अभिनेत्री हूँ। जानती हो, प्रतिक्रिया किसे कहते हैं ? मेरे पतिदेव मेरे संयत आचरण पर मेरा तिरस्कार किया करते थे। उन्होंने बारह दिनों से मुझे दर्शन नहीं दिए थे। अँधेरी रात थी। मैं दुख के मारे व्याकुल थी। बादलों की आँखों से भी आँसू गिर रहे थे। बिजली तड़प रही थी। पतिदेव रुष्ट थे कि मैं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके योग्य नहीं थी। उनके साथ मैं—लज्जाशीला वधू—क्लब नहीं जा सकती थी। अन्य पुरुषों की आँखों से आँखें मिलाकर बात नहीं कर सकती थी। उन लोगों से हाथ नहीं मिला सकती थी, क्योंकि वे व्यभिचारी थे, शराबी थे। यही मेरा अक्षम्य अपराध था। मैंने मिस्टर खन्ना के पुकारने पर भी आँखें उस ओर नहीं कीं। इसलिए कि मैं जानती थी कि उसका चरित्र ठीक नहीं था। इसी पर मेरे पति ने मेरा तिरस्कार किया। मैं पागल हो उठी। आत्मग्लानि से मैं घर से निकल पड़ी। अँधेरी रात थी। उसी प्रकार अँधेरा मेरा भाग्य था। पर मेरा चरित्र मेरे हाथ में था। वह मेरे पास सुरक्षित छुरी की नोक पर था। अन्त में प्रतिक्रिया अपनी पूरी सीमा पर पहुँचकर रुकी। मेरे पतिदेव एक खन्ना के सामने निकलने के लिए आग्रह करते थे। यहाँ खन्ना के समान पचासों विलासी व्यक्ति देखते हैं कि मैं प्रेमावेश में अपनी भौंहों का संचालन किस प्रकार करती हूँ।

कमलकुमारी : आह, यह परिवर्तन !

प्रभा : महान् परिवर्तन ! पहले कहाँ मैं संसार के खुले हुए कौतुक के सामने दरवाजे बंद कर अपनी लज्जा और संकोच ही में लिपटी रहती थी, पर अब हजारों उठी हुई मतवाली नजरों के सामने मैं रूप की मदिरा लिए हुए जाती हूँ। भावावेश में न जाने कितने हृदयों का संचालन केवल यौवन के बेसुध नयनों से किया करती हूँ, पर अभी तक स्वयं मैं वही हूँ, जो पहले थी।

कमलकुमारी : पर आश्चर्य है, पतिदेव ने आपको पहली ही दृष्टि में पहचाना नहीं ?

प्रभा : उन्होंने मुझे विवाहित अवस्था ही में ठीक तरह से कहीं देखा था ? क्षणिक मिलन, वह भी उस समय जब मदिरा से उनकी आँखें झूमती रहती थीं। दो-चार कर्कश शब्दों के बाद उनका एक सप्ताह के लिए वियोग ! यह था मेरा जीवन।

कमलकुमारी : इस समय तो शायद आपके फोटो की स्मृति से आपको वह पहचान लेते।

प्रभा : संभवतः। मैं तो उन्हें देखते ही पहचान गई। मैंने यथाशक्ति प्रयत्न किया कि अपनी आँखें नीचे रक्खूँ, और जितने शीघ्र हो, उन्हें यहाँ से बिदा कर दूँ। इसीलिए मैंने उनके प्रश्नों के कितने रूखे उत्तर दिए ! अच्छा हुआ, वह स्वयं शीघ्र ही उठकर चले गए, नहीं तो शायद वह मेरा परिचय पा लेते। मैं डर रही थी कि कहीं मेरे प्रेम की आग भड़क न उठे। वास्तव में मुझसे बड़ी भारी भूल हो गई। अनायास ही मेरे मुख से तीन वर्षों से बड़ी कठिनता से वश में की हुई वेदना निकल पड़ी। आह, कहाँ तक रोकती !

कमलकुमारी : आपके हृदय में ही वेदना नहीं थी। पतिदेव के हृदय में शायद उससे तीव्रतर वेदना होगी। आपके जाने के बाद ही उनके जीवन में महान् परिवर्तन हुआ। उन्होंने पश्चाताप की अग्नि में अपनी सारी वासनाओं को जला दिया। अपने साथियों का तिरस्कार कर उन्होंने मदिरा की सारी बोतलों को जमीन पर दे मारा। लाल-लाल मदिरा बह गई, जैसे पत्थर पर उसका खून हो गया।

प्रभा : तब मेरे चले जाने का परिणाम अच्छा ही हुआ। उनके जीवन में सुधार हो गया !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमलकुमारी : इसमें कोई संदेह नहीं, पर अब परिचय का परिणाम क्या होगा ?

प्रभा : कुछ नहीं। आप इस विषय में मौन रहें। किसी को यह सूचना ही क्यों हो कि प्रभा ही प्रभातकुमारी हैं ?

कमलकुमारी : यह असंभव है। श्रीमतीजी प्रभा, अब आप यह समझ लीजिए कि यहाँ आप रह न सकेंगी। पतिदेव प्रत्येक परिस्थिति में आपको यहाँ से ले जाएँगे।

प्रभा : (हँसकर) मेरा और आपका, दोनों का भविष्य मैला करने लिए ?

कमलकुमारी : मुझे अपने भविष्य की चिन्ता नहीं है।

प्रभा : मुझे तो आपके भविष्य की चिन्ता है। प्रभा अब कहीं नहीं जा सकती।

कमलकुमारी : यह तो असंभव है।

प्रभा : मैं नहीं जाऊँगी।

कमलकुमारी : वह किसी प्रकार भी नहीं मान सकेंगे।

प्रभा : तो मैंने अपना परिचय देकर वास्तव में बड़ी भारी भूल की। पर मैंने अपना परिचय कहाँ दिया, तुम्हीं ने सब कुछ मुझसे कहला लिया। फिर वेदना कहाँ तक छिप सकती है ? बहन, मुझे क्षमा करो। यह बात किसी से मत कहना।

कमलकुमारी : श्रीमती प्रभाजी, यह असंभव है। मैं अपनी बहन को नहीं छोड़ सकती। आपको चलना पड़ेगा।

प्रभा : मैं जा ही नहीं सकती।

कमलकुमारी : यदि आप न जाएँगी, तो आपने तो नहीं की, वह अवश्य ही आत्महत्या कर लेंगे।

प्रभा : अब वह आत्महत्या क्यों करें ? मैं उन्हीं के आदेश का पालन तो कर रही हूँ। खन्ना का तो कहना ही क्या, बहुतों के सामने अपने नृत्य के साथ निकलती हूँ।

कमलकुमारी : अब आपके वह पुराने पतिदेव नहीं रहे। अब तो वह आपके उपासक हैं।

प्रभा : इसीलिए तो मैं नहीं जाना चाहती। यदि वह मुझे पा जाएँगे, तो आपका ध्यान ही उन्हें न रह जायगा, क्योंकि मैं जानती हूँ कि पश्चाताप की प्रतिक्रिया भी उतनी ही वेगवती होगी। जितना पहले वह मेरा तिरस्कार करते थे, अब उतना ही अधिक मुझे प्यार करेंगे। इसीलिए, मैं आपके सुख में बाधा पहुँचाने के लिए, नहीं जा सकती। मैं आपके भविष्य को मैला नहीं कर सकती।

कमलकुमारी : तो तुम यह क्यों नहीं कहतीं कि तुम अपने भविष्य को मैला करने के लिए यहाँ से नहीं जाना चाहतीं।

प्रभा : कमलजी, क्या आप जानती हैं कि मैं सुखी हूँ ? धन चरणों पर लोट रहा है, पर मेरा मन ? वह भी चाहता है कि अपने आत्मीय के चरणों पर लोट जाय। धन और वैभव हृदय की प्यास नहीं बुझा सकते। उसके लिए आवश्यकता है निर्धन प्रेम की। मैं गत तीन वर्षों से प्रेम का अभिनय कर रही हूँ, पर वह केवल अभिनय-मात्र है। कितने व्यक्ति मेरी प्रेम-भरी मुस्कान के उपासक हैं। पर मैं उन्हें उसी प्रकार देखती हूँ, जैसे एक तपस्वी मदिरा पीने वाले को देखता है। अपने साथ वाले पात्र फिल्म में ही मेरे प्रेममय वाक्य सुनते हैं. पर वे वाक्य कागज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के फूल की तरह हैं। रूप तो फूल ही की तरह है, पर उसमें प्रेम की सुगंधि नहीं है। अपने झूठे प्रेमी नायक का नाम भी मैं वही रखती हूँ, जो मेरे पतिदेव का पर्यायवाची नाम है। उनका स्पष्ट नाम तो मैं ले नहीं सकती। उसी से मुझे कुछ शांति मिल जाती है। यदि विश्वास न मानो, तो मेरी सेविका किशोरी से पूछ देखो। इतने पर भी फिल्म में मैं अपने प्रेमी नायक को दूर ही से प्रेम करने देती हूँ। आलिंगन और चुम्बन मेरे अभिनय के क्षेत्र से बाहर हैं।

कमलकुमारी : (विमूढ़ के समान) तो मेरे लिए आप क्या कहती हैं ?

प्रभा : मेरा रहस्य किसी पर भी प्रकट न होने पावे।

कमलकुमारी : देवीजी, मैं अपने हृदय को नहीं रोक सकती। आपको अपनी बहन के रूप में पाकर मैं फूली नहीं समा रही हूँ। मैं भी यहाँ से नहीं जा सकती। मैं भी आपके साथ रहूँगी। मैं निस्संदेह देख रही हूँ कि आपकी परिस्थिति बहुत विषम हो रही है।

[किसी गहरे भाव में लीन हो जाती है।]

कमलकुमारी : (अपने ही विचारों में) यदि आप न जाएँगी, तो पतिदेव को मरणांतक वेदना होगी। और, उन्हें मेरे यहाँ से न जाने के कारण किसी-न-किसी प्रकार यह विदित हो ही जाएगा कि आप श्रीमती प्रभातकुमारी हैं। अब मैं आपकी उपासिका हूँ।

प्रभा : (गंभीरता से) अच्छा, तो मैं चलने के लिए तैयार हूँ, पर इसके पहले मेरा एक एक पत्र उन्हें दे दो, जिसमें मैं अपनी परिस्थिति ठीक तरह समझा सकूँ। जब तक मैं पत्र लिखती हूँ, आप मेरे अभिनय के चित्रों को देखिए।

[प्रभा कमल के हाथों में अपने चित्रों का अलबम देती है, और स्वयं एक पत्र लिखने में लीन हो जाती है। कमलकुमारी बड़े ध्यान से अलबम देख रही है। कुछ क्षणों के बाद प्रभा पत्र लिखकर लिफाफे में रखती है, उसे गोंद से चिपकाती है।]

प्रभा : (हँसकर) बहुत अच्छी इंटरव्यू आपने मुझसे की ! अच्छा, यह पत्र आप उन्हीं के हाथ में दीजिए। मैं अभी जलपान करके आती हूँ। (पत्र देती है।)

[प्रस्थान। कमल चित्र-संग्रह देखती रहती है। कुछ देर बाद किशोरी का प्रवेश।]

किशोरी : श्रीमतीजी, (प्रभा को देखकर) अरे, श्रीमतीजी कहाँ हैं ?

कमलकुमारी : जल-पान करने गई हैं।

किशोरी : मैं ही तो उनका जल-पान लिए बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रही हूँ।

कमलकुमारी : वह तो मुझसे यही कहकर गई हैं।

किशोरी : मेरे समीप तो नहीं पहुँचीं।

कमलकुमारी : शायद स्नानागार में गई हों !

किशोरी : स्नानागार में जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वह स्नान तो प्रातःकाल ही कर लेती हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमलकुमारी : और क्यों किशोरी, जानती हो, तुम्हारी प्रभाजी कौन हैं ?

किशोरी : मैं तो नहीं जानती।

कमलकुमारी : जानना चाहती हो ?

किशोरी : बड़ी कृपा होगी, यदि आप बतला देंगी।

कमलकुमारी : मैं चित्रपट-संसार को एक नया संदेश दूँगी।

किशोरी : वह कौन-सा ?

कमलकुमारी : जिससे बड़े से बड़े फिल्म-निर्माता को आश्चर्य में डूब जाना पड़ेगा।

किशोरी : वह कौन-सा संदेश ?

कमलकुमारी : ठहरो, उसके लिए अभी समय नहीं है। पर यदि तुम उसे गुप्त रखने का वचन दो, तो मैं तुम्हें बतला सकती हूँ।

किशोरी : अवश्य।

कमलकुमारी : अच्छा, तो सुनो। तुम्हारी यह भारत की सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री...।

[सेविका का प्रवेश।]

सेविका : (किशोरी से) श्रीमतीजी कहाँ हैं ?

किशोरी : कहीं बाहर गई हैं। क्या है ?

सेविका : अनंगकुमारजी आए हुए हैं।

कमलकुमारी : भेज दीजिए उन्हें।

[सेविका का प्रस्थान।]

किशोरी : हाँ, बतलाइए अपना संदेश।

कमलकुमारी : मैं बतलाती हूँ, पर प्रभा की आज्ञा ले लूँ। वह मेरे हाथ में एक पत्र दे गई हैं। मैंने उन्हें वचन दिया है कि मैं उनका रहस्य बिना उनकी आज्ञा के किसी से भी न कहूँगी।

किशोरी : आश्चर्य है। वह अकेली ही न जाने कहाँ चली गईं। जब कहीं बाहर जाती थीं, मुझे अवश्य ही अपने साथ ले लेती थीं। वह कम से कम मुझसे कहकर तो जातीं।

[अनंगकुमार का प्रवेश।]

अनंगकुमार : कहाँ हैं श्रीमतीजी ?

कमलकुमारी : कहीं बाहर गयी हैं, अभी आती हैं। कहिए, डाइरेक्टर साहब से मिले।

अनंगकुमार : हाँ, मिला जरूर, पर वह भी प्रभाजी का परिचय नहीं जानते।

कमलकुमारी : (गर्व से) मैं जानती हूँ।

अनंगकुमार : (उत्सुकता से) क्या ?

कमलकुमार : क्या देंगे आप मुझे ?

अनंगकुमार : जो माँगो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमलकुमारी : अच्छा, पहले यह पत्र लीजिए। वह आपके नाम दे गई हैं। जब आप उन्हें पूरी तरह समझ जाएँगे, तब शायद वह आपसे मिलेंगी। इसीलिए शायद वह कहीं बाहर चली गई हैं। पुरुषों के सामने स्त्रियाँ अपने हृदय का रहस्य खोलकर नहीं रख सकतीं। मैंने थोड़ी देर ही में उनके हृदय का सारा रहस्य उनसे समझ लिया। मेरी प्रशंसा कीजिए कि बातों के प्रवाह में ही मैं जान गई कि वह···

[अनंग पत्र खोलकर पढ़ता है।]

कौन है। अभी बात करने का रहस्य बहुत दिनों तक पुरुषों को स्त्रियों से सीखना पड़ेगा। आप क्या···?

अनंगकुमार : (चौंककर) अरे ! यह क्या ? दौड़ो !

कमलकुमारी : क्या ?

किशोरी : क्या ?

[नेपथ्य में : दौड़ो म···द···ा···न, म···द···न···!]

अनंगकुमार : पत्र में लिखा है, 'प्रिय, मैं परिस्थितियों को सुलझाने के लिए मंदार में आत्मसमर्पण करने जा रही हूँ। अब मंदार में डूबना भी मेरे लिए गौरव की बात होगी।'

किशोरी : दौड़ो ?

[सब वेग से जाते हैं। नेपथ्य में म···द···ा···न की ध्वनि डूबती हुई प्रभा के मुख से निकलकर एक बार फिर गूँज जाती है, मानो शीशे के सामने वह अभिनय का अभ्यास कर रही है।]

[पटाक्षेप]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर का मकान

पात्र-परिचय

सेठ अमोलक चंद
बैजनाथ
रामधनी
श्याम किशोर
लीला
तांगेवाला

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सेठ अमोलक चन्द के बंगले का एक सजा हुआ कमरा। बैजनाथ रामधनी से बात कर रहे हैं। नेपथ्य में मुर्गे की आवाज···दो क्षण के बाद बिल्ली की आवाज।]

बैजनाथ : (रामधनी से, मुंह में पान दबाकर जिस स्वर से बोला जाता है, उस स्वर से) हूँ, हूँ, हूँ···सेठ जी का मकान भी एक मुसीबत है ! मुर्गे को दाना दो, कुत्ते के लिए बिस्कुट का इन्तजाम करो और बिल्ली के लिए डेरी का दूध ! जितनी घर के दस आदमियों के इन्तजाम में मेहनत करती पड़ती है, उतनी सिर्फ इन जानवरों की हिफाजत के लिए चाहिए, समझे न रामधनी ! सेठ जी दो महीनों के लिए कलकत्ते क्या चले गए, ये जानवर हमारे रिश्तेदार बना गए। इनको खिलाओ, पिलाओ और खुशामद करो !

रामधनी : ऐ मुनीम जी ! ऊ कौनौ बाबू आवै का रहें ? जिनकर तबादला हिंयां हुइ गवा है। सेठ जी औ तौ उनकर नाम लेते रहैं। भला सा नाम है उनका; (सोचकर) हाँ, स्यामकिशोर। ऊ हियां रहे के बदे आवैका रहें, ऊ नहीं आये का ?

बैजनाथ : चिट्ठी तो छोड़ गए थे, लेकिन ग्यारह बज रहे हैं और उनका पता ही नहीं है। जाने कहाँ रास्ता भूल गए ! कौन इस महल के कैदखाने में आकर रहेगा, रामधनी !

रामधनी : (बाहर देखकर) ऊ कौनों बाबू आय रहे हैं, हियाँ। साथ में बहू जी औ दिखाय रही हैं।

बैजनाथ : हाँ ! ठीक है, वही तो हैं। सामान भी उतर रहा है। वही हैं, वही हैं। देखो, रामधनी जरा हँसने की कोशिश करो। (खुब हँसता है) हा···हा···हा···हा !

[श्यामकिशोर और लीला का प्रवेश—ताँगेवाला एक बक्स लिए हुए साथ में है।]

बैजनाथ : आइए, आइए, साहब ! आप शायद श्यामकिशोर जी हैं, न ? हें हें हें हें। आइए, आइए। सुबह से इन्तजार कर रहा हूँ, आपका जनाब ! नमस्ते ! और यह शायद आपकी वो हैं। नमस्ते जी ! आइए। अगर मुझे पता चलता कि आप इस जगह हैं तो मैं···मैं खुद और मेरा यह रामधनी···आपको लेने के लिए पहुंचते। खैर, कोई बात नहीं, अब आप आ गए हैं, अब अपना घर सँभालिए। अरे रामधनी! बाबू साहब का सामान अन्दर ले जाओ। सँभाल कर ले जाना। कोई चीज टूटे-फूटे ना। बड़ा सामान है ! आखिर आप सेठ जी के दोस्त हैं। बड़े आदमियों की बड़ी बातें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यामकिशोर : माफ कीजिए ! आप ही शायद सेठ जी के मुनीम हैं। बाबू बैजनाथ ! शायद यही तो नाम है ?

बैजनाथ : आप चाहे जिस नाम से पुकारिए, साहब ! रहूँगा आपका सेवक ही। यों बैजनाथ नाम तो बहाना है। लेकिन देर कहाँ लगी, आपको ! तकलीफ नहीं हुई ?

श्यामकिशोर : भाई ! नये शहर में तो थोड़ी तकलीफ होती ही है। मैंने सोचा, शहर में मकान आसानी से तो मिलेगा नहीं, तो सेठ साहब को लिख दिया था कि वह कुछ इन्तजाम कर दें।

बैजनाथ : जरूर, साहब ! आपको सेठ जी को लिखना चाहिए था। वह आपकी बड़ी तारीफ करते थे। कहते थे कि आप उनके साथ खेले हैं, पढ़े हैं, साथ-साथ शैतानियाँ की हैं, गालियाँ खायी हैं और न जाने क्या-क्या। और वह तो साहब ! एक मन दो तन हैं। उनका बँगला अगर आपके लिए न होगा तो किस बेवकूफ के लिए होगा ! लेकिन आप आए कब ?

श्यामकिशोर : बैजनाथ जी, मैं कल रात आया था। सेठ साहब तो हैं नहीं। मैंने सोचा, रात में किसे परेशान करूँगा। धर्मशाले में एक छोटी-सी कोठरी में सामान रखा और किसी तरह रात काटी। सुबह उठते यहाँ आने की तैयारी की। आखिर सामान ही है। उठाने-रखने में देर लग ही गयी और इन्हें भगवान की आरती का इन्तजार था। जब इनकी आरती समाप्त हुई तब कहीं आना हो सका !

बैजनाथ : वाह, वाह, वाह ! लक्ष्मी हैं बिलकुल ! बाबू साहब ! हिन्दुस्तान में इन्हीं लोगों के बल-बूते धरम टिका हुआ है। नहीं तो हम लोग तो धरम को भगवान का प्रसाद बनाकर खा चुके हैं। अरे, रामधनी ! सब सामान अन्दर पहुँचा दिया ? आप लोग बैठिए। मैं भी कैसा बेवकूफ आदमी हूँ, आप से बैठने को भी न कहा ! लेकिन आपसे क्या कहना, आप ही का तो मकान है।

श्यामकिशोर : भाई ! यह सेठ जी की बड़ी कृपा है कि मुझसे निभाए चले जा रहे हैं। अब अगर अपने मकान में मुझे रहने के लिए न बुलाते, तो मुझे कहाँ-कहाँ नहीं भटकना पड़ता और आजकल शहरों में मकान मिलना तो इतना मुश्किल है कि लाटरी में इनाम मिल जाए, मगर मकान न मिले !

[तीनों हँस पड़ते हैं।]

बैजनाथ : अजी, साहब ! मकान की क्या पूछते हैं ? एक बाबू साहब आए थे, उन्होंने मकान के लिए अर्जी दी, दो बरस तक धर्मशाले में पड़े रहे और उनकी अर्जी तब मंजूर हुई जब उनका तबादला हो गया !

[फिर हँसी]

श्यामकिशोर : तब तो, साहब ! मैं सेठ जी की विशेष कृपा समझता हूँ कि उन्होंने मेरे लिए अपने बँगले में जगह खाली कर दी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीला : सचमुच ! आपके सेठ जी बड़े उदार सज्जन हैं। नहीं तो आजकल कौन किसको पूछता है !

बैजनाथ : नहीं, श्रीमती जी ! सेठ जी ने सारा बंगला आपके लिए दिया है। आप जैसे चाहें, इसमें रहें। हाँ, कुछ थोड़ी-सी तकलीफ···क्यों रामधनी ! सब सामान रख दिया ? सामान मेज पर रख दिया है ना ? अरे हाँ, हम लोगों का सामान जमीन पर रहता है, तो बड़े आदमियों का सामान ऊँची जगह पर रहना ठीक है।

श्यामकिशोर : क्या बात कहते हैं, मुनीम जी ! हाँ, आप कोई तकलीफ़ की बात कर रहे थे। इस मकान में मुझे कौन तकलीफ होगी ?

बैजनाथ : कोई खास बात नहीं। सेठ जी सब अपने हाथ से करते ही थे, आप भी कर ही लेंगे। तकलीफ कैसी ! बात यह है कि सेठ जी जरा शौकीन तबियत के हैं, आप भी होंगे।

श्यामकिशोर : मैं सीधा-सादा आदमी हूँ, मुझे क्या शौक है ?

लीला : यह शौक किस बात का है, मैं जान सकती हूँ ?

बैजनाथ : अरे यही···बड़े आदमी हैं, एक जैनी भी है !

लीला : जैनी ! जैनी कौन है, कोई ऐंग्लो-इण्डियन लड़की है ?

बैजनाथ : (हँसकर) अरे साहब ! ऐंग्लो-इण्डियन लड़की कहाँ ? और सेठ साहब तो सीधे-सादे आदमी हैं, यह जैनी उनकी···क्या नाम है ? अलसेशियन कुतिया है। लेकिन साहब, क्या गजब की कुतिया है ! बड़ी-बड़ी औरतों को मात कर देती है। सेठ साहब के पैरों के पास ऐसे बैठी रहती है जैसे जनम-जनम की संगिनीं हो ! और ऐसी सीधी-सादी कि आप चाहें तो उसका तकिया बना के सो जाएँ। बस, उसके लिए दूध और बिस्कुट का इन्तजाम करना है, तो वह आप कर ही देंगे।

श्यामकिशोर : हाँ-हाँ, इसमें क्या बात है। दूध-बिस्कुट घर में आएगा ही, तो थोड़ा उसे भी दे दिया जाएगा।

बैजनाथ : वाह, वाह ! क्या कहना है। आखिर आप उनके मित्र ठहरे ! जैनी का ख्याल आपको न होगा, तो किसको होगा। (हँसता है।)

श्यामकिशोर : ठीक है, ठीक है ! कोई बात नहीं।

बैजनाथ : और साहब ! एक बड़ी प्यारी पूसी भी है। आहा हा ! क्या कहना है, उसका ! बिल्कुल दूध में धोई है ! बिल्कुल सफेद ! जब मीठे स्वर में 'म्याऊँ' कहती है तो घरवाली का 'मैं आऊँ' कहना भी मात हो जाता है ! उसके लिए भी कोई यही एक पाव-भर दूध का इन्तजाम सुबह और शाम हो जाए।

लीला : अरे, आजकल दूध देखने को तो मिलता नहीं। आदमियों को दूध नसीब नहीं होता तो इनके लिए कहाँ से आएगा ?

बैजनाथ : अजी, आप फिकर न करें। डेरी वाला दे जाएगा। महीने के आखिर में बाबू साहब उसका बिल चुकता कर देंगे !

श्यामकिशोर : हूँ ! खैर, कोई बात नहीं। इतने बड़े बंगले में रहने की एवज में छोटे-मोटे खर्चे क्या हैं ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीला : इन कुत्ते-बिल्लियों के अलावा और भी कोई शौक है, आपके सेठ जी को ।

बैजनाथ : अजी, साहब ! हमारे सेठ जी को एक शौक है ! लेकिन अपने शौक की चीजें बहुत-सी साथ ले गए हैं । इन्हें क्या ले जाते ! हाँ, साहब ! आपको अंडों से तो परहेज नहीं है ?

श्यामकिशोर : मुझे ! मुझे क्या परहेज होगा, मैं तो सभी कुछ खाता हूँ, (लीला की ओर संकेत कर) यह जरूर कुछ छुआछूत मानती हैं ।

बैजनाथ : अरे, तो इनके पूजाघर में मुर्गियाँ थोड़े ही जाएँगी । साहब ! सेठ जी के इस बँगले में बीस मुर्गे-मुर्गियाँ हैं । क्या किसम-किसम की मुर्गियाँ हैं ! सेठ जी ने इकट्ठी की हैं कि देखते ही बनता है । और हर रोज ऐसे अंडे देती हैं, कि मालूम हो कि विलायती रसगुल्ले हैं ।

लीला : विलायती रसगुल्ले…?

बैजनाथ : हाँ, और क्या…बिल्कुल जैसे मशीन के बने हुए हैं । ये बड़े-बड़े ! (हाथ से बतलाता है) इसीलिए सेठ जी, साहब, इन मुर्गियों को इतना प्यार करते हैं कि अपने हाथ से उन्हें दाना चुगाते हैं और साबुन से उनके पंख साफ करते हैं ।

लीला : (श्यामकिशोर से) कहिए, आप उन्हें हाथ से दाना चुगाएँगे और साबुन से उनके पंख साफ करेंगे ?

बैजनाथ : अरे, श्रीमती जी ! अगर आप उनको देखिएगा तो अपने हाथ से दाना चुगाइएगा । और साहब ! क्या खूबसूरत शेरा है !

श्यामकिशोर : शेरा ! यह शेरा कौन है ?

लीला : क्या सरकस का भी शौक है, सेठ जी को ।

बैजनाथ : नहीं, साहब ! क्या खूबसूरत मुर्गा है ! अगर वह न बोले तो सूरज की मजाल है कि निकल आए ! गर्दन उठाकर ऐसा बोलता है कि किसी कालेज का प्रोफेसर हो ।

श्यामकिशोर : (मुस्कुराकर) कितना दाना लगता है, इन प्रोफेसरों को ।

बैजनाथ : यही कोई दो-ढाई सेर ! इससे ज्यादा क्या लगेगा ! कोई ज्यादा खर्च नहीं है, बड़े आदमियों के तो छोटे-मोटे खर्च लगे ही रहते हैं, साहब ! यह तो शौक है, शौक ।

श्यामकिशोर : इस तरह का शौक तो मुझे रहा नहीं । (फीकी हँसी) मुझे क्या पता था सेठ अमोलकचन्द अब इतनी शौकीन तबीयत के हो गए हैं !

लीला : यह शौक आपके ढाई सौ रुपयों में पूरे हो जाएँगे ? इन थोड़े से रुपयों में किसे-किसे खिलाइएगा ?

बैजनाथ : अरे, श्रीमती जी ! आप भी क्या कहती हैं ! बाबू साहब के हाथ में बरक्कत है । यह तो अपने साथ पचासों आदमियों का पेट पाल सकते हैं । (हँसता है) और यह रामधनी…हें हें हें हें ! यह तो आपसे बड़ी आशा लगाए है । यह कहाँ रहेगा ? अरे, आपके ही चरनों में पड़ा रहेगा । ऐसा काम करने वाला अगर और कहीं होता तो अपनी खिदमत के सौ रुपये लेता, लेकिन बाबू साहब ! सेठ जी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ रहते-रहते हीरा बन गया है, हीरा। सिर्फ पचास रुपये और खाने-कपड़े पर अपनी जिन्दगी काट रहा है। आपसे कुछ ज्यादा नहीं लेगा। इतने रुपयों में वह आपके चरनों में अपनी जिन्दगी काट लेगा। (हँसकर) अच्छा! अब तो मुझे आज्ञा दीजिए। मैं चलूं। सेठ जी का हुकुम था कि आपको यहीं ठहरा देना, कोई तकलीफ न होने पावे। जिस चीज की जरूरत हो, आप मुझसे कह दीजिएगा। यहीं पड़ोस में ही रहता हूँ। रामधनी जानता है। यह सँभालिए, चाबियों का गुच्छा। रामधनी! जरा जाके पानी गरम कर। तूने बाबू साहब का बिस्तर लगा दिया है कि नहीं?

रामधनी : हाँ, हजूर! सेठ के पलंग पै बाबू साहब का बिस्तर लगाय दिहेन हई औरु पानी गरम होइके वदँ धै दीन हइ।

बैजनाथ : वाह! वाह! क्या कहना है, रामधनी! किस स्कूल में पढ़ा था, रे? किसने सिखलाया था तुझे यह सब? बड़ा होशियार है। देखो! इसी तरह काम किए जाना, तनखाह के साथ बखसीस भी मिलेगी, साहब से! बड़े दीनदयालु हैं! जरा बहू जी को भी खुश रखना। अच्छा, जै राम जी की बाबू साहब! जै राम जी की, बहू जी! यह चाबियों का गुच्छा सँभालिए (मेज पर चाबियों के रखने की आवाज) जै राम जी! (प्रस्थान)

लीला : यह खूब रही। यहाँ आके अच्छी आफत गले पड़ी। कुत्ते को बिस्कुट खिलाओ, बिल्ली को दूध पिलाओ। मुर्गे-मुर्गियों को दाना चुगाओ।

श्यामकिशोर : सचमुच अजीब आफत है! मैं क्या जानता था कि सेठ जी इतने शौकीन हो गए हैं।

लीला : अजी! अभी क्या हुआ है। आगे देखिए धीरे-धीरे सेठ जी के कितने शौकों का आपको पता चलेगा।

श्यामकिशोर : इतने शौक की चीजों से ही मुसीबत हो रही है। और बातों का पता चलेगा तो न जाने क्या होगा।

लीला : (व्यंग्य से) आपके मित्र के ही तो शौक हैं। साथ-साथ खेले हैं, गालियाँ खाई हैं, और न जाने क्या-क्या किया है! अब निभाइए, आप ही।

श्यामकिशोर : मैं क्या निबाह सकूँगा। इससे अच्छा तो यही था कि हम लोग बीस-पच्चीस रुपये के मकान में रहते, खुद ही खाने-पीने की याद ही न भूल जाएँ।

[नेपथ्य में चीनी के बर्तनों के गिरने और टूटने की आवाज]

श्यामकिशोर : यह क्या हुआ! देखो, जरा अन्दर जाके··· (लीला तेजी से अन्दर जाती है) अजीब परेशानी है! आते देर नहीं हुई कि चीजों का टूटना-फूटना शुरू हो गया! अच्छे हैं सेठ जी! कुत्ते, बिल्ली, मुर्गियाँ और न जाने क्या-क्या! पहले इनको खिलाओ, तब खाओ। रामधनी की तनख्वाह के साथ बख्शीश दो और शायद मुनीम जी को भी तनख्वाह देनी पड़े!

लीला : (जल्दी से हाँफते हुए प्रवेश करके) गजब हो गया!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यामकिशोर : क्यों-क्यों, खैर तो है ?

लीला : खूब शौक हैं, सेठ जी के। नया टी-सेट जो आप दिल्ली से लाए थे न, वह टेबिल पर रखा हुआ था। सेठ जी की पूसी ने दूध के लालच में सारे सेट को जमीन पर गिराकर चूर-चूर कर दिया। एक मिनट में अस्सी रुपये का नुकसान। बाज आए घर के मकान से।

श्यामकिशोर : क्या वह नया टी-सेट टूट गया ?

लीला : जी ! इस बड़े घर में आने पर कुछ निछावर तो करना चाहिए। कर दी आपने, पूसी की निछावर। और वह लाड़ली जैनी आपके बिस्तर पर तकिया बनी वैठी है। और, मैंने देखा, किचिन में मुर्गियों की सभा लगी हुई है। मैं बाज आई ऐसे अहसान से। घर ही का मकान है ! मित्र का मकान है !

[नेपथ्य में बैजनाथ की आवाज]

बैजनाथ : (खाँसते हुए) अरे, बाबू साहब ! मैंने आपको सब चाबियाँ तो दे दीं, पर यह एक चाबी···(घोड़े के हिनहिनाने की आवाज) हैं हैं हैं ! घोड़े के अस्तबल की रह ही गयी ! आपको उसकी भी फिकर रखना जरूरी है। तो मैंने सोचा कि लगे हाथ आपको यह चाबी भी देता चलूँ। यह लीजिए।

श्यामकिशोर : नहीं, नहीं ! यह चाबी आप अपने पास ही रखिए। और वह लीजिए चाबियों का गुच्छा, आप ही इसको सँभालिए। मुझमें इतनी हिम्मत नहीं है कि मैं अपने को सेठ साहब के बँगले का मालिक समझूँ।

बैजनाथ : हैं ! हैं ! यह आप क्या कह रहे हैं ? आप सब लायक हैं। सेठ जी के मित्र होकर आपमें इतनी नम्रता तो होनी ही चाहिए। हैं ! कभी-कभी सेठ जी भी ऐसा ही कहते हैं।

लीला : मुनीम जी ! यह नम्रता सेठ जी को ही शोभा दे सकती है, हम लोगों को नहीं। एक मिनट में अस्सी रुपये का नुकसान हो गया।

बैजनाथ : नुकसान ! कैसा नुकसान ?

श्यामकिशोर : कुछ नहीं, मुनीम जी ! हमारे लिए ताँगा मँगवा दीजिए, हमारे लिए धर्मशाला की वह कोठरी बहुत अच्छी है !

लीला : चलिए ! जल्दी चलिए !

बैजनाथ : हैं ! हैं ! यह कैसे होगा, साहब ! कैसे होगा !

[नेपथ्य में मुर्गे के बोलने की आवाज···फिर कुत्ते के भौंकने की आवाज और अन्त में बिल्ली की म्याऊँ।]

[पर्दा गिरता है]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोन का वरदान

पात्र-परिचय

सुगाम : सम्राट् बिन्दुसार के पुत्र और सम्राट् अशोक के बड़े भाई
सुदत्त : सम्राट् अशोक का छोटा भाई
चंडगिरिक : सम्राट् अशोक का अंगरक्षक
खल्लाहक : सम्राट् अशोक का अमात्य
सम्राट् अशोक : स्वर्गीय सम्राट् बिन्दुसार के पुत्र और मगध के सम्राट्
सुसीम, सुहास, सुबेल : सम्राट् अशोक के बड़े भाई
सेवक आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[दृश्य—सोन नदी की समतल भूमि। मध्य में एक झुका हुआ पेड़ जिसका तना आसन की भाँति बैठने का काम दे सकता है। दाहिनी ओर बिखरी हुई शाखाओं वाला दूसरा पेड़ है, जिसकी दो शाखाओं में इतना अन्तर है कि उनके बीच में चन्द्र का बिम्ब दीख सकता है। स्थान-स्थान पर छोटे-मोटे झुरमुट हैं जो कभी-कभी पैरों में उलझ जाते हैं। भूमि उपजाऊ होने के कारण हरीतिमा से परिपूर्ण है। गहरी सन्ध्या का समय है। आज कृष्णपक्ष की तृतीया है। अभी तक चन्द्रोदय नहीं हुआ है; किन्तु समीप काष्ठ-प्राचीर पर लगा हुआ दीप-स्तम्भ इस स्थान पर हल्का-सा आलोक फेंक रहा है। पूर्व दिशा में चन्द्रोदय के पूर्व की आभा दीख पड़ने लगी है। वातावरण सुनसान है। कभी-कभी सीताध्यक्ष (कृषि विभाग के अध्यक्ष) का सेवक 'सा···व···धा···न' की आवाज देता है, जो वायु में गूँजती हुई क्रमशः धीमी हो जाती है। यह एकान्त जैसे युद्ध के पूर्व का आतंक लिए हुए है। परदा उठने पर सुगाम और सुदत्त बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए दीख पड़ते हैं। वे कभी-कभी दायें और बायें भी झुककर देखते हैं कि इस स्थान पर अन्य कोई तो नहीं है। सुगाम और सुदत्त राजकुमार हैं। सुगाम के वस्त्र नीले और सुदत्त के पीले चीनांशुक के बने हुए हैं। दोनों के हाथ में कृपाण है। सुगाम पूर्व की ओर गहरी दृष्टि से देखते हुए सुदत्त से बात आरम्भ करते हैं।]

सुगाम : अभी चन्द्रोदय नहीं हुआ ?

सुदत्त : (आकाश की ओर देखते हुए) अभी तक चन्द्र के दर्शन नहीं हुए।

सुगाम : तो हमें चन्द्रोदय की प्रतीक्षा करनी है। उसी समय इस सोन नदी के तट पर पाटलिपुत्र को उसका योग्य शासक मिलेगा। उत्साही, कृतज्ञ, वीर जो राज्यश्री को अपने यश में रख सके; जिसमें दैवी बुद्धि और दैवी शक्ति हो।

सुदत्त : (वृक्ष का सहारा लेते हुए ठण्डी साँस भरकर) आह ! ये सब लक्षण हमारे पिता सम्राट् बिन्दुसार में थे ! कौन जानता था कि भाग्याकाश का ऐसा तेजस्वी नक्षत्र इतने शीघ्र अस्त हो जाएगा !

सुगाम : (टहलने से रुककर) करुणा का अवकाश नहीं है, सुदत्त ! उसके लिए हमारी माताओं की आँखों में सागर से भी अधिक जल है। उस सागर में राज्य की नौका नहीं डूब सकती। हमें आज पाटलिपुत्र के योग्य शासक का निर्णय करना ही है। मैं सभी भाइयों की सहमति प्राप्त कर चुका हूँ। केवल तुम्हीं शेष रह गए हो।

सुदत्त : (व्यंग्य से) और मेरे अतिरिक्त भी कुछ शेष रह गया है ?

सुगाम : तुम्हारे अतिरिक्त ? तुम्हारे अतिरिक्त···कुछ नहीं। (कुछ सोचकर) हाँ,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रिमण्डल सम्भवतः हमारे पक्ष में नहीं है, किन्तु इसकी हमें चिन्ता नहीं। कृष्ण-पक्ष चन्द्र की कलाएँ छीन सकता है, चन्द्र को मिटा नहीं सकता।

सुदत्त : जीवन की तृष्णा जिसमें है, वह मिटकर भी नहीं मिटता। तो इस कृष्णपक्ष के क्रोड़ से चन्द्र का उदय होगा ?

सुगाम : अवश्य, यह तो प्रकृति का सत्य है।

सुदत्त : तो यह प्रकृति का सत्य किस व्यक्ति पर घटित होगा ?

सुगाम : यह व्यक्ति होगा, मगध का सम्राट्।

सुदत्त : स्पष्ट कहो, सुगाम ! मगध का सम्राट् कौन होगा ?

सुगाम : यही तो सोन की लहरें निर्णय करेंगी।

सुदत्त : मनुष्य का भाग्य ये लहरें बनाएँगी, जो एक कंकड़ी के गिरने से हिचकी ले उठती हैं ! सुगाम ! स्पष्ट कहो, तुम सम्राट् होना चाहते हो ?

सुगाम : (कृपाण टेककर) मैं ?

सुदत्त : हाँ, तुम ! सुगाम ! हो सकते हो। सम्राट् विन्दुसार के साहसी सुपुत्र ! मेरे ज्येष्ठ भ्राता ! और···और नाम भी बुरा नहीं रहेगा···एकराट् विजिगीषु राजर्षि श्री सुगाम।

सुगाम : मैं व्यंग्य नहीं सुनना चाहता, सुदत्त ! यदि मैं सम्राट् होना चाहूँ तो कोई शक्ति मुझे रोक नहीं सकती। वर्षाकाल में बादल आकाश में स्वयं ही आते हैं और जल की वर्षा करते हैं। आकाश बादलों से भिक्षा नहीं माँगता। उसी प्रकार मैं भी राज्यश्री की भिक्षा नहीं माँगूंगा। राज्यश्री स्वयं मेरे पास आएगी, किन्तु···एक बात पूँछू··· (सहसा) तुम सम्राट् होना चाहते हो ?

सुदत्त : मैं ? (जोर से अट्टहास कर) हा-हा-हा···मैं ?

सुगाम : इतने जोर से मत हँसो। सुदत्त ! ···यह सुनसान कहीं चौंक न उठे। यह एकान्त कहीं मन्त्रिमण्डल के पक्ष में न हो। यह एक विश्वस्त प्रश्न है कि तुम सम्राट् नहीं होना चाहते।

सुदत्त : (फिर हँसकर) हा-हा-हा···मैं ? इसी सोन नदी के किनारे हम दोनों का द्वन्द्व-युद्ध हो और मगध के योग्य शासक का निर्णय। इसी इच्छा से तुम मुझे यहाँ लाए हो ? किन्तु सुगाम ! मैं···मैं द्वन्द्व-युद्ध नहीं करूँगा। अपनी माताओं की अश्रु-धारा में किसी भाई की रक्त-धारा नहीं मिलाऊँगा। मैं सम्राट् पद के लिए द्वन्द्व-युद्ध नहीं करूँगा। पाटलिपुत्र विपत्तियों में डूब रहा है। मैं उस पर अपने कृपाण का बोझ नहीं रखूंगा। हाँ···तुम सम्राट् बनो। पाटलिपुत्र के योग्य शासक ! मैं जीवन-भर अपनी माताओं की सेवा करूँगा।

सुगाम : (लम्बी साँस लेकर) साधु ! सुदत्त ! तो तुम सम्राट् पद के लिए उत्सुक नहीं हो ?

सुदत्त : उत्सुक कौन नहीं होगा ? किन्तु मैं नहीं हूँ।

सुगाम : तो यदि इस समय मैं सम्राट् न बनूं और किसी अन्य भाई को बनाना चाहूँ तो तुम उसे सम्राट् मानोगे ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदत्त : किसे सम्राट् बनाओगे ?

सुगाम : मैं पहले तुम्हारी सहमति चाहता हूँ ।

सुदत्त : सोचकर बताऊँगा ।

सुगाम : (तीव्रता से) मैं तुम्हारा विश्वास चाहता हूँ, सुदत्त ! हाँ या नहीं । तीर लक्ष्य पर सीधा जाता है, वह आकाश में विहार नहीं करता । तुम्हारा उत्तर सीधा होना चाहिए ।

सुदत्त : और यदि टेढ़ा प्रश्न मैं पूछूं तो उत्तर दोगे ? पाटलिपुत्र का सम्राट् कौन होगा—स्पष्ट उत्तर दो सुगाम !

सुगाम : यह सोचकर बताऊँगा ।

सुदत्त : मेरी तरह तुम भी सोचकर बताओगे ? मैं बिना सोचे बतला सकता हूँ···मगध का भावी सम्राट् होना चाहता है—सुगाम ।

सुगाम : (मुस्कराकर) तुम अन्तर्यामी ज्ञात होते हो, सुदत्त ! सभी भाइयों का मत मेरे पक्ष में है, किन्तु इस समय मुझे पाटलिपुत्र की राजनीति की रक्षा करनी है । भावी सम्राट् को कुछ त्याग भी तो करना चाहिए । हमारी राजनीति कुछ समय के लिए एक दूसरा सम्राट् चाहेगी ।

सुदत्त : नहीं, मैं तो सुगाम को ही सम्राट् मानूंगा । मुझे उसका नाम बहुत प्रिय है । सम्राट् सुगाम । न जाने कितने अच्छे ग्राम इस नाम से ही निवास करते हैं ।

सुगाम : साधु ! किन्तु कुछ दिन धैर्य रखो । प्यारे भाई सुदत्त ! मेरी प्रार्थना है कि कुछ दिनों के लिए एक अन्य भाई को सम्राट् स्वीकार करो ।

सुदत्त : किसे ?

सुगाम : जो इस समय सबसे अधिक वीर है ।

सुदत्त : अशोक ?

सुगाम : तुम काँप क्यों उठे, सुदत्त ?

सुदत्त : अशोक के नाम से क्यों काँपूंगा ? वह भी तो हमारा भाई है । उसने उज्जयिनी का शासन कितनी योग्यता से सम्हाला है । जब वह बोलता है तो ज्ञात होता है जैसे आकाश उसका साथ दे रहा है ।

सुगाम : तुम बहुत दुर्बलहृदय हो, सुदत्त ! इसीलिए तुम्हें सुदृढ़ करने और तुम्हारा विश्वास पाने के लिए मैं तुम्हें यहाँ लाया हूँ । देखो, (एक-एक शब्द पर रुक-रुककर दृढ़ता से)—इसी स्थान पर···आज···हम···सब अशोक···का वध···करेंगे । (आतंक-मुद्रा)

सुदत्त : वध करेंगे ? क्यों उसका अपराध ?

सुगाम : उसने अपने सबसे ज्येष्ठ भ्राता सुसीम का अपमान किया है ।

सुदत्त : किस प्रकार अपमान किया ? कुछ अपशब्द कहे या तुम्हारी तरह कुछ राजनीतिक वाक्यों का प्रयोग किया ?

सुगाम : राजनीतिक वाक्य तो नहीं कहे; किन्तु बड़े भाई के रहते अपने को सम्राट् घोषित कर दिया ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदत्त : सम्राट् घोषित कर दिया ? (काँपता है)

सुगाम : तुम फिर काँप उठे ? तुम अशोक से डरते हो ?

सुदत्त : डरता तो नहीं हूँ, किन्तु उसके साहस की प्रशंसा करता हूँ ।

सुगाम : सुनो, सुदत्त ! अब तुम्हें सुसीम की प्रशंसा करनी होगी । स्वर्गीय पिता के वात्सल्य के सबसे बड़े अधिकारी ! वे कुछ समय के लिए पाटलिपुत्र के सम्राट् होंगे । तुम्हें हमारे साथ उनका साथ देना होगा । दोगे ? वचन दो !

सुदत्त : (सोचता हुआ) अपने सबसे बड़े भाई सुसीम ? पर वे तो तक्षशिला का विद्रोह शान्त करने गए हैं । सम्राट् ने उन्हें वहाँ भेजा था ।

सुगाम : वे विद्रोह शान्त कर वहाँ से लौट भी आए । आज प्रातः सूर्य के साथ उन्होंने पाटलिपुत्र में प्रवेश किया । विद्रोह तो उन्होंने एक दिन में शान्त कर दिया । उन्हें देखते ही नागरिकों के सिर श्रद्धा से झुक गए । उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—कुमार ! हमें सम्राट् से या आपसे असन्तोष नहीं है । कार्यान्तिक और अन्तपाल हमें कष्ट देते हैं । युवराज सुसीम ने कार्यान्तिक और अन्तपाल को कारागार में डाल दिया और उसी क्षण विद्रोह शान्त हो गया । कितनी दैवी शक्ति है उनमें ? आचार्य चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में सम्राट् को दैवी शक्ति-सम्पन्न माना है । इसी दैवी शक्ति के कारण वे सच्चे अर्थ में सम्राट् होंगे ।

सुदत्त : (सिर हिलाते हुए) हाँ, सम्राट् तो हो सकते हैं; किन्तु मन्त्रिमण्डल उनसे रुष्ट है । एक बार उन्होंने अमात्य खल्लाहक का अपमान कर दिया था ।

सुगाम : खल्लाहक जन्म से ही खल है तो बेचारे सुसीम क्या करें । खलों को अनुशासन में रखना सज्जनों का धर्म है ।

सुदत्त : फिर भी अमात्य (संकेत करते हुए) उस दीप-स्तम्भ की तरह है जिसका आधार पाकर राज्यश्री प्रकाश फैलाती है ।

सुगाम : हाँ, स्तम्भ ही है; जो जड़ता का प्रतीक है ।

सुदत्त : फिर भी अमात्य समान धरातल से ऊँचा है ।

सुगाम : सौ अमात्य भी जुड़ जाएँ, तो वे आकाश से ऊँचे नहीं हो सकते सुदत्त ! जिसमें तारों का संगठित प्रकाश है । हम सब भाइयों की संगठित शक्ति का सामना क्या अमात्य-मण्डल कर सकता है ? अमात्य-मण्डल अमात्य-मण्डल ही है और भाइयों की शक्ति ऐसा आलोक-मण्डल है, जो मनुष्य की शक्ति से धूमिल नहीं हो सकता । दीपकों का समूह भी कहीं तारों की समता कर सकता है ? और सुनो, सुदत्त ! मन्त्रिमण्डल का संगठन तो सम्राट् करता है । हम लोगों की सहायता से सुसीम सम्राट् बनकर एक नये मन्त्रिमण्डल का संगठन करेंगे और सबसे बड़ी बात यह होगी कि···

सुदत्त : सबसे बड़ी बात क्या होगी ?

सुगाम : सबसे बड़ी बात यह होगी कि···उस मन्त्रिमण्डल में होंगे हम और तुम···

सुदत्त : तुम और हम ? यह तो बड़ी अच्छी बात होगी ! दो नेत्रों की तरह हम और तुम सम्राट् सुसीम का मार्ग-दर्शन करेंगे । सुसीम की मुझ पर कृपा भी है । एक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार मुझसे हँसकर कहने लगे—सुदत्त ! तुम्हारे नाम के अनुरूप मैं तुम्हें कुछ देना चाहता हूँ ।

सुगाम : तो अब वह समय आ गया है, सुदत्त ! वे तुम्हें अपने नवीन मन्त्री का पद प्रदान करेंग । बोलो, हमारा साथ दोगे ?

सुदत्त : इसी प्रकार का लालच, सुगाम ! तुमने अन्य भाइयों को दिया होगा । तभी वे सब तुमसे सहमत हैं । सुसीम के नाम से सम्भवतः तुम पाटलिपुत्र का शासन करोगे ।

सुगाम : (तीव्र स्वर में चिल्लाकर) सुदत्त !

सुदत्त : (डरकर) शब्दों पर मुझे अधिकार नहीं है, सुगाम ! कुछ कहना चाहता हूँ, कुछ मुँह से निकल जाता है । मुझे कुछ डर लगता है । (सोचकर) अच्छा, साथ दूँगा तुम्हारा । मुझे चाहे अमात्य-पद मिले या न मिले, बोलो, कैसे साथ देना होगा ?

सुगाम : आज कृष्णपक्ष की तृतीया है (पूर्व आकाश की ओर देखकर), चन्द्र के उदय होने में कुछ ही विलम्ब होगा । मुझे मध्याह्न में गुप्तचरों से सूचना मिली थी कि आज चन्द्रोदय होने पर अशोक अमात्य खल्लाहक के साथ कुछ विशेष मन्त्रणा करने के लिए इसी स्थान पर आएँगे । उसी समय हम सब मिलकर उन पर आक्रमण करेंगे और या तो उसका वध करेंगे; या उन्हें कारागार में डाल देंगे ।

सुदत्त : हम सब मिलकर एक पर आक्रमण करेंगे ? यह कौन-सी राजनीति है ?

सुगाम : यह सिंहासन प्राप्त करने की राजनीति है ।

सुदत्त : (मुस्कराकर) तो फिर यह राजनीति नहीं व्याजनीति है ।

सुगाम : (तीव्रता से) सुदत्त ! यह परिहास का समय नहीं है । चन्द्रोदय होना ही चाहता है ।

सुदत्त : अच्छी वात है । चकोर की भाँति देखूँगा—(पूर्व की ओर देखते हुए) चन्द्रोदय कब होता है ?

सुगाम : उसी समय कुमार सुसीम अपने साथियों सहित अपने सम्राट् होने की घोषणा करेंगे । तुम्हें उनके जयकार में सम्मिलित होना पड़ेगा ।

सुदत्त : मुझे तो जयकार में सम्मिलित होना है, चाहे वह तुम्हारा हो, चाहे सुसीम का ।

सुगाम : (तीव्र दृष्टि से) यह जयकार सुसीम का होगा ।

सुदत्त : तो सुसीम के जयकार में भाग लूँगा । अभी बोलो, 'कुमार सुसीम की जय !' मैं उसमें अपना कण्ठ-स्वर मिलाऊँगा ।

[बाहर से किसी के आने का शब्द ।]

कोई आ रहा है, सुगाम ! तुम मुझे यहाँ क्यों ले आए ? मैं सन्ध्या समय अपरिचितों को युद्ध का अवसर नहीं देता । तुम जानते हो, सुगाम ! करुणा के क्षणों में मुझे वीरता अच्छी नहीं लगती ।

सुगाम : इस ओर चले आओ, सुदत्त !

[दोनों दाहिनी ओर के पेड़ के समीप जाते हैं । अशोक के अंगरक्षक चंडगिरिक का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवेश। उसके हाथ में कृपाण है।]

चंडगिरिक : (सैनिक ढंग से) कौन है यहाँ ?

[कोई उत्तर नहीं मिलता।]

चंडगिरिक : (तीव्रता से पुनः) शस्त्र या शास्त्र की परीक्षा देने वाला कौन है यहाँ ?
सुगाम : (आगे बढ़कर) तुम्हारे प्रणाम के अधिकारी कुमार सुगाम और कुमार सुदत्त।
चंडगिरिक : प्रणाम करता हूँ, कुमार !
सुदत्त : तुम सम्भवतः मुझे भी प्रणाम करोगे।
चंडगिरिक : दो नेत्रों के लिए एक ही दृष्टि होती है, कुमार ! किन्तु इस समय सोन नदी के तट पर कुमारों को किस कार्य के निमित्त कष्ट उठाना पड़ा ?
सुगाम : प्रश्नकर्ता अपना परिचय प्रस्तुत करे।
चंडगिरिक : चंडगिरिक, श्रीमन् ! सम्राट् अशोक का अंगरक्षक।
सुगाम : उज्जयिनी का करमौलि अशोक कहो···सम्राट् अशोक नहीं।
चंडगिरिक : श्रीमन् ! आज प्रातः निश्चय हो चुका है कि स्वर्गीय सम्राट् बिन्दुसार के स्थान पर···
सुगाम : वाक्य पूर्ण न हो चंडगिरिक ! स्वर्गीय सम्राट् के ज्येष्ठ पुत्र युवराज सुसीम पाटलिपुत्र में प्रवेश कर चुके हैं; उनके रहते किसी को अधिकार नहीं है कि वह एकराट् बिन्दुसार का सिंहासन कलुषित करे। सम्राट् होने के वास्तविक अधिकारी युवराज सुसीम हैं।
चंडगिरिक : जो निर्णय अमात्य मण्डल से हुआ है। वह सर्वमान्य है, श्रीमन् !
सुगाम : सम्राट् के निधन के साथ अमात्य-मण्डल भी समाप्त हो जाना चाहिए। पूर्णिमा के चन्द्र के साथ तारे भी अस्त हो जाते हैं। मैं इस अमात्य-मण्डल के किसी भी अमात्य को महत्त्व नहीं देता।
चंडगिरिक : इसका उत्तर कोई अमात्य ही दे सकता है, अंगरक्षक नहीं। मैं यही निवेदन करना चाहता हूँ कि इस स्थान की अपेक्षा श्रीमन् के लिए राजमहल अधिक उपयुक्त स्थान होगा।
सुदत्त : हाँ, सुगाम ! माताएँ भी हम लोगों की प्रतीक्षा कर रही होंगी।
सुगाम : और मुझे इसी स्थान पर अशोक और सम्राट् सुसीम की एकसाथ प्रतीक्षा करनी है। चंडगिरिक ! तुम अपने को बन्दी समझो। इस अशिष्टता के लिए कल न्यायाधिकरण में तुम पर विचार होगा।
चंडगिरिक : श्रीमन् ! न्यायाधिकरण पर एकमात्र अधिकार सम्राट् अशोक का है।
सुगाम : चुप रह, सम्राट् अशोक को रटने वाला दादुर ! तू दुर्विनीत भी है। द्वन्द्व के लिए प्रस्तुत हो।

[नेपथ्य से : 'चंडगिरिक, तुम अपने स्थान पर रहो' !]

चंडगिरिक : श्रीमन् !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[अमात्य खल्लाहक का प्रवेश ।]

खल्लाहक : किससे बातें कर रहे हो ? (सामने सुगाम को देखकर) राजकुमार सुगाम और राजकुमार सुदत्त ।

सुगाम : अमात्य ! चंडगिरिक ने राज-मर्यादा भंग की है । मैं उससे द्वन्द्व चाहता हूँ ।

खल्लाहक : यह राजकुमार की मर्यादा के अनुकूल नहीं है, कुमार ! वह एक अंगरक्षक से द्वन्द्व करे । (चंडगिरिक से) चंडगिरिक ! कुमारों की मर्यादा अक्षुण्ण रहे ।

चंडगिरिक : मर्यादा की सुरक्षा में ही सेवक का अस्तित्व है श्रीमन् !

सुगाम : और वह अस्तित्व क्षणमात्र में मिटा दिया जा सकता है, अमात्य ! चंडगिरिक का यह साहस कि वह हमसे कहे कि इस स्थान की अपेक्षा राजमहल आपके लिए अधिक उपयुक्त स्थान होगा ! कुमार सुदत्त इसके साक्षी हैं ।

सुदत्त : साक्षी क्या ! चंडगिरिक प्रणाम करना भी नहीं जानता ।

खल्लाहक : कुमार, चंडगिरिक का अपराध क्षमा हो । वह अंगरक्षक है । उसका कर्तव्य है कि जिस स्थान पर उसकी नियुक्ति हो, वह निरापद रहे ।

सुदत्त : हमारे यहाँ रहने से स्थान निरापद नहीं समझा जाएगा ?

खल्लाहक : सम्राट् अशोक···

सुगाम : (बीच ही में तीव्रता से) सम्राट् अशोक ! सम्राट् अशोक ! किस विधान से उज्जयिनी का करमौलि अशोक, मगध का सम्राट् अशोक हो सकता है ? यह एक भयानक षड्यन्त्र है ।

खल्लाहक : शान्त ! राजकुमार ! आपके द्वारा राजमर्यादा भंग न हो । सम्राट् अशोक स्वर्गीय सम्राट् बिन्दुसार के वैसे ही पुत्र हैं जैसे आप या सुसीम ।

सुगाम : तो मैं या सुसीम सम्राट् क्यों नहीं हो सकते ?

खल्लाहक : हो सकते हैं, किन्तु अमात्य-मण्डल का निर्णय ऐसा नहीं है ।

सुगाम : वह अमात्य-मण्डल तो ऐसा निर्णय करेगा ही, जिसके नायक आप हैं । ऐसा अमात्य-मण्डल नष्ट कर दिया जाएगा ।

खल्लाहक : राज्य का विधान एक खिलौना नहीं है, कुमार ! जिसे एक बालक अपने क्रोध में नष्ट कर दे । इस वाक्य का उत्तर···

सुगाम : (बीच ही में) उत्तर ? अभी सुसीम से मिल जाएगा । (सुदत्त से) चलो, सुदत्त !

सुदत्त : हाँ ! राजकुमार सुसीम ही इसका उत्तर देंगे और उनके कण्ठ में हम लोगों का स्वर भी होगा और जैसा राजकुमार सुगाम ने कहा, उस स्वर में सुसीम का जय-जयकार भी होगा । हाँ ! चलो सुगाम !

सुगाम : अमात्य खल्लाहक ! थोड़ी देर अमात्य-पद की सन्ध्या में बादल की भाँति राग-रंजित हो लो । चन्द्रोदय होने पर तुम्हारे रंगों का कहीं पता भी नहीं चलेगा !

[सुदत्त के साथ शीघ्रता से प्रस्थान ।]

खल्लाहक : (सुगाम और सुदत्त के जाने की दिशा में देखते हुए) विद्रोह की जड़ें दूर

CC-0. Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक फैल गयी हैं। ज्ञात होता है, कुमार सुगाम ने इनके लिए संगठन भी कर रखा है। मैं समझता हूँ, इसका पता सम्राट् अशोक को होगा।

चंडगिरिक : इसका पता सम्राट् को है, श्रीमन् !

खल्लाहक : इस विषय में उन्होंने कुछ कहा ?

चंडगिरिक : कहा, मुझे चिन्ता नहीं। विद्रोह की अग्नि को दीपों में सजाकर मैंने दीपावली का उत्सव मनाया है।

खल्लाहक : (मुस्कराकर) साहस के अवतार हैं हमारे सम्राट्। इसीलिए अमात्य-मण्डल ने एक स्वर में निर्णय दिया है कि मगध के सिंहासन पर उनका ही अभिषेक हो। कल इसकी घोषणा होगी। सब भाइयों में वे ही सबसे अधिक शक्तिशाली और साहसी हैं।

चंडगिरिक : (सिर झुकाकर) श्रीमन् !

खल्लाहक : किन्तु इस विद्रोह का शमन करना आवश्यक होगा। कुमार सुगाम अवश्य ही इस विद्रोह का दावानल दूर-दूर तक पहुँचाएँगे और कुमार सुसीम को नेता बनाकर कुछ अनिष्ट करने की बातें सोच रहे होंगे।

चंडगिरिक : इन्हीं कुमारों से सेवक ने सुना कि राजकुमार सुसीम अन्य कुमारों के साथ सम्राट् पर आक्रमण करेंगे और···

[सम्राट् अशोक का प्रवेश। मांसपेशियों से गठा हुआ शरीर। मुख पर तेज और नेत्रों में आकर्षण। स्वर में स्पष्टता और वज्र जैसी दृढ़ता। सम्राट् अशोक अंशुक की कसी हुई धोती पहने हुए हैं जिसके कमर के समीप-भाग में हंस-मिथुन के चिह्न हैं। कन्धों को ढकती हुई तथा बायीं बाहु पर होती हुई रेशमी चादर है जिसमें रत्नों के फुंदने लगे हुए हैं। चीनांशुक के बने हुए डोरीवाले कमरबन्द, जिनके सिरे छाती के समीप रत्नसंकट से कसे हुए हैं। शीर्ष-पट के साथ एक मयूरपक्ष के रंग का उष्णीय जिसके दोनों ओर एक-एक मोती की माला बँधी हुई है। पैर में त्रिपटल मंजीठ रंग के उपानह। हाथ में कृपाण।]

अशोक : (प्रवेश करते ही) चंडगिरिक ! तुम यहाँ से जा सकते हो।

खल्लाहक : (घूरकर) सम्राट् की जय !

चंडगिरिक : (झुककर) सम्राट् की जय !

अशोक : आदेश दुहराए नहीं जाते, चंडगिरिक !

चंडगिरिक : (झुककर) श्रीमन् ! (शीघ्रता से प्रस्थान)

खल्लाहक : किन्तु चंडगिरिक की यहाँ आवश्यकता होगी, सम्राट् !

अशोक : मेरी रक्षा के लिए ? (कुछ हँसते हुए) क्योंकि आपके अमात्य-मण्डल ने निर्णय किया है कि अशोक मगध के सम्राट् हों, और सम्राट् के लिए अंगरक्षक हो। किन्तु मैं समझता हूँ अमात्य ! वह सम्राट् भी क्या है जिसे अंगरक्षक की आवश्यकता हो ? (अमात्य खल्लाहक की मुद्रा गम्भीर है, उसकी ओर तिरछी दृष्टि से देखते हुए) बहुत गम्भीर हो गए, अमात्य ! सम्राट् तो वही है, जो सम्यक् रूप से विराज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सके ! सन्तोष से प्रजा उसकी श्री-सराहना कर सके। उसके लिए अंगरक्षक की क्या आवश्यकता है ? अंगरक्षक की नियुक्ति तो प्रजा के प्रति अविश्वास है। प्रजा ऐसे राजा को क्या क्षमा कर सकती है ?

खल्लाहक : किन्तु इस समय परिस्थिति भयानक है। आपको भी यहाँ नहीं रहना चाहिए। परिस्थिति अत्यन्त भयानक है सम्राट् !

अशोक : (हँसकर) भयानक ? परिस्थिति भी कभी भयानक होती है, अमात्य ? मनुष्य की दुर्बलता का दूसरा नाम परिस्थिति है। जब मनुष्य विवश होकर कुछ नहीं कर सकता, तो वह सरलता से कह देता है, परिस्थिति अनुकूल नहीं है...भयानक है। मनुष्य ही परिस्थितियों का निर्माण करता है और निर्माण कर चुकने पर जब वह असफल हो जाता है, तो भाग्य को दोष देता है। अपने हाथ से अपनी ही शक्तियों की हत्या करता है और कहता है कि मैं अकेला हूँ।

खल्लाहक : आपके साहस की मैं प्रशंसा करता हूँ, सम्राट् ! किन्तु मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

अशोक : अमात्य की वाणी विधान की वाणी है। मैं सुनूंगा।

खल्लाहक : आप जानते हैं सम्राट्, अमात्य-मण्डल ने जो निर्णय किया है, वह अन्य कुमारों को स्वीकार नहीं है। वे ज्येष्ठ कुमार सुसीम को सम्राट् बनाना चाहते हैं। इस गृह-विद्रोह के सम्बन्ध में ही परामर्श देने के लिए मैंने आपको इस एकान्त में निमन्त्रित किया था। राजमहल के तो कोने-कोने में अनन्त जिह्वाएँ, अनन्त नेत्र और अनन्त कान हैं। यह एकान्त ही मूक, अन्ध और बधिर है, किन्तु अब आपको यहाँ भी नहीं रहना चाहिए। यह एकान्त भी मुझे एक कच्छप की भाँति लग रहा है जो अपने विद्रोह का सिर अपने भीतर समेटकर बैठा हुआ है।

अशोक : मुझे उससे भय नहीं है अमात्य ! कच्छप भले ही कठोर हो, किन्तु वह भय से आक्रान्त भी है। भय ही उसे सिर समेटने के लिए बाध्य करता है ! वह चोरी से मांस नोचता है, विषधर की तरह आक्रमण नहीं करता। मुझे ऐसे कच्छपों से भय नहीं है; मैं उनके मर्मस्थल को वेधना चाहता हूँ। हाँ, तुम मुझे परामर्श देना चाहते थे। पाटलिपुत्र की राजनीति के सम्बन्ध में...?

खल्लाहक : तो आपको सूचना है कि अन्य राजकुमार असन्तुष्ट हैं।

अशोक : हाँ, मुझे इस बात की सूचना है कि अन्य राजकुमारों को अमात्य-मण्डल के निर्णय से असन्तोष है। इस सम्बन्ध में आपका और अमात्य-मण्डल का क्या निर्णय है ?

खल्लाहक : अमात्य-मण्डल इस सम्बन्ध में आपसे परामर्श के लिए उत्सुक है। जहाँ तक मेरा व्यक्तिगत निर्णय है, सम्राट् ! वह बिल्कुल स्पष्ट है और वह पाटलिपुत्र के हित में है। आज मुझे मगध की सेवा करते हुए बीस वर्ष से अधिक हो गए। स्वर्गीय सम्राट् की राजनीतिक मन्त्रणाओं का आसन मेरे परामर्श-निर्मित सिंहों के कन्धों पर था। आचार्य चाणक्य के अर्थशास्त्र ने तो हमारा मार्ग प्रशस्त किया ही है, किन्तु अनेक परिस्थितियाँ ऐसी आयी हैं, जहाँ हमने राजनीति को सरस्वती की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त धारा बनाकर विपक्षियों में भी संग्राम करा दिया है। किन्तु यह अन्तर्विद्रोह विपक्षियों की हिंसा से भी भयानक है।

अशोक : आपकी राजनीति पर हमें विश्वास है।

खल्लाहक : सम्राट् ! आज मगध में गृह-विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी है। स्वर्गीय सम्राट् इस बात को स्वीकार करते थे कि सब भाइयों में आप सबसे अधिक शक्तिशाली हैं, किन्तु वे ज्येष्ठ कुमार सुसीम को समीप रहने के कारण अधिक चाहते थे। आप उज्जयिनी में ग्यारह वर्षों से थे। आपने अनेक विद्रोह शान्त किए, किन्तु कुमार सुसीम ने आपके शौर्य की सूचना सम्राट् तक पहुँचने भी नहीं दी। कुमार सुसीस सम्राट् का स्नेह पाकर धृष्ट और दुर्विनीत हो गए। कुमार सुगाम भी उन्हीं की भाँति निरंकुश बन गए। जब तक्षशिला में विद्रोह हुआ तो सम्राट् आपको उज्जयिनी से तक्षशिला भेजना चाहते थे, किन्तु अमात्य-मण्डल जानता था कि वह विद्रोह राज्य-कर्मचारियों के प्रति है, सम्राट् के विरुद्ध नहीं। इसलिए आपके भेजे जाने की आवश्यकता नहीं समझी गयी और कुमार सुसीम को राज्य से दूर करने के लिए तक्षशिला भेज दिया गया।

अशोक : सुसीम शान्ति स्थापित कर आज प्रातः तक्षशिला से पाटलिपुत्र लौट भी आए ?

खल्लाहक : हाँ ! आज प्रातः वे लौट आए। उन्हें स्वर्गीय सम्राट् के निधन की सूचना मिल चुकी थी, इससे उन्हें आशंका थी कि अमात्य-मण्डल उनके स्थान पर कहीं कुमार अशोक सम्राट् न बना दे।

अशोक : (मुस्कराकर) और आपके अमात्य-मण्डल ने अशोक को ही सम्राट् बनाया।

खल्लाहक : इसलिए कुमार सुसीम अन्य कुमारों के साथ मिलकर पाटलिपुत्र को विद्रोह की अग्नि में भस्म कर देना चाहते हैं।

अशोक : विद्रोह में तो यही होगा। किन्तु इससे रक्षा का उपाय ?

खल्लाहक : मेरी दृष्टि में एक ही है।

अशोक : सुनना चाहता हूँ।

खल्लाहक : यदि इसे राजवंश की मर्यादा के विपरीत न समझा जाए तो···

अशोक : तो···?

खल्लाहक : उन पर शीघ्रातिशीघ्र नियन्त्रण लगा दिया जाए।

अशोक : सैनिक नियंत्रण ?

खल्लाहक : हाँ, सम्राट् ! अन्यथा बढ़ती हुई आग की लपटों की भाँति वे राज-मर्यादा की फूलती हुई बेलों को झुलसाते रहेंगे।

अशोक : इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है ?

खल्लाहक : वे सब प्रतिहिंसा के विष-दन्तों में मृत्यु का अभिशाप लिए हुए हैं। वे आप पर आक्रमण करना चाहते हैं। उन्हें इस बात की सूचना है कि आप इस समय यहाँ पर हैं। इसीलिए मैंने निवेदन किया कि अब आप यहाँ से शीघ्र ही लौट चलें। जब आपकी रक्षा के लिए अंगरक्षक और एक सैनिक गुल्म की नितान्त आवश्यकता है, तब आपने अपने अंगरक्षक को यहाँ से जाने का आदेश दे दिया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोक : (सोचते हुए) वे यहाँ मुझ पर आक्रमण करेंगे ?

खल्लाहक : निस्सन्देह ! कुमार सुगाम और कुमार सुदत्त यही अभिसन्धि लेकर यहाँ से गए हैं। वे आपके आने के पूर्व यहाँ थे। वे सब मिलकर किसी भी क्षण आप पर आक्रमण कर सकते हैं। चन्द्रोदय होने ही वाला है। वे इसी की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। यही उनके आक्रमण की वेला है।

अशोक : अन्धकार में वे अपना आक्रमण अधिक सफलता के साथ कर सकते हैं। विद्रोह का कृपाण तो अन्धकार की म्यान में रहता है।

खल्लाहक : इसीलिए सम्राट् ! परामर्श का समय चन्द्रोदय के पश्चात् ही रखा गया था।

अशोक : तो चन्द्रोदय ही उनके आक्रमण की वेला है।

खल्लाहक : हाँ, सम्राट् !

अशोक : तो फिर अमात्य ! तुम भी यहाँ से जाओ।

खल्लाहक : मैं भी यहाँ से चला जाऊँ ! मगध के सम्राट् को इस एकान्त में छोड़कर चला जाऊँ; जिससे विद्रोहियों का मार्ग और भी सुगम हो जाए ? मेरे लिए यह सम्भव नहीं होगा, सम्राट् ! यह राज-धर्म और सेवा-धर्म दोनों ही के प्रतिकूल है।

अशोक : तो राज-धर्म भी कैसा है कि उसने अपने सम्राट् की परीक्षा लिए बिना ही उसे सम्राट् बना दिया ? नदी की गहराई परखी ही नहीं और उसमें अपनी विशाल नौका छोड़ दी ? अमात्य-मण्डल को सम्राट् की परीक्षा भी तो लेनी चाहिए थी ?

खल्लाहक : उज्जयिनी में सम्राट् की परीक्षा अनेक बार ली जा चुकी है।

अशोक : उज्जयिनी पाटलिपुत्र नहीं है, अमात्य ! उज्जयिनी केवल पश्चिम-चक्र की राजधानी है और पाटलिपुत्र समस्त मगध राज्य का केन्द्र है। यहाँ की परीक्षा वास्तविक परीक्षा है।

खल्लाहक : फिर भी सम्राट ! आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे यहाँ से जाने का आदेश न दें। विद्रोह में पाटलिपुत्र भस्म होने जा रहा है।

अशोक : मैं अमात्य को आदेश न देकर उनसे आग्रह करना चाहता हूँ कि वे मुझे एकान्त में कुछ विचार करने का अवसर प्रदान करें।

खल्लाहक : जैसी आज्ञा ! (प्रस्थान।)

अशोक : (टहलते हुए सोचते हैं) विद्रोह ! विद्रोह की अग्नि में पाटलिपुत्र भस्म होने जा रहा है ! सम्राट् बिन्दुसार का पाटलिपुत्र ! सम्राट् चन्द्रगुप्त का···! (टहलते हुए पेड़ के समीप आकर पूर्व के आकाश में देखते हैं) यह चन्द्र ! तो चन्द्रोदय हो गया ! आक्रमण की यही वेला है। कैसा आक्रमण होगा ! किसी ने आक्रमण कर चन्द्र की तीन कलाएँ भी काट ली हैं। (चौंककर एक दिशा में देखते हैं) कौन है ? (कोई उत्तर नहीं मिलता) पाटलिपुत्र में चोर की तरह छिपनेवाला कौन है ?

सुगाम (सामने आकर तलवार देकर) मैं चोर नहीं हूँ अशोक !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

अशोक : (आत्मीयता के स्वरों में) सुगाम तुम हो ! तो फिर चोर की तरह क्यों छिप

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हो ? तुम मेरे भाई हो। स्वर्गीय सम्राट बिन्दुसार के पुत्र। मगध राज्य के संरक्षक !

सुगाम : व्यंग्य-बाण मत चलाओ। शक्ति हो तो तुम तलवार का प्रयोग कर सकते हो।

अशोक : शक्ति भी है और तलवार भी है, किन्तु प्रयोग का अवसर मैं नहीं देखता। हाँ, तुम प्रयोग करो ! देखो, चन्द्रोदय हो गया। तुम्हारे आक्रमण की वेला यही तो है। देखूँ, तुम किस प्रकार आक्रमण करते हो।

सुगाम : मैं आक्रमण तो करूँगा ही, अशोक, पहले यह जानना चाहता हूँ कि अमात्य खल्लाहक और अंगरक्षक चण्डगिरिक कहाँ हैं ?

अशोक : दो भाइयों के बीच में कोई बाहरी व्यक्ति नहीं होना चाहिए, सुगाम ! इसीलिए दोनों को ही यहाँ रहने की अनुमति मैंने नहीं दी। अब यहाँ केवल मैं हूँ और तुम हो। हम-दोनों का जीवन, जीवन है; कोई प्रदर्शनी नहीं जो बाहरी व्यक्ति देखें।

सुगाम : अशोक ! तुम जानते थे कि मैं यहाँ आनेवाला हूँ !

अशोक : निस्सन्देह ! मैं अपने अन्य भाइयों की भी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। वे सब कहाँ हैं ?

सुगाम : कहीं दूर नहीं होंगे, किन्तु तुम जानते हो, इसका परिणाम क्या होगा ?

अशोक : भाइयों के मिलने का परिणाम बुरा नहीं होता, यह मैं जानता हूँ।

सुगाम : तुम साहसी हो, अशोक ! इसलिए मुझे तुम पर दया आती है। मैं नहीं चाहता कि भाइयों की क्रोधाग्नि में तुम भस्म हो जाओ।

अशोक : मैं भस्म हो जाऊँ ? असम्भव ! क्रोधाग्नि में क्रोध करनेवाला व्यक्ति ही भस्म होता है। सुगाम ! मैं अपने भाइयों को क्रोधाग्नि में भस्म होने से रोकूँगा।

सुगाम : यह तुम्हारा साहस मात्र है, अशोक ! तुम्हारे लिए उचित होगा कि तुम मगध के सिंहासन से हट जाओ।

अशोक : अशोक आज तक अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटा है, सुगाम ! यदि अमात्य-मण्डल एक मत से मेरे सम्राट् होने का निर्णय न करता तो मैं दूसरे दिन ही उज्जयिनी के लिए प्रस्थान करता। पिता-श्री के निधन के पश्चात् मगध राज्य की सुरक्षा का प्रश्न मेरा पहला कर्तव्य है, जिसका पालन मैं जीवन के अन्तिम क्षणों तक करूँगा।

सुगाम : तुम्हारा यह झूठा अभिमान है। मैं तुम्हें सचेत करना चाहता हूँ, अशोक ! तुम युवराज सुसीम के मार्ग से हट जाओ।

अशोक : मुझे सुसीम के मार्ग का मोह नहीं है। मुझे अपना मार्ग प्रिय है; और यदि मैं अपने सत्य में स्थिर हूँ तो प्रत्येक मार्ग मेरे लिए राजमार्ग है; भूमि का प्रत्येक खण्ड मेरे लिए सिंहासन है। और, सिंहासन उच्च नहीं है, सुगाम ! सिंहासन पर बैठने की योग्यता उच्च है। सुसीम सिंहासन को ही उच्च समझते हैं। यह मार्ग मेरा नहीं है।

सुगाम : फिर भी तुम्हारा मार्ग सुसीम के मार्ग को अवरुद्ध करता है। तुम इस मार्ग से हट जाओ, नहीं तो···

अशोक : नहीं तो···?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगाम : समस्त भाइयों की सम्मिलित शक्ति तुम्हें बलपूर्वक मार्ग से हटा देगी।

अशोक : मैं ऐसी शक्ति के दर्शन करना चाहता हूँ। जीवनभर मैंने शक्ति की उपासना की है। आज उसका सम्मिलित रूप देखकर मैं अपने को धन्य समझूँगा। कहाँ है वह सम्मिलित शक्ति! उस सम्मिलित शक्ति का प्रयोग मैं भी देखना चाहता हूँ, सुगाम!

सुगाम : वीरवर अशोक! मैं नहीं चाहता कि स्वर्गीय पिता-श्री का शुभ वंश भाइयों के रक्त से कलंकित हो। यदि तुम सुसीम के पक्ष में नहीं हो तो किसी अन्य भाई को सिंहासन पर बैठने का अवसर दे सकते हो। तुमने अपनी वीरता की ध्वजा समस्त पश्चिम-चक्र में फहराई है। तुम ऐसा कर सकते हो कि···यदि सुसीम योग्य नहीं है अर्थात् उसे सिंहासन के योग्य नहीं समझते तो···तो मैंने···अर्थात् मैंने···मार्ग, आदर्श पर चलने का प्रयत्न···प्रयत्न नहीं···साधना की है···मैं···अर्थात् मैं···

अशोक : देखो, सुगाम! अपने व्यक्तित्व पर बल दो···किसी दूसरे का अनुकरण आत्म-हत्या है।

सुगाम : (तीव्रता से) तो अब तुम्हारी हत्या की जाएगी अशोक! मैं तुम्हें सावधान करने आया था। तुम्हारे प्रति भाइयों का क्रोध अन्तिम सीमा पर पहुँच गया है।

अशोक : मनुष्य की शक्ति अन्तिम सीमाओं में शोभा नहीं पाती। अन्तिम सीमाओं को सन्तुलित करने में शोभा पाती है।

सुगाम : यह तुम्हारा अन्तिम निर्णय है?

अशोक : मेरे धैर्य की परीक्षा न लो, सुगाम! क्या तुम समझते हो कि मगध का सिंहासन किसी वणिक् की तुला है, जो शब्दों के भार से किसी ओर भी झुक सकती है? यह सिंहासन मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त का है, सम्राट् बिन्दुसार का है, जिनका साहस और प्रताप उसमें रत्नों की भाँति जड़ा हुआ है और इन रत्नों में देश का ही नहीं, विदेश का भी इतिहास प्रतिबिम्बित हुआ है।

[नेपथ्य में कोलाहल होता है।]

अशोक : यह कैसा कोलाहल?

सुगाम : (व्यंग्य से) इसी कोलाहल में तुम्हारा इतिहास प्रतिबिम्बित होगा।

[नेपथ्य में एक स्वर—अशोक का वध करो! दूसरा स्वर—पाटलिपुत्र का कलंक दूर हो! तीसरा स्वर—अशोक को वन्दी करो!]

अशोक : (तीव्रता से कोलाहल की दिशा में देखकर) मैं प्रस्तुत हूँ!

[नेपथ्य में फिर हलचल होती है।]

सुगाम : (उच्च स्वर से) सम्राट् की जय!

[‘जय’ का नाद गूँजते ही नेपथ्य से सुसीम अन्य चार भाइयों सहित तलवार की नोक सामने कर झपटते हैं।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुसीम : (तीव्रता से तलवार उठाकर) प्रतिहिंसा मेरे प्राणों में है ! मृत्यु मेरे हाथों में··· आक्रमण करो !

[हलचल होती है।]

अशोक : (गर्जन के स्वर में) सावधान ! सम्राट् विन्दुसार के वंश के हिंसक पशु ! वहीं खड़े रहो !

[सब स्तम्भित होकर रुक जाते हैं।]

अशोक : (वैसे ही गर्जन के स्वर में) यदि एक भी व्यक्ति आगे वढ़ा तो वह खौलते हुए तेल के कड़ाहे में झोंक दिया जाएगा !

[सब ठिठके हुए खड़े रहते हैं। केवल कुमार सुसीम आगे बढ़ते हैं।]

सुसीम : किसका साहस है कि वह हमें खौलते हुए तेल के कड़ाहे में झोंक दे ?

अशोक : पाटलिपुत्र का एक-एक व्यक्ति यह साहस रखता है। और खौलते हुए तेल की एक-एक बूंद मांस में डूवकर हड्डियों को गलाने की शक्ति रखती है। तुम आगे वढ़ोगे ?

सुसीम : मैं ही नहीं···मेरे भाई भी आगे बढ़ेंगे।

अशोक : तुम्हारे ये भाई ? जिन्हें तुमने विद्रोह के लिए भड़काया है ? जिन देवता-जैसे राजकुमारों को तुमने भेड़ियों का वाना पहनाया है ? पिता की मृत्यु पर टूटते हुए इनके आँसुओं से तुम अपना राज्याभिषेक कराना चाहते हो ? वोलो, सुसीम ! स्वार्थ की वेदी पर भाइयों की वलि देना हिंसा की पराकाष्ठा है या नहीं ?

सुसीम : हिंसक तुम हो।

अशोक : भाइयों को अपने साथ-साथ तुम लाए हो, जिससे वे मेरी तलवार से कटें और तुम मुझसे सन्धि कर सिंहासन पर वैठो। तुम्हारा स्वार्थ ये भाई जानते हैं। इसीलिए ये भाई देखने में तुम्हारे साथ हैं, पर वास्तव में साथ नहीं हैं। राज्य में विद्रोह स्वार्थ के पैरों पर खड़ा होता है। इन पैरों की दिशा जानते हो, किस ओर है ? सुदत्त ! सुहास ! सुवेल ! तुम लोगों के पैर काँप रहे हैं। तुम्हारे हाथों की तलवारें झुक रही हैं। राजनीति में विद्रोह वह हिम-खण्ड है जो अविश्वास की आँच में गलकर बह जाता है। तुम्हारे माथे पर जो पसीना है, सुदत्त ! वह उसी का रूप है। उसे जल्द पोंछो।

[सुदत्त वायें हाथ से माथे का पसीना पोंछता है।]

सुसीम : (सुदत्त से सरोष) पसीना क्यों पोंछते हो ?

सुदत्त : (हकलाते स्वर से) अविश्वास···अविश्वास से गल···गलकर बह रहा है।

सुगाम : (चीखकर) अविश्वास ? कैसा अविश्वास ?

अशोक : (तीव्रता से) वह अविश्वास, जो तलवारों में काँपता है। वह अविश्वास, जो तलवार को कसकर पकड़ता है, किन्तु मुट्ठी ढीली की ढीली रह जाती है। वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविश्वास, जो साहस कर बोलना चाहता है, किन्तु भूमि में गड़े लोहे पर की गयी चोट की भाँति गले में कुण्ठित हो जाता है। स्पष्ट कण्ठ से कहो, सुसीम ! क्या कहना चाहते हो ? तुम्हारी वाणी अविश्वास से बोझिल हो रही है।

सुसीम : मेरी वाणी बोझिल नहीं। मैं पूछता हूँ, मुझे खौलते हुए तेल में झोंकने की शक्ति किसमें है ?

अशोक : मुझमें। उस शक्ति की परीक्षा लेना चाहते हो ? तुम्हारे भाइयों के पैर लड़खड़ा रहे हैं। तुम्हारी वाणी में पहले जैसा तीखापन नहीं है। कौन परीक्षा लेगा ? समझो सुसीम ! सागर की एक बूँद सागर के जल के समान ही है, किन्तु उसमें प्रलय का संघात उत्पन्न नहीं हो सकता। यदि तुम्हारे साथ के भाइयों ने मगध का भविष्य नहीं पहचाना तो मुझे वलपूर्वक पहचानने के लिए बाध्य करना होगा।

सुसीम : हमें कोई बाध्य नहीं कर सकता।

सुगाम : राजकुमारों को कोई वाध्य नहीं कर सकता। काल भी उनके सामने आए, तो वे उसे अपने पैरों से कुचल देंगे। भाइयो ! अशोक तुम्हारे सामने है ! उस पर आक्रमण करो ! वध करो।

[कुमारों में एक-दूसरे का मुख देखकर फिर आक्रमण करने की हलचल होती है।]

अशोक : (तीव्रता से) शान्त ! तुम लोग एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते। यह रण-भूमि नहीं है। यह पाटलिपुत्र की पवित्र धरणी है। गंगा और सोन ने इसका अभिषेक किया है। युद्ध करना है तो पाटलिपुत्र के बाहर की भूमि रक्त से रंजित की जाएगी, यह पवित्र धरणी यज्ञ-भूमि है, रण-भूमि नहीं।

सुसीम : किन्तु तुम ! अशोक तुम ! इसे अपने दुस्साहस से रण-भूमि में परिणत करना चाहते हो।

अशोक : आक्रमण करने का आदेश किसने दिया ? मैंने या तुमने ! यह भी तक्षशिला का विद्रोह है। यह भी उत्तर-चक्र का विप्लव है ? यह पाटलिपुत्र के भविष्य का निर्णय है। यह हमारी पितृ-भूमि—हमारे मध्य-चक्र की परम्परा का निर्णय है। सुसीम ! अधिकार को विद्रोह का खिलौना मत बनाओ। मैं आवेश के चक्रव्यूह में अधिकार को लांछित नहीं होने दूँगा। मैं जानता हूँ, आवेश में भरे हुए व्यक्तियों का समूह पशुओं के पैरों से चलता है। आवेश दूर हो।

सुगाम : तो सुसीम मगध के सम्राट् होंगे। पिता का उत्तराधिकार उन्हीं को प्राप्त होगा।

अशोक : और तुम्हें प्राप्त क्यों नहीं हो सकता ? तुम भी मगध सम्राट् के पुत्र हो, पिता के उत्तराधिकारी हो ! सुगाम ! तुम भी मगध के सम्राट् हो सकते हो !

सुगाम : वह तुमने स्वीकार कब किया ?

अशोक : वह भी कभी स्वीकार हो सकता है। किन्तु इसके लिए तुम विद्रोह करोगे ? किसके साथ विद्रोह करोगे ? अमात्यमण्डल की शक्ति प्रजा की शक्ति है। प्रजा की शक्ति ईश्वर की शक्ति है। ईश्वर की शक्ति से कौन युद्ध करेगा ? याद रखो,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगाम ! प्रजा की शक्ति मेरे साथ है, फिर किसमें साहस है कि ईश्वर की शक्ति के समक्ष खड़ा रह सके ? और, इन टूटी हुई तलवारों के साथ तुम मुझसे युद्ध करोगे ? सुगाम ! तुमने इन कुमारों के हाथों में टूट जाने वाली तलवारें क्यों दे रखी हैं ?

[कुमार अपनी-अपनी तलवार पर दृष्टि डालते हैं।]

सुगाम : ये राजकुमारों की अपनी तलवारें हैं।

अशोक : तो इन तलवारों का पानी उतर गया है। जब विद्रोह के लिए तलवार उठती है तो उसका पानी उतर जाता है (तलवारों को लक्ष्य कर) यह देखो ! ये तलवारें आपस में ही टकरा रही हैं। सुहास ! और सुवेल ! तुम लोगों की तलवारें आपस में ही टकराकर कुण्ठित हो रही हैं ! पीछे हटो।

[दोनों यन्त्रवत् पीछे हट जाते हैं।]

सुदत्त : मेरी तलवार तो नहीं टकरा रही है।

अशोक : तुम भविष्य को पहचानते हो। सुदत्त ! और सुगाम ! तुम भी भविष्य को पहचानते हो। क्योंकि तुम मुझे सावधान करने आए थे और अपने लिए मगध का सिंहासन···

सुसीम : (आश्चर्य से सुगाम की ओर देखते हुए) अपने लिए मगध का सिंहासन चाहते थे।

सुगाम : अपने लिए अर्थात् तुम्हारे लिए।

सुदत्त : मुझसे तो किसी अमात्य-पद की बात कर रहे थे।

सुहास : हाँ, और यही मुझसे भी कहा था।

सुवेल : और मुझे तो अमात्य के नाम से पुकारने भी लगे थे !

अशोक : शान्त ! शान्त ! परस्पर भेद की बातें करने से लाभ कुछ नहीं होगा। परस्पर अविश्वास का समय कहाँ ? पाटलिपुत्र का प्रत्येक राजकुमार सत्य को पहचानता है, वह धोखे में नहीं आ सकता। मैं तुम सबसे अपने मन की बातें कहना चाहता था, किन्तु पूज्य पिता की चिता की जलती हुई भस्म आज भी पाटलिपुत्र को दग्ध कर रही है ! पूज्य माताओं की आँखों से बही हुई आँसुओं की धारा इस सोन नदी के प्रवाह से किसी भी प्रकार कम नहीं।

सुदत्त : मैंने भी यही कहा था, अशोक ! ··· मैंने भी यही कहा था।

सुसीम : (दृढ़ता से) मेरे सामने यह प्रश्न नहीं है, अशोक ! मैं अपना अधिकार चाहता हूँ ! मैं ज्येष्ठ हूँ।

अशोक : फिर मेरे प्रणाम के अधिकारी होकर मेरे आक्रमण के अधिकारी क्यों होना चाहते थे ? सुसीम ? तुम नहीं जानते हो कि तुम कितने महान् हो ! तुममें कितनी शक्ति और क्षमता है ! तुमने तक्षशिला का विद्रोह एक दिन में समाप्त कर दिया ! तुम सम्राट् बिन्दुसार के ज्येष्ठ पुत्र ! मगध साम्राज्य के सुदृढ़ स्तम्भ ! यदि तुम अपने विवेक को सन्तुलित रखते तो यह राज्यश्री तुम्हारे चरणों में लोटती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तुम पदाघात करते हुए कहते—"दूर हो पिशाची ! तू मेरी शरण में आने के योग्य नहीं है।" किन्तु आज पिता का मरण तुम्हारे राज्य-वैभव का सोपान बन रहा है ? माताओं की अश्रु-धारा में तुम अपने भाई की रक्त-धारा मिलाना चाहते हो ?

सुदत्त : मैंने तुमसे यही कहा था, सुगाम ! मैंने भी यही कहा था, अशोक ! मैं निश्चय तुम्हारे पक्ष में हूँ। मेरा प्रणाम स्वीकार करो।

[प्रणाम करके अशोक के समीप आकर खड़ा हो जाता है।]

सुबेल : और मैंने भी अशोक का विरोध कब किया ! मैं भी तुम्हारे पक्ष में हूँ, प्रणाम करता हूँ। (प्रणाम करता है और अशोक के समीप दूसरी ओर खड़ा हो जाता है।)

सुहास : अशोक सत्य के पथ पर है। मैं भी प्रणाम करता हूँ।

[प्रणाम करके अशोक के पक्ष में आकर सुदत्त के समीप खड़ा हो जाता है।]

अशोक : पाटलिपुत्र की राजनीति कृतज्ञता का स्वर पहचानती है। मैं तुम सब लोगों का कृतज्ञ हूँ। सुदत्त ! सुबेल ! और सुहास ! तुम लोग विविध शासन-चक्रों के कुमार बनने की योग्यता रखते हो। तुम लोग जाओ। माताओं को तुम्हारे शीतल शब्दों की आवश्यकता होगी।

सुदत्त : मैं भी यही सोचता हूँ, अशोक ! (सुबेल और सुहास से) चलो सुबेल ! चलो सुहास ! (सुसीम से) अच्छा सुसीम ! हम लोग जा रहे हैं।

सुबेल और सुहास : चलो ! (अशोक को प्रणाम करके जाते हैं।)

सुसीम : (अशोक से) तो इस प्रकार तुमने भेद-नीति से काम लिया ?

अशोक : (शान्ति से) भेद-नीति का प्रयोग वहाँ हो, जहाँ संगठन हो और जहाँ लोगों को भ्रम में डालकर काम लिया जा सकता हो। इस नीति की आवश्यकता मुझे नहीं है सुसीम ! मेरी नीति तो आत्मविश्वास की है। आत्मविश्वास जीवन के सत्य को पहचानने का बीज-मन्त्र है और जीवन का सत्य किसी एक व्यक्ति का धन नहीं है, वह मानव-मात्र का अखण्ड वैभव है। तुम उदार नहीं हो सके ! उदारता के अभाव में तुम्हारा वैभव शरद्कालीन बादल बन गया, जो देखने में तो उज्ज्वल है, किन्तु उसमें जल की एक बूंद भी नहीं है। तुम नहीं समझ सके कि तुम्हारी आँखों की परिधि ही अन्तिम परिधि नहीं है···क्षितिज पार भी एक परिधि है, जिसमें पृथ्वी और आकाश जैसे अलग तत्त्वों में भी सन्धि हो सकती है।

सुगाम : अशोक ! तुम महान् हो !

अशोक : महान् तो मानव है, सुगाम ! यदि कोई व्यक्ति सच्चा मानव बन सके ! मानव ही सृष्टि का केन्द्र है। जहाँ वह है, वहाँ सारी प्रकृति है···मानव ही राष्ट्र है और मानव ही युग है। वह अनन्त प्रगति है, उसमें अनन्त शक्ति का स्रोत है यद्यपि वह नहीं जानता कि इस शक्ति का स्रोत कहाँ है।

सुसीम : (सिर पकड़कर) ओह ! सब समाप्त हो गया !

सुगाम : मेरे लिए कहीं कोई स्थान नहीं रह गया !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[अमात्य खल्लाहक का प्रवेश ।]

खल्लाहक : सम्राट् की जय !

अशोक : (मुस्कराकर) अमात्य ! तुम और अंगरक्षक गुप्त स्थान में बैठे-बैठे थक गए होगे, किन्तु मुझे अपनी वाणी और दृष्टि पर विश्वास था।

खल्लाहक : सम्राट् ! सैनिक गुल्म भी समीप ही था। वह प्रतीक्षा में था कि कुमार आक्रमण करें।

अशोक : किन्तु कुमारों ने आक्रमण नहीं किया। कितने कृपालु हैं ये कुमार !

सुसीम : इस समय जाता हूँ अशोक ! फिर कभी···

अशोक : नहीं ! अभी तुम नहीं जा सकोगे, कुमार सुसीम और सुगाम ! मेरा अनुरोध है कि तुम आत्महत्या नहीं करोगे। इस वंश में किसी ने आत्महत्या नहीं की है। तुमसे शासन-चक्र के सम्वन्ध में कुछ परामर्श करूँगा। यह स्मरण रखना कि आवश्यकता से अधिक बुद्धिमत्ता मूर्खता की जननी है।

सुसीम : क्या मुझे खौलते हुए तेल के कड़ाहे में डालोगे ? मुझे कोई चिन्ता नहीं !

अशोक : (अमात्य से) मैं अंगरक्षक की उपस्थिति चाहता हूँ।

खल्लाहक : सम्राट् की जैसी इच्छा। मैं भी यही चाहता था। (प्रस्थान)

अशोक : कुमार सुसीम ! राज्यश्री एक महापर्व मनाती है। उसमें महत्त्वाकांक्षा की भरी नदी में स्नान होता है। गुप्त अभिसन्धियों का मन्त्र-पाठ होता है। प्रशस्तियों के स्तोत्र पढ़े जाते और ऐश्वर्य के पुष्प बिखेरे जाते हैं। पाटलिपुत्र की राज्यश्री में यह कुछ नहीं होगा। उसमें प्राचीन राजपुरुषों की अर्चना में केवल प्रेम की पुष्पांजलि अर्पित होगी और प्राणों के दीप जलेंगे। यही राजनीति है···यही राज्यश्री है। (नेपथ्य में देखकर) कौन ? चंडगिरिक ?

चंडगिरिक : आज्ञा, सम्राट् ! (सिर झुकाता है।)

अशोक : राजकुमार सुसीम और राजकुमार सुगाम को आदर सहित राजमहलों में पहुँचा दो !

सुसीम : हम लोग जिस भाँति आए हैं, उसी भाँति चले जाएँगे।

अशोक : नहीं, कुमार सुसीम ! सम्राट् बिन्दुसार के राजवंश की मर्यादा सुरक्षित रहेगी। (चंडगिरिक से) और चंडगिरिक ! साथ में सैनिक गुल्म भी रहेगा।

चंडगिरिक : जैसी आज्ञा, सम्राट् ! (कुमारों से) कुमारों से प्रार्थना है कि वे राज-महलों की ओर प्रस्थान करें।

सुसीम : (सुगाम से) चलो सुगाम !

सुगाम : अशोक ! तुम्हारे कहने से मैं आत्महत्या नहीं करूँगा।

अशोक : साधु, सुगाम !

[सुसीम और सुगाम का शीघ्रता से प्रस्थान; खल्लाहक का प्रवेश।]

खल्लाहक : सम्राट् की कोई विशेष आज्ञा ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोक : (सोचते हुए) कृष्णपक्ष की रात्रि में जितने अधिक तारे रहते हैं, उतना ही अधिक अन्धकार भी रहता है।

खल्लाहक : सत्य है, सम्राट्! किन्तु आज चन्द्रोदय होने पर पाटलिपुत्र का सच्चा सम्राट् मिला!

अशोक : यह उस पवित्र सोन (नेपथ्य में संकेत करते हुए) का वरदान है। सोन का, जिसने सम्राट् चन्द्रगुप्त के पाटलिपुत्र का निर्माण किया। उसी पवित्र सोन का वरदान है।

[अशोक के मुखमण्डल से तेज की किरणें फूटती-सी ज्ञात होती हैं। धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक चोट

(अट्ठारह जुलाई की शाम)

पात्र-परिचय

प्रमोद :	राष्ट्रवाणी समाचार-पत्र का संवाददाता और उषा का पति	(आयु 25 वर्ष)
अशोक :	प्रमोद और उषा का मित्र, मुंसिफ	(आयु 24 वर्ष)
उषा :	फैशन की देवी	(आयु 22 वर्ष)
राजेश्वरी :	प्रमोद की आराधिका और उषा की सखी	(आयु 21 वर्ष)
पोस्टमैन		

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[प्रमोद का मकान। समय चार बजे शाम। कमरे में एक ओर महात्मा गांधी का चित्र, दूसरी ओर प्रमोद का फोटो। खूंटी पर कुछ कपड़े टँगे हुए हैं। समीप ही कैलेंडर, जिसमें 18 जुलाई का पृष्ठ। दरवाजे के ऊपर क्लाक।

प्रमोद इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से एम० ए० पास कर चुका है, पर उस पर फैशन का प्रभाव बिल्कुल नहीं है। वह साफ धोती और आधी बाँह की खद्दर की कमीज पहने हुए है। पैर में स्लीपर्स। बाल बिखरे हुए।

वह 'राष्ट्रवाणी' के सम्पादन-विभाग में काम करता है, संवाददाता है। समाचार-संग्रह करना उसका प्रधान कार्य है। इस समय भी वह टेबुल पर काम कर रहा है। रविवार का दिन है, पर उसके कार्यक्रम में रविवार नहीं है। वह एक अंग्रेजी समाचार-पत्र को सामने रखकर उससे समाचार संग्रह कर रहा है। उसकी आयु पच्चीस वर्ष की है, पर कार्याधिक्य से वह अधिक आयु का जान पड़ता है। मुख पर जैसे जिम्मेदारी की गम्भीरता है।

उसके समीप ही उसकी स्त्री उषा, बी० ए० लिपस्टिक लगा रही है। वह लगभग बीस वर्ष की होगी। सुन्दर मुख और निखरा हुआ रंग। फैशन ने उस पर पूर्ण प्रभाव छोड़ रखा है। सलोने मुख पर क्रीम और उस पर पाउडर की चाँदनी। क्रेप की साड़ी और उस पर वाएल का जम्पर। कानों में नये डिजाइन के इयरिंग्ज। कन्धे के समीप डायमंड ब्रूच। गले में सोने की चेन और स्वस्तिका। हाथ में सोने की गोल घड़ी और एक पतली रेशमी चूड़ी।

वह कुछ अस्थिर है। प्रमोद की नजर बचाकर कमरे में लगी हुई क्लाक देख लेती है, जिसमें चार बजने में दो मिनट हैं। प्रमोद अपने कार्य में लीन है। वह लिखने के बाद अपने समाचार-संग्रह का अवतरण पढ़ता है—]

भयंकर दुर्घटना !

आहत स्त्री-पुरुषों का लोमहर्षक चीत्कार ! !

बिहटा, 18 जुलाई—अभी तक की ट्रेन-दुर्घटनाओं में सबसे भयानक वह है जो पटना के पास बिहटा नामक स्थान में 17वीं तारीख की रात्रि को घटी। पंजाब-हावड़ा एक्सप्रेस, जो पचास मील के वेग से जा रही थी, अचानक बिहटा के समीप उलट गई··· (रुककर अंग्रेजी अखबार की ओर देखकर) सम थ्री हन्ड्रेड पैसिंजर्स। हाँ, (फिर अपने अवतरण को पढ़ता हुआ) तीन सौ यात्री घायल हुए। सौ की तो मृत्यु हो गई। एंजिन रास्ते से टेढ़ा होकर नीचे गिर पड़ा, जैसे कोई दैत्य ठोकर खाकर बैठ गया हो। चार-पाँच डिब्बे चूर-चूर हो गए। चारों ओर हाहाकार मचा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है। कोई-कोई यात्री तो अंगविहीन हो गए। एक व्यक्ति के दोनों हाथ कट गए। उसकी नव-विवाहिता पत्नी···

[चार बजते हैं।]

उषा : (ऊब कर) डैम इट् आल ! चार बज चुके, तुम्हें अपने काम से फ़ुर्सत ही नहीं। (अस्थिर होकर घड़ी की ओर देखती है, फिर लिपस्टिक लगाने लगती है।)

प्रमोद : (पूर्ववत् ध्यान-मग्न) उसकी नव-विवाहिता पत्नी को भी चोट लगी है, किन्तु वह साधारण है, पर उसे जो मानसिक चोट लगी है वह शारीरिक चोट से कितनी भयानक है ! उसका···

उषा : (हाथ की घड़ी की ओर देखकर) कब तक तुम्हारा काम समाप्त होगा ? कहीं बाहर भी निकलना चाहूँ तो मर के भी नहीं निकल सकती। चार बज चुके ! (खिन्न मुद्रा।)

प्रमोद : (उषा की ओर देखकर) तो क्या हुआ उषा ? जब काम सिर पर ही है तो चार बजें चाहे चौदह, उसे तो करना ही होगा।

उषा : (व्यंग्य से) अच्छा काम करना होगा ! मैं तो मरी जा रही हूँ। चौबीसों घंटे घर में बन्द रहूँ, यह मुझसे नहीं होगा। कहाँ कालेज डेज में पिकनिक, मीटिंग्ज, लेक्चर्स, सिनेमा और कहाँ यह कैदखाना ! ऐसे तो मैं मर जाऊँगी।

प्रमोद : तो तुम्हें बाहर जाने से रोकता कौन है, उषा ? जाओ जहाँ जी चाहे। पार्क में घूमो, सिनेमा जाओ, यहाँ जाओ, वहाँ जाओ। मैं कब तुम्हें रोकता हूँ ? तुम्हारे आहार-विहार के जीवन में मैं रुकावट नहीं डालना चाहता उषा ! पर सोचो, मैं कैसे सब समय तुम्हारा साथ दे सकता हूँ ? 'राष्ट्रवाणी' न्यूजपेपर के आफिस में हूँ। रोज समाचार भेजना पड़ता है। अनुवाद करना पड़ता है। लेख लिखना पड़ता है। अगर यह सब न करूँ तो काम कैसे चलेगा ? यह संवाद आज ही—अभी ही —शाम को भेजना है, नहीं तो कल अखबार कैसे निकलेगा ? नये समाचार तो रखना ही होगा। बिहटा की ट्रेन-दुर्घटना···

उषा : (झुंझलाकर) ट्रेन दुर्घटना, भूकम्प, प्लेग ! क्या करूँ, बैठकर रोऊँ ? संसार में तो यह रोज का काम है। इसके लिए कोई नहाना, खाना, सोना छोड़ दे ? तुम्हारे लिए भी यह रोज की बात है। सबको संडे की छुट्टी है, आप आज भी खच्चर की तरह जुते हुए हैं। और अगर तनख्वाह भी अच्छी होती तो गनीमत थी···गिने हुए चालीस···श: (घृणा-प्रदर्शन)

प्रमोद : (शान्ति से) उषा, तुम चाहे जो कुछ कह लो, पर अगर एम० ए० और एम० एस-सी० पास करने पर भी मैं ऊँची जगह न पा सका तो इसमें मेरा क्या दोष है।

उषा : तो फिर किसका दोष है ? मेरा ?

प्रमोद : तुम्हारा क्यों ? अपने गरीब पिता के रक्त से बने हुए रुपयों की धारा यूनिवर्सिटी के आफिस में बहाकर मैंने डिगरियाँ लीं। एम० ए० या एम० एस-सी० के दो-तीन अक्षर ही पिता जी की सारी कमाई को पी गए। पर इस सबके बाद

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे मिला क्या ! कितनी जगह मैं घूमा। लखनऊ, रोरकी, जमशेदपुर—कितनी जगह एप्लीकेशंस भेजीं, कितने साहबों से मिला ! पर एक ही उत्तर—जगह नहीं है।

उषा : सबके लिए जगह है केवल आपके लिए ही नहीं !

प्रमोद : (पूर्ववत् स्वर में) सुना था अनएम्प्लायमेंट-कमिटी भी बैठी थी। सर सप्रू ने कितनों को क्रास एग्जामिन कर रिकमेंडेशंस भेजी, पर उसका परिणाम क्या हुआ ? कुछ नहीं। सब झूठ···(ठहर कर) ओफ, कहाँ-कहाँ मैं नहीं गया ? किस-किस से मैंने प्रार्थना नहीं की ? मैंने सब कुछ किया, केवल आत्महत्या नहीं की। यही मेरा दोष है !

उषा : आत्महत्या क्यों करते ? पर यह चालीस की नौकरी तो गले से नहीं उतरती। तुम्हारे एम० ए० पास होने पर ही तो मेरे पिता ने तुम्हें पसन्द किया था। डिप्टी कलेक्टर होकर भी भूल कर बैठे ! न जाने कितनों के लिए जजमेंट लिखते हैं। कितनों को कैद की सजा देते हैं। लोगों को सजा देते-देते मुझे भी यह कैद की सजा दे बैठे !

प्रमोद : तुम स्वतंत्र हो, उषा ! अपने पिता को क्यों दोष देती हो ?

उषा : हाँ, उन्हें क्या मालूम था कि पोस्ट-ग्रेजुएट महाशय डिप्टी कलेक्टर न होकर चालीस रुपये के संवाददाता होंगे ! (घृणा से) संवाददाता—अन्नदाता—कितना फूहड़ शब्द है ! डिप्टी कलेक्टर और संवाददाता ! कल्पना और सत्य में कितना अन्तर है ! जितना चार सौ और चालीस में। चालीस में मेरा क्या होगा ? पचास रुपये तो फादर मंथली मुझे जेब-खर्च के लिए देते थे। ऊपर से मैं अपने कम्फर्टस् पर जो खर्च करती थी वह अलग। चालीस तो मेरा बैरा सुलेमान पाता है। चालीस में आप खाइएगा या मुझे खिलाइएगा ? चा···ली···स (सोच कर) सुना, जी मैं घर जाऊँगी। पिता के यहाँ रेशम, यहाँ खद्दर के चिथड़े।

प्रमोद : उषा, इतनी अवहेलना क्यों करती हो ? आखिर इसमें मेरा क्या दोष ? इतनी मेहनत करता हूँ, तब इतना मिलता है। यदि न करूँ तो इतना भी नसीब न हो। मैं यदि किसी तरह समय बरबाद करता, काम न करता, मेहनत न करता, तो तुम्हारा कहना ठीक था। पर मैं काम करते-करते हैरान हूँ और तुम खुश नहीं हो ? मैं जानता हूँ कि इन चालीस रुपयों में तुम्हारी एक साड़ी भी न आवेगी। तुम्हें तरह-तरह के ब्रूचेज, जम्पर्स, इयरिंग्ज चाहिए। बी० ए० में तो तुम न जाने क्या-क्या पहनती थीं। जिनके नाम भी मुझे याद नहीं। पर यह सब कहाँ से लाऊँ ? मैं स्वयं लज्जित हूँ, पर बतलाओ, मेरे लिए कौन-सा रास्ता है ? मैं अपने ऊपर एक पैसा भी नहीं खर्च करता। सब तुम्हारा है—सब तुम्हारा है।

उषा : (व्यंग्य से) 'तुम्हें तरह-तरह के ब्रूचेज, जम्पर्स, हेयरपिन्स चाहिए।' तो इसके लिए मैं क्या करूँ ! क्या ये मामूली चीज भी पहनना छोड़ दूँ ! कौन-सा खर्च कम कर दूँ जिससे आपके चालीस रुपयों में बचत हो जावे। फासफरीन न पिऊँ तो सर में दर्द हो जाता है। फोनटोना के विना कमजोरी मालूम होती है। यार्डले मुख पर न लगाऊँ तो मालूम हो जैसे बरसों से बीमार हूँ। कहिए तो सिरोलीन रोश्

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही खाना बन्द कर दूँ—पर उसके बिना कभी कफ से 'सफर' करती हूँ। या फिर, 'क्रासवर्ड' भेजना बन्द कर दूँ ?

प्रमोद : कुछ मत बन्द करो। मैं मर कर भी जितना कमा सकूँगा, कमाऊँगा।

उषा : ठीक है, पर मेरा मन यहाँ नहीं लगता। मैं अपने घर जाऊँगी।

प्रमोद : (स्नेह से) मेरी उषा, यदि खुशी से घर जा रही हो तो सौ बार जाओ, पर यदि नाराजी से जा रही हो तो मैं क्या कहूँ ! दो महीने हुए मेरा तुम्हारा विवाह तो हो ही चुका है। भाग्य की जंजीर ने हमें तुम्हें दो पेड़ों की तरह उलझा दिया है सब समय के लिए। यह स्थिति अब सुलझ नहीं सकती। यदि इसी में तुम्हारी प्रसन्नता है तो···।

उषा : प्रसन्नता और अप्रसन्नता की बात नहीं है। मेरी माँ की तबीयत भी ठीक नहीं है। उन्हें देखने जाना है।

प्रमोद : (लाचार होकर) मेरे पास तो छुट्टी नहीं है। कहो तो ले लूँ जितने दिन की तुम कहो।

उषा : आपको कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। मुझे किसी का एहसान नहीं चाहिए। मैं अशोक के साथ चली जाऊँगी। वे भी तो देहरादून के रहने वाले हैं।

प्रमोद : अशोक के साथ।

उषा : आप उन्हें जानते होंगे। हम लोगों के साथ बी० ए० में पढ़ते थे। जार्ज-टाउन में रहते थे। उनके पास क्रायसलर कार भी थी।

प्रमोद : हाँ, मैं अशोक को तो अच्छी तरह से जानता हूँ। वे तो अपने साथ ही पढ़ते थे। बिल्कुल अप-टु-डेट।

उषा : हाँ, मैं उन्हें अपना भाई ही समझती हूँ। वे आज ही शाम को पटने से आने वाले हैं। (क्लॉक की ओर देखती है) शायद कल ही देहरादून चले जावें। सुनते हैं, मुंसफी की जगह मिल गई है। अपनी जगह पर जाने से पहले देहरादून जाकर अपने पिता से मिलना चाहते हैं। न हो तो मैं भी साथ-साथ चली जाऊँ।

प्रमोद : क्या वे आज ही शाम को आने वाले हैं ?

उषा : हाँ, आज ही शाम को। करीब सवा चार बजे। (हाथ की घड़ी की ओर देखती है) मुमकिन है आते हों। सवा चार बज चुके हैं।

प्रमोद : तुम उन्हें अपना भाई समझती···?

उषा : (कटुता से) हाँ, बहुत दिनों से। क्या तुम्हें कुछ सन्देह है ? देहरादून में भी वे मेरे घर अक्सर आया करते थे। मैं उनको 'अशोक भाई' कहा करती थी। यूनीवर्सिटी में भी मैं उन्हें···।

प्रमोद : खैर, यह सब कहने की आवश्यकता नहीं। यदि तुम ठीक समझती हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तुम अपनी स्थिति अच्छी तरह से समझती हो, उषा ! फिर यदि माताजी की तबीयत ठीक नहीं है तो मुझे तो तुम्हारे जाने में कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती।

उषा : (सन्तोष से) बस ठीक है। मैं जल्द ही जाने का विचार करूँगी।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमोद : अच्छा तो, अब मैं अपनी दुर्घटना का संवाद पूरा कर लूँ ?

उषा : (घड़ी देखकर) पर देखिए, मेरे सिर में अक्सर रात को जो दर्द हो जाया करता है उसके लिए डॉक्टर बैनर्जी ने यूडि-कोलोन की पट्टी रखने के लिए कहा है। अच्छा हो, यदि आप उसे ले आवें। नहीं तो फिर दुकानें वन्द हो जाएँगी। काम तो आप रात में भी कर सकते हैं।

प्रमोद : यों तो दुकानें नौ वजे रात तक खुली रहती हैं पर तुम्हारे कहने से मैं अभी ही लेता आऊँगा। फिर निश्चिन्त होकर काम करूँगा। (खूँटी से उतारकर कोट पहनता है।)

उषा : और साथ में जुकाम के लिए वैपेक्स भी।

प्रमोद : (कोट पहनते हुए) और कुछ···?

उषा : टाफीज और लेमन-ड्राप्स भी।

प्रमोद : (उषा की ओर देर तक देखकर) वहुत अच्छा। (प्रस्थान)

[उषा क्लॉक की ओर ध्यान से देखती है। फिर मोजा बुनती है। पर उसका मन नहीं लगता। एक किताव उठाकर पढ़ना चाहती है। उसे भी छोड़ देती है। अखबार उठाती है। चौंककर—]

अच्छा ! दस वालिकाओं से भरी नौका डूबी ? (धीरे-धीरे कौतूहलपूर्वक पढ़ती हुई—)

जबलपुर, 15 जुलाई—आज शाम को संग्राम-सागर के समीपवर्ती हरे-भरे पहाड़ी स्थान में स्थानीय स्कूल की कुछ छात्राएँ पिकनिक के लिए गई थीं। संध्या-समय जब वे संग्राम-सागर पर नौका-विहार कर रही थीं उस समय अचानक मधुमक्खियों का एक झुंड उस नौका पर टूट पड़ा। लड़कियों में हलचल मच गई और इससे नौका उलट गई। सभी लड़कियाँ जलमग्न हो गयीं। अभी तक केवल दो पानी से वाहर निकाली जा सकी हैं। मल्लाहों द्वारा उनकी खोज हो रही है।

(सोचती है, गहरी साँस लेकर) अगर मैं भी उन्हीं के साथ डूब जाती !

[नेपथ्य में ओंठों से सीटी वजाकर कोई अंग्रेजी स्वर में गाता है—'इफ यू वर दि ओनली गर्ल एण्ड आई दि ओनली ब्वाय।' दरवाजे पर खट्ट-खट्ट की आवाज]

उषा : (भौंहें सिकोड़कर) कौन ?

स्वर : ए० के० गुप्ता, अशोककुमार !

उषा : (उल्लास से) अहः अशोक ! वेलकम् !

[अशोककुमार, एम० ए० का प्रवेश। चौवीस वर्ष का सुन्दर नवयुवक। वेश-भूषा और कला में सुरुचि। वाल ग्लिसरीन से सँवारे हुए। स्टार्च्ड कालर और फूल की तरह वो। मर्संराइज्ड सूट। हलका रेशमी रूमाल हृदय की तरह पाकेट में रक्खा हुआ है। पेटेण्ट शू। व्यक्तित्व इतना ताजा जैसे वह अभी ही स्नान करके चला आ रहा है। क्लीन शेव। आँखों में रसिकता और ओंठों में मुस्कान। हाथ में 'क्रेवन ए'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिगरेट का डिब्बा। आते ही कमरे में लैवेण्डर की खुशबू फैल जाती है। आते ही उषा को देखकर—]

ओह, मिसेज गुप्ता ! उषा ! मिस उषा ! यू-एस-एच-ए !

उषा : (उल्लास से उठकर) अशोक ! अशोक ! कांग्रेचुलेशंस !

अशोक : (प्रसन्नता से) थैंक्स, उषा ! (हाथ मिलाते हैं) अच्छी तो हो ? हाउ डू यू ?

उषा : हाँ, अच्छी हूँ किसी तरह। तुम तो अच्छे हो ? (बैठते हैं।)

अशोक : वहुत-वहुत अच्छा। उषा ! ओके। अभी पटने से आ रहा हूँ। बिहटा गया था। दि प्लेस आव् डिसास्टर। ओफ, अगर एक दिन पहले जाता तो मुमकिन था कि मेरा नाम भी उस लिस्ट में इनक्लूड होता। मैंने आज वहाँ के विकटिम्स को देखा। एक रोज पहले जाता तो लोग मुझे देखते ! (सिगरेट जलाता है।)

उषा : कैसी बातें करते हो अशोक ? ईश्वर न करे तुम पर आँच आवे।

अशोक : तुम्हारी 'वेस्ट विशेज' कहाँ जातीं ? इसी से तो बच सका। वहाँ की तो बहुत पैथेटिक साइट थी !

उषा : (दुःखित होकर) आँ, वहुत पैथेटिक साइट थी ? मैंने जब यह न्यूज सुनी तभी फेण्ट हुई जा रही थी। अभी पाँच मिनट पहले मैं उसी दुर्घटना पर आँसू बहा रही थी। तुम तो उसे देख भी आए ! तो अभी ही आ रहे हो ? तुम्हारी राह बड़ी देर से देख रही थी। (घड़ी की ओर देखती है।)

अशोक : ऐसी बात थी ? थैंक्स। अभी शाम की गाड़ी से आ रहा हूँ। शायद कुछ लेट हो। मैंने तो तुम्हें लिख ही दिया था।

उषा : हाँ, मैं जानती थी कि तुम आज शाम को आ रहे हो। अच्छा, कुछ जलपान ? चा···? मुझे ही अपने हाथ से तैयार करनी होगी। कोई नौकर तो···

अशोक : ओह, तब तो और भी स्वादिष्ट होगी। ओके। पर ठहरो, तकलीफ मत करो। गाड़ी से उतरते ही मैं फर्स्ट क्लास वेटिंग रूम में चला गया। मुँह धोया फिर अच्छा नाश्ता करके आ रहा हूँ।

उषा : तब ठीक बात है। फिर मैं आपकी आवभगत भी तो नहीं कर सकती। बहुत बड़े आदमी अशोक की। मैं तो गरीब हूँ। और अशोक, तुम तो अब और भी बड़े आदमी वन गए, मुंसिफ साहब !

अशोक : (गर्व से) बड़ा कब नहीं था, उषा ? कालेज में भी बड़ा था। जार्जटाउन में रहता था। मोटर पर रात-दिन सैर। सिनेमा। पैलेस का तो 'पास' ही मेरे पास था। इलाहाबाद जैसे सूखे शहर में भी मैं दो सौ फूंक देता था। जहाँ के लड़के फिलासफी या स्टैटिस्टिक्स की तरह ड्राई हैं उस इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में भी मैं वसन्त की बहार देखता था। उषा, और बड़ा आदमी किसे कहते हैं ? (सिगरेट का धुआँ ओंठ उचकाकर छोड़ता है।)

उषा : (उल्लास से) वास्तव में तुम बड़े आदमी हो अशोक। तब भी थे और अब भी।

अशोक : और उषा ! तुम कैसी हो गई हो ? दुबली-पतली, न ठीक हँस सकती हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ठीक रो भी सकती हो या नहीं ? पगली लड़की ! पहले तो नैशटरशम की तरह खुश रंग, उषा की तरह सुसज्जित, ओस की तरह निर्मल थी और···

उषा : (दुखी होकर) अशोक, कुछ मत कहो। अब मेरा जी मत जलाओ। मैं पानी से बाहर की हुई मछली की तरह हूँ। (आँखों में पानी)

अशोक : (सान्त्वना देते हुए) अरे, तुम्हारी आँखों में पानी ? हुश् ! मेरी अच्छी उषा, मैं आया हूँ और ऐसी बात ? अच्छा, प्रमोद जी कहाँ हैं ?

उषा : बाहर गए हुए हैं।

अशोक : (प्रसन्नता से) क्या इलाहाबाद से बाहर ?

उषा : नहीं, शहर ही में।

अशोक : अच्छा कब तक लौटेंगे ?

उषा : एक-आध घंटे से पहले नहीं। चौक में उन्हें कुछ काम है।

अशोक : कोई खास ?

उषा : नहीं, यूडि-कोलोन और वैपेक्स लाने के लिए।

अशोक : क्यों, क्या उनकी तबीयत ठीक नहीं है ?

उषा : नहीं, ठीक है। मैंने ही भेजा है, मुझे जरूरत···

अशोक : क्यों, तुम्हें क्या हुआ ?

उषा : कुछ नहीं। (क्लॉक देखकर) तुमसे एकान्त में मिलना चाहती थी !

अशोक : (प्रशंसा से हाथ में हाथ लेते हुए) ओह उषा, कुम बड़ी अच्छी हो। तुम पहले भी अच्छी थीं, उसी तरह जिस तरह मैं पहले भी इतना ही अच्छा था और उषा, तुम्हें याद है ? उस दिन एल्फ्रेड पार्क के लान पर तुम बैठी थीं। मैं पास ही तुम्हारी केश-राशि के खुले छोर में कोमल कलियों को कैद कर रहा था। सुन्दरता को सुन्दरता से बाँध रहा था। लेडी आव् दि नाइट की सुगन्धि जैसे तुम्हारे सामने अपने को हवा में खो देना चाहती थी। यूक्लिप्टिस के तेड़ के पीछे से चाँद ने हमें देखा था, और उषा, उस समय···।

उषा : (खो कर) अशोक···!

अशोक : क्या कहूँ उषा ! तुम क्या थीं और अब क्या हो गयीं ? जैसे ओस को किसी ने फूल से उठाकर कागज पर वहा दिया ! इन्द्रधनुष को काले बादल में लपेट दिया। तितली के पंखों पर कीचड़ लगा दिया।

उषा : (उद्विग्न होकर) कुछ मत कहो, अशोक !

अशोक : क्यों न कहूँ उषा ! मैं तो जैसे स्वप्न देख रहा हूँ। तुम्हारी प्रभा खोई देखकर मैं खुद खो गया हूँ। मेरे पिता ने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया जिस प्रकार तुम्हारे पिता ने तुम्हारे साथ। उनके रूढ़िगत होरोस्कोप के जंजाल ने तो हम दोनों को बलिदान कर दिया। आज तुम्हें पाकर मैं कितना निहाल होता ! इसे तुम क्या जानो, उषा ? आज तुम मेरे धन पर नहीं मुझ पर भी शासन करतीं तो मैं कितना धन्य होता ! तुम्हें न पाकर कितना दुखी हूँ यह उस पेड़ से पूछो जो वसन्त आने से पहले ही काट दिया गया।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उषा : (मलीन होकर) और अशोक, तुम यदि मेरे हृदय को देखो तो मालूम होगा कि वह आँसुओं से भरा हुआ है। मैंने कितनी ही रातें यों ही विता दी हैं, जागते हुए जैसे किसी फूल को सुरक्षित रखने के लिए सन्दूक में बन्द कर दिया गया है। यह मेरी दशा है! क्या इसका कोई उपाय नहीं है, अशोक?

अशोक : (स्वतन्त्रता से) है न। मेरे साथ चलो। फिर देखा जाएगा। मैंने तो तुम्हें पत्र में लिख दिया था कि आज शाम को आ रहा हूँ और रात ही देहरादून चला जाऊँगा। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो देहरादून चलकर कुछ दिन रहो। फिर देखा जाएगा। हम लोग मसूरी ही रहेंगे। वहाँ तुम्हारे माता-पिता तो होंगे नहीं··· (सिगरेट का धुआँ उड़ाता है।)

उषा : मैंने तो आज ही संवाददाता महोदय से कह दिया है कि मैं देहरादून जाना चाहती हूँ। मेरी माँ की तबीयत अच्छी नहीं है।

अशोक : (प्रसन्न होकर) अच्छी बात बनाई, माँ की तबीयत अच्छी नहीं है! अब इस में तो किसी तरह की रुकावट हो ही नहीं सकती। अच्छा तो उन्होंने क्या कहा?

उषा : उन्होंने कहा—मुझे कोई आपत्ति नहीं है?

अशोक : बड़े उदार हैं। तुम्हारी तबीयत के खिलाफ नहीं जाते।

उषा : हाँ, हैं तो बड़े सीधे। सदैव मुझे प्रसन्न रखने की चेष्टा करते हैं। पर जरा रोमेण्टिक नहीं हैं। गम्भीर हैं, जैसे सारे संसार की समस्या इन्हें ही सुलझानी है। और सुना, मैंने कह दिया कि मैं अशोक के साथ जाऊँगी।

अशोक : अच्छा? वे चौंके नहीं?

उषा : पहले तो कुछ चौंके। बाद में मैंने पुरानी याद दिलाई कि तुम जार्जटाउन में रहते थे। बड़े सरल और अच्छे थे। साथ ही माँ की बीमारी का जिक्र किया तो स्वीकृति दे दी।

अशोक : वाह, बड़े सज्जन हैं! अच्छा तो फिर चल रही हो?

उषा : कब?

अशोक : आज रात। मुझे अभी जाना है, दो-एक चीजें सत्यभामा के लिए लेनी हैं। उन्हें खरीद कर लौटूँगा। संवाददाता जी से भी मिल लेना जरूरी है। मैं करीब बीस-बाईस मिनट बाद आऊँगा। मेरे मित्र की कार है ही। कुछ देर नहीं लगेगी। तुम उनसे निश्चय कर रखना। मैं उनके सामने ही स्वीकृति ले लेना चाहता हूँ। मैं तुम्हें उनके सामने ही ले जाऊँगा। फ्राम अण्डर दि लाफुल गार्डियनशिप। समझीं? मैं अभी लौट कर आता हूँ। फिर आज की रात हम लोगों के जीवन की मधुयामिनी होगी, उषा! थेंक्स बी टु गाड्डेस वीनस!

उषा : पर अशोक, मुझे कुछ भय लगता है!

अशोक : हुँअ्! एक ग्रेजुएट लेडी और भय? उषा, क्यों स्वयं अपने एज्यूकेशन को लज्जित करती हो? शर्मीली लड़की! (उत्साह देते हुए उठकर) चीयर अप्। मेरे साथ चलो! बुरा न लगेगा। सत्यभामा के साथ रहना।

उषा : यह सत्यभामा कौन?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोक : मेरे सम्बन्धी की दूर के रिश्ते की कोई बहन। बड़ी सीधी लड़की है।

उषा : अच्छा। तो, फिर अशोक, मैं तो इस जीवन से ऊब गई हूँ !

अशोक : संवाददाताजी के पास जीवन ही क्या ! स्याही, कागज, कलम और अखबारों के ढेर। कागजवालों के तकाजे। एक जापानी घड़ी (क्लॉक की ओर देखकर) दो एक टूटी टेबुल्स और मैले खद्दर का पोश। यहाँ, मेरे साथ मसूरी में देखो। खुद का बँगला जिसमें बीस तो खानसामे ही हैं। मखमली गद्दे, जिन पर बैठो तो मालूम हो कि किसी की गोद में बैठी हो। रेशमी झालरें। अधखुली खिड़की से स्नोवेट् मानिंग सन की सुनहली किरणें यदि सारे शरीर को चूम लें तो बुरा न लगे। कमरे में रखे हुए मल्टीकलर्ड क्रोटन के इन्द्रधनुष। शाम को ठंडी सड़क पर रॉबिन के जोड़ों का कोलाहल और उसी समय साथ-साथ वाकिंग। शाम को पैलेडियम में अनेक तरह के शो और डांस। वालनट की आराम-कुर्सियों पर आइसक्रीम और 'जिन्' की उड़ती हुई मस्ती भरी महक···।

उषा : अशोक, निश्चय ! निश्चय !!

अशोक : तो फिर आज रात को चलना निश्चय रहा ?

उषा : निश्चय। मोस्ट डेफिनिटली। अशोक !

अशोक : तो फिर···।

[बाहर दरवाजे पर दस्तक]

उषा : (शंकित होकर) कौन ? (अशोक उठ खड़ा होता है।)

[एक सत्रह वर्षीया युवती का प्रवेश। वस्त्रों में सरलता। मुद्रा में गम्भीरता। वह सौन्दर्य की साक्षात् देवी है। भौंहों के बीच में रोली की नन्ही-सी बिन्दी। ओंठों की मिलन-रेखा में जैसे मुस्कान डूब गई है। अशोक को देख कर वह कुछ विचलित हो जाती है। आकर उषा को चुपचाप नमस्ते करती है।]

उषा : (हँसकर) ओह, राजे, तुम हो ? आओ, ये मेरे फ्रेंड मिस्टर अशोक कुमार गुप्ता, एम० ए०, एल-एल० बी०, मुंसिफ और (अशोक से) ये मेरी सखी राजेश्वरी देवी। मैट्रिक तक हमारे और आपके संवाददाताजी के साथ पढ़ी हैं। बड़ी सरल और मिष्टभाषिणी हैं। जैसे ब्रह्मा ने इनके गले में एक कोयल बिठला दी है।

[उषा और अशोक अट्टहास करते हैं। राजे लज्जित होकर रह जाती है। वह गम्भीर है।]

अशोक : (रसिकता से) हूँ, ब्रह्मा ने इनके गले में कोयल बिठला दी है, तब तो यह सिर्फ वसन्त ही में बोलती होंगी ? (हास्य)

उषा : वाह, तुम तो अभी से हँसी करने लगे !

अशोक : ये बोलीं नहीं न ? आने की खबर भी दी तो दरवाजे पर आवाज करके। आकर नमस्ते भी की तो चुपचाप।

उषा : क्या तुम अपने जैसा बातूनी सभी को समझते हो।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

अशोक : बोली तो बोलने के लिए ही है। गले में बन्द रखने के लिए नहीं।
उषा : राजे वाणी का काम आँखों से लेती है। इतनी लज्जाशीला है।
अशोक : केवल लज्जा के समय या अन्य समय भी ? (तिरछी दृष्टि)
राजेश्वरी : (कटुता से) उस समय विशेष रूप से जब मुझे कोई बात अच्छी नहीं मालूम देती।
अशोक : (नम्रता से) ओः मुझे क्षमा कीजिए श्रीमती राजेश्वरी देवी जी, यदि मेरी बात आपको अच्छी न लगी हो। अच्छा, उषा जाता हूँ। बीस-पच्चीस मिनट बाद आऊँगा। संवाददाताजी से मिलता जाऊँगा।
अशोक : (नमस्ते करते हुए) श्रीमती राजेश्वरी देवी को भी नमस्ते।

[राजेश्वरी मौन नमस्ते करती है। अशोक का प्रस्थान]

उषा : कहो राजे, कैसे आयीं ? कोई विशेष बात ? इधर महीनों तुम्हारे दर्शन नहीं हुए। बैठो ? (राजेश्वरी बैठती है।)
राजेश्वरी : बहिन··· (रुक जाती है।)
उषा : कहो, कहो, रुक कैसे गयीं ?
राजेश्वरी : (करुण स्वर में) मुझ पर विशेष संकट आ पड़ा है ! सहायता करोगी ?
उषा : (उत्साह से) जरूर। कहो क्या बात है ?
राजेश्वरी : मेरे पास जबलपुर से सूचना आई है कि मेरी बड़ी बहन मृत्यु-शैया···!
उषा : (अस्थिर होकर) ऐं, मृत्यु-शैया पर···
राजेश्वरी : हाँ, जल में डूब गई थीं। वे···कुछ बोल नहीं सकती···
उषा : जल में डूब गई थीं ? हाँ, अभी मैंने समाचारपत्र में पढ़ा कि जबलपुर में दस बालिकाओं से भरी नौका संग्राम-सागर में डूब गई। कहीं उन्हीं में तो तुम्हारी बहन नहीं थीं ?
राजेश्वरी : (दुःखी स्वर में) हाँ, उन्हीं में थीं। पिकनिक में गई थीं। वे वहाँ बालिकाओं की संरक्षिका थीं। छात्राओं के साथ वे भी जल में डूब गई थीं। किसी तरह निकाली गई हैं। मृत्यु-शैया पर हैं··· (साश्रुनयन)
उषा : राजे, यह सुनकर मुझे बहुत दुःख है। कहो, तुम्हारी सहायता कैसे कर सकती हूँ ?
राजेश्वरी : मैं अपने साथ प्रमोद जी को ले जाना चाहती हूँ। मैं उन्हीं के साथ जबलपुर जाऊँगी।
उषा : अकेली ?
राजेश्वरी : हाँ, अकेली। मैं उन्हें अपना भाई मानती हूँ। वे मेरे श्रद्धेय बड़े भाई हैं। सहोदर भाई।
उषा : (उद्‌भ्रान्त हो अस्फुट शब्दों में) भाई···!
राजेश्वरी : (दृढ़ता से) हाँ भाई। वे मेरे प्रमोद भाई हैं। मैं उन्हीं के साथ जाऊँगी और मेरे साथ कौन है जो जावे ? वृद्ध पितामह आ-जा ही नहीं सकते। भाई बहुत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटा है। पिता की परसाल मृत्यु ही हो गई।

उषा : (विदग्ध होकर) भाई मानती हो! (सँभल कर) पर उन्हें तो फुर्सत ही नहीं है।

राजेश्वरी : मैं जानती हूँ, पर वे बहुत उदार हैं। उन्होंने मुझ पर अनेक उपकार किए हैं। ऐसे आदमी संसार में बड़ी कठिनता से मिल सकेंगे।

उषा : सचमुच ?

राजेश्वरी : (प्रशंसा के स्वरों में) वे धनी न हों तो क्या हुआ, वे हृदय के धनी हैं। हृदय को पहचानते हैं और सच्चे मनुष्य हैं। धन और रुतवे से कोई आदमी बड़ा नहीं होता। आदमी बड़ा होता है अपने हृदय में। वे तेजस्वी हैं, उदार हैं।

उषा : (विवशता से) मेरे लिए तो सिर्फ संवाददाता हैं।

राजेश्वरी : तुम यदि उनका संवाद न समझो तो इसमें उनका क्या दोष ? उनका संवाद मनुष्यत्व का संवाद है। वे दूसरे के लिए सब कुछ दे सकते हैं! मेरे पास इसके अनेक प्रमाण हैं।

उषा : (जिज्ञासा की दृष्टि से) प्रमाण ?

राजेश्वरी : चार वर्ष बीत गए। एक वार जब मैं साइकिल पर बाजार रही थी उस समय एक इक्केवाले की लापरवाही से मेरी साइकिल इक्के से लड़ गई और मुझे सिर में गहरी चोट लगी। उस समय प्रमोद जी वहाँ एक भिखारी को रास्ता दिखला रहे थे। उन्होंने मुझे देखते ही मेरी साइकिल के टेढ़े हैंडिल को सीधा किया और मेरे सिर की चोट को अपने रेशमी रूमाल से बाँध दिया। साइकिल तो मेरे घर पहुँचा दी और मुझे अस्पताल ले जाकर मेरे घाव की ड्रेसिंग कराकर बड़ी सहायता की। मेरे सिर में बँधा हुआ वह उनका रूमाल आज भी मेरे पास सुरक्षित है।

उषा : (किंचित् व्यंग्य से) स्मृति-स्वरूप ?

राजेश्वरी : जो समझो। मैं उन्हें भूल नहीं सकती, वे भूलने योग्य नहीं हैं। मैं उन्हें भुला नहीं सकी।

उषा : और वे तुम्हें भूल सके ?

राजेश्वरी : (गहरी साँस लेकर) वे तो मुझसे आज तक नहीं मिले। मैं कुछ महीनों पहले तुम्हारे पास आई थी। विशेषकर उन्हीं के दर्शन करने के लिए। पर उस समय वे कहीं बाहर गए थे। शायद बिहार में नदियों की बाढ़ से पीड़ित किसानों की रक्षा करने के लिए। कितने उदार हैं वे। जब मुझे सिर में चोट लगी थी तभी उनके दर्शन हुए थे। इस घटना को हुए चार वर्ष बीत गए। तब से उनसे बातें ही नहीं हुईं। काश, मुझे फिर कहीं चोट लग जाती।

उषा : (व्यंग्य से) हृदय में ?

राजेश्वरी : (उत्तेजित होकर) हँसी मत करो, बहिन। वे कितने बड़े हैं यह तुम अभी तक नहीं जान सकीं। वे मेरे सहोदर भाई से भी अधिक हैं, मैं किस श्रद्धा से उनकी पूजा करती हूँ, यह तुम क्या जानो! वे कितने महान् हैं! न जाने उन्होंने कितनों पर ऐसे उपकार किए होंगे ? मेरी याद उन्हें क्या होगी ? इसलिए डर रही हूँ कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे मुझे पहचानेंगे भी हो।

उषा : क्यों, तुम तो उनके साथ पढ़ी भी या नहीं।

राजेश्वरी : हाँ, यों तो मैं उनके साथ कुछ दिनों पढ़ी हूँ, पर कभी उन्होंने मुझसे पहिचान करने की कोशिश नहीं की। अपना परिचय देने के लिए उनका वही रूमाल लाई हूँ जो उन्होंने मेरे सिर में बाँधा था। इसी से चाहे वे मुझे पहिचानें। देखो, वह यह है (रूमाल आगे बढ़ाती है।)

उषा : (हाथ में लेकर बड़ी सावधानी से देख कर) ओहो, बड़ी सावधानी से सुरक्षित है! यह इस कोने में लिखा है 'पी'। राजे, यदि इसे मैं फाड़ डालूं ?

राजेश्वरी : (घबरा कर हाथ पकड़ कर) नहीं उषा, उसे मत फाड़ना। मेरे जीवन की पवित्र स्मृति फट जाएगी। मैं मर जाऊँगी।

उषा : (मुस्करा कर) घबड़ा गई ? बड़ी भारी निधि है! रेशम का छोटा-सा टुकड़ा! यह लो!! (लापरवाही से देती है।)

राजेश्वरी : (रूमाल लेकर तह करते हुए) रेशम का टुकड़ा ही सही। पर यह उनकी महत्ता और उपकार का जीवन-पर्यन्त उदाहरण है। उसे तुम क्या समझो, उषा ?

उषा : इसीलिए शायद अभी तक अविवाहित हो!

राजेश्वरी : (रूक्षता से) उषा, इस समय मैं तुम्हारा परिहास सुनने नहीं आई हूँ। मैं इस समय संकट में हूँ। तुम्हारी सहायता चाहने आई हूँ!

उषा : (जैसे उसकी विपत्ति का स्मरण कर) अह, क्षमा करना राजे! मैं बिलकुल भूल गई। मैं जानती हूँ, मेरा स्वभाव बहुत वैसा हो रहा है। इससे मुझे छुटकारा नहीं। राजे, क्षमा करना!

राजेश्वरी : अच्छा बहिन, मैं कल ही जबलपुर जा रही हूँ। यदि तुम भी उनसे कहोगी तो वे अवश्य मेरे साथ चलेंगे। किसी की बीमारी या किसी की विपत्ति सुन कर वे सब कुछ कर सकते हैं। मैं तो यह विश्वासपूर्वक कह भी नहीं सकती कि उनको मेरा स्मरण होगा। मैंने जब-जब प्रयत्न किया कि उनके दर्शन करूँ तब-तब वे किसी न किसी काम से बाहर चले जाते थे। उदार होकर भी चरित्रवान! उषा, ऐसे व्यक्ति संसार में कितने हैं ? उदार, चरित्रवान, किसी के संकट में वे सब कुछ कर सकते हैं!

उषा : (सोचते हुए) हाँ, इसका प्रमाण मेरे पास भी है कि मेरी माँ की बीमारी सुनकर उन्होंने मुझे जाने की आज्ञा बड़ी आसानी से दे दी।

राजेश्वरी : (चौंककर) तो क्या तुम्हारी माँ बीमार हैं ?

[उषा कोई उत्तर नहीं देती]

राजेश्वरी : तो फिर बहिन, मैं उनसे चलने का अनुरोध न करूँगी। वे इस समय कहाँ हैं ? काम कर रहे हैं ?

उषा : नहीं, बाहर गए हैं, चौक।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेश्वरी : आज भी बाहर ! हाय ! सब समय बाहर ! मेरा दुर्भाग्य ! कब तक लौट आवेंगे ?

उषा : यही घंटे-आध घंटे में ।

राजेश्वरी : क्या तुम अपनी माताजी के पास जा रही हो ?

उषा : हाँ, सोच रही हूँ ।

राजेश्वरी : तो फिर बहिन, वे भी तुम्हारे साथ जाएँगे । तुमने चलने के लिए उनसे कहा होगा ?

उषा : कहा तो था पर बाद में मैंने कहा कि मैं अशोक के साथ चली जाऊँगी ।

राजेश्वरी : किस अशोक के साथ ?

उषा : इन्हीं अशोक के साथ जो अभी यहाँ बैठे थे । इतनी जल्दी भूल गईं ?

राजेश्वरी : ये अशोक ! बहिन, इसके साथ मत जाना । क्षमा करना । इनकी आँखों में जैसे पिशाच नाच रहा था । क्या तुम इन पर विश्वास कर सकती हो ? मैं इनकी दृष्टि से भयभीत हो गई थी ! एक बात भी न कर सकी ।

उषा : मैं अशोक को जानती हूँ, वे हमारे बालसखा हैं । हमारे साथ के पढ़े हुए हैं ।

राजेश्वरी : जो हो, तुम जाओ । पर मैं तो ऐसे आदमी पर कभी विश्वास नहीं कर सकती । क्षमा करना यह आलोचना । अच्छा, तो मैं जाती हूँ ।

उषा : उनसे तो मिलती जाओ ।

राजेश्वरी : नहीं, यदि मैं उनसे मिली तो वे मेरे साथ चलना अधिक उचित समझेंगे । जब मेरी बहन मृत्यु-शैया पर है तब वे मेरे साथ ही जावेंगे । मेरी आवश्यकता अन्य आवश्यकताओं से बहुत बड़ी है । पर बहिन, मैं तुम्हारी माँ की बीमारी में उन्हें तुमसे दूर नहीं हटाना चाहती । उन्हें तुम अपने साथ लेती जाओ । माँ की बीमारी में वे अनेक प्रकार से सहायक होंगे । तुम उनसे मेरा नमस्ते कह देना ।

उषा : ठहरो. आते ही होंगे । (बाहर से शब्द) वे आये । (बाहर से शब्द) पोस्टमैन ।

उषा : अरे पोस्टमैन है ! (कुछ जोर से) अन्दर आओ ।

पोस्टमैन : (अन्दर आकर) यह डाक है । (अखबारों का बड़ा-सा पुलिन्दा देता है) और ये प्रमोद बाबू के नाम एक मनीआडर । जल्दी दसखत बनाइ दें । पोस्ट आफिस बन्द होने वाला है ।

[उषा दस्तखत करके मनीआर्डर लेती है । पोस्टमैन चला जाता है ।]

राजेश्वरी : मनीआर्डर है ? क्या राष्ट्रवाणी का चन्दा है ?

उषा : नहीं, मोतीहारी से आया है । इन्होंने विहार के बाढ़-पीड़ितों को मृत्यु के मुख से बचाया था इसलिए वहाँ के नागरिक इन्हें मान-पत्र देना चाहते हैं, 7 अगस्त को । साथ ही ये दो सौ रुपये भेजे हैं !

राजेश्वरी : अच्छा, इतना सम्मान ! ओः ये कितने महान् हैं !

[उषा सोचती रह जाती है ।]

राजेश्वरी : अच्छा बहिन, अब जाऊँगी । मान-पत्र तो इन्हें 7 तारीख को मिलेगा, आज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो 18 जुलाई है। (कैलेंडर की ओर देखती है) तब तक तुम इन्हें अपने साथ ले जा सकती हो। ये तुम्हारे बड़े सहायक होंगे।

उषा : ठहरो न कुछ देर ? वे आते ही होंगे।

राजेश्वरी : नहीं, अब मैं जाऊँगी। मैं अकेली ही चली जाऊँगी। (प्रस्थान)

[उषा थोड़ी देर तक सोचती रहती है। फिर प्रमोद की फोटो के समीप जाकर मुख की ओर देखकर स्वगत कहती है—]

—क्या ये इतने महान् हैं। वास्तव में इतने महान् हैं! राजे कहती है—उपकार करने पर भी विस्मरण! उदार होकर भी चरित्रवान! यदि तुम इनका संवाद न समझो तो इसमें इनका क्या दोष! इनका संवाद मनुष्यत्व का संवाद है! संवाद-दाता···मेरे···

[प्रमोद का प्रवेश। वह थका हुआ है। रूमाल से पसीना पोंछता है]

प्रमोद : उषा, तीन जगह भटकने पर तुम्हारी दवाइयाँ मिलीं। इसी से इतनी देर हुई। सबसे पहले लो ये टाफीज, यह लो यूडि-कोलोन और वैपेक्स।

उषा : (कृतज्ञता से) धन्यवाद! अभी राजे आई थी—

प्रमोद : कौन राजे ?

उषा : राजेश्वरी देवी।

प्रमोद : कौन राजेश्वरी देवी ?

उषा : वही जिसके सिर में चोट लगी थी।

प्रमोद : (आश्चर्य से) किनके सिर में ? कब ?

उषा : चार वर्ष पहले।

प्रमोद : चार वर्ष पहले ? क्या हँसी कर रही हो ?

उषा : नहीं, सच कह रही हूँ। राजेश्वरी देवी, एक नवयुवती साइकिल पर बाजार जाती है। उसकी साइकिल इक्के से लड़ जाती है। उसके सिर में चोट आ जाती है। आप भिखारी को राह दिखाने में व्यस्त हैं। आप अपने रेशमी रूमाल से उसका सिर बाँधते हैं। उसे अस्पताल ले जाते हैं। आपके साथ वह कभी पढ़ती भी थी—राजे—राजेश्वरी देवी।

प्रमोद : (स्मरण कर) ओः, वे राजेश्वरी देवी! मुझे स्मरण ही नहीं रहा।

उषा : उपकार करने पर भी विस्मरण!

प्रमोद : उषा, मुझे स्मरण नहीं रहा। मैं दोषी हूँ।

[बाहर अशोक की आवाज : 'प्रमोद! मिस्टर प्रमोद!']

प्रमोद : कौन ?

[अशोक का प्रवेश। उसके हाथ में एक हैंड-बैग भी है।]

प्रमोद : ओ, आओ भाई अशोक, कहो अच्छे तो हो ? (हाथ मिलाता है) कहो, कब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आए ? अरे उषा, ये अशोक आए हैं, अशोक—अपने पुराने अशोक। (उषा चुप रहती है) ओ, तुमने नमस्ते भी नहीं किया ? अरे अशोक, तुम भी उषा को देख कर चुप हो। (उषा से) नमस्ते करो !

[उषा नमस्ते करती है। अशोक भी दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते करता है।]

अशोक : भाई, पहले नम्बर तुम्हारा है फिर उषा का। उषा जी, माफ करना। प्रमोद जी से पहले ही नजर मिल गई !

प्रमोद : तुम बड़े शैतान हो, तुम्हारी पुरानी आदतें अभी गईं नहीं। अच्छा, यह बताओ, आए कब ?

अशोक : अरे भाई, अभी आया, जस्ट नाऊ। अब पूछो कि कब जा रहा हूँ ? व्हेन ?

प्रमोद : इतनी जल्दी कैसे जा सकते हो। इस बैग में क्या है ?

अशोक : कुछ नहीं भाई, अपनी बहन सत्यभामा के लिए कुछ चीजें खरीदनी थीं। लगे हाथों मैंने सोचा, लाओ, उषा के लिए भी एक हीरे की अँगूठी खरीद लूँ।

उषा : (गम्भीरता से) मुझे कोई अँगूठी नहीं चाहिए।

अशोक : यह कैसे मान लूँ। आप लोग तो 'हाँ' से पहले 'न' ही कहती हैं। यह तो मेरा आर्ट है कि मैं आपको दूँ।

उषा : मिस्टर गुप्ता, मैं ठीक कह रही हूँ। अँगूठी मुझे नहीं चाहिए, थैंक्स।

अशोक : (लापरवाही से) मेरी प्रेजेंट आज तक किसी ने नहीं लौटाई। अँगूठी लेनी ही होगी। (बैग में से अँगूठी निकालता है) और यह मत समझना प्रमोद कि तुम्हारे लिए कुछ नहीं लाया—लाया हूँ—चार दस्ते कागज (कागज निकालते हुए) अग्रलेख लिखने के लिए दो बढ़िया होल्डर, न्यूजपेपर काटने की एक कैंची और··· (सब चीजें टेबिल पर रखता है।)

प्रमोद : (हँसकर) अशोक, तुम्हारी हँसी की आदत अब तक नहीं गयी। अरे, अब मुंसिफ साहब हो गए हो, मैंने सुना। कांग्रेचुलेशंस।

अशोक : थैंक्स, संवाददाता जी ! मुंसिफी और मेरी हँसने की आदत में क्या रिश्ता ? जो मुंसिफी मेरा रोमांस ले बैठे उस मुंसिफी से मेरा गुडबाई !

प्रमोद : अच्छा तो यह हीरे की अँगूठी क्या होगी ?

अशोक : तुम्हें कहाँ दे रहा हूँ। दे रहा हूँ अपनी बहन उषा को, सत्यभामा की तरह।

प्रमोद : अशोक, इसकी जरूरत नहीं। मैं गरीब हूँ मुंसिफ नहीं। यह हीरे की अँगूठी हम लोगों से नहीं सँभलेगी। मैं इस अँगूठी का उत्तर तुम्हें किसी तरह भी नहीं दे सकूँगा।

अशोक : क्या इस अँगूठी के लिए मैं तुमसे कोई 'रिटर्न' चाहता हूँ।

प्रमोद : अशोक, मैं गरीब हूँ पर अपनी मर्यादा के साथ हूँ। तुम न सोचो, मैं तो सोचूँगा।

[उषा मौन होकर प्रमोद को देखती रह जाती है।]

अशोक : डैम इट्। यह फिलासफी ले बैठे। खैर, उषा से समझ लूँगा। मुझे जल्दी जाना है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमोद : अच्छा, तो फिर इतनी जल्दी जा क्यों रहे हो? अभी ठहरो, दो-एक दिन मेरे पास।

अशोक : थैंक्स, मेरे पास समय नहीं है। प्रमोद, मुझे जल्द ही चार्ज लेना है। और फिर एक बात है। उषा की माँ की तबीयत खराब है। (उषा से) उषा, तुम्हारी माँ की तबीयत ज्यादा खराब है। (उषा चुप रहती है) तुम्हें मालूम हुआ? मेरे साथ तुम्हें देहरादून चलना है। (प्रमोद से) क्यों प्रमोद, तुम्हें भी तो खबर मिली होगी कि उषा की माँ की तबीयत खराब है।

प्रमोद : हाँ, उषा ही ने कहा था।

अशोक : तो उषा भी जाना चाहती है, तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं है?

प्रमोद : मुझे कोई आपत्ति नहीं है। उषा की माँ की तबीयत खराब हो और उषा के भेजने में आपत्ति! कैसी बातें करते हो? फिर तुम्हारे साथ? मेरे परिचित, मित्र सहपाठी! कब जा रहे हो?

अशोक : आज, अभी शाम की गाड़ी से।

प्रमोद : अभी तो उनकी कोई तैयारी नहीं।

अशोक : भई वाह, माँ को देखने जाने में किसी तैयारी की जरूरत है?

प्रमोद : तो भी कुछ कपड़े-वपड़े···

अशोक : तो फिर बस इतना ही वक्त है।

प्रमोद : चा तो पीते जाओ।

अशोक : फारमैलिटी में मत पड़ो। ट्रेन-टाइम है सिक्स थरटीन, मुझे वहाँ पौने छः बजे पहुँच जाना चाहिए। स्टेशन यहाँ से काफी दूर है। उषा से तैयार होने को कह दो। और यह लो अपने चार दस्ते कागज। जरा लोग समझें तो कि हम लोग कितने फ्रेंडली हैं। फिर यह प्रेजेंट।

प्रमोद : बिना प्रेजेंट के ही लोग हम लोगों को फ्रेंडली समझते हैं। पर तुम्हारी प्रेजेंट मैं लूंगा। इसकी कीमत मेरी नजरों में स्वर्ण-पत्र के बराबर है।

[अशोक मुस्कुराता है। उषा गम्भीर होकर प्रमोद को देखती है।]

—अच्छा उषा, तैयार हो जाओ। अशोक के साथ जाओ। अच्छी तरह से रहना। अपने माता-पिता से मेरा प्रणाम कहना। शीघ्र ही आने की कोशिश करूंगा···

अशोक : (बीच ही में) मैं तो वहाँ हूँ। तुम्हारे कष्ट करने की जरूरत क्या है, प्रमोद? मेरे रहते किसी तरह की तकलीफ हो? कैसी बातें करते हो, तुम हुए या मैं हुआ इट् इज आल दि सेम।[1]

प्रमोद : पर तुम तो चार दिन बाद चले जाओगे अपनी मुंसिफी पर।

अशोक : मैं सब इन्तजाम कर जाऊंगा। डॉक्टर्स, नर्सेस, कम्पाउण्डर्स, सबको मैं उंगलियों पर नचाता हूँ। वह तो मुझे वायर मिला कि उषा की माँ की तबीयत खराब है।

1. वह एक ही बात है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही वजह है कि मैं देहरादून जा रहा हूँ। फादर से मिलना तो महज फारमैलिटी की वात है।

प्रमोद : मैं इसे नहीं मानता। खैर, उषा, तुम जाने के लिए तैयार हो जाओ। मैं भी मुँह धो लूँ। धूल में भर रहा हूँ। (प्रस्थान)

अशोक : वह मारा ! ग्रैंड ! तो उषा, तुम तैयार हो जाओ। हम लोगों के पास समय नहीं है। तुम तैयार हो जाओ उषा चलने के लिए···

प्रमोद : अशोक, तुम बड़े नीच हो।

अशोक : ये झिड़कियाँ ! अभी से ? नीच हूँ, ऐसा हूँ, वैसा हूँ। अच्छा ! मजाक रहने दो। आलदो तुम्हारे मुँह से यह भी सुनना अच्छा लगता है। ओह, उषा जव गुस्से में भी तुम इतनी अच्छी लगती हो तो फिर खुश होने पर तो हैवेन अनवेल्ड ?

उषा : (तीव्रता से) अशोक···

अशोक : उषा, अव किसी 'डुएट' के लिए हम लोगों के पास वक्त नहीं है। अव तो हम लोगों को अपनी जरनी का प्रोग्राम वनाना चाहिए। अच्छा यह बताओ, सीधे देहरादून ही चलोगी कि बीच में कहीं ठहरना···

उषा : वको मत, अशोक !

अशोक : अरे, यह क्या कह रही हैं, जनाव ! आपके रुख तो वड़े बढ़े-चढ़े हैं। आसानी से सम्हलने के नहीं ! जरा बदल के कहूँ—हाउ हाइ हर हाइनेस कोल्ड्स हर हाटी हैड !

उषा : शट्अप् !

अशोक : जनाब ने कोई नशा तो नहीं किया ? आखिर आपके ये हैं क्या रंग। क्या चलने का इरादा नहीं।

उषा : (दृढ़ता से) नहीं।

अशोक : (आश्चर्य से) नहीं ?

उषा : नहीं, तुम अकेले जा सकते हो। मैं न जा सकूँगी।

अशोक : अरे, तुम्हें हो क्या गया ? माँ की तवीयत खराव है और तुम नहीं जाओगी ! खूब रहा।

उषा : मैं जानती हूँ, माँ की तबीयत खराव नहीं है। मैं नहीं जाऊँगी।

अशोक : (उसी स्वर में) अभी तो तुमने कहा माँ की तबीयत ठीक नहीं है।

उषा : मेरी माँ की तवीयत अब ठीक है। मैं नहीं जाऊँगी।

अशोक : उषा, पागल हो गई हो क्या ? (जोर से पुकार कर) संवाददाताजी, अपनी 'राष्ट्रवाणी' में प्रकाशित करा दीजिए—उषा पागल हो गई।

उषा : (क्रोध से) आप उन्हें संवाददाता कहकर मजाक न उड़ाइए। आप उन्हें क्या समझें, वे क्या हैं।

अशोक : (प्रत्येक अक्षर पर जोर देता हुआ) 'राष्ट्रवाणी' के संवाददाता···

उषा : चुप रहो अशोक। तुम अकेले जा सकते हो !

अशोक : तो क्या मैं अकेले ही जाऊँ ? तुम्हारी हीरे की अँगूठी···

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उषा : उसे अपने पास रक्खो। कभी काम देगी।

[प्रमोद का प्रवेश]

अशोक : तो मैं अकेले···।

उषा : बिलकुल अकेले जाओ, अशोक। अब मैं तुमसे बात नहीं करना चाहती। (भीतर जाती है।)

प्रमोद : (आश्चर्य से) मैं नहीं समझ रहा हूँ कि यह क्या बात है !

अशोक : जाने दो प्रमोद। आजकल की स्त्रियों पर क्या एतबार ! कभी मैनचेस्टर का सिल्क पहनती हैं, कभी प्रोसेशन में जाकर महात्मा गांधी की जय बोलती हैं। इन्हें हवा का रुख समझ लो। चाहे जिधर बह जाएँ। फीमेल माइण्ड इज ए मिस्ट्री, मिस्टर।[1] अच्छा तो फिर मैं जाता हूँ, जरा जल्दी में हूँ। अभी जाकर उषा को तुम छेड़ना मत। नशे में होगी, न जाने क्या-क्या कह दे।

प्रमोद : क्या उषा देहरादून नहीं जा रही है ?

उषा : नहीं।

प्रमोद : क्यों ?

अशोक : पता नहीं। अभी एक मिनट पहले ठीक बातें कर रही थीं—अभी जाने क्या हो गया ?

प्रमोद : क्या हो गया ?

अशोक : गॉड नोज ![2] सारी तहजीब भूल गईं।

प्रमोद : सचमुच उषा का यह व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं पूछूं क्यों नहीं जा रही हैं ?

अशोक : जाने भी दो भाई, तुमसे भी वाही-तबाही बकने लगेंगी। इन एज्युकेटेड गर्ल्स में यही बात तो खास है कि जो मुंह में आया दे मारा सर से। उनसे पूछना क्या है ? तबीयत बदल गई। जनाब, अब नहीं जाएँगे। करे कोई क्या करता है !

प्रमोद : अच्छा ! खैर, जब वह नहीं जा रही हैं तो तुम मेरा प्रणाम उषा के माता-पिता से कह देना और माताजी के बारे में शीघ्र ही लिखना।

अशोक : जरूर, माँ की तबीयत खराब जरूर है। उषा ने खुद मुझसे कहा था। अब बिलकुल उलटी बात कहती है।

प्रमोद : अशोक, मुझे मालूम होना चाहिए कि दरअसल वे क्यों नहीं जा रही हैं।

अशोक : पूछकर क्या करोगे ? तुम से भी वह ऐसी ही बातें करेंगी। जनाब, इन लोगों के आगे लियाकत खत्म हो जाती है। पता नहीं किस वक्त क्या सोच जाएँ। बात करते-करते इनडिफरेंट हो जाना तो इन लोगों का बर्थ-राइट है।

[प्रमोद का किंचित हास्य]

अशोक : हाँ, भाई, अभी कहा कि माँ बीमार हैं, फिर कहा कि अच्छी हैं। अभी कहा कि

1. स्त्री का हृदय एक रहस्य है, जनाब !
2. ईश्वर जाने।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देहरादून जाऊँगी फिर कहा, नहीं जाऊँगी ।

प्रमोद : (अव्यवस्थित होकर) हाँ, मुझसे भी जब वे देहरादून जाने की बात कह रही थीं तो उन्होंने अपनी माताजी के बीमार होने के विषय में कहा था।

अशोक : खैर, जाने भी दो, जब उनका दिमाग कुछ शान्त हो जाए तब पूछना । अभी तो आराम करने दो । अच्छा भाई, तो मैं अब जाता हूँ ।

प्रमोद : तो फिर चले ही जाओगे ?

अशोक : हाँ, जाना जरूरी है ।

प्रमोद : अच्छा, तो खबर लेने के लिए मैं शीघ्र ही आऊँगा ।

अशोक : जरूर आना । हाँ, और देखो, तुम यह मत सोचना कि अशोक अभी आया और अभी चला गया । भाई, मैं तुम्हारा वही पुराना सिनसियर दोस्त हूँ । कोई चाहे कितना ही कहे, उसकी बात पर ध्यान देना मामूली आदमियों का काम है, तुम्हारा नहीं ।

प्रमोद : (लज्जित-सा होकर) अच्छा ! यह कहोगे ?

अशोक : तुम सिर्फ संवाददाता हो तो क्या हुआ, तुममें दुनिया को समझने की ताकत है । दुनिया भर के अखबारों को देखते हो । न जाने कितनी बातें पढ़ते होगे । लेकिन तह तक पहुँचने की ताकत उसी को हो सकती है जिसने तुम्हारी तरह इतना पढ़ा है । मैं तो मजाक में तुमसे न जाने क्या-क्या कह देता हूँ; लेकिन दरअसल पूछा जाए तो मैं तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता, मुंसिफ हो गया तो क्या ?

प्रमोद : आज तो बड़ी बातें झाड़ रहे हो !

अशोक : नहीं, पते की बातें कहता हूँ, भाई । मुझे इस बात का प्राइड है कि मुझे तुम्हारे जैसा दोस्त मिला । यहाँ से मैं निकल जाऊँ और मजाल कि तुम्हारे पास न ठहरूँ ?

प्रमोद : भाई, यह तुम्हारी कृपा है !

अशोक : किरपा···मैं ठीक कह नहीं सकता ! ऐसी कठिन जबान बोलते हो भाई ! अच्छा तो फिर लिखना ।

प्रमोद : लिखना कैसा, मैं खुद आऊँगा यह देखने कि उषा की माँ की तबीयत सचमुच खराब है !

अशोक : हाँ, आने की तारीख लिखोगे तो स्टेशन पर आ जाऊँगा । अच्छा भाई, चला । गुडबाई ! (प्रस्थान)

प्रमोद : (हाथ उठा देता है । सोचते हुए लौटकर—उषा में यह कैसी अशिष्टता ! पुकार कर) उषा !

[साधारण वस्त्रों में उषा का प्रवेश]

उषा : कहिए ।

प्रमोद : (उषा को देखकर आश्चर्य से) अरे उषा, यह क्या ! एँ, तुम्हें यह हो क्या गया है ?

उषा : (सरलता से) कुछ नहीं । यह साधारण साड़ी मुझे अब बड़ी अच्छी लगने लगी है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमोद : क्या तुमने कोई नशा किया है !

उषा : नहीं, अब नशा उतर गया है।

प्रमोद : मैं तो कुछ समझा नहीं ! आज का तुम्हारा यह व्यवहार अच्छा नहीं रहा अशोक के साथ !

उषा : मैंने उचित ही व्यवहार किया। यदि भूल हुई तो क्षमा चाहती हूँ। (हाथ जोड़ती है।)

प्रमोद : उषा, क्षमा चाहती हो ? मुझसे ? मैंने तो आज तक यह शब्द तुमसे सुना ही नहीं। व्यंग्य मत करो।

उषा : ओह, मैं तुम पर व्यंग्य करूँगी ? तुम कितने महान् हो, मैं अभी तक यह नहीं समझ सकी। मैंने माँ के विषय में जो झूठ बात कही थी उसकी भी क्षमा दो। तुम उदार हो, चरित्रवान हो, मैं तुम्हें पाकर···।

प्रमोद : (हँसते हुए) कितनी दुखी हो ! अच्छा उषा, दुखी ही रहो पर ये अपनी दवाइयाँ तो लो। (दवा की तरफ इशारा करता है।)

उषा : (दवाओं को फेंककर) अब मुझे इनकी आवश्यकता नहीं।

प्रमोद : (आश्चर्य से) मैं समझ नहीं रहा हूँ उषा, यह तुम क्या कह रही हो ? इतना शीघ्र परिवर्तन !

उषा : शीघ्र ! कहिए कितनी देर में परिवर्तन ! (स्मरण कर) आह, राजे, तुमने मेरी आँखें···।

प्रमोद : राजे ? यह क्या कह रही हो ?

उषा : कुछ नहीं, मेरी एक प्रार्थना मानोगे ?

प्रमोद : (प्रसन्नता से) कैसी प्रार्थना ?

उषा : केवल एक प्रार्थना !

प्रमोद : कौन-सी ?

उषा : राजेश्वरी देवी के साथ उनकी बहिन की रक्षा के लिए जबलपुर चलो।

प्रमोद : कैसी बहिन ?

उषा : उनकी बहिन पानी में डूब गई थीं। किसी तरह से बचाई जा सकी हैं। इस समय उनकी परिचर्या की आवश्यकता है। वे मृत्यु-शैया पर हैं। यह देखो समाचार। (समाचार-पत्र देती है) यह पढ़ा कि नहीं ?

प्रमोद : (समाचार पढ़कर चिन्ता से) आह, इनमें तुम्हारी सखी की बहिन है ? तब तो जरूर जाऊँगा, भीख माँग कर भी जाऊँगा। तुम भी चल सको तो चलो। आह ! बेचारी कुमुद !

उषा : भीख न माँगनी पड़ेगी। मैं गृहलक्ष्मी जो हूँ !

प्रमोद : गृहलक्ष्मी !

उषा : हाँ, गृह की लक्ष्मी ! जादू के जोर से जितने रुपए कहो अभी निकाल सकती हूँ। दस, बीस, पचास, सौ, दो सौ।

प्रमोद : बस !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उषा : और मान-पत्र भी दे सकती हूँ।

प्रमोद : कैसा मान-पत्र ?

उषा : अच्छा, हँसी का समय नहीं है। मोतिहारी के नागरिक आपको मान-पत्र देना चाहते हैं। आपने विहार के पीड़ित किसानों की रक्षा की थी न ? साथ में दो सौ रुपये भी भेजे हैं। यह देखिए कूपन। (कूपन देती है।)

प्रमोद : (कूपन देखते हुए) खैर, मान-पत्र की आवश्यकता तो मुझे है नहीं। ये दो सौ रुपए जबलपुर जाने में अवश्य सहायक होंगे। इस समय तो राजे की बहिन···अच्छा तो मैं जाऊँ ?

उषा : हाँ, राजे के पास जाओ। उसे सूचित कर दो कि हम दोनों भी साथ चल रहे हैं। शीघ्र जाओ, नहीं तो शायद वह अकेली ही चल दे। उसके मकान का नम्बर है 1। वैलिंगटन रोड। तब तक कहो तो मैं तुम्हारा संवाद पूरा कर दूँ···

प्रमोद : मेरा संवाद तुम पूरा करोगी, उषा ! उसका प्रबन्ध मैं कर लूँगा। कष्ट मत करो। अच्छा, तो मैं जाता हूँ। (शीघ्रता से जाता है।)

[उषा संवाद को पूरा करने के लिए टेबुल पर बैठ जाती है और जोर से पढ़ती है।]

[आहत स्त्री-पुरुषों का लोमहर्षक चीत्कार]

बिहटा, 18 जुलाई—अभी तक की ट्रेन दुर्घटनाओं में सबसे भयानक वह है जो पटना के समीप बिहटा नामक स्थान में 17वीं तारीख की रात्रि को घटी। पंजाब-हावड़ा एक्सप्रेस जो पचास मील के वेग से जा रही थी, अचानक बिहटा के समीप उलट गई। तीन सौ यात्री घायल हुए। सौ की तो मृत्यु ही हो गई। एंजिन रास्ते में टेढ़ा होकर नीचे गिर पड़ा, जैसे कोई दैत्य ठोकर खाकर बैठ गया हो। चार-पाँच डिब्बे चूर-चूर हो गए। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। कोई-कोई यात्री तो अंग-विहीन हो गए। एक व्यक्ति के दोनों हाथ कट गए। उसकी नवविवाहिता पत्नी को भी चोट लगी। किन्तु वह साधारण है। पर उसे जो मानसिक चोट लगी है वह उसकी शारीरिक चोट से कितनी भयानक है···!

उषा : (ऊपर दृष्टि कर करुणाव्यंजक शब्दों में) और मुझे जो मानसिक चोट लगी है वह उसकी शारीरिक चोट से कितनी भयानक है ! !

[पटाक्षेप]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन का प्रश्न

पात्र-परिचय

सुखदेव
सोनिया
मनबोध
सरसी
रामजतन
अभय
चम्पादे
रतन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[संध्या का समय है। दिन में काफी गरमी पड़ चुकी है। आकाश में बादल आ गए हैं और हवा जोर से बहने लगी है। धीरे-धीरे वह आँधी का रूप धारण कर चुकी है। रह-रहकर हवा के झोंके पेड़ों और मकान की दीवालों से टकराते हैं। कुछ दूर से समीप आती हुई आवाज—सुखदेव! ···सुखदेव भैया! ···]

सुखदेव : (प्रवेश करते हुए) कौन है, भाई! इस आँधी में भी चैन नहीं लेने देता!

मनबोध : सुखदेव भैया! मैं हूँ मनबोध।

सुखदेव : मनबोध? गायें चरा के ले आए?

मनबोध : भैया! बड़े जोर की आँधी आ गयी।

सुखदेव : हाँ, आँधी तो बड़े जोर की आई। रोज इसी वक्त आती है, जैसे उसकी आदत पड़ गयी है। (अधिक जोर के शब्द) ओफ ओह, जरा देखो तो! अरे, बड़े जोर हैं भैया, तुम्हारे! (रोकने के स्वर में) अरे, बस···बस···

मनबोध : अरे, सुखदेव भैया! मेरी पगड़ी···पगड़ी भी गई। (पकड़ने के लिए दूर जाते हुए) अरे रही-सही इज्जत भी न रक्खी। ऐसी फुर्र से उड़ा दी। (लौटते हुए) धन्न मातेसरी! अरे, जरा तो खबर करती।

सुखदेव : अरे, क्या खबर करेगी! आधे घंटे से तो झकझोर रही है। खेती जमीन में लोट गई होगी। अब जिन्दगी मिट्टी में मिलने से बचेगी! जिन्दगी भी जाएगी, मनबोध! यह आँधी मिटा के रहेगी। (आँधी धीमी पड़ जाती है। दूर से बस हलकी आवाज सुनाई देती है) अरे, धीमी पड़ गयी। तुम्हारी मातेसरी कहने से मान गई। अरी, वाह री, मातेसरी!

मनबोध : जब सिर की पगड़ी उड़ा दी, तब क्या मातेसरी रही!

सुखदेव : तुम अपनी पगड़ी को ही बहुत समझते हो, मनबोध! किसन के सिर भी उड़ रही है। उसके घर में भी आँधी आई है। उसकी लड़की सरसी को जानते हो? सारे गाँव में सरसी को लेकर···अरे, जरा पगड़ी कसके बाँधो, ढीली बाँधते हो तभी तो जरा से झोंके में चिड़िया की तरह फुर्र से उड़ जाती है।

मनबोध : चाहे जितनी कसके बाँधूं, पगड़ी सिर पर रहने की नहीं।

[आँधी थम जाती है। दूर धीमा शब्द होता है।]

सुखदेव : शायद इसीलिए लोगों ने पगड़ी बाँधना बन्द कर दिया! (हँसता है, रुककर सहसा) अरे, आँधी थम गयी। पहले कितने ताकत से चली थी! इसमें ताकत कहाँ से आती है, मनबोध?

मनबोध : (कुछ तेज स्वर से) ताकत! अरे, यह हमारी बदकिस्मती की ताकत है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक तो हमारी किस्मत ही कंकड़-पत्थर की है, उन्हीं को उड़ाकर हमें मारती हैं। अभी हमें मार ले। लेकिन जब हम भी आँधी की तरह बढ़ेंगे तो धरी रह जाएगी यह सारी सेखी !

सुखदेव : तुम तो बड़ी बातें मार रहे हो, मनबोध ! छोटे सरकार के सामने तो मुँह खोलने की हिम्मत नहीं पड़ती। ऐसे बेबस हो जाते हो जैसे पीपल के पेड़ पर लटके हुए चमगादड़ हो।

मनबोध : तो मैं छोटे सरकार को थोड़े ही ललकारता हूँ, वे तो अपने राजा हैं। क्या आलीसान सुझाव पाया है, वाह ! राजा आदमी ! अरे जमींदारी चली जाने से सुझाव थोड़े ही बदल जाता है। अब तो बाहर से आ गए होंगे छोटे सरकार !

सुखदेव : अभी तक तो नहीं आए। सुबह से शिकार खेलने गए हैं, अभी तक नहीं लौटे ! उस पर यह आँधी आ गयी। छोटे सरकार कहीं भटक न गए हों।

मनबोध : अरे, जंगल में छोटे सरकार की एक गाय भी भटक गई, भैया ! वह कहने के लिए आया था। छोटे सरकार कहीं मुझ पर नाराज न हो जाएँ। सब गायें तो मैंने थान पर बाँध दीं। एक थान खाली है। छोटे सरकार कहीं नाराज न हो जाएँ !

सुखदेव : छोटे सरकार तो बड़े ऊँचे ख्याल के हैं जी ! हाँ, काका साहब जरूर नाराज हो जाएँगे।

मनबोध : तो भैया ! तुम मुझे बचाना। मेरा कोई कसूर नहीं है। सब गायें एकसाथ चर के लौट रही थीं। तभी जोर की आँधी आ गई। मैं समझता था कि सब गायें लौट आईं लेकिन जब उन्हें बाँधने लगा तो एक गाय का थान खाली !

सुखदेव : तब तो काका साहब तुम्हारा सिर भी खाली करेंगे। तुम काका साहब का गुस्सा नहीं जानते।

मनबोध : जानता हूँ, भैया ! इतने दिन मालिक की नौकरी करके भी न जानूंगा ! पर भैया सुखदेव ! तुम मालिक के पुराने नौकर हो। उनके घर के आदमी जैसे हो ! तुम्हारे कहने से मुझे माफी मिल जाएगी।

सुखदेव : मिल तो जाएगी और अब तो आँधी थम गई है। अब जाकर गाय खोज लाओ। भगवान चाहेगा तो रास्ते में ही मिल जाएगी।

मनबोध : ठीक है, जाता हूँ भैया ! पर पहले छोटे सरकार का पता तो लगाऊँ ! वे कहाँ रह गए हैं !

[नेपथ्य में गीत सुनाई देता है—]

एएएएएए
धीरे बहु नदिया तें धीरे बहु, मोरा पिया उतरइ दे पार रे···

मनबोध : रामजतन आ रहा है।

सुखदेव : हाँ, रोज उसका चक्कर लगता है इसी रास्ते से। बड़ी मीठी आवाज है इसकी।

मनबोध : बातें भी ढंग की करता है। अच्छा, भैया ! चलें अब। नहीं तो उसकी बातों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उलझ जाऊँगा। फिर देर हो जाएगी। छोटे सरकार जाने कहाँ होंगे। अच्छा, जयराम जी की।

सुखदेव : जयराम जी की।

[मनबोध का प्रस्थान। रामजतन के गीत की आवाज धीरे-धीरे पास आती है—]

—काहे की तोर नैया रे, काहे की पतवार! रे ए ए ए ए···

सुखदेव : वाह, कितनी मीठी आवाज है!

[गीत चलता जाता है—]

के तोर नैया खेवैया रे, के धन उतरब पारि रे···
धीरे बहु नदिया तें धीरे बहु, मोरा पिया उतरइ दे पारि रे···
धरमैं कै मोर नैया रे, सत की है पतवारि रे
सैयाँ मोरा नैया खेवैया रे, हम धन उतरब पारि रे॥

[आवाज अब बिलकुल पास आ जाती है : धीरे बहु नदिया तें धीरे बहु, मोरा पिया···]

रामजतन : जयराम, भैया सुखदेव!

सुखदेव : जयराम, रामजतन! अरे, अभी लड़के ही हो पर भाई! ऐसा गीत छेड़ते हो कि सारी दुनिया को गठरी में बाँध के खूंटी पर टाँग देते हो जैसे। और आवाज भी ऐसी मीठी कि जैसे भगवान ने गन्ने को छील कर तुम्हारा गला बनाया है। भाई! ऐसा अगिनबान मत गाया करो। ऐसा ठंडी आग लग जाती है कि जैसे बरफ के टुकड़ों से गरम धुआँ निकलने लगता है। वाह, वा! (बन कर गाता है) धीरे बहु नदिया तू धीरे बहु···

रामजतन : अरे रहने दो, सुखदेव भैया! तुम तो बिलकुल सियार को सेर बना देते हो। ऐसी तारीफ करते हो कि बबूल के पेड़ में आम निकल आए। यह तो मैं यूँ ही जी बहलाता हूँ। और फिर छोटे सरकार का हुकुम है कि जब यहाँ से गुजरो तो एक तान छेड़ दिया करो। मालिक हैं न भीतर!

सुखदेव : नहीं, रामजतन! वे अभी शिकार से नहीं लौटे। कह गए थे, शाम को लौट आएँगे, सो अभी तक लौटे नहीं। माँ जी दो घंटे से उनकी राह देख रही हैं। जाने कब तक लौटें।

रामजतन : लौट रहे होंगे, पर आज बड़े जोर की आँधी आ गयी थी। भाई! बड़ा नुकसान किया इस आँधी ने। जाने कितने पेड़ गिर गए। हवा ऐसी झपटी जैसे ताड़का हो!

सुखदेव : मुझे तो अपनी घरवाली की याद आ गयी, भाई! जब गुस्से में आती है तो घर तहस-नहस कर डालती है। ऐसी झपटती है कि कपड़े-लत्ते तार-तार हो जाते हैं। और आँधी तो बरसात के मौके पर उठती है, उसकी आँधी तो हर दूसरे-तीसरे रोज उठ जाती है। हर हफ्ते में दो-तीन बार बरसात हो जाती है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामजतन : अरे, यह तो घर-घर का हाल है, भाई ! (दोनों हँसते हैं) ठाकुर किशनसिंह को तो तुम जानते ही होगे। वही रुपयों का लेन-देन करते हैं। इस लेन-देन में उनकी बुद्धि भी बिक गई जैसे। रोज उनमें और उनकी स्त्री में खटपट होती रहती है सरस्वती को लेकर। ठाकुर साहब उसकी शादी एक जगह तय करते हैं, उनकी स्त्री दूसरी जगह।

सुखदेव : यह सरस्वती कौन ?

रामजतन : अरे वही सरसी ! प्यार से उसे लोग सरसी कहते हैं।

सुखदेव : अच्छा ! वही सरसी जो इस कोठी में आती है ? हाँ, मैंने भी उसे देखा है। अच्छी है !

रामजतन : अच्छी है ? भैया, सुखदेव ! अब क्या कहूँ कि कैसी है ! चलती है तो जैसे चाँदनी के उजाले में भरी नदी में लहरें उमड़ती है। हँसती है तो जैसे कोई पानी भरने के लिए गंगा जी में कलसी डुबो रहा है।

सुखदेव : बड़े गहरे डूबे हो, रामजतन !

रामजतन : वह तो बाढ़ की नदी है, सुखदेव ! बस, कुछ पूछो मत। मैं तो जब कोई बिरहा गाता हूँ तो उसी का ध्यान हो आता है। उसे जो देखता है, देखता ही रह जाता है।

सुखदेव : हमारे काका साहब के सामने भी तो एक रोज आई थी। काका साहब उसे देखते ही रह गए।

रामजतन : जो दुनिया देख चुके हैं, वे भी उसे देखते रह गए ?

सुखदेव : बात ही कुछ ऐसी है, रामजतन ! मालूम होता है, काका साहब कुछ और ही बात सोच रहे हैं !

रामजतन : क्या ? कौन-सी बात सोच रहे हैं ?

सुखदेव : हमारे छोटे सरकार ने अभी तक शादी नहीं की। काका साहब उनसे सैकड़ों बार कह चुके। माताजी भी कहते-कहते थक गईं। बहिन अलग परेशान हैं, पर छोटे सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। काका साहब जमाना देखे हुए हैं। उन्होंने एक काम किया। जन्माष्टमी के दिन एक उत्सव किया। उसमें सरसी का गाना छोटे सरकार को सुनवा दिया। छोटे सरकार ने सरसी को देखा और सरसी ने छोटे सरकार को।

रामजतन : तो देखने से क्या हो गया ?

सुखदेव : यह हो गया कि सरसी ने फूल तो कृष्ण जी के चरणों में डाले और आँखें छोटे सरकार के चरणों में।

रामजतन : अच्छा, ऐसी बात है ?

सुखदेव : हाँ, ऐसी बात है। किसी से कहने की नहीं है।

[चम्पादे का प्रवेश]

चम्पादे : सुखदेव, अभी तेरे छोटे सरकार नहीं आए ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखदेव : नहीं, माँ जी ! प्रणाम !

रामजतन : मैं भी प्रणाम करता हूँ, माँ जी !

चम्पादे : किसी का प्रणाम लेने की फुरसत नहीं है मुझे। छोटे सरकार नहीं आए और यहाँ प्रणामों की बौछार हो रही है। सब दिखावटी ! जब से जमींदारी गई है, घर के नौकर भी सिर चढ़ गए। हम तो जमींदार नहीं रहे, ये लोग हो गए हैं। वहाँ छोटे सरकार जंगलों-जंगलों भटक रहे होंगे, यहाँ चम्पादे नौकरों को भी नहीं भेज सकती।

सुखदेव : नहीं, माँ जी ! मनबोध उन्हें देखने गया है, माँ जी !

चम्पादे : तुम क्यों नहीं गए ? तुम्हारे पैर में मेंहदी लगी है ? उन्हें खोजने जा नहीं सकते ? पुराने नौकर होकर तुम हमारा नमक इसी तरह अदा करोगे ? मालिक की तकलीफ में तुम्हें दर्द नहीं होता ? अभय प्रताप जंगली सूअरों का शिकार करते हैं। उन्हें पहले तुम्हारा शिकार करना चाहिए। तुम लोग किसी जंगली सुअर से कम हो।

रामजतन : माँ जी ! मैं उन्हें खोजने जाता हूँ।

चम्पादे : तुम जाओगे ? गीत गा-गा के उन्हें खोजोगे। और यह सुखदेव सुख की नींद सोएगा। तुम लोग बैठो, मैं उन्हें खोजने जाऊँगी। सुखदेव ! मेरा घोड़ा तैयार कराओ।

सुखदेव : (हाथ जोड़ कर) माँ जी ! मुझे माफी दी जाए। आइन्दा कभी ऐसी भूल नहीं होगी। काका साहब का हुकुम था कि मैं शाम को कोठी के दरवाजे पर ही पहरा दूँ, इसलिए दरवाजे पर ही बैठा रहा। वैसे मेरी कोई खता नहीं है।

रामजतन : हाँ, माँ जी ! गलती की माफी हो। हम दोनों छोटे सरकार को खोजने जाएँगे।

चम्पादे : अच्छी बात है। दोनों जाओ और जल्दी से जल्दी मुझे खबर दो कि अभय प्रताप कहाँ है।

सुखदेव : जो हुकुम ! चलो रामजतन ! प्रणाम माँ जी !

रामजतन : प्रणाम, माँ जी ! (दोनों का प्रस्थान)

चम्पादे : (सोचते हुए) जमींदारी गई—इज्जत भी गई। और हमारे लिए इज्जत का प्रश्न जीवन का प्रश्न है। सब बेशर्म होकर जिन्दगी बिता रहे हैं ! (पुकार कर) सोनिया ! सोनिया !

सोनिया : (नेपथ्य से) आ गई, माँ जी !

चम्पादे : सब दिन गीत और नाच ! जैसे इसी में जिन्दगी बीत जाएगी। जमींदारी जाने पर कोई विवाह के लिए भी नहीं पूछेगा। सोलह बरस की हो गई, अभी बचपन नहीं गया !

[सोनिया का प्रवेश]

सोनिया : कहिए, माँ जी !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चम्पादे : अभी तक अभय प्रताप नहीं आया। मुझे चिन्ता है, शिकार में कहीं घायल न हो गया हो ! इतनी देर तो उसे कभी हुई नहीं और तू निश्चिन्त बैठी है ?

सोनिया : माँ जी ! मैं तो बहुत चिन्तित हूँ। देखिए, आज मैंने कोई उपन्यास नहीं पढ़ा। शाम के वक्त मैं नाचती थी, तो मैंने आज पैरों में घुँघरू भी नहीं बाँधे। सरसी को साथ गाने के लिए बुलाया पर उससे बात नहीं हुई। और रामायण से सगनौती भी निकाली तो निकला, 'सुनि सिय सत्य असीस हमारी···।'

चम्पादे : 'पूजहिं मन कामना तुम्हारी।' यह सगनौती तूने अपने लिए निकाली है या अभय प्रताप के आने के लिए ?

सोनिया : भैया के आने के लिए। अब दूसरी बात क्या हो सकती है ? माँ जी ! भैया के व्याह की ? तो उन्होंने तो जंगल की चिड़ियों से ब्याह किया है। दिन भर उन्हीं का गाना सुनते रहते हैं। शिकार खेलना ही उनकी मनोकामना है। कहीं बैठ होंगे नदी के किनारे। कंकड़ी फेंककर देख रहे होंगे कि लहरें किस तरह बढ़ कर उनके पैरों को चूमती हैं।

चम्पादे : तू जितनी भोली है उतना भोला अभय प्रताप नहीं है।

सोनिया : भैया तो मुझसे भी अधिक भोले हैं, माँ जी ! जात-पाँत कुछ मानते ही नहीं। उस दिन एक अंग्रेज से काली हबशिन की शादी करा दी।

चम्पादे : अंग्रेज से हबशिन की शादी !

सोनिया : हाँ, अंग्रेज से हबशिन की शादी। मेरे बचपन का एक अंग्रेज गुड्डा था न ? तो उसकी हबशिन गुड़िया से शादी करा दी। और सरसी से कहा, तू ब्याह के गीत गा।

चम्पादे : अपनी तो खुद शादी करता नहीं, गुड्डे-गुड्डी की शादी करता फिरता है।

सोनिया : हाँ, माँ जी ! उस दिन मैंने कहा कि भैया ! किससे शादी करोगे ? तो हँस कर कहने लगे···कहने लगे कि···कहा नहीं जाता, माँ जी। (लजीली मुख-मुद्रा)

चम्पादे : क्यों नहीं कह सकती ? किससे शादी करेगा ?

सोनिया : कहूँ ? (शरमा कर) हँस कर कहने लगे कि जब तेरी शादी हो जाएगी तो··· तो तेरी सास से शादी करूँगा।

चम्पादे : (हँसकर) तेरी सास से ? पागल कहीं का। सरसी से क्यों नहीं कर लेता, वह वह भी तो ठाकुर की लड़की है। काका साहब भी खुश होंगे।

सोनिया : (पुकार कर) सरसी, ओ सरसी !

सरसी : (नेपथ्य से) आई सोनिया !

चम्पादे : अच्छा, सरसी आई है ? कितनी मीठी आवाज है इसकी।

सोनिया : बोलती है तो जैसे सितार बजता है, माँ जी ! मैंने उससे कहा, कि ईश्वर न करे, तू कभी रोए। लेकिन अगर कभी रोई तो बाँसुरी बजेगी।

[सरसी का प्रवेश]

सरसी : माँ जी ! प्रणाम करती हूँ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चम्पादे : जीती रह बेटी ! कब आई ?

सरसी : साँझ की वेला, बहन सोनिया ने बुला भेजा था मुझे ।

चम्पादे : आ जाया कर, बेटी ! सोनिया हमेशा तेरी बातें करती रहती है । अभय तो चला जाता है शिकार खेलने । बेचारी रह जाती है सोनिया अकेली । किससे बातें करे ! अभी तक अभय नहीं आया । मैं काका साहब को खबर दूँ । वे आदमी भेजें । तुम लोग बातें करो । (प्रस्थान)

सोनिया : एक बात कहूँ ।

सरसी : हूँ ।

सोनिया : माँ जी को तू बहुत पसन्द है, सरसी !

सरसी : उनकी दया है, सोनिया ! तुम्हें पसन्द आऊँ, तब कुछ बात है । एक लोकगीत है—

मोरी अँखियाँ तो तुम पै रीझीं,
बस जइयो कजरवा की ओट ।

सोनिया : ओह, अपने कजरवा की ओट बसाओ, तब जानूँ ।

सरसी : अच्छा, ले बसा लिया तुझे ।

सोनिया : कहीं भागेगी तो नहीं ?

सरसी : भाग के जाऊँगी कहाँ ! सात सुरों की रागिनी में हिर-फिर के फिर वही स्वर आ जाते हैं । वे रागिनी से निकल नहीं सकते, उसी तरह तुम्हें छोड़कर कहाँ जा सकती हूँ ! घूम-फिर कर फिर तुम्हारे सामने आ जाऊँगी ।

सोनिया : अच्छा, यह बता सरसी ! तुझे अपने पिता का घर अच्छा लगता है या यह घर ?

सरसी : कभी-कभी तो पिताजी रात-भर बाहर रहते हैं । उनके बिना घर सूना-सूना सा लगता है पर मुझे तो सभी घर अच्छे लगते हैं, जहाँ कोई प्रेम से बोलनेवाला हो । तुम मुझसे प्रेम से बोलती हो तो यह घर अच्छा लगता है । पिताजी बड़े दुलार से बोलते हैं तो अपना घर अच्छा लगता है । प्रेम से घर बनते हैं, घर से प्रेम नहीं बनता ।

सोनिया : यह प्रेम होता क्या है, सरसी ? तू प्रेम का नाम बहुत दुहराती है ।

सरसी : प्रेम तो मैं भी नहीं जानती । लोग कहते हैं कि प्रेम से दो मन मिल जाते हैं लेकिन कैसे मिल जाते हैं, यह मैं नहीं जानती । मन तो दिखाई नहीं देता, फिर मन का मिलना, लोग कैसे जान लेते हैं ? हवा हवा से मिल जाय तो उसको भी लोग प्रेम कह देते होंगे ?

सोनिया : अच्छा बता, तेरा मन किसी से मिला है ?

सरसी : मिला है ।

सोनिया : किससे ?

सरसी : बताऊँ ? मेरा मन मिला है तुमसे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोनिया : बस ?

सरसी : हाँ, एक बार एक बिल्ली के बच्चे से भी मिला था। बड़े मीठे स्वर में कहता था—म्याऊँ।

सोनिया : तब तो अगर मैं कोई जादूगरनी होती तो उस बिल्ली के बच्चे को राजकुमार बना देती।

सरसी : तो क्या होता ?

सोनिया : तेरी उसके साथ हो जाती शादी !

सरसी : हट, सोनिया ! मैं अपने घर में शादी का नाम बहुत सुनती हूँ। माँ भी मेरी शादी की बातें करती हैं, पिता जी भी करते हैं। कभी-कभी दोनों में कहा-सुनी भी हो जाती है। मैं कई बार सोचती हूँ, ऐसी शादी भी किस काम की जिसमें कहा-सुनी हो ! जब शादी की बात पर ही कहा-सुनी हो जाती है तो शादी में कितनी कहा-सुनी न होती होगी। ना सोनिया ! ना, मैं अपनी शादी नहीं कराऊँगी।

सोनिया : क्यों नहीं कराएगी ? लड़की की शादी तो हो के रहती है। तेरी कितनी उमर हो गई ?

सरसी : माँ कहती थी सोलवाँ साल है। और तुम्हारा ?

सोनिया : मेरा तो पंद्रहवाँ साल है। मेरे यहाँ भी काका साहब शादी-शादी चिल्लाते रहते हैं।

सरसी : तो फिर तुम, शादी कराओगी ?

सोनिया : सोचती हूँ, क्या बुराई है शादी में।

सरसी : तो मैं भी···पर लोग कहते हैं, घर छोड़कर जाना पड़ेगा। तुम्हारा घर हो तो कोई बात नहीं। हाय, ये मैं क्या कह गई !

सोनिया : अब छिपा नहीं सकती। मैं पहले से ही जानती थी। तुझे किसी दूसरे घर न जाना पड़ेगा।

सरसी : भई, तुम्हारे भैया शिकार बहुत खेलते हैं। कहीं उनकी बन्दूक के सामने मैं ही न आ जाऊँ ! मुझे शिकार से बड़ा डर लगता है।

सोनिया : तो तेरा शिकार थोड़े ही करेंगे ! तेरे लिए शिकार करेंगे।

सरसी : मुझे तो गाना अच्छा लगता है। शिकार की तो बात भी अच्छी नहीं लगती। बेचारे गरीब जानवरों को मारना ! तुम्हारे भैया अगर उन जानवरों को गा कर पकड़ लें तो मैं उन जानवरों को जिन्दगी भर खिलाऊँ। लेकिन मारना, बाप रे ! बेचारे जानवर हमेशा के लिए मर जाते हैं।

सोनिया : अच्छा, अगर कुछ दिनों के लिए मरें तो कैसा ?

सरसी : सोनिया, तुम मेरी हँसी उड़ाती हो ?

सोनिया : अच्छा, जाने दो। मैं भैया से कहूँगी कि भैया ! बन्दूक फेंको और गाना गाओ। शादी का राग अलापो।

सरसी : लेकिन मेरी माता जी कैसे मानेंगी ? वे तो किसी गानेवाले के साथ मेरी शादी··· नहीं-नहीं, मुझे वो पसन्द नहीं। लेकिन माताजी कहती थीं कि हम छोटे लोग हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े आदमियों के घर में छोटे आदमियों का निबाह नहीं होता फिर बड़े आदमी चार-चार शादी कर लेते हैं। गरीब घर की लड़की तो बिलकुल भीगी हुई दियासलाई बन जाती है!

सोनिया : भीगी हुई दियासलाई! अरे, तू तो चकमक पत्थर की आग है, पत्थर जैसे दिल में भी समा सकती है।

सरसी : पर तुम्हीं सोचो। पुरुष लोग चार-चार स्त्रियों से शादी करके क्या एक को भी सुखी रख सकते होंगे? वह तो ऐसा ही हुआ जैसे एक बर्रं चार लड़कियों को काट कर उड़ जाय!

सोनिया : बातें तो तू अच्छी कर लेती है। ये सब बातें तुझे सूझती किस तरह से हैं?

सरसी : मेरी माता जी कभी-कभी पिता जी से यह सब कहा करती हैं। एक गरीब आदमी जितना अपनी स्त्री को चाहता है, फूल की तरह सिर-माथे पर रखता है, उतना बड़ा आदमी नहीं। बड़ा आदमी तो अपनी स्त्री को पैर में चुभा हुआ काँटा समझता है जिसे वह दूसरी स्त्री को काँटा बनाकर निकालता है।

सोनिया : तू बड़े पते की बातें करती है, सरसी! खैर, घबरा नहीं। मेरे भैया···

सरसी : अरे, तुम्हारे भैया तो शिकार से आ गए होंगे। अब क्या होगा!

सोनिया : (सुनकर) हाँ, आ गए। तू यहीं रह!

सरसी : (करुण स्वर में) नहीं, नहीं। वे फिर मुझे देख लेंगे।

सोनिया : देखें, और देखते ही रह जायें! क्या बुराई है?

सरसी : हाय! तुम तो मेरी लाज चुटकी में लेकर ऐसे फूंक देती हो कि किसी की भी आँखों में भर जाय! मैं जाती हूँ।

सोनिया : लेकिन वे तो इधर ही आ रहे हैं। हम लोग भैया के कमरे में ही छिप जाएँ।

सरसी : हाँ यहीं, छिप जाएँ। इस अलमारी के पीछे।

[दोनों छिप जाती हैं। अभय प्रताप का प्रवेश। वह तन्दुरुस्त है और चुस्ती से बातें करता है। कंधे पर बन्दूक है। आवाज में इतनी गहराई है जैसे प्रतिध्वनि गूँज कर लौटती है।]

अभय : सुखदेव!

[नेपथ्य से 'आया, सरकार'! कहते हुए सुखदेव का प्रवेश।]

अभय : सुखदेव! साथ के लोगों से कह दो कि बाहर की रविशों पर बैठें। ओफ! कितनी गर्द कपड़ों में भर गयी! इतनी तेज आँधी···(सुखदेव का प्रस्थान) कितने पेड़ों की डालें टूट-टूट कर गिरी हैं, जैसे किसी की जमींदारी के टुकड़े हुए हों। (पुकारकर) सुखदेव!

[नेपथ्य से सुखदेव का 'जी सरकार' कहते हुए पुनः प्रवेश।]

अभय : देखो, कोई इस वक्त मेरे पास न आए। मैं माँ से मिलूँगा। (रुककर) कोई पीछे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ? (घूर कर देखता है) कोई नहीं ! देखो, मेरे नहाने का इन्तजाम करो और हाँ, मातादीन से कहना कि आज मेरे घोड़े की अच्छी मालिश हो । मेरा मोती आज इतना दौड़ा है कि आँधी भी मात खा गई !

सुखदेव : जो आज्ञा, सरकार !

अभय : हाँ, और सुनो ! किशन भी मेरे साथ आया है । उसके पैरों में गहरी चोट आ गयी है । काकाजी से कहना कि उसके पैरों में दवा लगा दें । माँ से कहना कि मैं आ गया हूँ । समझे !

सुखदेव : जैसी आज्ञा, सरकार ! (प्रस्थान)

अभय : (पुकार कर) रतन ! (नेपथ्य से) सरकार ! (रतन का प्रवेश)

अभय : जूते खोलो । ओह, मैं कितना थक गया हूँ ! (काउच पर लेट जाता है । रतनलाल जूते खोलता है ।)

अभय : (अपने आप) जंगल की झाड़ियाँ—जैसे जगह-जगह जंगली सुअर सिमिट के बैठ गए हैं । टेढ़े-तिरछे काँटे जैसे साँप और विच्छू जंगली पौधे बन गए हैं—तो जैसे जहर का डंक मार देते हैं ।

रतन : सरकार ! अपने गाँव का जंगल तो वहुत घना है ।

अभय : हर साल साफ करता हूँ लेकिन बढ़ जाता है । जैसे किसी गरीब किसान का कर्ज हो । जंगली सूअर उसमें छिपे रहते हैं—खेतों की फसल ऐसी बरबाद करते हैं जैसे इन्हीं के खाने के लिए खेत बोंए गए हैं ।

रतन : सरकार ! पैर मल दूँ ? जूते में कसे-कसे अकड़ गए होंगे ।

अभय : मल दो । कोई आया तो नहीं ?

रतन : कोई नहीं, सरकार ! रामजतन आया था ।

अभय : वह पंडित ! वहुत अच्छा गाता है । बेचारा गरीब है, अगर किसी राजदरबार का गवैया होता तो महलों में रहता ! लेकिन किस्मत—उसकी किस्मत तो गलियों में बिखरी है । यहाँ से वहाँ जैसे अपने गीत को ही रास्ता बनाकर चलता है । मैं उसे अपने यहाँ रखूँगा । शिकार में भी अपने साथ ले जाऊँगा । सुनते हैं, संगीत से जानवर भी खिचकर चले आते हैं ।

रतन : ठीक है, सरकार ! (देखकर) माता जी आ गईं ।

[चम्पादे का प्रवेश]

चम्पादे : अभय ! आज तू कहाँ इतनी देर तक रह गया था ? हम लोग तो तेरा रास्ता देखते-देखते थक गए ।

अभय : (उठकर) माँ जी ! आज कुछ न पूछो । पहले तो बड़ी आँधी आयी फिर एक जंगली सूअर के शिकार ने थका डाला । यों तो जंगली सूअर खेती ही बरबाद करता है, पर आज वह एक गाय से उलझ गया । वह उस गाय को मारने ही वाला था कि मैंने गोली दाग दी । गोली की मार खाकर वह भागा । मैंने अपना घोड़ा तेज किया और उसका पीछा किया । वह अपने को बचाता हुआ इतना तेज भागा कि मैंने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीलों उसका पीछा किया।

चम्पादे : जंगली सूअर सचमुच बड़ा परेशान करता है!

अभय : वह जैसे ही बन्दूर की मार के भीतर आया, वैसे ही मैंने एक गोली में उसका काम तमाम कर दिया!

चम्पादे : तुम भी वहुत थक गए होगे, अभय!

अभय : घोड़ा वहुत थक गया और मुझे झाड़ियों के काँटे लगे। कपड़े भी फटे लेकिन शिकार में इसकी कुछ याद भी नहीं रहती। और माँ जी, जब मैं लौटा तो देखा कि वह काली गाय तुम्हारी ही थी, जो जंगल में भटक गई थी।

चम्पादे : किन्तु गाय कहाँ है?

अभय : मनबोध रास्ते में मिल गया। उसी को सौंप दी। वह लेकर आता होगा।

चम्पादे : अभय! भगवान की वड़ी कृपा समझो कि तुम जंगल में मौके से पहुँच गए, नहीं तो जंगली सूअर ने मेरी गाय मार डाली होती!

अभय : जिसकी जिन्दगी है, उसे कोई नहीं मार सकता, माँ जी!

[नेपथ्य से रतन : 'सरकार, मैं जाऊँ?']

अभय : क्या है, रतन?

रतन : सरकार, काका साहब ने किशनसिंह ठाकुर के पैरों में दवा लगा दी।

अभय : ठीक है, अभी किशनसिंह ठाकुर घर नहीं जायेंगे। मैं उनकी चोटें देखूँगा।

चम्पादे : किशन सिंह वही न, जो रुपयों का लेन-देन करते हैं? उन्हें चोट कैसे लगी?

अभय : माँ जी! आज बहुत बड़े भेद की बात मालूम हुई।

चम्पादे : भेद की? कैसे भेद की बात?

अभय : किशन सिंह डाकू है। वह डाकुओं के गिरोह में है।

चम्पादे : डाकुओं के गिरोह में?

अभय : हाँ, डाकुओं के गिरोह में। रात में वह डाका डालता है, दिन में रुपयों के लेन-देन का व्यवहार करता है।

चम्पादे : तुझे कैसे मालूम हुआ?

अभय : जब मैं अपने साथियों के साथ जंगल से लौट रहा था तो एक झाड़ी में कुछ लोग छिप कर वातें कर रहे थे। रुपयों का बटवारा करते समय उनमें झगड़ा होने लगा, तभी हमारे आदमी वहाँ पहुँच गए। मारपीट शुरू हो गयी। किशनसिंह को भी चोट आयी।

चम्पादे : आदमी तो वड़ा सीधा मालूम देता था।

अभय : हाँ, मैं भी उसे सीधा आदमी समझता था लेकिन वह डाकू निकला! जब डाकू भाग गए तब यह पड़ा हुआ कराह रहा था। मैंने पास पहुँचकर उसे पहिचाना। अरे, यह तो किशन है! चल नहीं सकता था, घुटनों पर उसे गहरी चोट लगी थी। मैंने दो आदमियों को चारपाई लेने भेज दिया। और उससे बातें कीं।

चम्पादे : वड़ा वहुरूपिया बना था!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभय : हाँ, जब मैंने उससे कहा कि मैं तुम्हें पुलिस के हवाले कर दूंगा तो वह हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाने लगा और माँफी माँगने लगा। मैंने उससे जब सच्चा-सच्चा हाल बतलाने को कहा तो उसने अपना सारा भेद खोल दिया और कसम खायी कि आइन्दा कभी डाका नहीं डालूंगा।

चम्पादे : उसकी कसम का क्या भरोसा ?

अभय : एक बात और मालूम हुई।

चम्पादे : वह क्या ?

अभय : सरसी उसकी बेटी नहीं है।

चम्पादे : (आश्चर्य से) सरसी उसकी बेटी नहीं है ? तब किसकी बेटी है ? यह तू क्या कह रहा है ?

अभय : किशन ने सरसी को पाल-पोस कर बड़ा किया है। वह अहीर की लड़की है।

चम्पादे : अहीर की ?

अभय : एक बार डाकुओं ने अहीर के घर डाका डाला। गाय-भैंस छोड़ बाकी सब कुछ ले गए। उन्होंने अहीर और उसकी स्त्री को कत्ल कर दिया। उसकी छोटी बच्ची बिस्तर पर पड़ी रो रही थी। किशनसिंह उसे उठाकर घर ले आया। तभी से सरसी उसके पास है।

चम्पादे : यह बात गाँव में किसी को नहीं मालूम ?

अभय : यह बात सरसी भी नहीं जानती। जब कभी उसके बाप की बात चलती है तो किशन और उसकी स्त्री में लड़ाई हो जाती है। मैं इस गुत्थी को सुलझाना चाहता हूँ।

चम्पादे : तू कैसे सुलझाएगा ?

अभय : सरसी का विवाह···

चम्पादे : किसके साथ करेगा ? पहले तो मैं समझती थी कि सरसी ठाकुर की लड़की है, इसी घर में चली आएगी।

अभय : तो अब भी आ सकती है।

चम्पादे : (आँखें फाड़ कर) क्या ? अब भी आ सकती है ?

अभय : हाँ, आ सकती है। देखो, माँ ! पहले मैं विवाह नहीं करना चाहता था। सोचा था, कि जमींदारी रही नहीं, मन की सब उमंगें मन में ही घुट कर रह गयीं, तो विवाह का कोई अर्थ नहीं है। शिकार खेलता हूँ, वही जिन्दगी में एक शौक है। जिन्दगी भर खेलता रहूँगा। लेकिन अब कुछ और बात सोचता हूँ।

चम्पादे : जो बात सोचता है, वह हो नहीं सकती। यह गुड्डे-गुड़ियों की शादी नहीं है कि अंग्रेज गुड्डा हबशिन गुड्डी से शादी कर ले ! जाँति-पाँति तोड़कर शादी नहीं हो सकती।

अभय : हो सकती है, और होकर रहेगी।

चम्पादे : (तेज स्वर में) हम लोग राजपूत हैं, अभय !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभय : राजपूतों ने ही आपस में लड़कर देश की स्वतन्त्रता खोयी है। माँ ! यदि हमारे राजाओं ने छोटी-छोटी बातों में अपनी शक्ति न खोयी होती तो उनकी ओर कोई देख भी नहीं सकता था। जब कोई पहाड़ ज्वालामुखी बन जाता है तो वह अपनी ही आग से अपने चारों ओर की हरियाली नष्ट कर देता है और आग की नदी में सारी भूमि नष्ट हो जाती है।

चम्पादे : मैं तेरी बकवास नहीं सुनना चाहती। जब किसी को कोई स्वार्थ साधना होती है तो वह ऋषि-मुनियों की बातें अपने चारों तरफ लपेट लेता है और खुद साधू-महात्मा बन जाता है। लेकिन होता है वह पक्का स्वार्थी।

अभय : इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है, माँ जी ! सरसी की बातें अब लोगों को मालूम हो गई हैं। अब इस गाँव में उसकी जिन्दगी दूभर हो जाएगी। उस भोली-भाली लड़की को अपमान से बचाने के लिए मैं उससे विवाह करूँगा।

चम्पादे : लेकिन तू राजपूत है, और वह अहीर की लड़की !

अभय : तो इससे क्या हुआ ! जब समाज छोटा था तो सुविधा के लिए हमने अपने भाइयों में समाज के काम बाँट दिए थे। इसी में जाति-पाँति की सीमाएँ बन गयी थीं। लेकिन अब तो हमारा समाज बहुत बड़ा हो गया। अब तो सभी व्यक्ति देश और समाज का काम कर सकते हैं। सब एक देश-वासी हैं।

चम्पादे : तू समझता है कि तेरी बातों में आकर मैं अपने कुल-धर्म को भूल जाऊँ ? मैं इस घर में नहीं रहूँगी, अभय ! चम्पादे यह सहन नहीं करेगी। वह घर छोड़कर चली जावेगी।

अभय : कभी माँ भी अपने घर-बार को छोड़ सकती है ? अपने बेटे को छोड़ सकती है ? अब तो तुम सारे समाज की माँ हो। जब तुम ऐसा समझोगी, माँ ! तभी तो हम कुछ कर सकेंगे। उलझे हुए जीवन का प्रश्न हल होगा। आज का जीवन तो एक काला भौंरा है जो प्रश्न-चिह्नों के पैरों से ही चलता है। जब तक तुम उसे उदारता और सहानुभूति के पंख नहीं दोगी तब तक वह सुख के फूलों के पास तक उड़कर जा ही नहीं सकता और आनन्द का रस नहीं पा सकता।

[फिर आँधी की आवाज सुनाई पड़ती है।]

चम्पादे : आँधी ! ये आँधी फिर उठी ! आग बुझा आऊँ, नहीं तो इस आँधी में सारा घर जल जाएगा। (जाती है।)

अभय : जाओ माँ ! घर की रक्षा करो, क्योंकि तुम माँ हो !

[शीघ्रता से सोनिया का प्रवेश।]

सोनिया : भैया ! भैया ! भीतर चलो। न जाने क्यों सरसी बेहोश होकर गिर पड़ी।

अभय : सोनिया ! सरसी बेहोश हो गयी ? आज जीवन के चारों ओर आँधी बह रही है ! सब उसमें उड़ रहे हैं। हम एक-दूसरे को साथ लेकर चलें तो सभी बच

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकेंगे। जिन्दगी की नदी में बाढ़ आ गयी है। साथ रहेंगे तो बचेंगे, नहीं तो डूब जाएँगे।

[आँधी की आवाज तेज होती है। दूर से रामजतन का गीत सुन पड़ता है—]

धीरे बहु नदिया, तैं धीरे बहु,
मोरा पिया उतरइ दे पार !

[आँधी की आवाज तेज होती है और उसमें वह गीत खो जाता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिषेक पर्व

पात्र-परिचय

(प्रवेशानुसार)

सामन्तराव झालौर : महाराणा प्रताप का सामन्त
सुरजनसिंह : कुम्भलगढ़ का दुर्गरक्षक
जगमल : महाराणा प्रताप का भाई
चन्दावत : महाराणा प्रताप का सामन्त
सगर : महाराणा प्रताप के भाई
महाराणा प्रताप : मेवाड़ के महाराणा
जैतसिंह : विदनौर का राठौर
रायसिंह : महाराणा प्रताप के भाई
सालुम्बरा नरेश, रामसिंह तम्बर, भील सरदार : महाराणा प्रताप के सहायक
दूत आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय : सूर्योदय के पूर्व स्थान : कुम्भलगढ़ काल : 1572 ई०

[स्थिति—कुम्भलगढ़ का दुर्ग सुनसान वनभूमि में किसी उन्मत्त सिंह की भाँति तनकर अपनी शक्ति तोल रहा है। वह उषाकाल की वेला में अलसाया हुआ-सा सुनसान वन-प्रान्त को बोझिल बना रहा है। दुर्ग के टिमटिमाते हुए दीपक उसकी आँखों की भाँति झपकते हुत दृष्टिगत हो रहे हैं।

दूर पर घण्टे और घड़ियाल की ध्वनि सुनायी पड़ रही है। कुछ ही क्षण बाद शंखनाद होता है जो निस्तब्ध नीरवता में एक लकीर-सी खींचता हुआ शून्य में विलीन हो जाता है। बीच-बीच में कोई पक्षी चीख उठता है।

एक ओर से गम्भीरता की चाल से एक सामन्त का प्रवेश। प्रातःकाल के धुँधलेपन में उसकी वेश-भूषा अस्पष्ट-सी दीख पड़ती है। फिर भी सिर पर उठी हुई पगड़ी, शरीर पर अँगरखा और पैंजामे की रूपरेखा लक्षित होती है। कमर में तलवार। वह गहराई से दायें-बायें देखता है। फिर सामने दृढ़तापूर्वक खड़े होकर अधिकारपूर्ण सधे स्वर में पुकारता है—]

सामन्त : दुर्ग पर कौन है ?

[नीरवता में स्वर गूँज उठता है। कुछ क्षणों बाद वह फिर पुकारता है—]

दुर्ग पर कौन है ?

[भीतर से कड़ा स्वर : सावधान !]

सामन्त : मैं सामन्त राव झालौर हूँ। दुर्गरक्षक !

दुर्गरक्षक : (प्रवेश कर) घणी खमा, अन्नदाता !

सामन्त : सिंह-द्वार पर कोई नहीं है ?

दुर्गरक्षक : दस सामन्त और एक हजार सैनिक हैं। मैं सुरजन सिंह हूँ। भगवान् एकलिंग की आरती हो रही थी। सब प्रणाम करने गए हैं। मैं सिंह-द्वार से ही प्रणाम कर रहा था। कुछ देर हुई। पधारिए।

सामन्त : सालुम्बरा-नरेश और सामन्त चन्दावत कृष्ण पधारे ?

दुर्गरक्षक : दूत ने सूचना दी थी कि सूर्योदय होने पर महाराज और सामन्त पधारेंगे। अभी तो सूर्योदय नहीं हुआ, आते ही होंगे।

सामन्त : बहुत आवश्यक कार्य है। ग्वालियर-नरेश महाराज रामचन्द्र तम्बर की ओर से कुछ सूचना मिली ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्गरक्षक : वे भी आ रहे हैं, राव राजा !

सामन्त : वे अनेक सामन्तों से मिल रहे हैं। उन्हें आने में शायद कुछ विलम्ब हो।

दुर्गरक्षक : तो आप भीतर पधारिए, राव राजा !

सामन्त : नहीं, मैं बाहर ही सालुम्बरा-नरेश और सामन्त चन्दावत कृष्ण की प्रतीक्षा करूँगा। तुम भीतर के गुप्त मार्ग से भील सरदार को सूचना दो कि वे भी आकर हम लोगों से मिलें।

दुर्गरक्षक : जैसी आज्ञा, अन्नदाता ! (प्रस्थान)

सामन्त : (टहलते हुए) परिस्थिति···बड़ी ही···भयानक है। भगवान् एकलिंग ही रक्षा करें ! ···एकलिंग ! तुम्हीं मेवाड़ के रक्षक हो ! ···तुम्हारी जय हो !

[बाहर से एक भारी शिला के लुढ़कने का शब्द। तलवार लिए हुए जगमल का प्रवेश।]

जगमल : (आते ही) भगवान् एकलिंग की नहीं, मेरी जय बोलो।

सामन्त : (शीघ्रता से मुड़कर) कौन ? (घूरकर देखता हुआ) कुमार जगमल···

जगमल : कुमार जगमल नहीं, महाराणा जगमल···(अट्टहास करता है। एक-एक शब्द पर जोर देकर बोलता है) म···हा···रा···णा···ज···ग···म···ल।

सामन्त : महाराणा उदयसिंह के रहते, तुम कैसे महाराणा बन सकते हो ?

जगमल : क्यों ? क्यों नहीं बन सकता ? मैं महाराणा का पुत्र हूँ। उनका उत्तराधिकारी हूँ।

सामन्त : उत्तराधिकारी तो प्रतापसिंह को होना चाहिए।

जगमल : प्रतापसिंह को ? (हँसकर) ओ···तुम प्रतापसिंह के मामा हो। इसलिए प्रतापसिंह को होना चाहिए।

सामन्त : नहीं। इसलिए कि प्रतापसिंह महाराणा उदयसिंह के सबसे ज्येष्ठ पुत्र हैं। और मेवाड़ राज्य में उत्तराधिकार ज्येष्ठ पुत्र को ही मिलता है। तुम तो महाराणा के छोटे पुत्र हो।

जगमल : बड़े-छोटे का प्रश्न नहीं हैं, सामन्त ! यह महाराणा की इच्छा का प्रश्न है। महाराणा की इच्छा है कि मैं उनका उत्तराधिकारी बनूं, मैं मेवाड़ का महाराणा बनूं। (तनकर खड़े होते हुए) 'मेवाड़ के महाराणा श्री जगमलसिंह !' यही बात सुनाने के लिए तुम्हें खोजता हुआ आया हूँ।

सामन्त : कुमार जगमल ! तुम महाराणा की इच्छा से भले ही आत्म-प्रशंसा करो, किन्तु महाराणा की इच्छा मेवाड़ को मान्य नहीं होगी। कुमार जगमल ! मेवाड़ महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र को ही उत्तराधिकारी मानता आया है, और इस दृष्टि से मेवाड़ के उत्तराधिकारी होंगे कुमार प्रतापसिंह !

जगमल : तुम विद्रोही हो, सामन्त। तुम महाराणा की इच्छा के विरुद्ध बोल रहे हो।

सामन्त : मैं मेवाड़ की परम्परा की बात कह रहा हूँ।

जगमल : परम्परा से महाराणा महान् है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामन्त : नहीं, परम्परा से ही महाराणा को पद प्राप्त होता है।

जगमल : नहीं, सामन्त ! परम्परा का मोह बदला जा सकता है, महाराणा नहीं बदला जा सकता। और तुम्हारा यह व्यवहार महाराणा के प्रति विद्रोह है। तुम्हें इसका दण्ड दिया जाएगा। तुम्हारी जीभ काट दी जाएगी।

सामन्त : कुमार जगमल ! जीभ काटने वाले के हाथ पहले काट दिए जाएँगे। विद्रोह के क्षणों में जीभें भी तलवारें बन जाती हैं और उनके सामने फौलाद की तलवार भी कुण्ठित हो जाती है।

जगमल : तो तुम्हारी जीभ विद्रोह की तलवार है ?

सामन्त : विद्रोह की तलवार तो तुम लिए हो, जगमल ! महाराणा उदयसिंह के जीवित रहते तुम अपने को महाराणा कहते फिरते हो ?

जगमल : महाराणा का जीवन तो समाप्तप्राय है। वे अपनी मृत्यु की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं।

सामन्त : अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं ? ऐसे समय तो तुम्हें उनकी शैया के समीप रहना चाहिए, कुमार जगमल !

जगमल : उसके लिए मेरी माँ पर्याप्त हैं। उनकी आँखों में यथेष्ट आँसुओं के सागर हैं। पिता को मेरे आँसुओं की आवश्यकता नहीं है। फिर मुझे साहस का संचय भी करना है।

सामन्त : साहस का संचय ?

जगमल : हाँ, साहस का संचय। राज्याधिकार करुणा के आँसुओं से नहीं लिखे जाते। वे लिखे जाते हैं—आग की चिनगारियों से। पिता की मृत्यु तो राज्याधिकार का स्वर्ण-सोपान है जिसका निर्माण कुछ ही क्षणों में हो जाएगा।

सामन्त : तुम्हें लज्जा आनी चाहिए, कुमार जगमल ! कि तुम अपने पिता की मृत्यु में राज्याधिकार का सुख देखते हो।

जगमल : प्रत्येक उत्तराधिकारी को देखना चाहिए। राज्याधिकार गर्व और गौरव की वस्तु है, विशेषकर जब मेरे पिता ने इस बात की घोषणा कर दी है। तुमने वह घोषणा नहीं सुनी।

सामन्त : उस घोषणा में केवल कण्ठ है, वह भी किसी दूसरे का कण्ठ है। हृदय नहीं है।

जगमल : तात्पर्य ? (कठोर दृष्टि)

सामन्त : तात्पर्य यह कि वह घोषणा महाराज ने नहीं की, उनसे करायी गयी है।

जगमल : किसने करायी है ?

सामन्त : तुम्हारी माँ ने जिन्होंने महाराणा पर अधिकार कर रखा है।

जगमल : (चीखकर) सामन्त ! तुम अपनी सीमा से बाहर जा रहे हो।

सामन्त : कठोर सत्य को क्रोध से छिपाया जा सकता। फिर से सुन लो, कुमार जगमल ! महाराणा की घोषणा में तुम्हारी माँ का कण्ठ-स्वर है।

जगमल : (तलवार निकालकर) सावधान !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामन्त : तलवार तौलने की शक्ति है तुममें ? (तलवार निकाल लेता है।)

जगमल : विद्रोही ! दुस्साहसी ! सम्हल···

[जगमल तलवार से प्रहार करता है। सामन्त झालौर उसे तलवार पर झेलकर भरपूर हाथ से वार करता है। दो क्षण द्वन्द्व होता है। सामन्त के कठोर प्रहार से कुमार जगमल के हाथ की तलवार छूटकर दूर जा गिरती है।]

जगमल : (भय से चीखकर) रुको, सामन्त !

सामन्त : (रुककर) मैं स्वयं शस्त्रहीन पर प्रहार नहीं करूँगा। तलवार उठाओ, कुमार जगमल !

[कुमार जगमल नीचा सिर किए हुए तलवार उठाता है।]

सामन्त : प्रहार करो !

जगमल : नहीं। युद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। (तलवार म्यान में रखते हुए) प्रहार कर मैं तुम्हें मारना नहीं चाहता था। मैं तो तुम्हारी शक्ति की परीक्षा लेना चाहता था।

सामन्त : (मुस्कराकर) परीक्षा ? ले ली परीक्षा ?

जगमल : हाँ, अच्छी तलवार चलाते हो। तलवार चलाने की ऐसी कला कम वीरों में पायी जाती है। यह कला तो बड़े भाग्य से आती है। तुम्हें मेरा अंग-रक्षक होना चाहिए। इसलिए एक बात कहना चाहता हूँ। समझ लो कि तुम पर प्रसन्न होकर एक उपहार देना चाहता हूँ। और···और वह उपहार यह है कि···तुम नये महाराणा (अपनी ओर संकेत करते हुए) जगमलसिंह के···प्रमुख हाँ, प्रमुख··· प्रमुख नहीं, सर्वप्रमुख सामन्त बनोगे ? मैं तुम्हें अभी से प्रमुख सामन्त घोषित करता हूँ। तुम देवगढ़ जागीर के अधिकारी होगे। उसमें 125 ग्राम हैं और उनकी वार्षिक आय है अस्सी हजार !

सामन्त : कुमार जगमल ! उपहार देने के व्यर्थ अभिमान में मत भूलो ! जाकर अपने पिता के अन्तिम समय में उन्हें शान्ति दो और उनकी सेवा करो।

जगमल : मैं तुम्हारा उपदेश सुनने नहीं आया, झालौर ! अपने अभिमान में तुम इतने बड़े उपहार का मूल्य नहीं समझे ! तुम्हारे इस अभिमान का उत्तर मैं तुम्हें संग्राम-भूमि में दूँगा। यहाँ एकान्त में तुमसे युद्ध कर अपनी शक्ति का अनुचित प्रयोग क्या करूँ। अभी तुम्हें छोड़ता हूँ। अपने साथी-सामन्तों को एकत्र कर संग्राम-भूमि में मिलना, इस समय जाता हूँ। (वेग से प्रस्थान।)

सामन्त : (कुछ देर तक कुमार जगमल के जाने की दिशा में देखता है) कायर कुमार ! अपने···झूठे अभिमान में अपने को महाराणा घोषित करते फिरते हैं···उधर महाराणा उदयसिंह अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ···गिन रहे हैं। कुमार प्रताप-सिंह ! तुम्हारा भाग्य···तुम्हारा भाग्य अहंकारियों की क्रीड़ा-कन्दुक बना हुआ है ! प्रताप···कुमार प्रतापसिंह···

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[बाहर दौड़ते हुए घोड़े के टापों की ध्वनि आती है। शीघ्रता से सामन्त चन्दावत का प्रवेश।]

चन्दावत : सामन्त झालौर ! तुम यहाँ आ गए ?

झालौर : सूर्योदय के पहले से मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। सालुम्बरा-नरेश नहीं पधारे ?

चन्दावत : वे सामन्तों से बातें करते हैं। वे यहाँ कुछ विलम्ब से पहुँचेंगे; तुम्हें सूचना देने के लिए ही उन्होंने मुझे पहले भेज दिया। कुमार जगमल यहाँ आए थे ?

झालौर : महाराणा बनकर आए थे। सामन्त चन्दावत !

चदावत : महाराणा बनकर ?

झालौर : मेवाड़ के महान् महाराणा।

चन्दावत : जब मैं इस ओर आ रहा था तब वे अपने घोड़े को तेज दौड़ते हुए भागे जा रहे थे। मुझे देखकर उन्होंने अपने घोड़े को और तेज दौड़ा दिया।

झालौर : आपके सामने अपने को महाराणा घोषित नहीं किया ?

चन्दावत : देखने से बहुत भयभीत मालूम देते थे।

झालौर : यहाँ उन्होंने साहसी बनने का प्रयत्न किया था।

चन्दावत : नहीं बन सके ?

झालौर : मैंने जब उन्हें 'कुमार जगलल' नाम से पुकारा तो तनकर खड़े हो गए और बोले—'कुमार जगमल' नहीं, 'महाराणा जगमल' कहो (एक-एक शब्द पर जोर देते हुए) 'म···हा···रा···णा···ज···ग···म···ल···!' महाराणा उदयसिंह के पुत्र···उनके उत्तराधिकारी···

चन्दावत : मैं यह जानता हूँ कि महाराणा ने कुमार जगमल को उत्तराधिकारी घोषित किया, कुमार प्रताप को नहीं। किन्तु महाराणा उदयसिंह तो अभी जीवित हैं।

झालौर : वे भयानक रूप से अस्वस्थ हैं। सामन्त चन्दावत !

चन्दावत : भयानक रूप से ?

झालौर : हाँ, यह बात राजमहल से छिपायी जा रही है, किन्तु कुमार जगमल अपने उत्तराधिकार के अभिमान में सब लोगों से उनकी भयानक अस्वस्थता की बात करते फिरते हैं। और सामन्त चन्दावत ! महाराणा स्वस्थ ही कब रहे ? बयालीस वर्ष की अवस्था तक बीस विवाह, पच्चीस पुत्र और बीस पुत्रियाँ !

चन्दावत : कितना अच्छा होता कि बयालीस वर्ष की अवस्था तक वे बीस युद्ध करते, पच्चीस दुर्ग जीतते और बीस राज्यों से मेवाड़ की सीमा बढ़ाते !

झालौर : आज तक इतने विलासी महाराणा मेवाड़ के सिंहासन पर नहीं बैठे। बेचारी पन्ना धाय क्या जानती थी कि अपने पुत्र को बनवीर की तलवार से कटवाकर वह जिस मेवाड़ के उत्तराधिकारी की रक्षा कर रही है, वह मेवाड़ की स्वतन्त्रता के लिए युद्ध नहीं करेगा, बीस रानियों को लेकर रंगमहल में हास-परिहास करेगा !

चन्दावत : और सामन्त झालौर ! उसके पास इतना विवेक भी नहीं रहेगा कि वह अपने ज्येष्ठ पुत्र कुमार प्रतापसिंह का उत्तराधिकार छीनकर अपने छोटे निर्बल पुत्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार जगमल को सौंप देगा !

झालौर : और वह जगमल, जो अपने पिता की अस्वस्थता में उनकी सेवा न कर अपने को महाराणा घोषित करता फिरेगा और अट्टहास करते हुए अपने पिता के अन्तिम क्षणों की बात कहेगा।

चन्दावत : अन्तिम क्षणों की ?

झालौर : हाँ-हाँ, अन्तिम क्षणों की। अभी कुमार जगमल कह रहे थे कि महाराणा अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं। कुमार जगमल तो चाहते हैं कि महाराणा का देहान्त शीघ्र ही हो जाए जिससे वे मेवाड़ के महाराणा बन सकें।

चन्दावत : मेवाड़ का महाराणा-पद प्राप्त करना उनके लिए ऐसा सरल नहीं है।

झालौर : किन्तु वे तो अपने अभिमान में इसे सरल समझते हैं। कहते थे कि यही सुनाने के लिए तुम्हें खोजता हुआ आया हूँ क्योंकि तुम कुमार प्रतापसिंह के मामा हो ! प्रतापसिंह नहीं···मैं मेवाड़ का महाराणा हूँ। मैंने उनकी बात का विरोध किया तो उन्होंने मुझ पर तलवार चलायी।

चन्दावत : अच्छा, बात यहाँ तक बढ़ी ?

झालौर : हाँ, और जब द्वन्द्व-युद्ध में उनकी तलवार हाथों से छूट गयी तो मुझे अपने पक्ष में करने के लिए उन्होंने मुझे देवगढ़ की जागीर देने का प्रलोभन दिया। जब इसमें भी उन्हें सफलता नहीं मिली तो वे रण-क्षेत्र का निमन्त्रण देकर चले गए।

चन्दावत : यह मेवाड़ का दुर्भाग्य है, सामन्त ! मैं नहीं जानता था कि वह उच्छृंखल कुमार अपने अभियान का डंका अपने पिता की मृत्यु के पूर्व ही पीटना आरम्भ कर देगा ! महाराणा के उत्तराधिकार की घोषणा ने जैसे उसके अभिमान में पंख लगा दिए हैं। वह सब दिशाओं में उड़ रहा है और अपने पंखों की दूषित वायु से सारे मेवाड़ को अपमानित कर रहा है ! तुम उसके पंख नहीं काट सकते ?

झालौर : अभी ही काट देता, सामन्त चन्दावत ! किन्तु वे अपनी तलवार उठाकर भाग गए।

चन्दावत : (सोचते हुए) महाराणा की घोषणा में परिवर्तन नहीं हो सकता ?

झालौर : सम्भव नहीं है, सामन्त ! महाराणा उदयसिंह अपनी भाटी रानी से बड़ा प्रेम रखते हैं। यह भाटी रानी कुमार जगमल की माँ हैं, उन्होंने महाराणा को विवश कर दिया है, वे राज्य का उत्तराधिकार ज्येष्ठ पुत्र कुमार प्रतापसिंह को न देकर कुमार जगमल को दें। महाराणा की घोषणा में पुरुष-कण्ठ नहीं है, नारी-कण्ठ है।

चन्दावत : भाटी रानी ने कैकेयी का आदर्श अपने सामने रखा है कि ज्येष्ठ पुत्र राम को उत्तराधिकार न देकर भरत को दिया जाए !

झालौर : सत्य है, सामन्त ! किन्तु अन्तर यह है कि भरत भ्रातृभक्त थे, कुमार जगमल भ्रातृद्रोही हैं। अपने बड़े भाई कुमार प्रतापसिंह से वे घृणा करते हैं।

चन्दावत : घृणा करते हैं, यह तो मैं जानता हूँ, किन्तु मेरा विश्वास है कि मेवाड़ का गौरव कुमार प्रतापसिंह के हाथों ही रक्षित रहेगा, कुमार जगमल के हाथों नहीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झालौर : इसके लिए हमें प्रयत्न करना होगा।

चन्दावत : हम सब इसके लिए प्रयत्न करेंगे। महाराज सालुम्बरा तो पिछली रातभर सामन्तों से मिलते रहे। सभी सामन्त महाराणा उदयसिंह की घोषणा से अप्रसन्न हैं। वे कुमार प्रतापसिंह का पक्ष लेकर विद्रोह करने के लिए तैयार हैं।

झालौर : यह समय विद्रोह का नहीं है, चन्दावत ! दिल्ली का बादशाह अकबर यही तो चाहता है कि मेवाड़ में विद्रोह हो और वह शाही फौज भेजकर मेवाड़ पर शाही झण्डा फहरा दे। वह समझता है कि मेवाड़ की स्वतन्त्रता भी राजा भगवानदास की बहन है जिसके साथ वह विवाह कर सकता है। वह यह नहीं समझ सकता कि मेवाड़ की राज्य-लक्ष्मी बिजली की भयानक अग्नि-रेखा है जो तड़पेगी तो बादशाह के साथ दिल्ली का सिंहासन भी ध्वस्त कर देगी···सम्पूर्ण रूप से ध्वस्त कर देगी।

[दूत का प्रवेश]

दूत : (हाथ जोड़कर) घणी खमा, अन्नदाता ! एक घुड़सवार यह सूचना दे गया कि महाराणा उदयसिंहजी इस संसार में नहीं रहे।

झालौर, चन्दावत : (एकसाथ चौंककर) नहीं रहे ?

दूत : यह भी कहा है, अन्नदाता ! कि कुछ सरदारों ने महाराणाजी की मृत्यु-शय्या पर ही कुमार जगमल को महाराणा बना दिया है !

चन्दावत : भयानक दुर्घटना ! अच्छा··· (सोचते हुए) तुम···जाओ।

दूत : जो आज्ञा ! (प्रस्थान)

चन्दावत : (गहरी साँस लेकर) तो···महाराणा उदयसिंह की मृत्यु और कुमार जगमल का राज्याभिषेक ! दोनों ही कार्य एकसाथ हो गए !

झालौर : मेवाड़ के इतिहास में ये दोनों ही पृष्ठ कलंकित रहेंगे।

चन्दावत : बप्पारावल, महाराणा सांगा और महाराणा कुम्भा ने जिस मेवाड़ के मस्तक पर मुकुट रखा, उसी पर कलंक का टीका लगाने का कार्य महाराणा उदयसिंह ने किया। अब महाराणा जगमल उस कलंक के टीके को कलंक-रेखा बनाने का कार्य करेंगे।

झालौर : इस कलंक-रेखा को केवल महाराणा प्रतापसिंह ही मिटा सकते हैं।

चन्दावत : ठीक कहते हो। चलो, भीतर चलकर अन्य सामन्तों के साथ मिलकर भविष्य के कार्यक्रम पर गम्भीरता से विचार किया जाए।

झालौर : चलो, मैं गुप्त मार्ग से अन्य सामन्तों को भी बुला लूँगा।

[दोनों भीतर चले जाते हैं। कुछ क्षणों तक शान्ति रहती है। फिर शान के साथ महाराणा जगमल और उनके छोटे भाई कुमार सगरसिंह आते हैं। कुमार सगरसिंह चारों ओर सावधानी से देखकर आगे बढ़ते हैं।]

जगमल : दोनों सामन्त भाग गए, कुमार सगरसिंह ! मैं जानता हूँ कि दोनों कितने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कायर हैं। हम लोगों को तो पिता की मृत्यु होने-भर की प्रतीक्षा थी। अब पिता की घोषणा के अनुसार मैं महाराणा हूँ। (गर्व से चारों ओर देखते हैं) एँ···और जब मैं महाराणा हूँ तो अब ये साधारण सामन्त (दुर्ग के भीतर संकेत करते हुए) किस बल पर मेरा सामना कर सकते हैं? तलवार बाँधते हैं, किन्तु धार तलवार पर नहीं है, उनकी जीभ पर ही है! कायर! कलंकी! अब तो मैं हूँ और मेरा आतंक है जो मेवाड़ के कण-कण पर छाया हुआ है···महाराणा का आतंक!

सगर : यह तो होगा ही; महाराणा जगमल! यह तो होगा ही, जब मैं तुम्हारे साथ हूँ। अब कौन सामन्त हमारे और तुम्हारे सामने खड़ा हो सकता है?

जगमल : हमारे पिताजी थे। वे सामन्तों पर शासन करना नहीं जानते थे। बात करते थे और हँस देते थे। कहीं हँस देने से शासन चलता है? देखो, इस तरह चलना चाहिए। (शान से चलते हैं) इस तरह भौंहों पर बल आना चाहिए। (भौंहें सिकोड़ते हैं) इस तरह मुख कुछ तिरछा रखना चाहिए (मुख टेढ़ा करते हैं) इस तरह बोलना चाहिए—(शान से बोलते हैं) सामन्त! आज मेरी महारानी की दाहिनी आँख क्यों फड़क···क्यों फड़क रही है?

सगर : धन्य हो! महाराणा! आपकी प्रत्येक बात में महाराणापन टपक रहा है। मैंने अपनी पत्नी से पूछा था कि कुमार जगमल के महाराणा होने पर उनकी क्या सम्मति है। उन्होंने कहा···उन्होंने कहा··· (सोचते हुए) क्या कहा था?··· कहा था कि···कुछ स्मरण नहीं आता।

जगमल : कोई बात नहीं। कही हुई बात तो बीत जाती है। जैसे···जैसे···लड़ा हुआ युद्ध भी समाप्त हो जाता है। आगे सन्धि की बात चलती है। शक्ति को संगठित करने के लिए महाराणा को सन्धि की बात चलानी पड़ती है।

सगर : क्यों नहीं, सन्धि की बात चलानी पड़ेगी। अगर युद्ध न हो तो सन्धि कैसी? और अगर सन्धि न हो तो···तो युद्ध कैसा? दोनों साथ चलते हैं जैसे···जैसे···पुरुष और स्त्री···पुरुष युद्ध और स्त्री सन्धि! ठीक है न?

जगमल : बिलकुल ठीक! लेकिन कभी उलटा भी हो जाता है, स्त्री युद्ध बन जाती है और पुरुष सन्धि। हमारे पिताजी ने सन्धि का अच्छा उदाहरण रखा है।

सगर : इस सम्बन्ध में भी मैंने अपनी स्त्री से पूछा था, उसने कहा था कि पुरुष को सदैव ही सन्धि करनी चाहिए।

जगमल : तुम्हारी पत्नी बहुत समझदार है। मैं भी सन्धि को उतना ही महत्त्व देता हूँ जितना सन्धि को!···नहीं···नहीं···जितना युद्ध को और युद्ध में भी मैं आगे बढ़ने का साहस रखता हूँ।

सगर : अवश्य रखना चाहिए। देखिए, मैं भी साहस के साथ आगे बढ़ता हूँ। (गर्व से चलता है) पूछिए क्यों? तो मैंने अपनी पत्नी से पूछा था। उसने कहा—साहस के साथ आगे बढ़ना चाहिए। उसने मुझे अपनी कटार भी दी थी। देखो, यह कटार! (कमर से कटार निकालकर दिखाता है।)

जगमल : अरे, कटार निकालने की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी। मेरी यह तलवार ही

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

काफी है। अभी कुछ देर पहले मैंने इसी तलवार से सामन्त झालौर से द्वन्द्व-युद्ध किया था। ऐसे-ऐसे वार किए कि सामन्त झालौर की तलवार उसके हाथ से छूट-कर दूर जा गिरी और उसने भूमि पर गिरकर अपना मुँह फाड़ दिया। मैंने कहा—डर मत। मैं शस्त्रहीन पर प्रहार नहीं करता। तलवार उठा और मुझ पर प्रहार कर। उसमें इतना साहस कहाँ!···एँ···साहस कहाँ! (अट्टहास करता है) हा-हा-हा···वह अपनी तलवार उठाकर भाग गया!

सगर : मेवाड़ के महाराणा की तलवार में ऐसी ही शक्ति होनी चाहिए कि उसके सामने तलवार क्या, ढाल भी झुक जाए, धनुष तो झुका ही रहता है। मैं भी तो तुम जैसे महाराणा का भाई हूँ, प्रमुख सामन्त सगरसिंह। एक वार एक विद्रोही से मेरा भी द्वन्द्व-युद्ध हुआ था। मैंने अपनी पत्नी से पूछा। उसने स्वीकृति देकर कहा—हाँ, द्वन्द्व करो। उसमें मैंने ऐसे-ऐसे हाथ दिखलाए कि अगर मेरी तलवार न टूट जाती तो मैं उनकी हड्डी-हड्डी तोड़ देता। किन्तु कोई बात नहीं, बाद में मैंने अपनी पत्नी से पूछकर उसे क्षमा कर दिया।

जगमल : हाँ, क्षमा कर देना हम लोगों का भूषण है। महाराणा होने पर चाहता था कि इस गढ़ के भीतर जो एकलिंग का मन्दिर है, वहाँ जाकर प्रणाम कर लेता, किन्तु यहाँ कोई भी नहीं है।

सगर : तो क्या हानि है! चलो, हम लोग भीतर चलें।

जगमल : नहीं, महाराणा का स्वागत करने के लिए यहाँ गढ़ के सामन्तों को रहना चाहिए। महाराणा की मर्यादा के साथ हमें भगवान् एकलिंग के मन्दिर में प्रवेश करना चाहिए।

सगर : कोई बात नहीं। सामन्त बाहर नहीं हैं तो भीतर होंगे। वहाँ वे आपका स्वागत कर लेंगे। फूलों की माला तो मैं अपने साथ ही लाया हूँ। यह मत समझना कि ये फूलों की मालाएँ साधारण हैं। ये मालाएँ मेरी पत्नी ने अपने हाथों से गूँथी हैं। ये मालाएँ छिपाकर मैंने अपने गले में पहन रखी हैं। अवसर आते ही तुम्हें पहना दूँगा। देखोगे? (अपने अँगरखे की तनी खोलता है।)

जगमल : नहीं, नहीं, रहने दो। मालाएँ तो मैं भगवान् एकलिंग को चढ़ाना चाहता था।

सगर : तो ये मालाएँ भगवान् एकलिंग को चढ़ा देना, लेकिन···लेकिन···

जगमल : लेकिन क्या?

सगर : भगवान् एकलिंग तो सर्पों की माला पहनते हैं। सचमुच इन फूलों की मालाओं का क्या होगा, महाराणा। (सोचता है) अच्छा···यदि कुछ देर तुम यहीं ठहरो तो मैं किसी सँपेरे···हाँ, सँपेरे को खोजकर ले आऊँ। उससे साँप लेकर···लेकिन इस सम्बन्ध में मैंने अपनी पत्नी से कुछ नहीं पूछा।

जगमल : प्रत्येक कार्य में तुम्हारी पत्नी का स्थान है, तो जाओ, पूछकर आओ।

सगर : अब पिताजी···महाराणा भी तो पत्नी से ही पूछकर सब कार्य करते थे, तो मैं भी करता हूँ। लेकिन पहले उसकी कही हुई बात को मानना है। उसने कहा था कि महाराणा जगमल का साथ कभी मत छोड़ना। लेकिन अगर तुम कहते हो,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि तुम नये महाराणा हो···तो···तो जाता हूँ।···जाऊँ ?

[सहसा नेपथ्य में देखने लगता है]

ओ महाराणा···महाराणा जी, सावधान हो जाओ···सावधान हो जाओ···तलवार लेकर···प्रताप आ रहा है, प्रताप आ रहा है, प्रताप आ रहा है। कहीं हमसे युद्ध न करे। मेरी पत्नी की कटार···यह···यह भी तुम ले लो। मैं···तो···पिता की मृत्यु से इतना दुखी हूँ कि बार-बार मेरी आँखों में आँसू आ रहे हैं···(आँख में उँगली लगाकर) देखो, ये आँसू !

जगमल : सगरसिंह ! मेरी इच्छा है कि प्रतापसिंह के आने पर तुम मेरे साथ रहोगे।

सगर : मैं रहता तो अवश्य, महाराणाजी ! किन्तु मुझे पिता की याद आ रही है।

जगमल : पिता की याद तो मुझे भी आ सकती है।

सगर : किन्तु तुम अपने को सम्हाल सकते हो, क्योंकि तुम महाराणा हो ! प्रतापसिंह क्रोध में भरे हुए आ रहे हैं। (नेपथ्य में देखता है) उनके साथ दो व्यक्ति और भी हैं। मुझे यहाँ नहीं रहना चाहिए क्योंकि मेरी पत्नी कहती थी कि जहाँ दो या तीन व्यक्ति आपस में बात करें, वहाँ नहीं रहना चाहिए। फिर मैं अपने पिता की याद को क्या करूँ ! मेरे तो आँसू बह रहे हैं।

[आँसू बहाने का नाट्य करता है। दुर्ग की ओर जाता है। दो व्यक्तियों को बन्दी बनाकर कुमार प्रतापसिंह का प्रवेश। उनके हाथ में नंगी तलवार है, जिस पर रक्त की रेखाएँ खिची हैं जिनकी समानता उनके मुख पर खिची क्रोध की रेखाओं से की जा सकती है।]

प्रताप : (जगमल पर तीखी दृष्टि डालकर) महा···राणा···जग···मल ! (प्रश्नात्मक मुद्रा)

जगमल : (अटकते हुए स्वर में) तुम···तुम मेरे महाराणा बनने का विरोध·· विरोध करने आए हो ? तुम ज्येष्ठ हो···मैं मानता हूँ, किन्तु पिता की घोषणा तो सबको मान्य होनी···चाहिए। पिता चाहते थे कि···मैं मेवाड़ का महाराणा बनूँ। मेवाड़ की सेवा करना पुण्य है। और···और···पिता की आज्ञा टालना पाप···पाप है।

प्रताप : (तीखे स्वर में) और अकबर बादशाह को गुप्त सन्धि-पत्र लिखना पुण्य है या पाप ?

जगमल : सन्धि-पत्र लिखने में पुण्य और पाप का प्रश्न नहीं उठता, भाई प्रतापसिंह ! युद्ध और सन्धि तो हमारी नीति के अंग हैं।

प्रताप : पिता की मृत्यु होते ही अकबर को सन्धि-पत्र लिखना, यह नीति है ? तुमने मेवाड़ के सभी सामन्तों की सम्मति ली थी ? भूमि का एक कण आकाश में उड़ जाए और कहे—मैं सूर्य हूँ। जो सन्धि-पत्र आज तक मेवाड़ ने नहीं लिखा, वह सन्धि-पत्र तुम महाराणा बनने के दूसरे ही क्षण अपनी कायरता के प्रमाण में बादशाह अकबर को भेजना चाहते थे ? वह सन्धि-पत्र यह है, (अँगरखे के भीतर से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकालते हैं) जो इन देश-द्रोहियों का पीछा कर मैंने छीना है। (बन्दियों को संकेत कर) पहचानो इन्हें, ये कौन हैं। (बन्दियों से) मुख सीधा करो ताकि महाराणा जगमल पहचान सकें कि तुम कौन हो।

[बन्दी सिर उठाकर जगमल की ओर देखते हैं।]

प्रताप : (निर्देश करते हुए) ये सामन्त जैतसिंह हैं, बिदनौर के राठौर और यह हमारा छोटा भाई है, राय सिंह। अपने छोटे भाई को सन्देश-वाहक बनाकर भेजने में तुम्हें लज्जा नहीं आयी? इनके साथ दो दूत और थे जो तुम्हारा यह सन्धि-पत्र लेकर अकबर बादशाह के पास जा रहे थे। उन दोनों दूतों का रक्त मेरी तलवार पर है। (तलवार उठाते हुए दिखलाते हैं।)

जगमल : यह तुम्हारी क्रूरता है, कुमार प्रतापसिंह ! महाराणा के कार्य में कोई रुकावट नहीं डाल सकते।

प्रताप : एक दिन का कायर महाराणा मेवाड़ की शताब्दियों की स्वाधीनता का इतिहास मिटा दे? एक विष की बूंद अमृत के कुम्भ को दूषित कर दे? एक शूद्र वेद की ऋचाओं का अशुद्ध उच्चारण करे, मैं उसे न रोकूं?

जगमल : (तीव्रता से) कुमार प्रताप सिंह ! मेरी मर्यादा···

प्रताप : मर्यादा? तुम्हारी मर्यादा? अकबर को तुमने सन्धि-पत्र लिखा, तब यह मर्यादा कहाँ थी? पिता की मृत्यु के पूर्व अपने को महाराणा घोषित किया, तब यह मर्यादा कहाँ थी? भाइयों में फूट डालकर ज्येष्ठ भ्राताओं का अपमान किया, तब यह मर्यादा कहाँ थी? मर्यादा की दुहाई देनेवाले नये महाराणा ! तुमने सामन्तों तक की मर्यादा नहीं रखी। मेवाड़ के विश्वासघाती दूतों को मारना मर्यादा की रक्षा है, मर्यादा की हानि नहीं।

जैतसिंह : महाराज ! हमें भी मार डालिए।

रायसिंह : मैं भी अपने भाई की तलवार से कट जाऊँ तो अच्छा है।

प्रताप : नहीं, तुम्हें माँगने से मृत्यु भी नहीं मिलेगी। यदि अपनी मृत्यु माँगते हो तो नए महाराणा, श्री श्री सवाई महाराणा जगमलसिंह से माँगो। (संकेत करते हैं) देश-द्रोही राजपूत ! तुम मेवाड़ की स्वतन्त्रता इस छोटे-से कागज में बन्द कर अकबर बादशाह को भेंट करने के लिए जा रहे थे? तुम्हें लज्जा नहीं आयी? तुम महाराणा उदयसिंह के अन्तिम संस्कार में सम्मिलित होने के लिए नहीं रुके और महाराणा के मरण-शोक को विजय का हर्ष बनाकर विदेशी यवन के चरणों में झुकने के लिए चल पड़े?

जैतसिंह : महाराणा जगमल की ऐसी ही आज्ञा थी।

रायसिंह : और यह सन्धि-पत्र भाई जगमल ने ही मुझसे लिखाया था।

प्रताप : क्यों महाराणा जगमल ! भाई तो सत्य ही कहेगा।

जगमल : (उच्छृंखलता से) सत्य है। मेवाड़ का कल्याण इसी में है। जब सारे मेवाड़ में अशान्ति है तो अकबर बादशाह की सहायता से ही शान्ति स्थापित हो सकती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रताप : शान्ति स्थापित करनेवाले महाराणा ! तुम्हारी शक्ति के समुद्र में क्या एक बूंद पानी भी नहीं है कि तुम उससे तृषित प्रजा की प्यास बुझा सको। और क्या तुम समझते हो कि विष की बूंदों से प्यास बुझेगी ? बादशाह अकबर की सहायता तो ऐसे विष का महासागर है जिसमें सारा मेवाड़ डूबकर सदैव के लिए मृतक बन जाएगा। तुम शायद सारे मेवाड़ को मृतक बनाकर उसकी प्यास बुझाना चाहते हो ?

जगमल : जो कार्य शक्ति से सम्भव नहीं, वह नीति से सम्भव है।

प्रताप : तो तुम उसी नीति का अनुसरण करना चाहते हो जिस नीति से राजपूत राजाओं ने अपनी बहनों और बेटियों को शाही हरम में भेज दिया है ? अपनी पच्चीस बहनों में से किन-किनको तुम शाही हरम की बेगमें बनाना चाहते हो ?

जगमल : कुमार प्रतापसिंह ! चुप रहो। मेरी नीति की आलोचना करने का अधिकार किसी को नहीं है। महाराणा महाराणा ही है।

प्रताप : (दाँत पीसकर) बार-बार महाराणा ! महाराणा बनने का अभिमान करनेवाले जगमल ! मेवाड़ के सिंहासन पर बैठनेवाले तुम्हीं एक महाराणा नहीं हो। बप्पा रावल की कीर्ति सुनी है, जिन्होंने गजनी के बादशाह सलीम को युद्ध-क्षेत्र में हराकर उसका राज्य मेवाड़ में मिला लिया था ? तुमने रावल जैतसिंह का नाम सुना है जिन्होंने दिल्ली के सुलतान अल्तुतमश से युद्ध कर उन्हें रणभूमि से पीछे हटा दिया था ? तुम रावल रतनसिंह का नाम भी जानते होगे जिन्होंने चित्तौड़ की रक्षा करते हुए वीरगति प्राप्त की ? तुमने महाराणा हमीर का नाम भी सुना होगा जिन्होंने मुहम्मद तुगलक की शाही सेना को पराजित किया था ? इतिहास में 'हमीर-हठ' अमर है, महाराणा !

जगमल : मैं अधिक कुछ नहीं सुनना चाहता।

प्रताप : तुम कुल-कलंक हो, जगमल ! जिसे अपने पूर्वजों की कीर्ति-गाथा अच्छी नहीं लगती। जिस दुर्ग के नीचे तुम खड़े हो, जगमल ! वह हमारे पूर्वज महाराणा कुम्भा का बनवाया हुआ है। मांडू के महमूद खिलजी को युद्ध में हराकर महाराणा कुम्भा ने छः महीने तक उसे चित्तौड़ में बन्दी बनाकर रखा, बाद में बिना शर्त के छोड़ दिया। इस विजय की स्मृति में महाराणा कुम्भा ने चित्तौड़ में एक विशाल कीर्ति-स्तम्भ का निर्माण किया, वह तुमने देखा ?

जैतसिंह : अनेक वर्षों तक उस कीर्ति-स्तम्भ की रक्षा का भार मुझ पर था।

रायसिंह : और मैंने भी अनेक बार कीर्ति-स्तम्भ के शिखर पर बैठकर सूर्योदय का दृश्य देखा है।

प्रताप : अब महाराणा जगमल कुम्भलगढ़ के शिखर पर बैठकर मेवाड़ के सूर्यास्त का दृश्य देखना चाहते हैं। महाराणा जगमल ! हम लोग सूर्यवंशी हैं। इस सूर्यास्त के दृश्य में कहीं हमारे वंश का सूर्य ही न डूब जाए !

जगमल : इस सूर्यास्त के बाद चन्द्रमा की शीतल चाँदनी आएगी।

प्रताप : चन्द्रमा की शीतल चाँदनी नहीं मूर्ख महाराणा ! इस सूर्यास्त के बाद घोर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमावस्या का अन्धकार है। बादशाह अकबर की कूटनीति समस्त राजपूताने के लिए कितनी भयानक है, यह तुम नहीं जानते। राजपूतों की बहादुरी को वह अच्छी तरह जानता है। उसे मालूम है कि लड़ाई में जीतकर राजपूताने को अधिकार में लाना कठिन है। इसलिए उसने राजपूतों को प्रलोभन देकर अपना सेवक बना लिया है। अम्बर के राजा मानसिंह को उसने सातहजारी मनसब दिया है। बूंदी के राव रतन हाड़ा और बीकानेर के राव रार्मासह पंचहजारी मनसबदार बनकर उसके गुलाम बन गए हैं। अब शायद मेवाड़ का राणा जगमल भी अकबर का पंचहजारी मनसबदार बनकर उसके दरबार में हाथ बाँधकर खड़ा होगा।

जैतसिंह : ऐसा नहीं होगा, राणा प्रताप ! हम सब मेवाड़ के सेवक रहेंगे।

रायसिंह : राणा प्रताप ! मैं भी कुमार जगमल की बात न मानकर तुम्हारी आज्ञानुसार चलूंगा।

प्रताप : तब मैं तुम दोनों को मुक्त कर दूंगा। एकमात्र महाराणा जगमल ही अकबर की सेवा में पहुँचेंगे।

जगमल : जैतसिंह और रायसिंह भले ही तुम्हारे प्रभाव में आ जाएँ, प्रताप ! मुझ पर तुम्हारी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

प्रताप : जो अपने स्वार्थ में अन्धा हो चुका है, उस पर क्या प्रभाव पड़ सकता है ? किन्तु महाराणा जगमल ! यह सोचो कि मेवाड़ की स्वतन्त्रता विदेशियों द्वारा आज तक कलंकित नहीं हुई। चित्तौड़गढ़ को अनेक बार विध्वंस किया गया, किन्तु वीरों ने संख्या में कम होने पर भी युद्ध किया और वीरगति प्राप्त की। नारियों ने जौहर व्रत में अपने शरीर को अग्निकुण्ड में होम कर दिया और अपने सम्मान को सुरक्षित रखा। जयमल और पत्ता की कीर्ति क्या युद्धभैरवी बनकर तुम्हें युद्ध का निमन्त्रण नहीं देती ? जयमल लँगड़े हो गए थे किन्तु कल्ला राठौर के कन्धे पर चढ़कर उन्होंने दोनों हाथों में तलवारें लेकर हजारों शत्रुओं को मृत्यु के घाट उतार दिया और स्वयं मेवाड़ की स्वतन्त्रता के लिए धराशायी हो गए। सोलह वर्षीय पत्ता चूड़ावत ने जैसी वीरता दिखलाई वैसी वीरता शताब्दियों तक मेवाड़ को अमर रक्खेगी। बादशाह अकबर उनकी वीरता पर मुग्ध हो गया था। क्या तुम भी वीर जयमल और वीर पत्ता की भाँति बादशाह अकबर को अपनी वीरता से मुग्ध नहीं कर सकते ?

जगमल : समय पर वैसी वीरता दिखलाई जा सकती है।

प्रताप : तो इसी समय वैसी वीरता क्यों नहीं दिखलाते ? तुम महाराणा बनो, मैं तुम्हारा सामन्त बनकर तुम्हारी सहायता करूँगा। यद्यपि मैं तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता हूँ, किन्तु मैं महाराणा नहीं बनूंगा। तुम्हारा सहायक बनूंगा। लो, यह सन्धि-पत्र, इसे फाड़ दो। (सन्धि-पत्र आगे बढ़ाते हैं।)

जगमल : सन्धि-पत्र तो मैं नहीं फाड़ सकता। तुम किसी भी समय मुझे पराजित कर राणा बन सकते हो। मेवाड़ के सामन्त तुम्हारा ही साथ देंगे। मुझे भी तो सहायता के लिए कोई शक्ति चाहिए !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रताप : और यह शक्ति अकवर की ही होगी ? मेवाड़ के पड़ोसी राज्यों की नहीं हो सकती ?

जगमल : पड़ोसी राज्य सब अकवर के मित्र हैं।

प्रताप : मित्र हैं या दास ? वह उन्हें कठपुतलियों की तरह नचाता है। क्या मेवाड़ का महाराणा भी नाचना चाहता है ?

जगमल : सन्धि का अर्थ नाचना नहीं है ?

प्रताप : तू मुझे परिभाषाएँ सिखलाना चाहता है ? जगमल ! तेरे सभी साथियों ने तुझे छोड़ दिया है। यदि मैं चाहूँ तो तुझ जैसे देश-द्रोही का इसी क्षण वध कर सकता हूँ, किन्तु पिता की मृत्यु के उपरान्त मैं अपने भाई का वध नहीं करूँगा। मेवाड़ की यशोगाथा कलंकित नहीं होगी।

[नेपथ्य में हलचल होती है। सालुम्बरा-नरेश, सामन्त झालौर, सामन्त चन्दावत, ग्वालियर-नरेश महाराज रामचन्द्र तम्बर और भील सरदार का प्रवेश। भील सरदार के हाथों में राजमुकुट है। महाराणा जगमल स्तब्ध होकर देखता है।]

सालुम्बरा : महाराणा प्रतापसिंह की जय !

[सभी जय-नाद समवेत स्वर में करते हैं। जगमल के मुख पर क्रोध की रेखाएँ अंकित हो जाती हैं।]

जगमल : महाराणा उदयसिंह की घोषणा के उपरान्त अन्य कोई व्यक्ति महाराणा नहीं हो सकता।

सालुम्बरा : सुनो, कुमार जगमल ! मैं तुम्हें महाराणा के नाम से सम्बोधित नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि महाराणा उदयसिंह की घोषणा अन्तःपुर की घोषणा है, रणक्षेत्र की घोषणा नहीं है। महाराणा उदयसिंह से जब मेवाड़ के समस्त सामन्त सन्तुष्ट नहीं थे, तब उनके सामने उस घोषणा का क्या मूल्य हो सकता है ?

जगमल : महाराणा की घोषणा का मूल्य सर्वोपरि है।

रामसिंह तम्बर : नहीं है, कोई मूल्य नहीं है। मैं ग्वालियर नरेश हूँ, मैं नरेश होने के नाते जानता हूँ कि जब शेरशाह सूरी जोधपुर जीतने के बाद चित्तौड़ की ओर बढ़ा और वह चित्तौड़ से बारह कोस पर ही था तभी मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह ने युद्ध से डरकर चित्तौड़गढ़ की कुंजियाँ उसके पास भिजवा दी थीं। कायर महाराणा उदयसिंह···

प्रताप : महाराज तम्बर ! मृत्यु के बाद मेरे पिता की निन्दा न हो !

रामसिंह तम्बर : प्रताप ! मैं तुम्हारी मर्यादा की प्रशंसा करता हूँ किन्तु महाराणा उदयपुर के कायर पुत्र जगमल से मेवाड़ के यश की रक्षा किसी प्रकार नहीं हो सकेगी।

जगमल : ऐसा कहने का अधिकार किसी को नहीं हो सकता।

सामन्त चन्दावत : अवश्य हो सकता है। इतिहास इसका साक्षी है कि जब बादशाह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकबर ने चित्तौड़ पर घेरा डाला था तब महाराणा उदयसिंह चित्तौड़ का किला राठौर जयमल और चूड़ावत पत्ता पर छोड़कर स्वयं पहाड़ों पर भाग गए थे। जयमल और पत्ता ने मेवाड़ की रक्षा के लिए युद्ध-भूमि में अपने प्राण विसर्जित किए थे, किन्तु ये कुमार जगमल जो महाराणा बने हुए हैं, मेवाड़ को दासता की श्रृंखला में बाँधने के लिए बादशाह अकबर की सेवा में सन्धि-पत्र भेजना चाहते हैं जिसकी सूचना अभी ही मुझे प्राप्त हुई है।

प्रताप : वह सूचना सत्य है। यह महाराणा जगमल का लिखाया हुआ सन्धि-पत्र है जिसे फाड़ने में महाराणा जगमल को आपत्ति है।

भील सरदार : तो हम उसे फाड़ेंगे। (सन्धि-पत्र लेकर फाड़ देते हैं) मैं भील सरदार हूँ। मेवाड़ हमारी मातृभूमि है। मैं आज इस बात की प्रतिज्ञा करता हूँ कि हम सब भील मिलकर अकबर बादशाह के किसी भी प्रकार के आक्रमण का सामना करेंगे। प्राण रहते मेवाड़ का छत्र किसी प्रकार नहीं झुकने देंगे। अकबर बादशाह अगर प्रार्थना भी करे तो भी हमारा मेवाड़ उसके साथ सन्धि नहीं करेगा।

झालौर : धन्य हो भील सरदार! तुम पर और तुम्हारे भील सैनिकों पर मेवाड़ को गर्व है। मैं तुम्हारा पूर्ण समर्थन करता हूँ। मैं भी प्रण करता हूँ कि मेवाड़ के समस्त सामन्तों का संगठन करूँगा और हम सब युद्ध के लिए सदैव ही कटिबद्ध रहेंगे। जिस अकबर बादशाह ने अपनी कूटनीति से राजपूतों को मर्यादा से गिराने का घृणित कार्य किया है, उसके साथ सन्धि करना मेवाड़ के लिए अपमानजनक है।

सालुम्बरा : कुमार जगमल! तुम्हें इस सम्बन्ध में कुछ कहना है?

जगमल (उपेक्षा से) : मुझे कुछ नहीं कहना।

सालुम्बरा : मूर्ख और हठी कुमार जगमल! हम लोगों ने नेपथ्य से तुम्हारे और प्रताप के बीच जो बातें हुई हैं, वे सुनी हैं। यदि उनसे तुम्हारे मन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, तो तुम मेवाड़ में रहने के योग्य भी नहीं हो।

जगमल : आप लोगों का यह निर्णय है?

सालुम्बरा : अपने नीच और मर्यादाहीन कार्यों के लिए यह दण्ड बहुत छोटा है।

रामसिंह तम्बर : इसी दण्ड के साथ मैं ग्वालियर राज्य की ओर से यह प्रस्ताव करना चाहता हूँ कि महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के उपरान्त मेवाड़ का उत्तराधिकार मेवाड़ के आदर्शों के अनुसार कुमार प्रतापसिंह को प्राप्त हो और वे महाराणा का पद ग्रहण करें।

जगमल : मैं इसका विरोध करता हूँ।

सालुम्बरा : तुम चुप रहो, कुमार जगमल! महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के उपरान्त उनकी घोषणा भी समाप्त हो गई। मैं सालुम्बर राज्य की ओर से ग्वालियर-नरेश महाराजा रामसिंह तम्बर के प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ और महाराणा प्रताप को मेवाड़ का अधिपति घोषित करता हूँ।

भील सरदार : महाराज! मैं भी घोषित करता हूँ कि मेवाड़ के समीप और अरावली

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहाड़ पर रहनेवाले सभी भील सैनिक प्राणपण से महाराणा प्रताप के सहायक बने रहेंगे।

प्रताप : मैं आप सबके प्रति कृतज्ञता के साथ अपनी मातृभूमि को प्रणाम करता हूँ।

चन्दावत : कुमार जगमल ! अब तुम महाराणा नहीं हो। तुम्हारे सिर पर यह राजसी पाग लज्जित हो रही है। यदि तुम्हें आपत्ति न हो तो इसे उतारकर हाथ में ले लो। एक ही समय में एक राज्य के दो महाराणा नहीं हो सकते।

झालौर : कुमार जगमल को कष्ट होगा, वह पाग मैं उतार देता हूँ।

जगमल : (चिढ़कर) मेरा अपमान करने का साहस मत करो, सामन्त झालौर !

सालुम्बरा : शीघ्रता नहीं है, सामन्त झालौर ! कुमार जगमल के पास इतनी बुद्धि तो होगी कि वे अपनी पाग स्वयं अपने हाथों से उतार लेंगे।

चन्दावत : कुमार जगमल ! तुम्हारा सन्धि-पत्र तो सम्राट् अकबर की सेवा में नहीं पहुँच सका। अब सम्भवतः तुम्हीं अपने को उनके चरणों में अर्पित कर आना।

जगमल : आपके परामर्श की आवश्यकता नहीं है।

झालौर : सत्य है, वे सामन्त चन्दावत के परामर्श के बिना ही सम्राट् अकबर के चरणों में पहुँच जाएँगे।

रामसिंह तम्बर : अब सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होना शेष है। (भील सरदार के हाथ से राजमुकुट लेकर) अब मैं मेवाड़ के समस्त सामन्तों की ओर से मेवाड़ का यह पवित्र और गौरवशाली मुकुट महाराणा प्रताप के मस्तक पर सुसज्जित करता हूँ। (तिलक लगाकर राजमुकुट महाराणा प्रताप को पहनाते हैं।)

सब : (समवेत स्वर में) मेवाड़ भूमि की जय ! महाराणा प्रताप की जय !

[कुमार जगमल मुँह बनाए खड़ा रहता है और धीरे-धीरे पाग उतारता है।]

महाराणा प्रताप : मेवाड़ भूमि के वीरो ! आज अपनी मातृभूमि मेवाड़ को प्रणाम कर मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो विश्वास मेरे सामन्तों ने मुझ पर किया है, उसकी जीवनभर रक्षा करूँगा और अपने रोम-रोम से अपनी मातृभूमि की सेवा करता हुआ उसकी स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर दूँगा।

सब : (समवेत स्वर में) महाराणा प्रताप की जय ! मेवाड़ भूमि की जय ! भगवान् एकलिंग की जय !

[इसी समय गढ़ के भीतर से भगवान् एकलिंग की आरती के घण्टे बजते हैं और साथ ही शंख-घोष होता है। राजमुकुट-मंजूषा में रखे हुए पुष्पों को उठाकर एक ओर से सामन्त चन्दावत और दूसरी ओर से सामन्त झालौर राणा प्रताप पर पुष्प-वर्षा करते हैं।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपाण की धार

पात्र-परिचय

परम भट्टारक रामगुप्त : गुप्त-सम्राट् और समुद्रगुप्त पराक्रमांक का ज्येष्ठ पुत्र
चन्द्रगुप्त : रामगुप्त का छोटा भाई
ध्रुवस्वामिनी : रामगुप्त की रानी और महादेवी
शिखर स्वामी : रामगुप्त का अमात्य
सुलोचना : रामगुप्त की मधुबाला और प्रेयसी
वासंती, हेमा : रामगुप्त की प्रतिहारियाँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल : 382 ई०

स्थान : व्यास नदी के किनारे हिमालय की बाहरी शृंखला में विष्णुपद नामक पहाड़ी गढ़ में रामगुप्त का युद्ध-शिविर

[स्थिति : बाहर युद्ध का कोलाहल हो रहा है। शिविर के भीतर वंशी की ध्वनि। उसके साथ ही नृत्य में नूपुरों की झंकार। उसके बाद ही अट्टहास। मदिरा में मत्त रामगुप्त का हँसते हुए प्रवेश।]

रामगुप्त : (हँसते हुए) वंशी और उस पर नृत्य! क्यों सुलोचना! इसे भी युद्ध कहते हैं? नूपुरों का नाद ढाल की तरह सामने आता है और वंशी की तीखी तान का तीर? वह हृदय तक पहुँच ही जाता है···हृदय तक। (हँसता है) यह संगीत का युद्ध है। इसमें तुम मेरी शत्रु हो, सुलोचना!

सुलोचना : परम भट्टारक! सेविका शत्रु ही सही, किन्तु विजय तो सदैव आप ही की है।

रामगुप्त : नहीं। इस युद्ध में हारना ही मुझे अच्छा लगता है। मैं हारना चाहता हूँ। परम भट्टारक महापराक्रमी रामगुप्त का महापराक्रम हार में ही है। कहाँ है तुम्हारी वंशी के स्वर का तीर?

सुलोचना : वह यह रहा, परम भट्टारक!

[वंशी का तीव्र वादन]

रामगुप्त : ओह! मैं हारा, मैं हारा! तुम जीती, सुलोचना! महापराक्रम सुलोचना की जय! जय!! जय!!!

सुलोचना : परम भट्टारक! आपकी इस हार से जीत भी लज्जित हो जाती है।

रामगुप्त : हार ही तो मेरे हृदय का हार है, सुलोचना! और जब तुम्हारी वंशी के स्वर का तीर तुम्हारी बंकिम दृष्टि के तीर के साथ चलता है, तब मेरे हृदय के दोनों पक्ष घिर जाते हैं। तब मैं तुमसे सन्धि करना चाहता हूँ, सुलोचना!

सुलोचना : परम भट्टारक सन्धि भी शीघ्र कर लेते हैं।

रामगुप्त : हाँ, सुलोचना! क्योंकि तीर तो एक बार ही प्रहार करता है, किन्तु दृष्टि का तीर अनेक दिनों बाद भी ध्यान के धनुष पर चढ़कर प्रति क्षण प्रहार करता रहता है।

सुलोचना : किन्तु परम भट्टारक वीर हैं। वे प्रति क्षण युद्ध कर सकते हैं।

रामगुप्त : प्रति क्षण युद्ध तो करता ही हूँ। और दो-दो युद्धों में साथ-साथ भाग लेता हूँ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक युद्ध शिविर के बाहर हो रहा है और दूसरा युद्ध हृदय के भीतर; किन्तु देवि ! मैं बाहर के युद्ध में उतना सावधान नहीं हूँ, जितना भीतर के युद्ध में। तुम्हीं कहो, देवि !

सुलोचना : आज्ञा, देव !

रामगुप्त : तुम्हीं कहो, देवि ! मैं हृदय के युद्ध में भाग लूँ या बर्बर शकों के युद्ध में ? (व्यंग्य से) हुँअ्, बर्बर शक ! जो भूमि चाहते हैं, रक्त चाहते हैं, कर चाहते हैं। और मैं ? मैं दर्शन चाहता हूँ, हृदय चाहता हूँ, मुस्कान चाहता हूँ। किसमें अधिक आकर्षण है ?

सुलोचना : परम भट्टारक सच्चे वीर हैं। युद्ध की बात ठीक समझते हैं।

रामगुप्त : युद्ध की बात वीर ही समझ सकता है, सुलोचना ! बर्बरों का युद्ध तो कृपाण की धार पर केवल दिन में ही चलता है। यह युद्ध, मेरा युद्ध श्यामल नयनों की धार पर दिन और रात दोनों समय चलता है। उस युद्ध में आग है, और इस युद्ध में ? इस युद्ध में मुस्कान की पंखुड़ियों से झरने वाला पराग है। उस युद्ध में कर्कश ललकार है, इस युद्ध में अभिसार है, शरीर का शृंगार है। उसमें मरण है, इसमें जीवन है, सुलोचना ! इसमें जीवन है, अमर जीवन है और जीवन में ही सुख है, आनन्द है।

सुलोचना : सत्य है, देव !

रामगुप्त : हाँ, सुलोचना ! उस युद्ध में कृपाण की धार पर मृत्यु है और इस युद्ध में नेत्र की धार पर जीवन है, ऐसा जीवन जिसकी सीमा बड़े-से-बड़े राज्य की सीमा से भी बड़ी है।

सुलोचना : आपका कंठ सूख रहा होगा, देव !

रामगुप्त : नहीं, सुलोचना ! इस युद्ध की बात में कंठ नहीं सूखता। किन्तु तुम्हारे संकेत से जो लहर उठना चाहती है, वह उठे। सरिता में एक लहर के बाद दूसरी लहर उठती है। उसी प्रकार तुम्हारा मधुपात्र भी उठे। लाओ, उठाओ अपने हाथों से वह लहर।

सुलोचना : लीजिए, देव ! (पात्र भरकर देती है।)

रामगुप्त : (पान करते हुए) ओह ! कितनी मादक लहर है !···लहर, लहर···और तुम्हारा शरीर भी तो सौन्दर्य की लहर है, देवि ! इस सौन्दर्य की लहर से मेरे मधुपात्र की लहर उठी है।···मधुपात्र की लहर···और यह विचित्रता देखी, देवि ! कि एक···लहर—तुम्हारे सौन्दर्य की लहर—मेरे नेत्रों में समा रही है और दूसरी लहर—तुम्हारे मधुपात्र की लहर—मेरे कंठ में समा रही है, (फिर पान करता है) मेरे कंठ में समा रही है। कहते हैं कि लहरों को कोई पकड़ नहीं सकता; किन्तु मेरे नेत्र और कंठ दो-दो लहरों को एकसाथ पकड़ सकते हैं, दो-दो लहरों को···

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी : परम भट्टारक की जय हो !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामगुप्त : कौन ! वासंती ! आओ, तुम्हें भी मधु-पान कराऊँ ! मधु-पान कर 'जय' कहने में जो मादकता आएगी, नहीं···जो मादकता उभरेगी···नहीं···नहीं, ठीक नहीं कह सका···!

वासंती : परम भट्टारक ! महामात्य शिखर स्वामी सेवा में आने की अनुमति चाहते हैं।

रामगुप्त : शिखर स्वामी ! महामात्य ! नहीं, ठीक नाम नहीं है। महामात्य का नाम मदिरामात्य होना चाहिए। आज मदिरामात्य शिखर स्वामी से भी युद्ध करूँगा कि कौन अधिक मधु-पान कर सकता है।

वासंती : परम भट्टारक ! महामात्य शिखर स्वामी के सम्बन्ध में क्या आज्ञा है ?

रामगुप्त : (चौंककर) आज्ञा ! आज आज्ञा देने का अधिकार मेरी प्रेयसी सुलोचना को है। सुलोचना ! शिखर स्वामी के सम्बन्ध में क्या आज्ञा है ?

सुलोचना : मैं तो दासी हूँ, परम भट्टारक ! दासी आज्ञा पालन कर सकती है, आज्ञा नहीं दे सकती।

[दूसरी प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी : परम भट्टारक की जय हो !

रामगुप्त : फिर जय ! अरे, मैं प्रेम के युद्ध में हारना चाहता हूँ और तुम लोग 'जय' कहती चली आ रही हो ? कौन ! हेमा ! तुम मधुपात्र की 'जय' क्यों नहीं बोलतीं, मधुपात्र की, जो तुम्हारे परम भट्टारक पर भी जय प्राप्त कर चुका है। मैं हार रहा हूँ और तुम जय बोलती हो !

हेमा : परम भट्टारक ! महादेवी ध्रुवस्वामिनी सुसज्जित हैं। वे आपकी सेवा में···।

रामगुप्त : (बीच ही में) महादेवी ध्रुवस्वामिनी ! ध्रुवस्वामिनी ! ओह ! सौन्दर्य की दीप-शिखा ! पिता समुद्रगुप्त की विजय में सामन्त द्वारा अपनी पुत्री की भेंट···। वही तो मेरी महादेवी ध्रुवस्वामिनी···ध्रुवस्वामिनी हैं।

वासंती : परम भट्टारक ! क्या शिखर स्वामी महामात्म से निवेदन कर दूँ कि इस समय महादेवी के आगमन···।

रामगुप्त : (चौंककर) एँ, क्या कहा ? महामात्य शिखर स्वामी ! बाहर के युद्ध के नायक शिखर स्वामी और भीतर के युद्ध की नायिका ध्रुवस्वामिनी ! मैंने कहा न, दो युद्ध साथ-साथ चल रहे हैं। दोनों से कह दो कि वे जाएँ। मैं दोनों से सन्धि कर लूंगा।

वासंती : परम भट्टारक ! महामात्य इस समय युद्ध का एक अत्यन्त आवश्यक समाचार निवेदन करने आए हैं।

रामगुप्त : युद्ध का आवश्यक समाचार···?

हेमा : और परम भट्टारक ! महादेवी का आपसे यह प्रथम मिलन है।

रामगुप्त : प्रथम मिलन···! हाँ, प्रथम मिलन···। प्रथम मिलन किसे कहते हैं, वासंती ! वसंत के आने पर लता के प्रेम की गाँठ खुल जाती है, उसका नाम फूल है। जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहस्य की गाँठ नहीं खुलती, उसका नाम कली है। खुले और अध-खुले रहस्य के पास आने का नाम प्रथम मिलन है। हाँ, यही प्रथम मिलन है···!

सुलोचना : किन्तु···!

रामगुप्त : किन्तु···मेरे विचारों के मार्ग में 'किन्तु' का कंटक नहीं चाहिए, सुलोचना !

सुलोचना : क्षमा करें, देव ! महामात्य को युद्ध का समाचार···!

रामगुप्त : युद्ध का समाचार···युद्ध का समाचार···तुम सुनो, सुलोचना !

सुलोचना : दासी युद्ध की नीति से अपरिचित है।

रामगुप्त : जिसके संकेत पर युद्ध होते हैं, वह युद्ध की नीति से अपरिचित है ? (हँसता है) ह् ह् ह् ह् ह् ! अच्छा, जाओ वासंती ! जाओ हेमा ! दोनों को एकसाथ देखकर कहूँगा कि मेरे युद्ध-शिविर में अमावस और पूनम एकसाथ होती हैं।

वासंती : जो आज्ञा ! महामात्य शिखर स्वामी सेवा में अभी उपस्थित होंगे।

हेमा : और महादेवी ध्रुवस्वामिनी भी इसी समय सुशोभित होंगी।

[दोनों का प्रणाम कर दो दिशाओं में प्रस्थान]

रामगुप्त : (सोचता हुआ) शिखर स्वामी और ध्रुवस्वामिनी ! सुलोचना ! शिखर स्वामी को शकराज के युद्ध से अवकाश नहीं और ध्रुवस्वामिनी को प्रेम की धूप-छाँह में सही मार्ग पाने का उत्साह नहीं ! प्रेम की धूप-छाँह में···!

सुलोचना : परम भट्टारक ! आर्य समुद्रगुप्त चाहते थे कि राजकुमार चन्द्रगुप्त ही महादेवी का वरण करें। कदाचित् महादेवी भी यही चाहती थीं।

रामगुप्त : सुलोचना ! ज्येष्ठ भ्राता का अधिकार प्रेम से ऊपर है। पिता तो यह भी चाहते थे कि चन्द्रगुप्त ही राज्य का अधिकारी हो। किन्तु रामगुप्त के रहते क्या यह सम्भव था ? आज दोनों ही मेरे अधिकार में हैं—राज्य और महादेवी, जो चन्द्रगुप्त के प्रेम की धूप-छाँह में···!

[महामात्य शिखर स्वामी का प्रवेश]

महामात्य : परम भट्टारक की जय !

रामगुप्त : महामात्य, तुम आ गए ! महादेवी भी आ रही हैं। मैं यह पूछना चाहता हूँ कि महादेवी से युद्ध करूँ या सन्धि ! महादेवी चन्द्रगुप्त के प्रेम से···!

महामात्य : प्रेम के रहस्य सुलझाने का समय नहीं है, देव ! युद्ध का उलझाने वाला समाचार है।

रामगुप्त : उसे मधुपात्र से सुलझा लो। (सुलोचना से) सुलोचना ! महामात्य शिखर स्वामी को एक मधुपात्र से पवित्र करो।

महामात्य : परम भट्टारक क्षमा करें। शकों ने हमें चारों ओर से घेर लिया है।

रामगुप्त : चारों ओर से घेर लिया है ? तब उनसे कहो कि वे हमारी जय का घोष करें। चारों दिशाओं से जय-ध्वनि भी अच्छी तरह से गूंजेगी। परम भट्टारक महापराक्रमांक रामगुप्त की जय ! जय !! जय !!! (हंसता है) ह् ह् ह् ह् ह् !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम भी कहो···महामात्य ! परम भट्टारक···

महामात्य : परम भट्टारक ! आप मधु के प्रभाव से मुक्त हों । शकराज ने हमारी सेना को पराजित कर दिया है । हमारा शिविर शत्रु से घिर गया है । वे चारों ओर से बढ़ना चाहते हैं ।

रामगुप्त : बढ़ना चाहते हैं ! कोई हानि नहीं । उनका स्वागत करो । हम भी मधु-युद्ध में तुम्हारा स्वागत करेंगे । गुप्त-कुल अतिथि-सत्कार करना जानता है । क्यों सुलोचना ! अभी हमें महादेवी का भी तो सत्कार करना है !

सुलोचना : सत्य है, देव !

महामात्य : महादेवी का सत्कार आप नहीं करेंगे, परम भट्टारक ! शकराज करेगा ।

रामगुप्त : महादेवी का सत्कार शकराज करेगा ! मैं समझा नहीं, अमात्य ! शकराज करेगा महादेवी का सत्कार ?

महामात्य : हाँ, देव ! महादेवी का सत्कार शकराज करना चाहता है । सुलोचना ! तुम यहाँ से जाओ । मैं परम भट्टारक के साथ एकान्त चाहता हूँ ।

सुलोचना : जो आज्ञा ! (प्रस्थान)

महामात्य : परम भट्टारक ! मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि आप स्थिर चित्त से युद्ध की भयानकता का अनुमान करें । हमारे आधे से अधिक वीर मारे जा चुके हैं । शकराज ने विजय प्राप्त की है और सन्धि-पत्र भेजा है ।

रामगुप्त : देखने में तो बड़ा सुन्दर सन्धि-पत्र है, महामात्य !

महामात्य : किन्तु सुनने में उतना ही भयानक । सुनिए—

'परम भट्टारक महापराक्रमांक रामगुप्त की सेवा में कुषाणवंशी शकराज का निवेदन है कि महादेवी ध्रुवस्वामिनी का विवाह-सम्बन्ध सबसे प्रथम मुझसे स्थिर हुआ था, किन्तु परम भट्टारक समुद्रगुप्त पराक्रमांक की दिग्विजय में महादेवी के पिता ने सामन्त बनकर महादेवी को आर्य समुद्रगुप्त के च रणों में समर्पित कर दिया । महादेवी पर प्रथम अधिकार मेरा है । युद्ध में विजय प्राप्त करके भी मैं इस बात पर सन्धि करता हूँ कि महादेवी को मेरे पास भेज दिया जाए । व्यास के दूसरे तट पर मेरा शिविर है । मैं कल संध्या तक महादेवी की प्रतीक्षा करूँगा ।

—कुषाणवंशी शकराज ।"

रामगुप्त : यह सन्धि-प्रस्ताव तो बड़ा भयानक है, अमात्य ! वह महादेवी की प्रतीक्षा करेगा ! इधर मैं महादेवी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।

महामात्य : इस सन्धि-प्रस्ताव के सम्बन्ध में क्या निर्णय है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : निर्णय ! मैं इस प्रस्ताव पर उससे भयानक युद्ध करता, किन्तु महामात्य, मेरे युद्ध के अच्छे-अच्छे वस्त्र सब राजधानी में ही रह गए हैं । युद्ध में शकराज कहेगा कि परम भट्टारक रामगुप्त पराक्रमांक के पास युद्ध के वस्त्र ही नहीं हैं । यह अपमान मैं सहन नहीं कर सकूँगा ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामात्य : तो यह स्पष्ट है कि आप युद्ध में नहीं जावेंगे।

रामगुप्त : जाना तो चाहता हूँ, किन्तु किसी दूसरे के वस्त्र परम भट्टारक को पहनना शोभा नहीं देता।

महामात्य : ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए ? हमारे सब बड़े-बड़े वीर युद्ध में काम आ चुके हैं। एक भी ऐसा वीर नहीं है जो शत्रु के आक्रमण को रोक सके।

रामगुप्त : चन्द्रगुप्त को युद्ध में नहीं भेजा ? वह मेरी ओर से लड़ेगा और अपनी ओर से भी। क्योंकि वह दोनों हाथों से तलवार चलाता है। एक हाथ उसका, एक हाथ मेरा।

महामात्य : राजकुमार चन्द्रगुप्त आज ही राजधानी से आए हैं, किन्तु वे अकेले शत्रु के हजारों सैनिकों से कैसे युद्ध कर सकेंगे ?

रामगुप्त : फिर तुम्हारी क्या सम्मति है, महामात्य !

महामात्य : मेरी सम्मति तो यह है, परम भट्टारक कि राष्ट्र की रक्षा राजा का प्रथम कर्त्तव्य है। हम सब व्यक्तियों का बलिदान कर सकते हैं, किन्तु अपने महापुरुषों द्वारा अर्जित राज्य नहीं खो सकते। उन्होंने न जाने कितने युद्ध लड़े होंगे, न जाने कितनी रक्त की नदियाँ बहाई होंगी, तब कहीं जाकर इतना विशाल साम्राज्य उन्होंने संगठित किया। हम केवल एक व्यक्ति के पीछे सहस्रों वीरों का रक्त नहीं बहा सकते। सम्मान तो बनता-बिगड़ता रहता है, किन्तु राज्य एक बार हाथ से निकल जाने पर फिर कठिनाई से प्राप्त होता है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : तुम्हारा कहना यथार्थ है, महामात्य !

महामात्य : और फिर शकराज से मैत्री हो जाने से यह राज्य अकंटक हो जाएगा, परम भट्टारक ! इसमें सन्देह नहीं।

रामगुप्त : यह भी यथार्थ है, महामात्य !

महामात्य : फिर इस सन्धि-प्रस्ताव के सम्बन्ध में क्या निर्णय है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : निर्णय ! मधुपात्र की सहायता के बिना मैं कभी कोई निर्णय नहीं कर सकता। और फिर सुलोचना भी नहीं है।

महामात्य : सुलोचना की कोई आवश्यकता नहीं है, परम भट्टारक ! वह तो मायादेवी को चाहता है।

रामगुप्त : चन्द्रगुप्त भी महादेवी को चाहता है, अब शकराज भी चाहने लगा। मेरे चाहने की बात किसी के सामने नहीं आती, महामात्य !

महामात्य : आप महान् हैं, परम भट्टारक ! आप इसकी चिन्ता न करें।

रामगुप्त : महामात्य ! शकराज कहता है कि महादेवी का विवाह-सम्बन्ध पहले उसी के साथ स्थिर हो चुका था। क्या यह सत्य है ?

महामात्य : लिखता तो वह यही है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : तब तो सत्य की रक्षा होनी चाहिए। यदि महादेवी के पिता ने उनके साथ अन्याय किया तो हम तो नहीं कर सकते। गुप्त-कुल सत्य की रक्षा के लिए प्रसिद्ध है। यदि महादेवी का विवाह-सम्बन्ध पहले शकराज के साथ स्थिर हो चुका है;

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो महादेवी को उसी के पास जाना चाहिए। इससे दोनों बातों की पूर्ति होगी। एक तो शकराज से हमारी सन्धि होगी जिससे हमारे बचे हुए सैनिक मृत्यु से बचेंगे और दूसरे हम सत्य की रक्षा कर सकेंगे। शकराज हमारे न्याय पर हमारी जय का घोष करेगा। तुम्हारी सन्धि करने की सम्मति नितान्त उचित है, महामात्य !

महामात्य : तो फिर शकराज की इच्छानुसार हम महादेवी को भेंट में देकर शकराज से संधि कर लें ?

रामगुप्त : संधि ! संधि तो आवश्यक है। संधि तो आवश्यक है, महामात्य ! महादेवी को इस बात की सूचना देनी होगी और मेरा महादेवी से प्रथम परिचय भी नहीं हुआ, प्रथम परिचय भी नहीं।

महामात्य : जिस वस्तु से परिचय भी नहीं हुआ, परम भट्टारक, उसके जाने से विशेष दुःख भी नहीं होता। एक बात और परम भट्टारक ! शकराज ने महादेवी के साथ सौ स्त्रियाँ भी अपने सामन्तों के लिए माँगी हैं।

रामगुप्त : ठीक ही माँगी हैं, महामात्य ! क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि ध्रुवस्वामिनी उसकी महादेवी बनने जा रही हैं, तो वे अकेले तो जाएँगी नहीं। कम से कम सौ स्त्रियाँ उनकी सेवा करती हुई जानी चाहिए। उन्हीं स्त्रियों को वह अपने सामन्तों के लिए चुन लेगा।

महामात्य : आपकी बुद्धि वास्तव में बहुत तीक्ष्ण है, परम भट्टारक ! यह उपहार पाकर शकराज वास्तव में आपकी प्रशंसा करेगा।

रामगुप्त : प्रशंसा की क्या बात है, महामात्य ! तुम्हीं विचार कर देखो उपहार के महत्त्व को ! महादेवी···ध्रुवस्वामिनी उपहार में मेरे पिता को प्राप्त हुईं। तो उपहार ···उपहार में मिली हुई वस्तु···हम जैसे वीरों को स्वीकार हो सकती है ? हम उपहार की वस्तु उपहार में ही देंगे। हम किसी का उपहार स्वीकार नहीं कर सकते।

महामात्य : देव ! आप ठीक सोच रहे हैं। सिंह को कोई उपहार नहीं दे सकता। वह अपने बल से···अपनी शक्ति से अपना आखेट करता है। उपहार स्वीकार करना आपकी शक्ति का अपमान है।

रामगुप्त : शक्ति का अपमान ! तुम ठीक कहते हो, अमात्य ! यह मेरी शक्ति का अपमान है। उपहार में प्राप्त की गई वस्तु उपहार की सामग्री ही बन सकती है। ठीक है। हम महादेवी को उपहारस्वरूप शकराज को भेंट करेंगे। तुम शकराज को लिख दो कि आपकी संधि हमें स्वीकार है···स्वीकार है (सुलोचना का प्रवेश) तुम आ गईं, सुलोचना !

सुलोचना : परम भट्टारक की जय ! महादेवी ध्रुवस्वमिनी आपकी सेवा में···

रामगुप्त : यह भी तुम्हारा उपहार है, किन्तु मधुपात्र के अतिरिक्त मैं कोई उपहार ग्रहण नहीं करता। कोई उपहार नहीं···केवल मधुपात्र ! (पान करता है।)

सुलोचना : देव ! महादेवी सेवा में उपस्थित हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामात्य : यह भी ठीक हुआ, परम भट्टारक ! महादेवी स्वयं आ रही हैं।
रामगुप्त : महादेवी ध्रुवस्वामिनी ! उपहार की महादेवी !...(सोचता हुआ) ध्रुवस्वामिनी सौन्दर्य की दीपशिखा, जिसकी लौ से सौन्दर्य का प्रकाश तो बिखरता है, किन्तु उसमें आग है...आग...फूलों की माला में सर्प...मधुपात्र में भयानक हलाहल...रसना में कृपाणी...रसना में...
सुलोचना : क्या सोच रहे हैं, देव !
रामगुप्त : (चौंककर) और मेरा मन बार-बार कह रहा है...सुलोचना...!
सुलोचना : किन्तु वे तो महादेवी हैं देव ! मैं तो केवल परिचारिका मात्र...परिचारिका...!
रामगुप्त : किन्तु परम भट्टारक रामगुप्त की परिचारिका किसी भी महादेवी से महान् है। क्योंकि...क्योंकि...
सुलोचना : परम भट्टारक रुक क्यों गए ?
महामात्य : परम भट्टारक ने राजनीति की एक महान् समस्या हल की है।
रामगुप्त : हाँ, मैंने हल की है...मैंने ही हल की है...मेरा कंठ सूख रहा है, सुलोचना !
सुलोचना : यह पान कीजिए, देव ! (मदिरा-पात्र भरकर देती है।)
रामगुप्त : (पान करते हुए) राजनीति की महान् समस्या...

[महादेवी ध्रुवस्वामिनी का प्रवेश]

ध्रुवस्वामिनी : आर्यपुत्र की जय !
रामगुप्त : (मादक स्वर में) महादेवी ध्रुवस्वामिनी ! स्वागत, महादेवी !
महामात्य : महादेवी की जय !
ध्रुवस्वामिनी : सुलोचना ! मैं एकान्त चाहती हूँ।
सुलोचना : जो आज्ञा ! (जाने को उद्यत होती है।)
रामगुप्त : तुम जा रही हो, सुलोचना ! फिर मेरा मधुपात्र कौन भरेगा ?
ध्रुवस्वामिनी : भरनेवालों की कमी नहीं है, आर्यपुत्र ! सुलोचना ! तुम जाओ !
सुलोचना : जो आज्ञा हो ! (प्रस्थान)
रामगुप्त : महामात्य ! तुम मेरा मधुपात्र भरोगे ? मैं महादेवी को कष्ट नहीं देना चाहता।
ध्रुवस्वामिनी : महामात्य !
महामात्य : हाँ, महादेवी !
ध्रुवस्वामिनी : महामात्य ! तुम राजनीति के आचार्य हो। तुम दाम्पत्य-नीति भी जानते होगे ?
महामात्य : हाँ, महादेवी !
ध्रुवस्वामिनी : मैं केवल महादेवी ही नहीं हूँ, अपने पति की पत्नी भी हूँ और ऐसे अवसर पर तुम जानते हो कि तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है ?
रामगुप्त : वे अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह जानते हैं, महादेवी !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवस्वामिनी : आर्यपुत्र ! महामात्य इसका उत्तर दें !

महामात्य : मैं अपना कर्त्तव्य तो अच्छी तरह जानता हूँ, महादेवी ! किन्तु इस समय युद्ध की मंत्रणा भी आवश्यक है जिसमें मेरा यहाँ रहना सब प्रकार से उचित है ।

ध्रुवस्वामिनी : इसका निर्णय मैं करूँगी कि आपका यहाँ रहना आवश्यक है या नहीं। और मैं यह निर्णय करती हूँ कि···

रामगुप्त : महादेवी ! निर्णय के पूर्व मेरा रिक्त मधुपात्र···

ध्रुवस्वामिनी : परम भट्टारक ! क्षमा करें । इस समय रिक्त मधुपात्र भरने की आवश्यकता नहीं है और मेरा कर्त्तव्य केवल रिक्त मधुपात्र भरना ही नहीं है, मैं विलासिनी नहीं हूँ, गुप्त-कुल की माहादेवी हूँ ।

महामात्य : किन्तु···

ध्रुवस्वामिनी : किन्तु-परन्तु नहीं, महामात्य ! मैं इस स्थान की एकमात्र स्वामिनी हूँ ।

महामात्य : किन्तु यह युद्ध-शिविर है, महादेवी ! और यहाँ युद्ध की मन्त्रणाएँ होती हैं।

ध्रुवस्वामिनी : मधुपात्र के साथ ! यहाँ कृपाण की धार पर निर्णय होना चाहिए, महामात्य ! मधु की धार पर नहीं ।

महामात्य : यह तो परम भट्टारक की इच्छा ।

ध्रुवस्वामिनी : परम भट्टारक की ! और आप उनके महामात्य हैं। यदि परम भट्टारक अन्तःपुर की दिशा भूल कर युद्ध-शिविरों में विलास के कुंज बसा लें, तो क्या आपका यह कर्त्तव्य नहीं है कि उन विलास-कुंजों को नष्ट कर दें और युद्ध-शिविर को युद्ध-शिविर ही रहने दें ?

रामगुप्त : (भर्राए स्वर से) यह युद्ध-शिविर ही बन गया, महादेवी ! तुमने सुलोचना को हटा ही दिया और लो, मैं यह मधुपात्र भी फेंक देता हूँ । (मधुपात्र से) जा, मधु-पात्र ! टूट जा । (फेंक देता है) युद्ध में गिरे हुए वीर के मस्तक की तरह टूट जा। तेरे भीतर से भी लाल रक्त की तरह लाल मदिरा बह निकलेगी । (महादेवी से) लो महादेवी । मधुपात्र को मैंने चूर-चूर कर दिया ।

ध्रुवस्वामिनी : मैं कृतार्थ हुई । अब युद्ध की मंत्रणा हो सकती है ।

रामगुप्त : तुम युद्ध में मंत्रणा दोगी, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : युद्ध में मंत्रणा क्यों न दूंगी, परम भट्टारक ! गुप्त-कुल की वधू केवल अन्तःपुर की निवासिनी नहीं है, वह युद्ध की मंत्रणा में भी भाग ले सकती है और युद्ध भी कर सकती है, विशेषकर जब आर्यपुत्र इस युद्ध-शिविर में हैं । गुप्त-कुल के गौरव के अनुकूल ही यह बात है कि पति-पत्नी का प्रथम सम्भाषण अमात्य के सामने युद्ध-शिविर में हो ।

रामगुप्त : मैं तुम्हारे पास आने ही वाला था, महादेवी ! किन्तु···

ध्रुवस्वामिनी : ···सुलोचना ने नहीं आने दिया । विलास-कुंजों ने रोक लिया । मधु-पात्र की सरिता बहुत गहरी हो गई । मधु की बूंदों के दर्पण में बन्दी हो गए ।

महामात्य : मुझे यहाँ से चला जाना चाहिए था, महादेवी ! किन्तु आपके सम्बन्ध में ही वार्त्तालाप हो रहा था ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवस्वामिनी : मेरे सम्बन्ध में ! आर्यपुत्र के अतिरिक्त किसी को भी अधिकार नहीं है कि वह मेरे सम्बन्ध में वार्त्तालाप करे।

महामात्य : क्षमा करें, महादेवी ! शकराज भी इसे अपना अधिकार समझता है।

ध्रुवस्वामिनी : (तीव्रता से) महामात्य ! तुम्हें शकराज को इसका दंड देना चाहिए। उसे इसी विष्णुपद के समीप व्यास नदी में डुबा देना चाहिए।

महामात्य : यदि उसने हमें घेर न लिया होता तो उसे मैं अवश्य ही व्यास नदी में डुबा देता, परम भट्टारक !

ध्रुवस्वामिनी : तो क्या शकराज ने हमारे शिविर को घेर लिया है ?

रामगुप्त : इसमें शकराज का कौशल ही क्या ! हमारा शिविर ही इतना छोटा है कि शकराज का शिशु भी उसे घेर सकता है। (हँसता है।)

ध्रुवस्वामिनी : (व्यंग्य से) और आप सरलता से घिर सकते हैं। आर्यपुत्र ! क्या दिग्विजयी समुद्रगुप्त पराक्रमांक के वंश में इस प्रकार की बात करने वाले परम भट्टारक की संज्ञा से पुकारे जा सकते हैं ?

रामगुप्त : इसका उत्तर दो, महामात्य शिखरसेन !

ध्रुवस्वामिनी : आर्यपुत्र यदि स्वयं उत्तर नहीं दे सकते तो उन्होंने आर्य समुद्रगुप्त की व्यवस्था के विपरीत चन्द्रगुप्त से सिंहासन क्यों छीन लिया ?

रामगुप्त : चन्द्रगुप्त के साथ यह पक्षपात···

महामात्य : गुप्त-कुल में ज्येष्ठ पुत्र द्वारा ही सिंहासन प्राप्त करने की परम्परा है, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : चुप रहिए, महामात्य ! आप राजनीति का मार्ग कूटनीति और षड्यंत्र के पैरों से नहीं चल सकते। यह आपकी ही मंत्रणा थी कि मैं नारी के स्वाभाविक अधिकारों को छोड़कर महादेवी बन जाऊँ ! महादेवी···जिसके वैभव के सिंहासन पर नारीत्व क्रंदन कर रहा है। रानी का मुकुट उसके मस्तक का सौन्दर्य अवश्य बढ़ा देता है, किन्तु उसके सुहाग की रेखा छिप जाती है।

रामगुप्त : (चौंककर) सुहाग की रेखा ! सुहाग-रेखा तो वर्तमान है, महामात्य !

ध्रुवस्वामिनी : वर्तमान है ? मुझसे कहें, आर्यपुत्र ! जब परम भट्टारक महादेवी के सौभाग्य की बातें महामात्य की मंत्रणा से करते हैं तब भी महादेवी की सुहाग-रेखा···

महामात्य : महादेवी, क्षमा करें ! परम भट्टारक और महादेवी केवल पति-पत्नी ही नहीं, राज्य के राजा और रानी भी हैं। उनका सम्बन्ध केवल उन्हीं तक सीमित नहीं है, उनसे राज्य के मंगल और अमंगल का भी सम्बन्ध है और आज तो अमंगल अपनी चरम सीमा तक पहुँच रहा है।

ध्रुवस्वामिनी : अपने ही राज्य में राजनीति की बातें स्पष्ट कही जाती हैं, महामात्य !

महामात्य : मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ, किन्तु महादेवी ! स्पष्ट कहने का साहस मुझमें नहीं है।

ध्रुवस्वामिनी : तब यह साहस किसमें होगा ? क्या मैं परम भट्टारक से प्रार्थना करूँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि हमारे प्रथम मिलन ही में राजनीति अमंगल को क्यों निमंत्रित कर रही है ? क्या परम भट्टारक में भी साहस नहीं है कि वे अमंगल को मंगल में परिणत कर दें ?

रामगुप्त : महामात्य ! साहस एकत्रित करो। राजनीति के प्रत्येक पर्व में तुमने हमारी सहायता की है। मेरा कंठ सूख रहा है, अमात्य ! अब तो मेरा मधुपात्र टूट गया।

महामात्य : महादेवी की आज्ञा से दूसरा मधुपात्र आ सकता है, परम भट्टारक !

ध्रुवस्वामिनी : बात बदली नहीं जा सकती, महामात्य ! मैं अपने प्रश्न का सीधा उत्तर चाहती हूँ। आप किस अमंगल की बात कह रहे थे ?

महामात्य : महादेवी ! यदि क्षमा करें तो···

ध्रुवस्वामिनी : स्पष्ट कहिए, महामात्य ! शब्दों के छद्म-वेश में छिपाई नहीं जा सकती। निर्बलता ही शिष्टाचार का आवरण है।

महामात्य : महादेवी ! शकराज ने हमारे दुर्ग को घेर लिया है। वह हमारे रक्तपात पर तुला हुआ है, किन्तु इतने पर भी उसने संधि का प्रस्ताव भेजा है।

ध्रुवस्वामिनी : यह आग शीतल क्यों हो रही है ? सिंह गो-मुख की मुद्रा क्यों धारण करता है ?

रामगुप्त : वह बात कह दो महामात्य ! महादेवी सुनने की मुद्रा में हैं। ओह, महादेवी ! तुम कितनी महान् हो।

महामात्य : महादेवी ! वह संधि केवल इस बात पर करना चाहता है कि परम भट्टारक अपनी महादेवी ध्रुवस्वामिनी को उसे भेंट कर···

ध्रुवस्वामिनी : (बीच ही में चीखकर) महामात्य···!

महामात्य : महादेवी, क्षमा करें ! शकराज कहता है कि उसका विवाह-सम्बन्ध पहले ही महादेवी से स्थिर हो चुका था। तभी तो महादेवी के पिता ने उपहारस्वरूप उन्हें गुप्त-कुल में···

ध्रुवस्वामिनी : चुप रहो···महामात्य ! स्त्री उपहार की सामग्री नहीं है। (रामगुप्त से) परम भट्टारक ! मैं महामात्य को दंड देना चाहती हूँ।

रामगुप्त : महामात्य, तुम दंड के भागी हो। अवश्य ही दंड के भागी हो और सबसे बड़ा दंड मैं यह तुम्हें देना चाहता हूँ कि तुम इसी समय मेरे लिए एक भरा हुआ मधु-पात्र उपस्थित करो ! क्यों न, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : (आह भरकर) ओफ ! जिस बात पर कृपाण म्यान छोड़कर शत्रुओं के कंठों पर गतिशील हो सकती है, उसी बात पर गुप्त-कुल दंड की व्यवस्था में मधु-पात्र की इच्छा करता है। परम भट्टारक ! यह कैसी बात है। कैसी विडंबना है ! (महामात्य से) महामात्य ! परम भट्टारक को कुत्सित मंत्रणा देने के कारण तुम अपने को दंड का भागी समझो !

महामात्य : महादेवी ! दंड से भी अधिक भयानक जो हो वह मुझे दीजिए, किन्तु परम भट्टारक ने ही यह राजनीति की समस्या हल कर दी है। वे शकराज के संधि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्ताव को मान चुके हैं।

ध्रुवस्वामिनी : (चीखकर) ओह! निर्लज्ज अमात्य! यह कलंकित सूचना देने के अपराध में तुम्हारी जिह्वा काट दी जाएगी। जाओ, यहाँ से इसी समय चले जाओ! मैं एकान्त चाहती हूँ।

महामात्य : जैसी आज्ञा, महादेवी! अमात्य का कार्य सूचना देना है, चाहे वह पवित्र हो या कलंकित। निर्णय का अधिकार परम भट्टारक और महादेवी को है। परम भट्टारक और महादेवी को प्रणाम! (प्रस्थान)

रामगुप्त : (उठकर) मैं भी चल रहा हूँ, महामात्य!

ध्रुवस्वामिनी : (रोककर) नहीं, आप नहीं जा सकते। मैं यह पूछना चाहती हूँ कि जो कुछ महामात्य ने कहा है, क्या वह सत्य है?

महामात्य : (घबराकर) एँ एँ एँ एँ, मैं क्या कहूँ! सत्य भी हो सकता है।

ध्रुवस्वामिनी : तो परम भट्टारक ने यह संधि स्वीकार कर ली? परम भट्टारक! क्या गुप्त-साम्राज्य की विभूति इसी में है कि शत्रुओं को रक्त देने के स्थान पर अपनी मान-मर्यादा दे दी जाए? परम भट्टारक! यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकेगा।

रामगुप्त : महामात्य कहते हैं कि साम्राज्य की रक्षा करना हमारा धर्म है, देवी! हम एक स्त्री के पीछे साम्राज्य नहीं खो सकते।

ध्रुवस्वामिनी : यह तो अमात्य कहते हैं, किन्तु आप क्या कहते हैं? अपनी महादेवी को शत्रु के हाथों सौंपने पर जिस साम्राज्य की रक्षा आप करेंगे क्या वह साम्राज्य आपको कीर्ति दे सकेगा? अपमान के साथ मिला हुआ वैभव ऐसा भोजन है जिसमें विष मिला हुआ है। उससे जीवन की रक्षा नहीं हो सकती।

रामगुप्त : तुम्हारा उपदेश तो बहुत सुन्दर है, महादेवी! यदि तुम्हारा और महामात्य का उपदेश एक ही तरह का होता तो कितना अच्छा होता! अब सबसे बड़ी कठिनाई यह है, महादेवी, कि शकराज तुम्हें माँगता है। क्या यह सच है कि तुम्हारा विवाह-सम्बन्ध शकराज से स्थिर हो चुका था?

ध्रुवस्वामिनी : बलपूर्वक न तो स्त्री का विवाह-सम्बन्ध स्थिर हो सकता है और न उससे प्रेम किया जा सकता है। मैं पूछती हूँ, परम भट्टारक! क्या गुप्त-कुल की यही मर्यादा है कि स्त्री के मूल्य पर संधि प्राप्त की जाए?

रामगुप्त : जो कुछ मैं करूँगा आगे चलकर वही मर्यादा समझी जाएगी। किन्तु यह भी सोचो, महादेवी, कि मैं एक स्त्री के स्थान पर लाखों वीरों की रक्षा कर रहा हूँ। महामात्य शिखरसेन भी यही कहते हैं। मेरी राजनीति की तुम प्रशंसा नहीं करतीं!

ध्रुवस्वामिनी : आपकी राजनीति मुझे आत्महत्या का निमंत्रण दे रही है।

रामगुप्त : (घबराकर) न न न न, ऐसा न करो, ऐसा न करो, महादेवी! मेरी संधि पूरी न हो सकेगी। गुप्त-साम्राज्य शकराज के हाथों नष्ट हो जाएगा। तुम्हारी आत्महत्या से मेरे प्रख्यात वंश में रक्त का धब्बा लग जाएगा।

ध्रुवस्वामिनी : सत्य है, रक्त के धब्बे से कहीं कलंक का धब्बा धुल न जाए!

CC-0. Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामगुप्त : तो तुम आत्महत्या तो न करोगी ? नहीं···नहीं । ओह, देवी ! तुम कितनी सुन्दर हो ! कितनी सुन्दर हो ! मेरे सम्मान का कितना ध्यान रखती हो ! अच्छा, देवी ! मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि तुम इतनी सुन्दर हो क्यों ? इस सुन्दरता का रहस्य क्या है ? मैं यदि एक मधुपात्र पान कर लूँ तो इस एक सुन्दरता को सौ गुनी देख सकता हूँ । (महादेवी मौन रहती हैं) तुम बोलती क्यों नहीं, महादेवी ! तुम बोलती क्यों नहीं ? तुम मुझ से युद्ध करने के लिए कहोगी, किन्तु संभव नहीं है, महादेवी ! क्योंकि मेरे विचार से तलवारों का युद्ध अच्छी बात नहीं है । इतने वर्षों से पोषित किया हुआ सुन्दर शरीर एक क्षण में कट जाता है । वर्षों से पोषित की हुई सुन्दरता की सम्पत्ति तलवार के एक हल्के झोंके में ही उड़ जाती है । सोचो ! तुम्हीं सोचो ।

ध्रुवस्वामिनी : (करुण स्वर से) आपके विचार क्यों ऐसे हुए, आर्यपुत्र ! किसने आपको इन विचारों में पोषित किया ? आर्य समुद्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र को युद्ध में शरीर की सुन्दरता का ध्यान क्यों होता है ? आप अपने को सम्हालिए, आर्यपुत्र !

रामगुप्त : अच्छी बात है, इस संधि के बाद अपने को सम्हाल लूँगा ।

ध्रुवस्वामिनी : (बिलखकर) नहीं, नहीं, आर्यपुत्र ! इस सन्धि में आप मेरा बलिदान न कीजिए । नहीं, नहीं ! परम भट्टारक ! ऐसा न कीजिए । आपकी अनुचरी हूँ । गुप्त-कुल की महादेवी हूँ । आर्य समुद्रगुप्त की कीर्ति देखिए । मैं आपकी पत्नी हूँ, आर्यपुत्र !

रामगुप्त : तो पत्नी को पति की आज्ञा माननी चाहिए ।

ध्रुवस्वामिनी : मैं आपकी सब आज्ञाएँ मानूँगी, आर्यपुत्र ! किन्तु ऐसी आज्ञा न दीजिए जिसमें वंश का गौरव ही नष्ट हो जाए । मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, आर्यपुत्र ! मेरी रक्षा कीजिए, मेरी रक्षा कीजिए ! (सिसकियाँ)

रामगुप्त : अरे, यह क्या ! यह क्या ! परम भट्टारक रामगुप्त की महादेवी को रोना शोभा नहीं देता ।

ध्रुवस्वामिनी : अपने दुर्भाग्य को आँसुओं में बहा देना चाहती हूँ, आर्यपुत्र ! आपने मुझसे विवाह किया था, मेरी रक्षा का भार एकमात्र आप पर ही है । मैं आपसे भिक्षा माँगती हूँ कि वंश-मर्यादा की रक्षा कीजिए ।

रामगुप्त : महादेवी ! उठो, उठो । संधि से ही वंश की रक्षा हो सकती है ।

ध्रुवस्वामिनी : तो आपका यह निश्चय अटल है ?

रामगुप्त : हाँ, बिल्कुल अटल, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन या संशोधन नहीं होगा ?

रामगुप्त : नहीं, तुम्हें शकराज के पास जाना ही होगा ।

ध्रुवस्वामिनी : और यदि मैं न जाऊँ तो ?

रामगुप्त : बलपूर्वक भेजा जाएगा । नहीं तो शकराज कहेगा कि मुझे अपनी स्त्री पर भी अधिकार नहीं । जिसे अपनी स्त्री पर अधिकार नहीं, वह राज्य पर अधिकार कैसे रख सकता है ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवस्वामिनी : ऐसा व्यक्ति न पति हो सकता है, न राजा।

रामगुप्त : (उग्रता से) महादेवी ! तुम मेरा अपमान नहीं कर सकतीं।

ध्रुवस्वामिनी : मैं क्या अपमान कर सकती हूँ। अपमान तो शकराज कर सकता है। और उस अपमान को गौरव के साथ सिर पर धारण किया जा सकता है।

रामगुप्त : (तीव्रता से) महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : यह तीव्रता मेरे ही साथ है ? जाने दीजिए। मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी।

रामगुप्त : तुम अपनी रक्षा स्वयं करोगी, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : हाँ, जब पति अपनी मर्यादा खो रहा है, तब पत्नी उस मर्यादा की रक्षा करेगी।

रामगुप्त : महादेवी ! तुम मर्यादा की रक्षा नहीं करोगी। शकराज के हाथों मेरे प्राण संकट में पड़ जाएँगे।

ध्रुवस्वामिनी : तो यह कहना चाहिए कि परम भट्टारक कायर हैं और क्लीव भी। यदि राजकुमार चन्द्रगुप्त यह सुनें कि मेरी दशा इतने संकट में है तो वे अपने प्राणों का मूल्य चुकाकर···

रामगुप्त : (बीच ही में) चन्द्रगुप्त का नाम न लो, महादेवी !

ध्रुवस्वामिनी : क्यों ? क्यों न लूँ ? मैं उनकी वाग्दत्ता थी। तुमने कूट मंत्रणा करके मुझसे विवाह किया। उन्होंने मर्यादा के लिए अपने बड़े भाई को राज्य और स्त्री दोनों पर अधिकार कर लेने दिया, किन्तु बड़ा भाई इतना कायर है कि वह किसी की रक्षा भी नहीं कर सकता।

रामगुप्त : तुम चन्द्रगुप्त का नाम न लो, महादेवी ! मुझे ईर्ष्या हो रही है।

ध्रुवस्वामिनी : शकराज के पास मुझे भेजने में ईर्ष्या नहीं होती ? आर्य समुद्रगुप्त की इच्छानुसार मेरा जो सच्चा अधिकारी है, उसके प्रति आपको ईर्ष्या हो रही है ?

रामगुप्त : मैं अधिक बातें नहीं सुनना चाहता, महादेवी ! इतनी बातों के बदले यदि तुमने एक मधुपात्र ही दे दिया होता तो मैं तुम्हें क्षमा कर देता; किन्तु अब तुम क्षमा भी नहीं की जा सकतीं।

ध्रुवस्वामिनी : मुझे क्षमा की आवश्यकता भी नहीं है, परम भट्टारक ! मैं आपको मद्यप और निर्लज्ज समझती हूँ। आपकी क्षमा का मेरे समक्ष कोई मूल्य नहीं है। मेरी मर्यादा की रक्षा केवल यही कृपाणी करेगी। (कृपाणी निकाल लेती है) मैं जा रही हूँ। (जाने को उद्यत होती है।)

रामगुप्त : (घबराहट से) देखो, देखो, महादेवी ! मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम आत्म-हत्या न करना। शकराज मेरी हत्या कर देगा। मेरे प्राणों के लिए—जीवन के लिए। महादेवी ! (महादेवी का शीघ्रता से प्रस्थान) गईं। वे कहीं आत्महत्या न कर लें ! मैं जाऊँ ? हाय, मैं क्या करूँ, सुलोचना···! सुलोचना···!

[राजकुमार चन्द्रगुप्त का कृपाण लिए हुए प्रवेश]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रगुप्त : परम भट्टारक की जय !

रामगुप्त : कौन, चन्द्रगुप्त ! भाई चन्द्रगुप्त ! महादेवी को बचाओ। वे आत्महत्या करने जा रही हैं। ओह ! मेरी संधि कैसे पूरी होगी ? वे आत्महत्या करने जा रही हैं।

चन्द्रगुप्त : कौन आत्महत्या करने जा रही हैं ? महादेवी ! नहीं। वे आत्महत्या नहीं करेंगी। मैं उनके आदर्श को पहिचानता हूँ। गुप्त-वंश की वीर वधू कभी आत्म-हत्या न करेगी।

रामगुप्त : किन्तु चन्द्रगुप्त ! उन्होंने कृपाणी निकाल भी ली है।

चन्द्रगुप्त : तो कृपाणी तो महादेवी की शोभा है, परम भट्टारक ! और फिर ऐसी कौन-सी बात है जिसके लिए आत्महत्या करनी पड़े ?

रामगुप्त : शकराज का युद्ध है, चन्द्रगुप्त !

चन्द्रगुप्त : हाँ, मैंने सुना है कि शकराज ने भयानक युद्ध किया है।

रामगुप्त : देखो, तुम्हारे शरीर पर भी छींटे हैं। ये मधु के छींटे तो···

चन्द्रगुप्त : युद्ध के दिन में मधु के छींटे शरीर और वस्त्रों पर नहीं गिरते, परम भट्टारक ! (सामने टूटा हुआ मधुपात्र देखकर) और आपने भी तो यह मधुपात्र तोड़ दिया है, गुप्त-कुल की मर्यादा इसीलिए स्थिर है कि युद्ध के दिनों में विलास स्वप्न की तरह भुला दिया जाता है। आत्म-सम्मान और वंश-गौरव ही एकमात्र कहने और सुनने का विषय बन जाता है।

रामगुप्त : किन्तु कभी-कभी ऐसा करना कठिन हो जाता है, चन्द्रगुप्त !

चन्द्रगुप्त : हो सकता है, परम भट्टारक ! आज ही मैं राजधानी से आया। शिविर में आते समय मैंने सुना कि हमारा दुर्ग चारों ओर से घिर गया है। शत्रु-पक्ष के सैनिक ने व्यंग्य से कहा कि हमारे शकराज महादेवी ध्रुवस्वामिनी को उपहार में लेकर संधि करेंगे। मैंने उसी क्षण उस सैनिक का सिर काट दिया। मुझ पर चारों ओर से आक्रमण हुए किन्तु मैंने प्रत्येक आक्रमण का निवारण किया और दस सैनिकों को सदा के लिए सुला दिया। उन्हीं के रक्त के ये धब्बे हैं। यह मधु नहीं है, परम भट्टारक ! शत्रु का रक्त है जिसे मैंने महादेवी के अपमान में युद्ध भैरवी का तिलक बना दिया।

रामगुप्त : किन्तु, चन्द्रगुप्त ! संधि कर लेनी चाहिए। यह महामात्य ने भी कहा है।

चन्द्रगुप्त : संधि ! परम भट्टारक ! आप क्या कह रहे हैं ? महामात्य को दण्ड दीजिए। संधि के लिए झुकना गुप्त-कुल की परम्परा में नहीं है। और वह संधि भी कैसी ? गुप्त-कुल की गौरव-लक्ष्मी महादेवी ध्रुवस्वामिनी का अपमान करते हुए ? परम भट्टारक ! ऐसा दिन आने के पूर्व ही गुप्त-साम्राज्य का एक-एक सैनिक अपना रक्त बहाना अपने जीवन का सबसे बड़ा कर्त्तव्य समझेगा।

रामगुप्त : और तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है, चन्द्रगुप्त, यह जानते हो ! अस्तु, ये बातें तो होती रहेंगी। तुम मुझे एक मधुपात्र भी नहीं दे सकते ? कितनी देर से मैं मधु की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामना कर रहा हूँ ।

चन्द्रगुप्त : इस समय आप शत्रुओं का रक्तपान कीजिए, परम भट्टारक ! शत्रुओं की संख्या बहुत अधिक है। आपका रक्त-पात्र कभी रिक्त न होगा । मेरे समक्ष गुप्त-वंश की मर्यादा सुरक्षित रखने का व्रत है। इस कुल का महत्त्व स्थिर रहे इसीलिए मैंने राजदंड न ग्रहण करके पिता के द्वारा दिया गया सिंहासन छोड़ दिया। और आपके परम भट्टारक बनने में अपने सौभाग्य का अनुभव किया ।

रामगुप्त : किन्तु राज्य तो बड़े भाई को ही मिलना चाहिए। इसे मानकर तुमने छोटे भाई की तरह काम किया। बड़े भाई को राजनीति के प्रसंगों को सुलझाने का गंभीर कार्य करना है और बड़े भाई ने यह निर्णय दे दिया है कि इस समय की परिस्थिति में राज्य की रक्षा के लिए उचित यही है कि महादेवी शकराज के शिविर में चली जावें ।

चन्द्रगुप्त : (उग्रता से) परम भट्टारक !

रामगुप्त : राजनीति पर शान्ति से विचार करो, चन्द्रगुप्त ! कहो तो मैं महामात्य को भी बुला दूं ! उनकी सहायता से तुम शीघ्र ही ठीक निर्णय पर पहुँच सकोगे ।

चन्द्रगुप्त : परम भट्टारक ! मैं ऐसे अमात्य का वध कर दूंगा। और मैं देखता हूं कि पिता आर्य समुद्रगुप्त का पराक्रम आपके द्वारा कायरता के कारागार में बन्द होने जा रहा है । सँभालिए, परम भट्टारक ! अपने इतिहास को सँभालिए ! नहीं तो यह गुप्त-वंश में आपके नाम को घृणा के अक्षरों में लिखेगा। मैं गुप्त-कुल की वधू ध्रुवस्वामिनी को राज-प्रासाद में लाने के लिए इस कारण नहीं गया था कि संधि-प्रस्ताव में वे शकराज को सौंप दी जाएँ और गुप्त-कुल स्त्री की भाँति आत्म-समर्पण कर दे। उठिए, परम भट्टारक, और शकराज के सामने कृपाण की धार का कौशल दिखाइए !

रामगुप्त : मैं संधि करूंगा, चन्द्रगुप्त ! राजाज्ञा बदली नहीं जा सकती। तुम्हें भी मेरा आदेश मानना होगा।

चन्द्रगुप्त : मैं गृह-विद्रोह उपस्थित नहीं करना चाहता । नहीं तो परम भट्टारक, मैं पहला द्वन्द्व आपसे ही करता। गुप्त-कुल की लक्ष्मी आज लांछित न होती। परम भट्टारक ! जिस श्रद्धा से मैंने गुप्त-कुल का सिंहासन आपको सौंप दिया था, उसी श्रद्धा से मैं आपको रण-निमंत्रण भी देता। किन्तु इस समय आप मेरी प्रार्थना मान लीजिए और महादेवी का गौरव तथा गुप्त-कुल की यशःश्री दोनों की रक्षा कीजिए। मैं आपकी प्रत्येक आज्ञा मानने के लिए तैयार हूँ ।

रामगुप्त : प्रत्येक आज्ञा मानने के लिए तैयार हो ? तो जिस प्रकार तुम महादेवी ध्रुवस्वामिनी को गुप्त-कुल में लाए थे, उसी तरह तुम उन्हें शकराज के शिविर में पहुँचाओ ! और हाँ, मेरे लिए शीघ्र ही एक मधुपात्र लाओ !

चन्द्रगुप्त : मैं एक प्रार्थना करता हूँ !

रामगुप्त : मैं कोई प्रार्थना नहीं सुनना चाहता। प्रार्थना स्त्रियाँ किया करती हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रगुप्त : अपने वंश-गौरव की रक्षा के लिए आप मेरी प्रार्थना को स्त्री-प्रार्थना ही समझ लीजिए।

रामगुप्त : तो क्या तुम स्त्री हो? (हँसता है) ह् ह् ह् ह् ह् ह्। यदि तुम अपने को स्त्री समझो तो मैं तुमसे युद्ध कर सकता हूँ। क्योंकि मैं अभी तक उनसे ही युद्ध करता रहा हूँ। यही मेरा अभ्यास है। सुकुमार शत्रु को जीतने में जितना आनन्द है, उससे अधिक आनन्द हारने में है। (हँसता है) ह् ह् ह् ह् ह् ह्!

चन्द्रगुप्त : अच्छा तो मैं स्त्री ही सही। तब मैं आपसे एक बात का प्रस्ताव करता हूँ कि शकराज के शिविर में महादेवी न जाएँ। मैं ही महादेवी का रूप रखकर स्त्री-वेश में शकराज के पास जाऊँ। आपकी संधि की बात पूरी होगी।

रामगुप्त : महादेवी बनकर जाओगे? स्त्री-वेश रखकर? तुम्हें स्त्री-वेश में देखकर शकराज को बहुत आनन्द आएगा। (हँसता है) ह् ह् ह् ह् ह् ह्! अच्छा, तुम जा सकते हो और अपने साथ सौ स्त्रियों को ले जा सकते हो या तुम्हारी तरह यदि सामंत भी स्त्री-वेश धारण करना चाहें तो ऐसी सामन्त-स्त्रियों को ले जाओ। (हँसता है) ह् ह् ह् ह् ह् ह्! किन्तु महादेवी को भी जाना होगा। मैं राजनीति में असत्य भाषण नहीं करता। (महादेवी ध्रुवस्वामिनी का प्रवेश। उन्हें देखकर) ओह! महादेवी! तुम आ गईं? तुमने आत्महत्या नहीं की! ओह! तुम कितनी अच्छी हो! यदि तुम आत्महत्या कर लेतीं तो संधि पूरी नहीं हो सकती थी। किन्तु पतिपरायणा हो। ऐसी पतिपरायणा को प्राप्त कर शकराज कितना प्रसन्न होगा! (हँसता है) ह् ह् ह् ह् ह् ह्! मेरी प्रशंसा किए विना नहीं रहेगा। पतिपरायणा महादेवी ध्रुवस्वामिनी!

ध्रुवस्वामिनी : (चन्द्रगुप्त को देखकर) ओह! राजकुमार चन्द्रगुप्त! कुमार! मेरी भयानक परिस्थिति देखो। मुझे शकराज के पास जाने का आदेश मिला है।

रामगुप्त : तुम अकेली नहीं जाओगी, देवी! चन्द्रगुप्त तुम्हारे साथ स्त्री-वेश धारण कर जावेंगे। एक के स्थान पर दो स्त्रियाँ देखकर शकराज कितना प्रसन्न होगा! वह समझ जाएगा कि गुप्त-वंश माँगी हुई वस्तु को दुगुनी करके देता है। (हँसता है) ह् ह् ह् ह् ह् ह्। दुगुनी करके देता है। एक महादेवी नहीं, दो महादेवियाँ! दो-दो! (पुकारकर) अरे, महामात्य! तुम कहाँ हो, तुम भी सुनो! दो महादेवियाँ!

ध्रुवस्वामिनी : (तीव्रता से) महादेवी सदैव एक होती है। भट्टारक! दो महादेवियाँ नहीं हो सकतीं।

रामगुप्त : एक ही सही, किन्तु मैं कहता हूँ कि मधुबाला और महादेवी एक से दो अच्छी होती हैं। (हँसता है) ह् ह् ह् ह् ह् ह्! एक से दो अच्छी होती हैं, महादेवी! किन्तु मुझे कोई आपत्ति नहीं और सुनो, आज से प्रण करता हूँ कि महादेवी के यहाँ से जाने का पर्व मैं मधुबालाओं के साथ प्रतिवर्ष मनाऊँगा, प्रतिवर्ष!

ध्रुवस्वामिनी : तब मेरा जाना निश्चित है?

चन्द्रगुप्त : हाँ, और मैं साथ चलूँगा। स्त्री-वेश धारण करके ही जाऊँगा। शक-शिविर में मैं शकराज से युद्ध करूँगा, और महादेवी की रक्षा करूँगा।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवस्वामिनी : किन्तु मैं अपने कारण राजकुमार के प्राण संकट में नहीं डालूँगी।

चन्द्रगुप्त : आर्य समुद्रगुप्त के पुत्र के लिए संकट भी वरदान है, महादेवी ! और यदि महादेवी की रक्षा में मेरे जीवन का उपयोग हो सके तो इससे अधिक गौरव की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है ? मैं प्राण देकर महादेवी के सम्मान की रक्षा करूँगा।

ध्रुवस्वामिनी : राजकुमार ! तुम गुप्त-वंश के भूषण हो।

[महामात्य शिखर स्वामी का प्रवेश।]

महामात्य : परम भट्टारक की जय ! मैं अपने लिए दण्ड की व्यवस्था लेने आया हूँ, देव !

रामगुप्त : (हँसता है) ह् ह् ह् ह् ह् ह् ! तुम्हारे दण्ड की व्यवस्था ! ओह ! तुम तो मंत्रणा देने में बृहस्पति हो। तुम्हारे ही संकेतों से कार्य हो रहा है, महामात्य ! और एक बड़ी मनोरंजक बात हुई है। चन्द्रगुप्त भी महादेवी के साथ शक-शिविर में जाएँगे। और भी सुनो ! स्त्री-वेश धारण कर ! तुमने कभी स्त्री-वेश धारण किया है, महामात्य ! (हँसता है) ह् ह् ह् ह् ह् ह् ! किसी दिन स्त्री-वेश धारण करो, महामात्य ! (हँसता है) ह् ह् ह् ह् ह् ह् !

महामात्य : परम भट्टारक ने मेरी मंत्रणा मानकर मुझे कृतार्थ किया है। राजनीति में राष्ट्र किसी भी व्यक्ति से महान् है।

चन्द्रगुप्त : चुप रहो, महामात्य ! सिद्धान्त की बलि-वेदी पर राजकुल के गौरव का बलिदान नहीं किया जा सकता। यदि तुम में शत्रु से युद्ध करने की शक्ति नहीं है तो अपना आत्म-सम्मान भी तुम नहीं बेच सकते। किन्तु राजाज्ञा मुझे माननी है। मैं संकट के समय अपने ही पक्ष में विद्रोह नहीं करना चाहता, नहीं तो परम भट्टारक और तुम्हें दोनों को ही युद्ध में निमंत्रण देता।

महामात्य : राजकुमार !

चन्द्रगुप्त : चुप रहना सीखो, महामात्य ! मैंने महादेवी की रक्षा करने का प्रण किया है। उन्हें अपने शक-शिविर में ले जाऊँगा और शकराज को उसकी उद्दण्डता का दण्ड दूँगा।

महामात्य : राजकुमार ! मेरी राजनीति के अनुसार ही आप काम कर रहे हैं।

चन्द्रगुप्त : राजनीति के कीड़े ! तुम नहीं जानते कि राजनीति गुप्त-वंश के गौरव का अनुसरण करती रही है, गुप्त-वंश ने राजनीति का अनुसरण नहीं किया। आर्य समुद्रगुप्त पराक्रमांक के राज्य की सीमा कृपाण की धार पर बनी है, संधियों से नहीं। आज उसी कृपाण की धार पर महादेवी को ले जाऊँगा और शकराज से द्वन्द्व युद्ध करूँगा। उसे यम-लोक भेज कर मैं तुम्हें और परम भट्टारक को रक्त की धार से नहलाऊँगा। मैं गुप्त-वंश के सिंहासन पर उस व्यक्ति को नहीं बैठने दूँगा जो महादेवी के महत्त्व को नहीं पहिचान सका और जो कृपाण की धार में डूबने के बदले मधुपात्र में डूब गया। (महादेवी से) चलो, महादेवी !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवस्वामिनी : भट्टारक, तुम्हें प्रणाम करने में भी मुझे लज्जा आती है। सिंहों की परम्परा में तुम जैसे शृगालों के लिए मैं अपनी घृणा देकर जा रही हूँ। जय गुप्त-वंश !

[चन्द्रगुप्त के साथ शीघ्रता से महादेवी का प्रस्थान।]

रामगुप्त : (निर्लज्जता से हँसते हुए) ह् ह् ह् ह् ह् ह् ! नाटक तो बड़ा सुन्दर रहा, महामात्य ! संधि की बात पूरी हुई और चन्द्रगुप्त जैसा कंटक भी दूर हुआ। तुम्हारी नीति बड़ी सुन्दर है, महामात्य !

महामात्य : यह आपकी गुण-ग्राहकता है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : इन लोगों के विवाद में मेरा मधुपात्र भी टूट गया। मेरी मधुबाला सुलोचना को बुलाओ, महामात्य !

[सुलोचना का प्रवेश।]

सुलोचना : परम भट्टारक की जय ! मैं तो आपके आदेश की प्रतीक्षा कर रही थी। मैं शिविर-द्वार पर ही खड़ी थी। आपकी आज्ञा सुनते ही मैं उपस्थित हूँ।

रामगुप्त : तो लाओ मधुपात्र, सुलोचना ! इस राजनीति की उलझन में तो मेरा कंठ सूख गया।

सुलोचना : प्रस्तुत है, परम भट्टारक ! (मधुपात्र देती है।)

रामगुप्त : (मधुपान कर) ओह ! यह अमृत अभी तक मुझसे दूर रहा। (मधुपात्र ऊपर उठाकर उसे सम्बोधित करते हुए) मधुपात्र ! तेरी धारा में मेरा जीवन सदैव ही बहता रहे।

सुलोचना : मैं मधु और भी लाई हूँ, परम भट्टारक !

रामगुप्त : लाओ, लाओ ! सुलोचने ! आज इतना मधु पी लूँ कि उसकी सुगन्धि शकराज के शिविर तक पहुँच जाए, शकराज के शिविर तक। चन्द्रगुप्त और महादेवी भी कहें कि मधु का महत्त्व महादेवी से भी अधिक है। महादेवी से भी अधिक···

महामात्य : सत्य है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : (हँसता हुआ) ह् ह् ह् ह् ह् ह् ! चन्द्रगुप्त कहता है कि कृपाण की धार में डूबने के बदले मैं मधु-धार में डूब रहा हूँ। हाँ, डूब रहा हूँ। मधु की धार में डूब रहा हूँ।

सुलोचना : और मधु दूँ, परम भट्टारक !

रामगुप्त : हाँ और मधु दो। मधु से सारा संसार भर दो कि मधु का धरातल आकाश तक पहुँच जाए और ग्रह-नक्षत्र उसमें डूबते हुए चले जाएँ। फिर सारा मधु मेरे पात्र में आकर समा जाए। आज से तुम सुलोचना···तुम्हीं महादेवी हो, महादेवी। (चौंक कर) मैं तो भूल ही गया। मैंने प्रण किया था कि महादेवी के यहाँ से जाने का पर्व मैं मधुबालाओं के साथ प्रति वर्ष मनाऊँगा। प्रति वर्ष···यह पर्व आज से ही आरम्भ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो। सुलोचना ! अपनी वंशी में स्वर भरो। उसी तीखी तान का तीर मेरे हृदय तक पहुँच जाय। मेरे हृदय तक···!

सुलोचना : जो आज्ञा, परम भट्टारक ! (प्रस्थान)

महामात्य : बहुत सुन्दर प्रस्ताव है, परम भट्टारक !

रामगुप्त : (नशे में) तुम भी मुझसे सहमत हो, महामात्य ! एँ···तब तो वंशी की ध्वनि में भी राजनीति है, राजनीति ! संगीत के युद्ध में भी तुम्हारी राजनीति चलती है। अब चलाओ संगीत में अपनी राजनीति···

[सुलोचना आकर नृत्य-मुद्रा लेकर वंशी के स्वर भरती है।]

रामगुप्त : (और भी अधिक नशे में) ओह ! यह वंशी-ध्वनि का तीर आया, वंशी-ध्वनि का तीर ! मैं मधु की धार में डूब रहा हूँ, वंशी-ध्वनि की धार में डूब रहा हूँ, कृपाण की धार में नहीं, कृपाण की धार में नहीं, कृपाण की धार में नहीं।

[वंशी का स्वर चलता रहता है और रामगुप्त मदिरा की मादकता से मूर्छित होकर गिर पड़ता है। परदा गिरता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औरंगजेब की आखिरी रात

पात्र-परिचय

आलमगीर औरंगज़ेब : मुगल सम्राट
जीनत उन्निसा बेगम : आलमगीर औरंगजेब की पुत्री
करीम : एक सिपाही
हकीम : और कातिब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान : अहमदनगर का किला   समय : 18 फरवरी, 1707, रात्रि के 4 बजे

[बीजापुर और गोलकुण्डा की शिया रियासतों पर विजय प्राप्त करने के बाद जब औरंगज़ेब ने मराठों का अन्त करने का निश्चय किया तो उसे अपनी असफलता स्पष्ट दीख पड़ने लगी।

उसने जब छत्रपति शिवाजी के पुत्र शंभाजी को सपरिवार बन्दी कर लिया और उसके सामने इस्लाम धर्म में दीक्षित होने का प्रस्ताव रक्खा, तो शंभाजी ने घृणा से प्रस्ताव को ठुकराते हुए औरंगज़ेब के प्रति अत्यन्त कटु शब्दों का व्यवहार किया।

फलस्वरूप शंभाजी बड़ी निर्दयता के साथ कत्ल किया गया। उसके क़त्ल होते ही मराठों में क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। सत्रह वर्षों तक भयंकर संघर्ष होता रहा। इधर मुगल सेना दिनो-दिन विलासी बन रही थी। फलस्वरूप प्रत्येक लड़ाई में उसे बहुत अधिक हानि उठानी पड़ती थी।

सन् 1706 में औरंगज़ेब ने देखा कि उनकी सेना अब अत्यन्त विशृंखलित और आलसी हो गई है। राज्य की आर्थिक दशा भी चिंताजनक हो रही है। लड़ाई की हानि 'जजिया' कर से भी पूरी नहीं हो रही है। जलालुद्दीन अकबर के समय से संचित आगरा और दिल्ली के किलों की समस्त सम्पत्ति दक्षिण की लड़ाइयों में समाप्त हो चुकी है; तीन-तीन महीनों से सिपाहियों और सिपहसालारों का वेतन नहीं दिया गया है।

राज्य की इस दुर्व्यवस्था के साथ वह अब वृद्ध हो गया है। पहले जैसी शक्ति अब उसके शरीर में नहीं रही। उसका विजय-स्वप्न निराशा में तिरोहित हो चला है। उसकी चिन्ताएँ उसे चैन नहीं लेने देतीं। अन्त में हताश होकर वह अहमदनगर लौट आया है।

इस समय वह अहमदनगर के किले में बीमार पड़ा हुआ है। उसका शरीर टूट चुका है। उसे ज्वर और खाँसी है। इस समय उसकी अवस्था 89 वर्ष की है। एक साधारण से पलंग पर लेटा हुआ है। सिरहाने सफेद रेशम का तकिया है, जिसके दोनों बाजुओं में जरी की हल्की पट्टियाँ हैं।

वह एक सफेद रेशम की चादर कमर तक ओढ़े हुए है। दुबला-पतला शरीर। कटी-छँटी सफेद दाढ़ी। नाक लम्बी, किन्तु वृद्धावस्था के कारण कुछ झुकी हुई। वह सफेद लम्बा कुरता पहने हुए है, जो रेशमी तनी से दाहिने कन्धे पर कसा हुआ है। गले में मोतियों की एक बड़ी माला पड़ी हुई है जिसके मध्य में एक बड़ा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीलम जड़ा है। हाथ में तसवीह है।

आलमगीर की मुख-मुद्रा अत्यन्त मलीन और पश्चात्ताप से परिपूर्ण है। उसके दाहिनी ओर एक सुसज्जित पीठिका पर उसकी पुत्री जीनत उन्निसा वेगम बैठी हुई है। उसकी आयु 40 वर्ष के लगभग है। देखने में सौम्य और आकर्षक। वह नीले रंग की रेशमी शलवार और प्याजी रंग की ओढ़नी से सुसज्जित है। गले में रत्नों की माला है और कमर में मोतियों की पेटी कसी हुई है। उसके मुख पर भी भय और आशंका की रेखाएँ अंकित हैं।

कमरे में कोई विशेष सजावट नहीं है, किन्तु सारे वायुमंडल में एक पवित्रता है। पलंग के सिरहाने दो शमादानों में शमाएँ जल रही हैं। दूसरी ओर केवल एक है, जिससे आलमगीर की आँखों में चकाचौंध न हो। पलंग के दाहिनी ओर जीनत उन्निसा की पीठिका के समीप ही एक बड़ी खिड़की है, जिससे हवा का झोंका आ रहा है। उससे घने अंधकार के बीच में आकाश के तारे दिखाई पड़ रहे हैं।

आलमगीर से सामने कोने की ओर के सोने के पिंजड़े में एक पक्षी बैठा हुआ है जो कभी-कभी अपने पंख फटफटा देता है। पलंग से कुछ हट कर सिरहाने की ओर एक तिपाई है जिस पर दवा की शीशियाँ रखी हुई हैं। उसके समीप एक ऊँचे स्टैंड पर लम्वे मुँह वाली सोने की सुराही है, जिसमें गुलाबजल रखा हुआ है। उसके पास ही एक सोने का प्याला एक रेशमी कपड़े से ढका हुआ है।

परदा उठने पर आलमगीर कुछ क्षणों तक वेचैनी से खाँसता है, फिर एक गहरी और भारी साँस लेकर शून्य की ओर देखता हुआ जीनत से कहता है—]

आलम : खाँसी···एक लमहे के लिए नहीं रुकती···कोई दवा उसे नहीं रोक सकती जीनत! कोई दवा उसे नहीं रोक सकती···यह मौत की आवाज है। इसे कौन रोक सकता है? (फिर खाँसता है)···मौत की आवाज!

जीनत : (धैर्य के स्वरों में) नहीं जहाँपनाह! आपकी खाँसी बहुत जल्द अच्छी हो जाएगी। हकीमों ने···

आलम : (बीच ही में) हकीमों ने···हकीमों ने कुछ नहीं समझा। कुछ नहीं समझा उन्होंने। यह खाँसी कोई मर्ज नहीं है बेटी! यह खाँसी सल्तनत के उखड़ने की आवाज है जो हमारे दम के साथ उखड़ना चाहती है। (मुँह बिगाड़ कर) उखड़े। कहाँ तक रोकेंगे हम? (खाँसता है) कितने बलवाइयों को नेस्त-नाबूद किया, कितने गदर रोके लेकिन···लेकिन यह खाँसी नहीं रुकती बेटी! रुके भी कैसे? (शिथिल स्वरों में) अब आलमगीर आलमगीर नहीं है!

जीनत : नहीं जहाँपनाह, आज भी हिन्दुस्तान और दकन आपके इशारे पर बनता और बिगड़ता है! आपके तेवर देखकर अफ़गानिस्तान भी घुटने टेकता है। राजपूत, जाट, मराठे और सिक्ख आज भी आपसे लोहा नहीं ले सकते।

आलम : लेकिन शिवाजी ले सकता था। हमारी थोड़ी-सी लापरवाही से वह हाथ से निकल गया। उसकी वजह से जिन्दगी भर परेशान रहा। लेकिन था वहादुर और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलेर···खैर, 'काफिर ब जहन्नम रफ्त' (खाँसता है) उसका बेटा शंभाजी··· (रुक जाता है और गहरी साँस लेता है।)

जीनत : छोड़िए इन बातों को जहाँपनाह ! ये बातें इस वक्त दिल और दिमाग दोनों को खराब करने वाली हैं। आप जैसे ही अच्छे होंगे···

आलम : (बीच ही में) अब अच्छे नहीं हो सकते जीनत ! चन्द घड़ियों की जिन्दगी। कौन जाने कब खामोशी आ जाय। लेकिन बेटी ! हमने एक दिन भी आराम नहीं किया। (खाँसता है) एक दिन भी नहीं। राजपूत जैसी कौम पर हुकूमत करना जिन्दगी का आराम नहीं है। सबसे बड़ी मेहनत है। मराठों की हिम्मत पस्त करना जिंदगी का सबसे बड़ा करिश्मा है—वह हमने किया बेटी, वह हमने किया। लेकिन अब···अब हम कमजोर हो गए हैं। अब कुछ नहीं कर सकेंगे। (ठंडी साँस लेकर कलमा पढ़ता है) ला इलाही इललिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह···

जीनत : आप सब कुछ कर सकेंगे जहाँपनाह ! अच्छा, अब आप यह खाँसी की दवा खा लीजिए, (दवा देने के लिए उठती है) हकीम साहब दे गए हैं।

आलम : (तीव्र स्वर में) क्या हकीम साहब खुद नहीं आए ?

जीनत : आए थे। बड़ी देर तक आपका इन्तजार करते रहे। आप होश में नहीं थे। वे थोड़ी देर के लिए बाहर चले गए हैं। उन्होंने अभी फिर आने को कहा है।

आलम : जो दवा वह दे गए हैं, वह उन्हें चखाई गई थी ? (खाँसता है।)

जीनत : जी, मैंने भी चखी थी। दवा में किसी प्रकार का शक नहीं है।

आलम : यह अहमदनगर है बेटी ! शिया रियासत बीजापुर और गोलकुंडा के करीब। दुश्मनी दोस्ती में छुप कर आती है। जिन्दगी में यह हमेशा याद रखो।

जीनत : आपका कहना सही है, जहाँपनाह ! लेकिन दवा मैंने खुद चख कर देख ली है।

आलम : हमारे सामने नहीं चखी गई, जीनत ! लेकिन खैर, कोई बात नहीं। दवा खाएँगे···लेकिन थोड़ी देर के लिए आराम, फिर वही तकलीफ। क्या करें दवा खाकर ! (जोर से खाँसता है)···अच्छा लाओ, खाएँ तुम्हारी दवा। आबे हयात से बढ़कर।

[आलमगीर हाथ बढ़ाता है। जीनत प्याले में दवा डाल कर देती है। आलमगीर उसे हाथ में लेकर देखता है। सोचते हुए एक बार रुकता है, फिर थोड़ी-सी पीता है।]

आलम : (गला साफ कर) पी ली तुम्हारी दवा बेटी ! इस दवा में जायके के साथ तुर्शी भी है। हुकूमत का प्याला भी ऐसा ही होता है।

जीनत : लेकिन आपने सब तुर्शी जायके में तबदील कर ली है।

आलम : नहीं जीनत, मराठों ने ऐसा नहीं होने दिया। हम कुराने पाक की कसम खाके कहते हैं कि हम मराठों का नामो-निशान मिटाने में अपनी सारी सल्तनत की बाजी लगा देते, लेकिन···लेकिन अब वह हौसला नहीं रह गया। कमजोरी और बुढ़ापे ने हमें बेबस कर दिया है। (रुककर) हमारे बहुत से काम अधूरे पड़े हैं। काश,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी जिन्दगी के दिन अभी···खत्म न होते···!

जीनत : (उत्साह से) अभी आप बहुत दिनों तक सलामत रहेंगे, आलमपनाह !

आलम : (विह्वल होकर) अह, फिर एक बार कहो जीनत ! हम यह बात फिर से सुनना चाहते हैं। ओफ्, अगर हमारी जिन्दगी के दिन अभी खत्म न होते ! हम एक बार शमशीर लेकर मैदाने जंग में जाते, बागियों से कहते—कमबख्तो ! आलमगीर कमजोर नहीं है। उसकी तलवार में अब भी चिनगारियाँ हैं। घुटने टेक कर गुनाहों की माफी माँगो, नहीं काफिरो ! दोजख का रास्ता खून की नहर से है। हमारी शमशीर से कटो और दोजख में दाखिल··· (आवेश में खाँसी रुकने पर भारी साँस लेता है) दोजख···में दाखिल···हो···!

जीनत : आप आराम करें, जहाँपनाह ! नहीं तो आपकी तबीयत और भी खराब हो जायगी।

आलम : इससे जियादह और क्या खराब होगी, जीनत ! जब हम मौत के दरवाजे पर खड़े होकर दस्तक दे रहे हैं। चाहे जब खुल जाए। और आलमगीर के लिए जल्दी ही खुलेगा। देर नहीं हो सकती। मौत भी डरती होगी कि देर हो जाने से कहीं आलमगीर सजा न दे। (खाँसी) जिन्दगी भर की सजा ! सजा ! (रुकते हुए) अब्बा-जान···को···भी···आँजहानी शाहेजहाँ को··· (सोचता है।)

जीनत : आलमपनाह ! तजकिरे न उठाएँ।

आलम : (भौंहों में बल डालकर) क्यों न उठाएँ ? जिन्दगी भर गुनाहों का बोझ उठाया है तो मरते वक्त उसका तजकिरा भी न उठाएँ ? लेकिन जीनत ! तुमने सैकड़ों बार अपने दिल को दिलासा देने की कोशिश की। हमने गुनाह कहाँ किए ? कुराने पाक की रूह से, शरअ से इस्लाम का नाम दुनिया में बुलन्द करने के लिए—जिहाद के लिए, जो काम हमने किए, क्या उनका नाम गुनाह है ? काफिरों को जहन्नुम रसीद किया···क्या यह गुनाह है ? उपनिषद् पढ़ने वाले दारा से सल्तनत छीनी···क्या यह गुनाह है ? नमूना-ए-दरबार-ए-इलाही में क्या मुझ से गुनाह हुए ? आलमगीर—जिन्दा पीर ! ···लेकिन कोई आवाज कानों में कहती है कि आलमगीर ! तूने इस्लाम का नाम लेकर दुनिया को धोखा दिया है। तूने इस्लाम की हिदायतों को नहीं समझा। जीनत ! तू (तू पर जोर) बतला यह आवाज ठीक है ? क्या हमने इस्लाम के उसूलों को गलत समझा ?

जीनत : (शान्ति से) आपसे कोई गलती नहीं हुई, जहाँपनाह !

आलम : (शून्य में देखते हुए) हजारों सतनामियों को कत्ल किया—दारा, शुजा, मुराद को तख्ते-ताऊस का हक नहीं दिया और बाप को सात बरस तक···लम्बे सात बरस तक···!

जीनत : लेकिन आलमपनाह, अगर गौर से देखा जाए तो शाहंशाहे शाहेजहाँ को नजर-बंद करना गलत नहीं कहा जा सकता। अपनी पीरी में वे अपनी आँखों से अपने बेटों का मजार देखते ! क्या उन्हें तकलीफ न होती ? आपने उन्हें उस तकलीफ से बचा लिया !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलम : लेकिन उस तकलीफ के पैदा करने का जिम्मा किसका है ? हमने ही लाहौर में दारा की कब्र बनवाई। हमने ही आगरे में मुहम्मद को भेज कर अब्बाजान का महल कैदखाने में तब्दील कराया···! उस दास्तान को तुम जानती हो ?

जीनत : जहाँपनाह ! मुझसे वह दर्दनाक दास्तान क्यों दुहरवाना चाहते हैं ! आप आराम कीजिए। आपकी तबीयत ठीक नहीं है।

आलम : तो हम ही वह दास्तान कहेंगे जो हमने मुहम्मद से सुनी है। (शून्य में देखते हुए) आधी रात थी···कमरे में सिर्फ एक शमा जल रही थी···दूसरी शमा शाहंशाहे शाहेजहाँ की आँखों में झिलमिला रही थी। वह चारपाई पर तसवीरे-संग की तरह लेटे हुए थे। उनकी पथराई आँखें दूर पर दिखाई देने वाले ताजमहल पर जमी हुई थीं···हल्की चाँदनी थी। शाहंशाह ने जहाँनारा से कहा—जहाँनारा, आलमगीर से पूछो, वह हमारी तरह ताजमहल को कैद नहीं करेगा···?

जीनत : (आग्रह के स्वर में) जहाँपनाह !···

आलम : (उसी स्वप्न में) बादशाह की जबान तालू से सट गई थी···गला सूख रहा था। गहरी और सर्द साँस लेकर उन्होंने फरमाया—मुमताज, हमारी बेगम ! ताज हमें पत्थरों से नहीं, आँसुओं से बनवाना चाहिए था !···काश, यह मुमकिन हो सकता !

जीनत : (सहानुभूति के साथ) उन्हें बहुत तकलीफ थी, आलमपनाह ! लेकिन इस वक्त यह सब सोचना ठीक नहीं है। रात जियादह बीत रही है।

आलम : (चौंककर तसबीह करते हुए) क्या कहा ? रात जियादह बीत रही है ? आज हमारे लिए भी शायद वही मौत की रात है, लेकिन हमारे सामने कोई ताजमहल नहीं है। (ठहरकर) हम इस लायक हैं भी नहीं, जीनत ! जिन्दगी में हमने कुछ नहीं किया, सिर्फ लड़ाइयाँ ही लड़ी हैं। उन्हीं में तुमने फतह हासिल की है, लेकिन आज···आज जिन्दगी में हमें शिकस्त ही मिली···भारी शिकस्त ! हमने अब्बाजान को कैद नहीं किया, इस आखिरी वक्त में अपने चैनो-सुकून को ही कैद किया ! आज इतने बरसों के बाद अब्बाजान की चीख हमारे कानों में आ रही है···प्यास से उनका गला सूख रहा है। उनकी आवाज में कितना दर्द है···तुम सुन रही हो···? नहीं ! उनकी हसरत-भरी निगाहों की टक्कर से ताजमहल जैसे चूर-चूर होने जा रहा है !

जीनत : (अत्यन्त सांत्वना के स्वरों में) जहाँपनाह ! कहीं कुछ नहीं है। आप सोने की कोशिश कीजिए। जो कुछ हुआ उसे भूल···

आलम : (बीच ही में) नहीं भूल सकते जीनत ! हमने अपनी सल्तनत की इमारत नींव में रूह दफन कर खड़ी की है। आज रूह तड़प कर करवट लेना चाहती है। वह चीख रही है। तुम उसकी आवाज भी नहीं सुनना चाहती ?

जीनत : जहाँपनाह, खुदा को याद कीजिए। सोने की कोशिश कीजिए। रात आधी से जियादह बीत चुकी है।

आलम : जिन्दगी उससे जियादह बीत चुकी है ! (नेपथ्य की ओर उंगली उठाकर)

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखती हो यह अँधेरा ? कितना डरावना ? कितना खौफनाक ! दुनिया को अपने स्याह परदे में लपेटे हुए है। गोया यह हमारी जिन्दगी हो ! इसमें कभी सुबह नहीं होगी जीनत ! अगर होगी भी तो वह इसके काले समुन्दर में डूब जाएगी। इस अँधेरे में सूरज भी निकले तो वह स्याह हो जाएगा ! (रुककर) ओह, कितना अँधेरा है खुदा ! हमने तेरा नाम लेकर सल्तनत पर कब्जा किया, तेरा नाम लेकर औरतों और बच्चों को कैद किया, वे सब तेरे बच्चे ! तेरे बन्दों पर एतबार नहीं किया। तेरा नाम लेकर···कुरान की कसम खाकर मुराद···भाई मुराद से सुलह की और फिर···और फिर···उसका खून !

[खाँसी आती है और फिर निश्चेष्ट हो जाता है।]

जीनत : (घबराहट के स्वर में) जहाँपनाह···! जहाँपनाह ! (फिर पुकारकर) करीम ! करीम !

[करीम सिपाही का प्रवेश। वह अदब से सलाम करता है।]

जीनत : (आदेश के स्वरों में) हकीम साहब को फौरन यहाँ आने की इत्तला करो। बादशाह सलामत की तबीयत खराब होती जा रही है। फौरन जाओ। हकीम साहब अमीरों के दूसरे कमरे में होंगे। फौरन !

करीम : जो हुक्म ! (अदब के साथ सलाम कर प्रस्थान)

[जीनत के मुख पर घबराहट के चिह्न और स्पष्ट हो जाते हैं। वह एक पंखे से हवा करती है। आलमगीर होश में आता है। धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलकर जीनत को घूर कर देखता है।]

आलम : (काँपते हुए स्वरों में) कौन···? अब्बाजान ! (आँखें फाड़कर) तुम ? तुम जीनत हो ? अब्बाजान कहाँ गए ? अभी तो यहाँ आए थे। (सोचते हुए) जर्द था उनका चेहरा। आँखों में आँसू थे। (ठण्डी साँस लेकर) इतने बड़े शाहंशाह की आँखों में आँसू ? उन्होंने हमारे सामने घुटने टेक दिए और कहा—शाहंशाहे आलमगीर ! हमें हमारा बेटा औरंगजेब वापिस कर दो···बादशाही लिबास में हमारा बेटा खो गया है···उसे हमें वापस कर दो···! (कुछ ठहर कर) लेकिन जीनत ! वह बेटा कहाँ है ? उसने तो अपने अब्बाजान को कैद किया है।

[इसी समय कमरे में टँगा हुआ पक्षी अपने पंख फड़फड़ा उठता है। आलमगीर उसकी तरफ चौंककर देखता है।]

और यह परिन्दा अपने पर फैलाकर हमसे कुछ कह रहा है ? क्या कहेगा ? इसे भी तो हमने सोने के पिंजड़े में कैद किया है ! (जीनत की ओर आग्रह से) जीनत ! इस पिंजड़े का दरवाजा खोल दो। (जीनत पिंजड़े का दरवाजा खोलती है) उसे निकालो ! (जीनत परिन्दा पकड़कर निकालती है) उड़ा दो उसे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[जीनत उसे खिड़की से बाहर उड़ा देती है। आलमगीर उसके उड़ने की दिशा में कुछ देर देख कर संतोष की गहरी साँस लेता है।]

आ···जा···द ! (कुछ रुककर) हम अब्बाजान को इस तरह आजाद नहीं कर सके ! हिन्दुस्तान के बादशाह को इस परिन्दे की किस्मत भी नसीब नहीं हुई !

जीनत : लेकिन आलमपनाह ! बादशाह तो न जाने कब के दुनिया की कैद से निकलकर आजाद हो गए। अब किस बात का मलाल है ? आप अपनी तबीयत सँभालिए। मैंने हकीम साहब को बुलवाया है। वे आते ही होंगे।

आलम : (जीनत की बात सुनी-अनसुनी करके) परिन्दे की किस्मत···बादशाह की किस्मत नहीं हो सकी ! ···इस अँधेरे में उस परिन्दे की किस्मत जगी है। वह खुश होकर शोर कर रहा है। बचपन में दारा भी इसी तरह शोर करता था। (रुक कर) कुछ वैसी ही आवाज आ रही है। (सुनते हुए) वह देखो। यह आ रही है। (रुक कर) लेकिन यह आवाज कैसी है ! इस खौफनाक अँधेरे में यह आवाज जैसे मुँह फाड़ कर खाने को दौड़ रही है। यह आई ! जीनत, यह आवाज सुनती हो ?

जीनत : (आश्चर्य से) कैसी आवाज ? कौन-सी आवाज जहाँपनाह ?

आलम : (आँखें फाड़कर) अरे, इतने जोर की आवाज आ रही है और फिर तुम्हें सुनाई नहीं पड़ती ? यह देखो। (सुनते हुए) फिर आई ! यह हर लमहे तेज होती जा रही है। जीनत ! (पुकार कर) जीनत ! यह आवाज ! (चीख कर) यह खौफनाक··· आवाज !

जीनत : (धैर्य के स्वरों में) कोई आवाज नहीं है, जहाँपनाह ! आपकी तबीयत में घबराहट है। इसी वजह से ऐसा खयाल पैदा हो रहा है। (विश्वासपूर्वक) कहीं कोई आवाज नहीं है। आप अपने को सँभालने की कोशिश करें !

आलम : (घबराहट से कुछ उठ कर) नहीं, नहीं, यह आवाज बराबर आ रही है। कोई चीख रहा है। (संकेत करके) यह देखो अँधेरे में यह कौन झाँक रहा है ? कौन ? (जोर से) कौन ? (पुकार कर) सिपहसालार ?

जीनत : (समीप होकर) कोई नहीं है जहाँपनाह ! सिपहसालार की जरूरत नहीं है !

आलम : (घबराहट से भर्राए स्वर में) यह खिड़की के पास कौन है ? (संकेत करते हुए) कराहता, चीखता हुआ ! ओह, उसने फिर चीख भरी, अरे दारा ! ···(काँपते हुए) दारा, तुम हो ? हमने तुम्हारा खून नहीं किया ! हमने नहीं किया, दारा ! हुसेन खाँ जबरदस्ती तुम्हारे कमरे में घुस आया। हमने उसे हुक्म नहीं दिया था। और ···और···(काँपकर) तुम्हारा सर कहाँ है दारा ? तुम्हारा सर किधर गया ? (उठ खड़ा होता है। फिर लड़खड़ाते हुए) हम खोज कर लाएँगे। हम अभी खोज कर लाएँगे। (हाथ फैलाते हुए) तुम्हारा इतना खूबसूरत सर !

[जीनत उसे रोक कर फिर पलंग पर लिटा देती है। आलमगीर अचेत हो जाता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीनत : (आँचल से अपने माथे का पसीना पोंछते हुए) जहाँपनाह ! ...

[करीम का प्रवेश ।]

करीम : (अदब से सलाम करके) शाहजादी ! हकीम साहब तशरीफ लाए हैं ।
जीनत : (शीघ्रता से) फौरन उन्हें अन्दर भेजो, इसी वक्त !
करीम : (सलाम करके) जो हुक्म । (शीघ्रता से प्रस्थान ।)
जीनत : (कम्पित स्वर में आँखों में आँसू भर कर) क्या जानती थी कि अहमदनगर में यह सब होगा ! या खुदा ! (आलमगीर को चादर उढ़ाती है ।)

[हकीम साहब का प्रवेश ! लम्बी दाढ़ी, काला चोगा, सर पर अमामा, सफेद पैजामा और जरी के जूते । साथ में दवाओं का एक संदूकचा ।
बादशाह को अदब से सलाम करने के बाद जीनत को सलाम करता है ।]

जीनत : (कम्पित स्वर में) आलमपनाह को होश नहीं है, हकीम साहब ! (उठकर हकीम के पास आती है) आज रात को आलमपनाह की तबीयत बहुत ही खराब रही । जाने उन्हें क्या हो गया ! जागते हुए ख्वाब देखते हैं और चीख उठते हैं ! एक लमहा उन्हें चैन नहीं है । (करुण स्वरों में) अब आप ही मेरे नाखुदा हैं । तबीयत घबराती है । जहाँपनाह को अच्छा कर दीजिए; जल्द अच्छा कर दीजिए ।
हकीम : जहाँपनाह को होश नहीं है ! (गम्भीर और सान्त्वना के स्वरों में) घबराइए नहीं घबराइए नहीं शाहजादी ! खुदा पर भरोसा रखिए । वह चाहेगा तो इंशा-अल्लाह बादशाह सलामत बहुत जल्द अच्छे हो जाएँगे । देखिए, मैं दवा देता हूँ, बादशाह सलामत अभी होश में आए जाते हैं । घबराने की कोई बात नहीं ।
जीनत : (विकृत स्वर में) मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि मैं क्या करूँ !
हकीम : इतमीनान के साथ आप बादशाह सलामत को पंखा झलें । मैं उन्हें होश में आने की दवा देता हूँ ।

[हकीम अपने संदूकचे में से एक टिकिया निकालता है । जीनत पंखा झलती है ।]

हकीम : (डिबिया का ढक्कन खोलते हुए) अब बादशाह सलामत की खाँसी कैसी है ?
जीनत : खाँसी में बहुत आराम है । पहले तो वे हर बात कहने में खाँसते थे । आपकी दवा से उनकी खाँसी बहुत कुछ रुक गई, लेकिन घबराहट बहुत जियादह बढ़ गई है । (पंखा झलती है ।)
हकीम : घबराहट भी दूर हो जाएगी । (आलमगीर की नाक के समीप बहुत आहिस्ते से डिबिया ले जाता है) अभी जहाँपनाह को होश आता है । आप सब्र करें ।
जीनत : उनकी बेचैनी देखकर तो मैं बिलकुल ही घबरा गई थी । मैंने बड़ी मुश्किल से अपने को काबू में रक्खा । अगर मैं भी घबरा जाती तो फिर इधर था ही कौन ?
हकीम : जहाँपनाह की खिदमत करना मेरा पहला फर्ज है ।
जीनत : इसीलिए तो मैंने आपके पास फौरन खबर भेजी ।
हकीम : मैं खबर पाते ही हाजिर हुआ । (आलमगीर पर गहरी नजर डाल कर) देखिए,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादशाह सलामत को होश आ रहा है । पंखा जरा धीमा करें ।

[आलमगीर के ओंठों में कुछ स्पन्दन होता है, जैसे वे कुछ कहना चाहते हैं । फिर हलकी अँगड़ाई लेकर आँखें खोलते हैं । जीनत और हकीम के मुख पर प्रसन्नता की झलक ।]

जीनत : (उत्साह से) होश आ गया ! होश आ गया !!

हकीम : बादशाह सलामत को आदाब अर्ज करता हूँ । (दरबारी ढंग से सलाम करता है ।)

आलम : (धीमे स्वर में) पा···नी···!

[जीनत शीघ्रता से सुराही में से गुलाबजल निकाल कर आगे बढ़ाती है ।]

जीनत : जहाँपनाह, यह पानी···

[आलमगीर उठने की कोशिश करता है । हकीम उसे उठने में सहारा देता है । आलमगीर पानी पीने के लिए झुकता है । लेकिन दूसरे क्षण रुक जाता है ।]

आलम : (प्रश्नसूचक स्वर में) यह कौन-सा पानी है ?

जीनत : (नम्रता से) वही गुलाबजल है जो आपके लिए खास तौर से तैयार किया गया है ।

आलम : (सन्तोष से) लाओ, (एक घूंट पीकर, घबराकर) हमारी तसबीह कहाँ है ?

जीनत : (पलंग से तसबीह उठाकर) यह है जहाँपनाह !

आलम : (लेते हुए) हमेशा मेरी जिन्दगी के साथ रहने वाली···! (फिर एक घूंट पानी पीकर हकीम साहब को घूरते हुए) तुम कौन···हो ? (एक क्षण बाद जैसे स्मरण करते हुए) शायद···हकीम···साहब···?

हकीम : (सलाम करते हुए) जी, जहाँपनाह !

आलम : (कातर स्वर में) हमारी हालत बहुत खराब है हकीम साहब ! अब शायद हम न बचेंगे । (ठण्डी साँस लेता है ।)

हकीम : ऐसी बात न फरमाएँ जहाँपनाह ! बुखार आपका अब दूर हो ही गया, सिर्फ कमजोरी और खाँसी है । खाँसी भी अब अच्छी हो चली है, और कमजोरी भी इंशाअल्लाह दूर हो जाएगी ।

आलम : तो जिन्दगी भी दूर हो जाएगी हकीम साहब ! इस वक्त हमारे लिए कमजोरी और जिन्दगी दो अलग-अलग चीजें नहीं हैं ! एक दूर होगी तो दूसरी भी दूर हो जाएगी । और आलमगीर कमजोर होकर जिन्दा नहीं रहेंगे !

हकीम : (अदब से) आलमपनाह ! आप बजा फरमाते हैं (यह बात आदतवश कह देता है लेकिन अपनी गलती महसूस करने पर घबराहट से) लेकिन इसे सही नहीं मानना चाहिए, आलमपनाह ! (यह सोचकर कि उसे यह भी नहीं कहना चाहिए, और घबराकर कहता है)···मैं क्या अर्ज करूँ···कुछ जवाब नहीं दे सकता । (हाथ मलते हुए सर झुका लेता है ।)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलम : (गम्भीरता से) जीनत, हकीम साहब से कहो कि वे हमें बेहोशी की दवा दें।

जीनत : (बात बदलने के विचार से) इन्हीं की दवा से तो आप होश में आए हैं, जहाँपनाह !

आलम : (गम्भीर किन्तु रुकते हुए स्वरों में) लेकिन जीनत, इस होश से हमारी बेहोशी अच्छी है। गुनाहों की याद अब बरदाश्त··· (रुककर, चौंककर, अपनी बात पलटते हुए) हकीम साहब, कमजोरी की हालत अब बर्दाश्त नहीं होती। ऐसी दवा दीजिए कि बेहोशी का आलम रहे। (रुककर) आपके पास—शराब को छोड़कर—कोई ऐसी दवा है ?

हकीम : जहाँपनाह ! आपकी कमजोरी बहुत जल्द रफा हो जाएगी।

आलम : (तीव्रता से) हमारे सवाल का जवाब दीजिए हकीम साहब ! आपके पास शराब को छोड़कर कोई ऐसी दवा है ?

हकीम : (घबराकर हकलाते हुए) जी, ऐसी दवाएँ तो बहुत हैं आलमपनाह ! लेकिन आपको—अपने जहाँपनाह को कैसे दे सकता हूँ ? ये दवाएँ आपके लिए नहीं हैं, आलमपनाह !

आलम : (आँखें फाड़कर) आलमपनाह के लिए नहीं हैं ? कौन-सी दौलत है जो आलमगीर के लिए नहीं है ? इस वक्त बेहोश हो जाने की दवा हमारे लिए सबसे बड़ी दौलत है ! हकीम साहब, हम इस वक्त वही चाहते हैं !

जीनत : (भृकुटी-संचालन के साथ) हकीम साहब ! आपके पास एक ऐसी दवा भी तो है जिसमें थोड़ी देर की बेहोशी के बाद सारी कमजोरी दूर होकर तबीयत में ताजगी आती है ! (घूर कर देखती है।)

हकीम : (सँभल कर) हाँ, हाँ, एक ऐसी दवा मेरे पास है। मेरे वालिद साहब ने मुझे वह नुसखा देकर कहा था कि जब सब दवाएँ बेकार साबित हों तब उसका इस्तेमाल किया जाए। (हिचकते हुए) मैं अभी उसका इस्तेमाल नहीं करना चाहता था।

जीनत : (आलमगीर से) और जहाँपनाह, इस वक्त वह दवा न खाई जाए तो बेहतर होगा। सुबह होने में जियादह देर नहीं है। और अजान का वक्त करीब आ रहा है ! आप खुदा की इबादत न कर सकेंगे। अभी वह दवा रहने दें।

आलम : यह बात ठीक कह रही हो बेटी ! अच्छा, अभी वह दवा रहने दीजिए, हकीम साहब ! आप अजान होने के वक्त तक दूसरी दवा दे सकते हैं।

हकीम : बसरोचश्म। (शाहजादी से) शाहजादी, आप मुझे एक प्याला इनायत फरमावें, मैं कमजोरी दूर करने की दवा अभी पेश करूँ।

जीनत : (प्याला उठाकर) यह लीजिए।

हकीम : (अपने संदूकचे में से एक दवा निकालते हुए) खुदा चाहेगा तो आपको फौरन आराम होगा। सितारों की नहूसत दफा होगी। (प्याले में दवा डालते हुए) आलमपनाह, हमीदुद्दीन खाँ ने तो सितारों की नहूसत दूर करने के लिए 4,000 रुपये का एक हाथी आलमपनाह पर तसद्दुक कर दिया होगा ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलम : (गम्भीर स्वर में) नहीं। जुमेरात को हमीदुद्दीन खाँ ने नुजूमियों के कहने के मुताविक तसद्दुक करने के बारे में एक दरख्वास्त जरूर पेश की थी, लेकिन हमने उस दरख्वास्त में यह बढ़ा दिया कि यह तो अंजुमपरस्तों का रिवाज है। इसके बजाय 4,000 रुपया काजी को गरीब-गुरबा में तकसीम करने के लिए दे दिया जाए।

हकीम : (उत्साह से आँखें चमकाकर) आलमपनाह ने क्या बात कही है! अब तो सितारों की नहूसत दूर होने में कोई अंदेशा भी नहीं रह गया और मुझे भी यह कामिल यकीन है कि यह अरक आपको ऐसी ताकत देगा कि आप तन्दुरुस्त होकर अपनी रिआया के दर्दोगम को दूर करते हुए सौ साल तक सलामत रहेंगे।

आलम : (सोचते हुए) सौ साल तक! यानी ग्यारह बरस और। लेकिन हकीम साहब, हम ग्यारह दिन भी जिन्दा नहीं रहेंगे। वेटों को भी तो बादशाहत करने का मौका मिले। हमारे वेटे! (सोचता हुआ) मुअज्जम···आजम···कामबख्श···

हकीम : (दवा का प्याला सामने करते हुए) यह सही है आलमपनाह, लेकिन मुझे भी अपनी खिदमत करने का मौका दें। मैंने अपनी हिकमत की वेहतरीन दवा आलम-पनाह के रूबरू पेश की है।

हकीम : (जीनत से) अच्छा जीनत, यह दवा रख लो। इसे हम नमाज के बाद पियेंगे। अब आप तशरीफ ले जा सकते हैं।

[जीनत दवा का प्याला ले लेती है।]

हकीम : (सिर झुकाकर) जो जहाँपनाह का हुक्म। लेकिन एक गुजारिश है।

आलम : क्या?

हकीम : (हाथ जोड़कर) आलमपनाह कुछ न सोचें, कोई गुफ्तगू न करें। इस वक्त आराम करना खुद एक मुफीद दवा होगी। सुवह होते ही आलमपनाह की तबीयत अच्छी मालूम होगी।

आलम : अच्छी बात है; हम कुछ न सोचेंगे। कोई गुफ्तगू न करेंगे। लेकिन हम अपने वेटों को खत तो लिखवा सकते हैं?··· (सोचकर) वही करेंगे। हकीम साहब, अब आप तशरीफ ले जाइए। हमें अपने बेटों की याद आ रही है।

हकीम : जो हुक्म। (अदब के साथ सलाम करके प्रस्थान।)

आलम : (सोचते हुए) हकीम साहब कहते हैं कि हम कुछ न सोचें, कोई गुफ्तगू न करें, सुबह होते ही तबीयत अच्छी मालूम होगी।···लेकिन जीनत, हम जानते हैं कि हमारी तबीयत अच्छी नहीं होगी। हमने अपनी किश्ती समन्दर में छोड़ दी है। अब साहिल दूर होता जा रहा है।

जीनत : तबीयत में घबराहट होने की वजह से आलमपनाह ऐसा फरमा रहे हैं। अब आपकी तबीयत अच्छी होने जा रही है। हकीम साहब की दवा बहुत मुफीद साबित हुई है। देखिए आपकी खाँसी को कितना फायदा पहुँचा है।

आलम : (जोर देकर) तुम नहीं समझी जीनत! जिस तरह सुबह होने के पहले रात और भी सूनसान और खामोश हो जाती है, उसी तरह मौत से पहले हमारी सारी

CC-0. Gurukul Kangri Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिकायतों का शोर खामोश हो गया है। अब हमारा आखिरी वक्त करीब है।

जीनत : (आँखों में आँसू भरकर) ऐसा न कहें आलमपनाह !

आलम : (गहरी साँस लेकर) और जीनत, हमारी बेटी ! आज इस आखिरी वक्त में हमारे बिस्तर के नजदीक हमारा एक भी बेटा नहीं है। ऐसे बाप को तुम क्या कहोगी जिसने बादशाहत में खलल पड़ने के वहम से अपने कलेजे के टुकड़ों को सजा देकर हमेशा कैदखाने में रक्खा ? अपने नजदीक आने भी नहीं दिया। (सोचते हुए) हमारे कैदी बच्चो, तुम बदकिस्मत हो कि आलमगीर तुम्हारा बाप है। तुमने और कोई गुनाह नहीं किया। तुम लोगों का सिर्फ यही गुनाह है कि तुम औरंगजेब के बेटे हो। आज तुम्हारा बाप मौत के दरवाजे पहुँचकर तुम्हारी याद कर रहा है ! ···मुअज्जम···आजम···कामबख्श !

जीनत : (आग्रह से) जहाँपनाह, मैं उन लोगों तक आपके ये मुहब्बत भरे अल्फाज जरूर पहुँचा दूंगी।

आलम : (सन्तोष से) हम अपनी कब्र से भी तुम्हें दुआ देंगे, बेटी। हम खुद अपने बच्चों को खत लिखाना चाहते हैं। इस आखिरी वक्त में हमारी ख्वाहिश पूरी होने दो। कातिब को बुलाओ। (ठण्डी साँस लेता है।)

जीनत : आपका हुक्म पूरा होगा अब्बाजान ! (पुकार कर) करीम !

[करीम का प्रवेश। वह सलाम करता है।]

जीनत : शाही कातिब को इसी वक्त हाजिर किया जाए !

करीम : जो हुक्म ! (सलाम कर शीघ्रता से प्रस्थान।)

आलम : (मन्द स्वर में) हम खुश हुए बेटी, हमारी दुआएँ तुम्हारे साथ रहें। आज तक हमने शायद किसी की ख्वाहिश पूरी नहीं की, हमें कोई हक नहीं कि किसी से भी अपनी ख्वाहिश पूरी करने के लिए कहें। लेकिन तुमने हमारी ख्वाहिश पूरी की। बहुत दिनों तक जियो।

जीनत : जहाँपनाह, शाहजादी जहाँनारा ने अब्बाजान की कैद में सात साल तक खिदमत की तो क्या मैं आपकी खिदमत कुछ दिनों तक भी न करूँ ?

आलम : हमें भी कैद में समझो, बेटी ! हमारे गुनाहों ने हमें चारों तरफ से घेर रक्खा है। जमीर की जंजीरों ने भी हमारे हाथ-पैर बाँध लिए हैं ! हम अब इस दुनिया को आँख उठाकर भी नहीं देख सकते। जिस सल्तनत को खून से सींच-सींचकर हमने इतना बड़ा किया है, उसे अगर अब आँसुओं से भी सींचना चाहें तो हमें एक पूरी जिन्दगी चाहिए। वह हमारे पास कहाँ है ? (गला सूख जाता है। ठहर कर) बेटी, पानी···पानी···गला सूख रहा है।

[जीनत प्याले में गुलाबजल लेकर पिलाती है।]

जीनत : आप थक गए हैं, जहाँपनाह। सारी रात आपको बहुत बेचैनी रही।

आलम : उस बेचैनी के खत्म होने का वक्त भी आ रहा है। (खिड़की की ओर संकेत

CC-0. Gurukul Kangri Haridwar Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए) देखो, ये तारे ढल रहे हैं। रात भर इन्होंने रोशनी की और अब वे अपनी आखिरी घड़ियाँ गिन रहे हैं। हम भी गिन रहे हैं, लेकिन हमने उम्र भर अँधेरा ही फैलाया। उजाले की कोई किरन नहीं रही। हम मौत को ही उजाला दे सके तो अपने को खुशकिस्मत समझेंगे! (स्तब्धता। एकबारगी चौंककर) सुबह हो गई क्या? (खिड़की की ओर देखता है।)

जीनत : (उसी ओर देखती हुई) हाँ, जहाँपनाह! आसमान पर सफेदी छाने लगी है।

आलम : (गहरी साँस लेकर) खुदा की इबादत का वक्त आ रहा है। (तसबीह फेरता है) जीनत, हमने जिन्दगी भर इबादत का ढिंढोरा पीटा, लेकिन खुदा के पास तक नहीं पहुँच सके। अगर पहुँच पाते तो चलते वक्त इतने गुनाहों का बोझ हमारे सर पर न होता। चलने का वक्त करीब आ रहा है। मुझे खुशी है कि आज जुमा है। हमने जिन्दगी भर इबादत कर यही चाहा कि जुमा हमारा आखिरी दिन हो। (अस्थिर होकर) कातिब अभी नहीं आया?

जीनत : आ रहा होगा जहाँपनाह! करीमबख्श फौरन ही उसे लेकर हाजिर होगा।

आलम : (ठण्डी साँस लेकर) जीनत, जब हम पैदा हुए थे तब हमारे चारों तरफ हजारों लोग थे लेकिन···इस वक्त हम अकेले जा रहे हैं। हम इस दुनिया में आए ही क्यों? हमसे किसी की भलाई नहीं हो सकी। हम वतन और रैयत दोनों के गुनाह अपने सर पर लिए जा रहे हैं।

जीनत : आलमपनाह! आपने तो वतन और रैयत की भलाई की है, और!

आलम : (बीच ही में रोककर) इस आखिरी वक्त में ऐसी बात मत कहो जीनत! ये बातें बहुत बार सुनी हैं। लेकिन अब इन बातों से रूह काँपती है, दिल डूबता है। काश, ये बातें सच होतीं! (गहरी साँस लेता है।)

जीनत : नहीं, आलमपनाह! खानदाने तैमूर में आपसे बढ़कर अद्ल करने वाला कोई नहीं हुआ।

आलम : और उस अद्ल में हमने अपनी मुराद पूरी की! ···मुराद (मुराद शब्द से मुरादबख्श का स्मरण आने पर) और हमारे मुरादबख्श ने सामूगढ़ की लड़ाई में हमारे कहने पर दारा से लोहा लिया। कितनी हैरतअंगेज जंग थी वह! (सोचते हुए) राजा रामसिंह ने तलवार का ऐसा हाथ चलाया कि हम मय हाथी के जमींदोज हो जाते लेकिन मुरादबख्श···मुरादबख्श ने अपनी ढाल पर तलवार रोक, राजा रामसिंह पर ऐसा वार किया कि वह हाथी के पैरों पर आ गिरा। उसका केसरिया बाना खून से लथपथ होकर जमीन पर फैल गया, और बस, इस सबका बदला मुरादबख्श को क्या मिला! ओह···पा···नी···

[जीनत फिर पानी पिलाती है।]

जीनत : हुजूरेआली, आपसे दस्तबस्ता अर्ज है कि आप अब कुछ न फरमावें। ऐसी बातें करके आप अपनी हालत और खराब कर लेते हैं।

आलम : (उतावली से) इस वक्त हमें मत रोको जीनत उन्निसा! हमें मत रोको। हम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहेंगे, जरूर कहेंगे। बुझने से पहले शमा की लौ भड़क उठती है। हमारी याददाश्त भी ताजी हो रही है। एक-एक तसवीर आँखों के सामने आ रही है। हम हाथी पर बैठकर सैरगाह जा रहे हैं। आगे-पीछे हिन्दुओं का बेशुमार मजमा है। वे चीख-चीखकर कह रहे हैं कि आलमपनाह, जजिया माफ कर दीजिए! लेकिन हम माफ कैसे कर सकते हैं? दकन की लड़ाइयों का खर्च कहाँ से आएगा? हम कहते हैं··· तुम काफिर हो! जजिया नहीं हटेगा! वे लोग हमारे रास्ते पर लेट जाते हैं। हमारा हाथी आगे नहीं बढ़ रहा है। हम गुस्से में आकर पीलवान को हुक्म देते हैं—इन कमबख्तों पर हाथी चला दो! हाथी आगे बढ़ता है और सैकड़ों चीखें हमारे कान में पड़ती हैं!···हम हँसकर कहते हैं—काफिरो, तुम्हारी यही सजा है! जजिया माफ नहीं हो सकता···नहीं हो सकता!···

जीनत : (आँखों में आँसू भरकर) आलमपनाह!

आलम : (उसी स्वर में) आज वह हाथी हमारे सामने झूम रहा है। मालूम होता है वह हमारे कलेजे को चूर-चूर करता हुआ जा रहा है। जीनत, हमारा कलेजा टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा है···इसकी दवा तुम्हारे हकीम साहब के पास नहीं है!

जीनत : (कातर स्वर में) आलमपनाह, आप यह दवा पी लीजिए। इस दवा से आपको बहुत फायदा होगा। (दवा का प्याला आगे बढ़ाती है।)

आलम : (भारी साँस लेकर) जिसने सारी जिन्दगी खून का जाम पिया है, उसे दवा का जाम क्या फायदा करेगा? इसे फेंक दो जीनत, उस खिड़की की राह फेंक दो!

जीनत : आलमपनाह! यह दवा···(हिचकती है।)

आलम : (तीव्र स्वर में) जीनत! हम अब भी हिन्दुस्तान के बादशाह हैं। हमारे हुक्म की शमशीर अब भी तेज है। फेंको वह दवा!

[जीनत खिड़की की राह से वह दवा फेंक देती है।]

आलम : (सन्तोष से) हम खुश हुए (ठहर कर) सोचो, जो दवा हकीम ने नहीं चक्खी, वह दवा हमारे काम की नहीं है। अहमदनगर का हकीम आगरे और दिल्ली का हकीम नहीं है!

जीनत : तो जहाँपनाह! वह दवा मैं चख लेती!

आलम : जीनत, जिन्दगी भर हमने अपने ही मकान में आग लगाई है; मरते वक्त अपनी बेटी को भी मौत का जाम चखने देते! क्या हम हकीम को दवा चखने का हुक्म नहीं दे सकते थे? लेकिन अब दवा पर हमारा भरोसा नहीं है जीनत! दुआ पर भरोसा है। हमारे लिए दुआ करो···हमारे लिए दुआ करो!···

जीनत : (हाथ बाँधकर ऊपर देखती हुई) जहाँपनाह सलामत रहें···जहाँपनाह सलामत रहें···आ···मी···न··· (आँखें बन्द कर लेती है।)

[करीम का प्रवेश।]

करीम : (सलाम करके) शाहजादी, कातिब हाजिर है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलम : (चौंककर खुशी के स्वर में) क्या कातिब आ गया ? आ गया ? इसी वक्त उसे हमारे रूबरू हाजिर करो। हमारे पास जियादह वक्त नहीं है।

करीम : (सलाम करके) जो हुक्म। (शीघ्रता से प्रस्थान।)

आलम : (सन्तोष की साँस लेकर) कातिब आ गया बेटी ! काश, यह हमारी सारी जिन्दगी की दास्तान बड़े हरफों में दर्ज करता ! हमारे बेटों के लिए यह बहुत बड़ी नसीहत होती ! आलमगीर के आखिरी वक्त में सच्ची जिन्दगी पैदा होती !! (तसबीह फेर कर कलमा पढ़ता है) ला इलाही इललिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह···

जीनत : (आँखों में आँसू भरकर) अब्बाजान ! (गला रुँध जाता है।)

आलम : रोओ मत बेटी ! हम खुश हैं कि तुम हमारे पास हो। आखिरी वक्त में अपनी बेटी की आवाज से हमारी कब्र में फूल बिछ जाएँगे, उसके आँसुओं के कतरों से हमारे गुनाह धुल जाएँगे। हमारी बेटी जीनत ! (जीनत का हाथ अपने हाथ में लेता है।)

[कातिब का प्रवेश। ढीला-ढाला इवा (चोगा), कमर में कमरबन्द, सिर पर साफ़ा, सफेद पैजामा, कामदार जूता। वह आकर शाही सलाम करता है।]

आलम : (शीघ्रता से) कातिब, तुम आ गए ! हम अपने बेटों को खत लिखाना चाहते हैं। जल्द लिखो। हमारे पास वक्त बहुत थोड़ा है। लिखना शुरू करो। (आँखें बन्द कर लेता है।)

कातिब : (सिर झुकाकर) जी, इरशाद !

[कातिब बैठकर लिखने की मुद्रा धारण करता है। कुछ देर तक स्तब्धता रहती है। फिर आलमगीर मन्द किन्तु व्यथित स्वरों में बोलता है। कातिब लिखता जा रहा है।]

आलम : (धीरे-धीरे) सलामअलेकुम···आजम, हमारे बेटे ! हम जा रहे हैं···! हम जिन्दगी में अपने साथ कुछ नहीं लाए, लेकिन अपने गुनाहों का कारवाँ लिए जा रहे हैं। तुम उखूवत, अम्न व एतेमाद पर ख्याल रखना···। यह माले दुनिया हेय है। हमारी आँखों ने खुदा का नूर नहीं देखा···जिस्म से गरमी निकल गई है, अब कोयलों का ढेर बाकी है···! हाथ-पैर सूखे दरख्त की शाखों की तरह सख्त हो रहे हैं और कलेजे पर मायूसी की चट्टान रक्खी हुई है···खुदा से दूर हूँ···और दिल में कोई सुकून नहीं है···हमारे लिए कौन सी सजा होगी···यह सोचा भी नहीं जा सकता···खुदा की रहमत पर हमारा पूरा यकीन है, लेकिन हम अपने गुनाहों का बोझ कहाँ ले जाएँ ! अब हमने समन्दर में अपनी किश्ती डाल दी है···खुदा··· हाफिज···!

जीनत : (आँखों में आँसू भरे हुए) अब्बाजान !

आलम : (आँखें बन्द किए हुए) कामबख्श, हमारे बेटे ! ···

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीनत : (कातिब की ओर इशारा करके) लिखो !

[कातिब लिखता है।]

आलम : हम अकेले जा रहे हैं···तुम बेसहारा हो, इसका हमें मलाल है ! ···लेकिन इससे क्या फायदा ?···जो सजाएँ हमने दी हैं···जो गुनाह हमने किए हैं···जो बेइंसाफियाँ हमने की हैं···इन सबका अंजाम हम अपने आगोश में लिए हैं···हम तुम्हें खुदा पर छोड़ते हैं। अपनी माँ उदयपुरी को तकलीफ मत देना ! ···मैं रुखसत होता हूँ··· अलविदा ! ···

[थोड़ी देर तक स्तब्धता रहती है।]

जीनत : (करुण स्वर में) अब्बाजान, आप ऐसा खत क्यों लिखा रहे हैं ?

आलम : (जीनत की बात पर कुछ ध्यान न देकर)जीनत, मेरी बेटी ! इस जिन्दगी के चिराग में अब तेल बाकी नहीं रहा ! ···इस खाक के पुतले को कफन और ताबूत की जेबाइस की जरूरत नहीं ! ···इस बदनसीब को जमीन में यों ही दफन कर देना···इस पुश्ते खास को पहली ही मंजिल पर सिपुर्द खाक कर दिया जाए ··हमें खुशी होगी अगर हमारी कब्र पर कुदरती सब्ज मलमल की चादर बिछी होगी··· (कुछ देर ठहर कर) आँजहानी ! हमारे गुनाहों को बख्श दीजिए ! ···दारा ! ··· शुजा ! ···मुराद ! ···

[इसी समय बाहर 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनि में अजान होती है। आलमगीर ध्यान से सुनता है। उसके ओंठों में कुछ स्पन्दन होता है, फिर एक झटके के साथ सिर उठाकर अजान आने की दिशा में नेपथ्य की ओर देखता है।]

आलम : (तसबीह फेरते हुए नेपथ्य की ओर देखकर रुकते, किन्तु स्पष्ट स्वरों में) अल्ला···हो···अक···

['अकबर' का अन्तिम अंश 'बर' ओंठों ही में रह जाता है, और तकिये पर आलमगीर का सिर झटके से गिर पड़ता है।]

जीनत : (शीघ्रता से आलमगीर के सिर के समीप जाकर रुँधे हुए कण्ठ से) आलमपनाह ! ···अब्बा···जान···!

[कोई जवाब नहीं मिलता। बाहर अजान होती रहती है। जीनत अपने आँचल से आँसू पोंछती हुई आलमगीर का मुँह सिरहाने पड़े हुए रेशमी कपड़े से ढाँप देती है।]

[परदा गिरता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशीर्वाद

पात्र-परिचय

राजेशकुमार : मध्यवर्ग का एक गृहस्थ
सरोज : राजेशकुमार की पत्नी
रमेश : राजेशकुमार का क्लर्क

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[प्रयाग स्थित बँगले में राजेशकुमार का ड्राइंग-रूम। अत्यन्त सुरुचि के साथ उसकी सजावट की गई है। दीवारों पर प्राकृतिक दृश्यों के सुन्दर चित्र हैं। सामने सन् 1947 का कैलेण्डर है जिसमें दिसम्बर मास का पृष्ठ दीख रहा है। कैलेण्डर के बगल में एक घड़ी है जिसमें सन्ध्या के चार बजे हैं। जमीन पर चैक-डिजाइन का कारपेट विछा हुआ है। कमरे के बीचोबीच एक गोल टेवल है जिसके दो ओर कुर्सियाँ हैं। टेवल पर रेशमी क्लाथ। उस पर एक चौड़ा फूलदान है, जिसमें गुलाव के फूल पत्तियों-सहित काफी घने लगे हुए हैं। कुर्सियों पर कुशन। कमरे के दोनों ओर दो दरवाजे हैं। दाहिना दरवाजा वाहर जाने के लिए और बायाँ अन्दर आने के लिए है। दरवाजों पर हरी जाली के परदे हैं। कमरे के बीचोबीच पिछली दीवाल में एक अँगीठी है जिसके ऊपर मैंटलपीस। उस पर राजेश और सरोज के फ्रेम में लगे हुए फोटो और चीनी मिट्टी के कलात्मक हाथी और हिरन रक्खे हुए हैं। अँगीठी के दाहिने एक आराम कुर्सी है और बायें चौकोर तख्त, जिस पर मखमली कालीन बिछा हुआ है। तख्त और अँगीठी के बीच में एक टीक की आल्मारी है, जिसके ऊपरी शैल्फ पर कुछ कागज ढंग से रक्खे हुए हैं और नीचे के शैल्फों में पुस्तकें सजी हैं।

परदा उठने पर सरोज जिसकी अवस्था 25 वर्ष के लगभग है, तख्त पर बैठी हुई स्वैटर बुन रही है। सरोज सौम्य और सुन्दर है और पारिवारिक शान्ति बनाये रखने में कुशल है। हलके हरे रंग की साड़ी और पीले रंग का ब्लाउज पहने हुए है, जो ऊपर डाले हुए सफेद ऊनी शाल से कभी-कभी दिख जाता है। गले में सोने की चेन और माथे पर मंगल तारे की भाँति हलकी लाल बिन्दी। हाथ में पतली रेशमी चूड़ियाँ।

राजेश जिनकी आयु तीस वर्ष की है, कमरे में धीरे-धीरे टहल रहे हैं। टहलने की दूरी आराम कुर्सी से लेकर तख्त के निम्न भाग के कोण तक है। वे सफेद कमीज पर ब्राउन पुलओवर पहने हुए हैं और चाकलेट रंग की ढीली पैंट है। पैर में पेशावरी चप्पलें। राजेश भावुक और अस्थिर चित्त के व्यक्ति हैं। देखने में सुन्दर, वाल ग्लिसरीन से पीछे की ओर मुड़े हुए हैं। कपड़ों से भीनी-भीनी खुशबू निकल कर सारे कमरे को महका रही है। वे एकाउंटेण्ट जनरल के आफिस में काम करते हैं। अपनी आर्थिक स्थिति से अधिक संतुष्ट नहीं हैं, यद्यपि शौकीन तबीयत के हैं।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेश : (टहलते हुए आराम कुर्सी के समीप पहुँचकर रुकते हुए) तो आज मैं आफिस नहीं गया।

सरोज : (बुनते हुए) हूँ ! लेकिन चले जाते तो हानि क्या थी ?

राजेश : (मुड़ कर) कुछ नहीं। हानि क्या होती ? लेकिन जब कोई खास बात होने को होती है तो मन जाने कैसा हो जाता है।

सरोज : (विनोद से मुस्करा कर) कैसा हो जाता है ?

राजेश : तुम तो मुझसे ऐसे पूछती हो जैसे तुम्हारे मन में कोई हलचल ही न हो ?

सरोज : मेरे मन में क्या हलचल होगी ? मैं तो मजे से स्वैटर बुन रही हूँ।

राजेश : (व्यंग्य से) जी। इसीलिए तो स्वैटर बुनी जा रही है जिससे मन की हलचल कोई भाँप न सके। कोई दिल की धड़कन सुने तो आफिस क्लाक की आवाज सुनाई दे !

सरोज : (हँस कर) खैर, अगर मेरे दिल में हलचल भी होगी तो आपके दिल से कम ही होगी। आप तो आज आफिस भी नहीं गए ! मैंने तो घर का कोई काम नहीं छोड़ा !

राजेश : तुम्हारे घर के कामों का लेखा न तो मैंने किया है न करूँगा, लेकिन तुमने आखिरकार मान ही लिया न कि तुम्हारे दिल में भी हलचल है।

सरोज : तो उसमें बुराई क्या हो गई ? मैं भी तो इन्सान हूँ ! कोई अच्छी बात होते समय हलचल होना स्वाभाविक है।

राजेश : लेकिन अच्छी बात हो जाए तभी तो बात है।

सरोज : बात अच्छी क्यों नहीं होगी ? मैंने मनौती जो मान रखी है।

राजेश : अच्छा ? बात यहाँ तक पहुँच गई ? किसकी मनौती मानी है ?

सरोज : ये बातें बतलाई नहीं जातीं।

राजेश : न बतलाओ। मेरी तो इस मामले में आशा ही टूट चली है ! (आराम कुर्सी पर निराशा से बैठ जाते हैं।)

सरोज : क्यों ?

राजेश : (हाथ झुला कर) अरे, जब अभी तक कुछ नहीं हुआ तो आगे क्या होगा ! दो महीनों से तो प्रतीक्षा कर रहा हूँ ! प्रत्येक दिन आशा से उठता हूँ और निराशा से सो जाता हूँ। निराश होते-होते दिल ही बैठ गया है। अब आशा करना भी बुरा मालूम होता है !

सरोज : इसीलिए तो आज शायद आफिस नहीं गए !

राजेश : (उठकर) फिर तुम वही बात लेके बैठ गईं ! बात यह है कि निर्णय की तारीख कल ही थी यानी···(कैलेण्डर की ओर देखकर) 15 दिसम्बर। तो आज मुझे खबर मिल जानी चाहिए। सुबह से इन्तजार कर रहा हूँ कि तार का चपरासी अब आता है, तब आता है। लेकिन न तार है, न चपरासी। मैंने सोचा, आफिस में भी मन नहीं लगेगा। फिजूल लोग आवाजें कसेंगे। इशारेबाजियाँ होंगी। इससे अच्छा यही है, घर पर रहूँ, तो कोई कुछ कहेगा नहीं। घर पर ही तार का इन्तजार करूँ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरोज : लेकिन आज तार का चंपरासी क्या, पोस्टमैन भी नहीं आया।

राजेश : कोई साजिश तो नहीं है ? कहो तो किसी नौकर को पोस्ट आफिस भेज देखूँ।

सरोज : भेज देखिए, लेकिन अगर वहाँ भी कुछ न आया होगा तो वहाँ के लोग भी तो आपस में इशारेबाजियाँ करेंगे। मुमकिन है, मजाक के लिए किसी दूसरे का तार आपके पास भेज दें।

राजेश : वाह, कहीं ऐसा भी हो सकता है ?

सरोज : ऐसा नहीं हो सकता तो वे लोग यही कर सकते हैं कि तार के चपरासी से कह दें कि वर्मा साहब के बँगले पर जाकर पूछ लेना कि साहब, यह तार किसका है ? तार के चपरासी का झूठमूठ दरवाजे पर उतरना क्या कम मजाक रहेगा ?

राजेश : अच्छा, तो तुम भी अपनी जवान मुझ पर माँज रही हो ?

सरोज : मैं क्यों माँजने चली ? आपने नौकर पोस्ट आफिस भेजने को कहा तो मैंने यह सोचा कि बात कहाँ तक बढ़ सकती है !

राजेश : कहीं अपनी सूझ पोस्ट आफिस वालों को न भेज देना !

सरोज : (बात पलटते हुए) जाने दीजिए, इन बातों को सोचने से फायदा ही क्या ? तार आना होगा तो आयेगा ही।

राजेश : हाँ, कल तो नतीजा निकल ही गया होगा।

सरोज : तो फिर आज तार जरूर आयेगा।

राजेश : कैसे ?

सरोज : आप ही तो कहते थे कि नतीजा निकलने के बाद तार से सूचना दी जायेगी।

राजेश : तार से सूचना जरूर दी जायेगी लेकिन उसको जो भाग्यशाली होगा। अगर मैं इतना भाग्यशाली न हुआ तो मेरे पास तार से सूचना क्यों आने लगी ? (गोल टेबल की समीप की कुर्सी पर बैठते हैं।)

सरोज : लेकिन भाग्यशाली होने की सनद किसी खास आदमी के पास तो है नहीं ! आखिरकार मनुष्य ही तो भाग्यशाली हुआ करते हैं।

राजेश : शायद मैं उन भाग्यशाली मनुष्यों में न होऊँ !

सरोज : भाग्य की बात न पूछिए। संसार में ऐसी बातें होती हैं जिनका सिर-पैर ही नहीं समझ पड़ता। जिन्दगी भर जिन्हें खाना नसीब नहीं हुआ उनका भाग्य ऐसा चमका है कि बड़े-बड़े लोग भी उनकी खुशामद करते हैं।

राजेश : मेरा भाग्य अगर ऐसा चमक सकता तो दो सौ की नौकरी पर पड़ा रहता ! आज हजार-दो हजार कमाता !

सरोज : (मुस्करा कर) शायद आज से ही भाग्य चमक जाय।

राजेश : मुझे तो आशा नहीं है।

सरोज : क्यों ?…मान लीजिए आपके नाम ही लाटरी का पहला इनाम निकल जाए, पाँच लाख। पाँच लाख में क्या नहीं हो सकता ? सारी जिन्दगी चैन से गुजर सकती है। न किसी से लेना, न किसी को देना। मुमकिन है, कल पहला इनाम आपके नाम ही निकला हो। शायद तार रास्ते में हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेश : (लापरवाही से) तार आना होता तो अभी तक आ गया होता।

सरोज : अरे, आजकल तार की कुछ न पूछो। चिट्ठी से भी गए-बीते हो गए हैं। चिट्ठी जल्दी मिल जाए, लेकिन तार न मिले। अभी उसी रोज शीला कह रही थी कि शरणार्थी कैम्प से भेजा गया तार आठ रोज बाद मिला।

राजेश : खैर, शरणार्थी कैम्प से न आना एक बात है और बम्बई से आना दूसरी बात। लेकिन हो सकता है कि तुम्हारी बात सही हो।

सरोज : मैं कहती हूँ, सही होगी। आज कोई न कोई सूचना बम्बई से जरूर आयेगी।

राजेश : तुम्हें तो बड़ा विश्वास है।

सरोज : सच्ची बात पर तो विश्वास होता ही है। यह बात दूसरी है कि लाटरी के निर्णय में घंटे-दो घंटे की देर हो जाय।

राजेश : (सोचते हुए) हाँ, हो सकती है। लाटरी की घोषणा करने से पहले बोर्ड आव् डायरेक्टर्स की मीटिंग हुई हो, परिणाम सुनाया गया हो, फिर मैनेजिंग डायरेक्टर ने उस पर दस्तखत किए हों। तब भेजा हो। फिर आने में भी कुछ विलम्ब लग सकता है।

सरोज : (प्रसन्न होकर) मैं भी तो यही कह रही थी।

राजेश : (गहरी साँस लेकर) भाग्य की बात कौन जानता है ?

सरोज : आप तो लाटरी का टिकट ही नहीं खरीद रहे थे।

राजेश : अरे, आजकल खाने-पीने से पैसा बचता नहीं, लाटरी का टिकट कौन खरीदे ? चीजों के दाम छः गुने-अठगुने बढ़ गए हैं, लेकिन तनख्वाह उतनी ही। वार एलाउंस तो और जले पर नमक छिड़कता है। तनख्वाह का साढ़े सत्रह परसेंट! सवा सत्रह परसेंट कर देते तो सरकार का बहुत रुपया बच जाता।

सरोज : (स्वच्छन्दता से) मैं तो इन बातों पर सोचती नहीं। जैसा समय आये अगर उसके अनुसार अपने को बना लो तो फिर कोई झंझट ही नहीं होता और फिर दुनिया का काम तो चलता ही है। अगर आप लाटरी के टिकट के दस रुपये बचा ही लेते तो किन-किन चीजों के खरीदने में मदद हो जाती!

राजेश : क्या मदद हो जाती! लेकिन मैंने भी समझा कि दो महीने तक आशा के हिंडोले में झूलने के लिए दस रुपये खर्च करना बुरी बात नहीं है। खरीद लिया टिकट!

सरोज : (मुस्करा कर) और अब कहीं लाटरी मिल गई तो ?

राजेश : (हँसकर) तो···तो फिर क्या पूछती हो सरोज, (उठ खड़े होते हैं) शहर भर में राजेशक़ुमार की धूम मच जायेगी। लोग कहेंगे कि किस्मत हो तो राजेश जैसी। लोग मुबारकबाद देने आयेंगे। दावतें होंगी। पार्टियाँ होंगी। एट्होम्स और क्या ?

सरोज : (व्यंग्य से) और मैं बैठी रहूँगी एक कोने में ?

राजेश : तुम क्यों बैठी रहोगी ? शहर-भर की स्त्रियों की आँखें तुम्हारी तरफ घूर कर रह जायेंगी। तुम तो इस तरह उड़ोगी जैसे ऐरोप्लेन। (दोनों हँस पड़ते हैं।)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरोज : देखिए, आप मजाक मत कीजिए।

राजेश : अच्छा, सच बतलाओ सरोज, अगर लाटरी मिल जाय तो तुम क्या करो ?

सरोज : अभी से मन की मिठाई खाने से क्या फायदा ?

राजेश : और अभी कह रही थीं कि आज कोई न कोई खबर बम्बई से जरूर आएगी। और अब वही बात मन की मिठाई हो गई ?

सरोज : मैं तो यों ही कह रही थी।

राजेश : मुझसे बातें आप यों ही किया करती हैं ? कहाँ स्त्री पति को हमेशा बढ़ावा देती है ? आप उसकी आशा को मन की मिठाई कहती हैं ?

सरोज : आप तो बात न जाने किस अर्थ में ले लेते हैं। मैं कह रही थी कि लाटरी मिल जाने के बाद सोचना अच्छा होगा कि क्या किया जाए। अभी से क्या कहा जा सकता है ?

राजेश : जी, यदि पहले से सोच न रक्खा जाए तो रुपया ऐसे उड़ता है जैसे कन्ट्रोल का गेहूँ। पता नहीं चलता, कहाँ गायब हो गया।

सरोज : अच्छी बात है, पहले से सब स्कीमें बना लीजिए।

राजेश : चलो, अब मुझे कोई स्कीम नहीं बनानी। दिल यों ही खट्टा हो गया।

सरोज : अरे, बस, आप तो यों ही बिगड़ जाते हैं। कुछ हलकी बात की कि आप भारी बन गए। अच्छा, जाने दीजिए। पहले यह बतलाइए कि लाटरी है कुल कितने की। तब बतलाऊँगी कि उसके रुपए से क्या करूँगी।

राजेश : (उपेक्षा से) मुझे कुछ याद नहीं।

सरोज : देखिए, आप बुरा मान गए। कहिए, तो माफी माँग लूँ। अब तो बतला दीजिए। शायद पहला इनाम पाँच लाख का है। है न ?

राजेश : (उसी उपेक्षा से) होगा।

सरोज : अभी तक आप बुरा माने ही हुए हैं। मैं खुद ही उसका नोटिस न देख लूंगी ? (उठ कर आलमारी के ऊपरी शैल्फ से एक कागज निकालकर राजेश के समीप पहुँचते हुए) देखिए, यही तो है।

राजेश : (हँस कर) अरे, यह तो पोचा की तरकारियों का कैटलाग है। तुम भी अजीब हो !

सरोज : (उसे फेंक कर) तो मैं क्या करूँ ? उसी जगह तो रक्खा था आपने लाटरी का कागज। (झुंझलाकर तख्त पर बैठ जाती है।)

राजेश : (हँसते हुए) तो कैटलाग फेंक क्यों दिया ? अच्छा, मेरी गलती सही। जाने दो लाटरी के कागज को। मुझे तो सारे इनाम जबानी याद हैं। सुनो, पहला इनाम तो पाँच लाख का है, दूसरा ढाई लाख का, तीसरा एक लाख का। फिर पचास हजार के चार इनाम। इसी तरह छोटे-बड़े पेंतीस इनाम हैं। कुल दस लाख की लाटरी है।

सरोज : तब तो काफी बड़ी है।

राजेश : मान लो, बीस-पच्चीस का छोटा इनाम ही तुम्हें मिले, तो क्या करो ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरोज : सब से पहले तो मन्दिर में उत्सव करना चाहिए। मैंने मनौती जो…।

राजेश : (बीच में ही) ऊँहूँ, ले बैठी नाइनटीन्थ सैनचुरी की बात! जो कुछ अच्छा-बुरा होता है, वह तुम्हारे भगवान् की कृपा से ही तो होता है! खैर, मान लो, तुमने भगवान् का उत्सव ही मनाया, तो कितना खर्च होगा? ज्यादा से ज्यादा सौ, डेढ़ सौ, दो सौ…बस।

सरोज : (तीव्रता से) देखिए, आप भगवान् का अपमान न कीजिए।

राजेश : अच्छा बाबा, पाँच सौ सही! बस? अब तो अपमान नहीं हुआ? लेकिन लाटरी होगी पच्चीस हजार की! बाकी रुपया कहाँ जाएगा? पच्चीस हजार कुछ कम रकम नहीं होती।

सरोज : जी, यह बात मैं नहीं जानती!

राजेश : (मुस्करा कर) अच्छा, अब बुरा मानने की आपकी बारी है!

सरोज : (अन्यमनस्कता से) बुरा मानने का मेरा हक ही क्या है? क्या स्त्री भी पति से बुरा मान सकती है? उसकी हैसियत ही क्या है?

राजेश : लो, उठा लाई मनुस्मृति। छोड़ो इन बातों को। मुझसे पूछो, मैं क्या करूँगा। बतलाऊँ? सबसे पहले तो दूँगा दोस्तों को एक गहरी पार्टी। बधाई देने आएँगे वे लोग, तो तुम्हारे हजबैण्ड की शान इसी में है कि एक ग्रैंड पार्टी दे दूँगा। बहुत दिनों से कोई पार्टी दी भी नहीं है। इसके बाद वह सामने वाला मकान जो बिकाऊ है न? वह मारबल हाउस? वह खरीदूँगा। फिर उसके चारों तरफ फूलों और तरकारियों का एक बढ़िया बाग लगाऊँगा…।

सरोज : (बीच ही में) अच्छा, इसीलिए आपने पोचा की तरकारियों का कैटलाग मँगा रक्खा है।

राजेश : तो इसमें बुराई क्या है? ऐसा बढ़िया बाग लगाऊँगा कि साल भर मौसम और गैर मौसम की तरकारियाँ मुफ्त खाओ और चाहो तो बाजार में बिकवाओ।

सरोज : (रुक्षता से) मुझे कुँजड़े की दूकान नहीं सजानी है।

राजेश : लो, तरकारी बिकवाने में मैं कुँजड़ा बन गया। अच्छी बात है, मत बिकवाना। घर की तरकारियाँ तो खाने दोगी?

सरोज : अच्छी बात है। फिर बाग लगाने के बाद…।

राजेश : इसके बाद, (हँस कर) कहीं तुम मुझे शेखचिल्ली न कहने लगो। लेकिन मैं सब सही बातें कह रहा हूँ…इसके बाद…एक अच्छी सी मोटर खरीदूँगा। (सहसा) हाँ, तुम्हें मोटर का कौन-सा मॉडल पसन्द है?

सरोज : आपकी तरकारियों के कैटलाग की तरह मेरे पास कोई कैटलाग तो है नहीं?

राजेश : अरे, इतनी बार मोटरों पर बैठ चुकी हो, तुम्हें कोई मॉडल ही पसन्द नहीं? स्टूडीबेकर, शेव्ह, फोर्ड, बियूक, हडसन, हिन्दुस्तान टैन, मारिस, आस्टिन।

सरोज : आप तो बिलकुल मोटर-डीलर बन गए। सारी मोटरें आपके दिमाग में दौड़ रही हैं।

राजेश : मोटरें क्या दौड़ रही हैं, खयालात दौड़ रहे हैं।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरोज : (मुस्करा कर) और अभी तक लाटरी का नतीजा नहीं निकला।

राजेश : नहीं निकला तो निकल आएगा (एकाएक कौतुक से आँखें फाड़ कर प्रसन्नता से) या कहो तो मैं ही निकाल लूँ। निकालूँ ? लो निकालता हूँ ! (पाकेट से मुट्ठी में रुपये निकाल कर एक रुपया चुनते हुए) देखो, इस रुपये को उछाल कर अभी जान सकता हूँ कि लाटरी मिलेगी या नहीं। बोलो, क्या लेती हो। हैड या टेल ? राजा या रुपया ? इस तरफ राजा की तस्वीर है, उस तरफ एक रुपया लिखा है।

सरोज : रुपया उछालने से भविष्य की वात मालूम हो जाएगी ?

राजेश : (दृढ़ता से) निश्चय। तार बाद में आएगा, यह रुपया पहले बतला देगा कि लाटरी मिल गई। अच्छा, क्या लेती हो, राजा या रुपया ? जैसे ही मैं रुपया ऊपर उछालूँ, वैसे ही राजा या रुपए में से अपनी पसन्द का शब्द कह देना। देखो, यह ऊपर गया—वन्···टु···थ्री ई।

[राजेश रुपया 'टन' शब्द से ऊपर उछालता है और सरोज बोल उठती है, 'राजा, राजा, हैड।' राजेश रुपया झेलने में चूक जाता है और रुपया फूलदान में गिरता है। वह झुक कर रुपया खोजने लगता है।]

राजेश : हाथ ही में नहीं आया रुपया, कहाँ गया ? (नीचे खोजते हैं, फिर फूलदान की ओर बढ़ कर) अगर हैड सामने है तो समझो लाटरी मिल जाएगी। लेकिन रुपया गया कहाँ ? (गहरी दृष्टि से खोजते हैं, एकाएक चौंककर) वाह रे रुपए !

सरोज : (उत्सुकता से) क्यों क्या हुआ ?

राजेश : (झुंझला कर) कमवख्त रुपया गिरा भी तो गुलदस्ते की पत्तियों में सीधा उलझा हुआ है, न इस ओर न उस ओर।

सरोज : तो इसका मतलब क्या हुआ ? दोनों में से कुछ भी नहीं ?

राजेश : (कंधे उचका कर) मैं क्या बतलाऊँ ? रुपए महाराज के सीधे विराजमान होने से तो कुछ तस्फिया नहीं हुआ। लाओ, फिर से उछालूँ।

सरोज : एक ही समय में बार-बार सगुन निकालने से वह झूठा पड़ जाता है।

राजेश : झूठा क्यों पड़ेगा ? अबकी बार बिलकुल सच निकलेगा। अलग उछालूँगा, जिससे वह फूलदान या और किसी चीज में न गिरे। यह रुपया कमबख्त मुझी से मजाक करता है। जैसे जानदार है। जान-बूझकर मुझे चिढ़ाता है।

सरोज : चिढ़ाएगा क्यों ? लेकिन जिस तरह रुपया गिरा, उससे तो जान पड़ता है कि लाटरी शायद निकले ही नहीं !

राजेश : (मुँह बना कर) वाह, ऐसा भी कहीं हो सकता है ? दो महीने पहले एनाउंस हो चुका है कि लाटरी 15 दिसम्बर को निकाली जाएगी। कल तो शायद वह निकल भी चुकी होगी। तार आ रहा होगा।

सरोज : ईश्वर जाने !

राजेश : ईश्वर क्या जाने, मैं जानता हूँ ! अच्छा तो अबकी बार इसे ठीक उछालूंगा। समझ कर बोलना। मैं इधर अलग कोने में उछालता हूँ जिससे कहीं उलझ न सके।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कोने की ओर बढ़ते हुए) बोलो हैड या टेल, राजा या रुपया ? यह रुपया उछला—वन्...टू...।

[थ्री कहने के पूर्व ही बाहर से आवाज आती है।]

आवाज : तार ले जाइए, साहब !

सरोज : (चौंक कर चीखते हुए) ता...र !

राजेश : (प्रसन्नता मिली घबराहट से) ता...र ?

आवाज : आपका तार है, साहब !

राजेश : (टूटते स्वरों में) मिल...गई...लाटरी ! (शीघ्रता से दरवाजे की ओर जाते हैं।)

सरोज : (उल्लास से) मिल गई ! मिल गई ! (आतुरता से दरवाजे की ओर बढ़ जाती है।)

राजेश : (तार लेकर फौरन अन्दर आते हुए) आखिर आ ही गया तार ! (काँपते हाथों से लिफाफा फाड़ते हुए) बहुत इन्तजार कराया कमबख्त ने ! गुड हैवेंस !

आवाज : साहब, दस्तखत तो कर दीजिए।

राजेश : (लिफाफा फाड़ते हुए) क्या ?

आवाज : दस्तखत, साहब !

राजेश : (उतावली से) सरोज, तुम कर दो।

सरोज : लाओ। (दरवाजे की ओर बढ़ जाती है। तार का कागज हाथ में लेकर) क्या नम्बर है ?

आवाज : सतासी।

सरोज : (देखते हुए) कहाँ है सतासी ? यह है।

[शीघ्रता से दस्तखत कर कागज तारवाले को देती है। तारवाला 'सलाम साहब' बोलता है लेकिन किसी को सलाम लेने की फुर्सत नहीं है। शीघ्रता से सरोज राजेश के समीप आ जाती है। तार का कागज लिफाफे में चिपक जाने के कारण निकालने में उलझन होती है। राजेश के हाथ काँप रहे हैं। आखिर वे तार निकाल कर खोलते हैं।]

सरोज : (उत्साह से) कितने की मिली लाटरी ?

[राजेश तार पढ़ते ही रहते हैं]

सरोज : बतलाइए न, पाँच लाख की या ढाई लाख की ?

[राजेश दाँत पीस कर क्रोध से तार जमीन पर फेंक कर उसे पैरों से कुचल देते हैं।]

सरोज : (घबराहट से) अरे, यह क्या ? यह क्या ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

[राजेश दाँत पीसते हुए कुर्सी पर बैठ जाते हैं।]

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरोज : क्या लाटरी नहीं मिली ? बात क्या है ?

राजेश : (गुस्से से साँस छोड़ते हुआ) नानसेन !

सरोज : (कुतूहल मिश्रित दुःख से) नानसेन, क्या लिक्खा है तार में ? मैं तो अंग्रेजी जानती नहीं, नहीं तो मैं ही पढ़ लेती । (तार उठाती है।)

राजेश : (सरोज की बात सुनी-अनसुनी करके आप ही आप) अच्छी किस्मत है ! खूब मौका देखा !

सरोज : आखिर कुछ बतलाइएगा, कैसा तार है ?

राजेश : (तीव्रता से) मेरा सर है और क्या है !

सरोज : (आश्चर्य से) मेरा सर ?

राजेश : और क्या ? मिस्टर मुसद्दीलाल का तार है कि उनका ट्रान्सफर हो गया ।

सरोज : ट्रान्सफर ? कहाँ ?

राजेश : जहन्नुम, और कहाँ ! इसी मौके पर तार भेजना था ! यहाँ मैं बैठा हूँ दूसरी आशा में, आप तार भेज रहे हैं कि ट्रान्सफर हो गया । अच्छा हो गया । दुनिया से ट्रान्सफर हो जाता तो और अच्छा था !

सरोज : (पश्चाताप के स्वर में) मैं तो समझी थी कि लाटरी मिल गई ।

राजेश : (झुंझलाहट से) मिल जाने में शक क्या था ? अगर ये महाशय मुसद्दीलाल न होते या इनका ट्रान्सफर न होता । ट्रान्सफर हो गया ! अच्छा हो गया ! मैं क्या करूँ ? खुद मर जाऊँ या मार डालूँ ? जनाब आज ही तार देने बैठे हैं । कल दे दिया होता या चार दिन बाद दे देते ! आज ही उनकी क्या लंका जली जाती थी जो खामखा मेरी खुशी में आग लगा दी ? जनाब टेलीग्राम दे रहे हैं कि मेरा ट्रान्सफर हो गया । सर नहीं फूट गया ! 'आइ विश दैट शुड हैव बीन' (कुछ ठहर कर) मैं जानता हूँ कमबख्त किस्मत ही मुझसे मजाक कर रही है ।

[बैठ कर हथेली पर सिर टेक लेता है ।]

सरोज : (सहानुभूति से) सचमुच क्या कहा जाय ?

राजेश : कुछ नहीं । मुझे इसी तरह रोते-झींकते जीना है । कभी भाग्य की आजमाइश करो तो यार लोग बीच में अड़ंगा डाल देते हैं । कहीं ट्रान्सफर हो गया, कहीं यह हो गया, कहीं वह हो गया। दोस्त मुसीबत में मदद करते हैं, ये उल्टी मुसीबतें ढाते हैं । किस्तत ही उलट गई है, और क्या ?

सरोज : चलिए जाने दीजिए । कोई दूसरा तार आ जाएगा ।

राजेश : (अशान्ति से) ईश्वर न करे, कोई दूसरा तार आए ! आएगा तो कोई साहब लिखेंगे, कि उनका हार्ट फेल हो गया ! सचमुच ही फेल हो जाय तो अच्छा है !

सरोज : ईश्वर न करे कहीं ऐसा हो । आप तो छोटी-सी बात पर नाराज हो उठते हैं ।

राजेश : (तड़प कर) यह छोटी बात है सरोज, यहाँ मेरी पाँच लाख की बाजी लगी हुई है । तुम्हारे लिए छोटी-सी बात है ! तुम क्या समझो इसे ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरोज : (शान्ति से) अच्छी बात है। मैं कुछ नहीं समझती। लेकिन आपके दोस्त मिस्टर मुसद्दीलाल को क्या पता था कि उनका तार ऐसे वक्त पहुँचेगा जब आप पाँच लाख का इन्तजार कर रहे होंगे ? उनको तो पता भी न होगा कि आपने लाटरी का टिकट खरीदा है ?

राजेश : (तीव्रता से) तो क्या मैं लाटरी के टिकट का डंका पीटता फिरूँ ? अखबारों में छपा दूँ कि मैंने लाटरी का टिकट खरीदा है ? दोस्त लोग इस बात को नोट कर लें। अच्छी बात है। अब से यही करूँगा। डंका पीटकर लाटरी का टिकट खरीदूँगा।

सरोज : आप तो बहुत जल्दी···

राजेश : सुनो सरोज, आज से मैं कसम खाता हूँ कि रुपया किसी भूखे-प्यासे को दे दूँगा, लेकिन लाटरी का टिकट नहीं खरीदूँगा। कभी नहीं खरीदूँगा।

सरोज : यह तो और भी अच्छा होगा। किसी भूखे-प्यासे का पेट भरेगा।

राजेश : और क्या ? तुम भी तो यही चाहती हो कि मेरी हालत ऐसी ही भिखमंगे जैसी बनी रहे।

सरोज : आपकी यह हालत भिखमंगे जैसी है ?

राजेश : नहीं है, तो हो जाएगी। आज नहीं कल। न जाने किसका मुँह देखकर उठा था।

सरोज : खैर, अब शान्त हो जाइए। काफी देर हो गई है। (घड़ी की ओर दृष्टि) शाम हो चली है। आप थोड़ा नाश्ता कर लीजिए।

राजेश : मुझे कुछ नहीं करना—नाश्ता-वाश्ता।

सरोज : तो क्या लाटरी के पीछे आप खाना-पीना छोड़ देंगे ?

राजेश : खाना-पीना क्या छोड़ दूँगा ? उसमें भी मेरे लिए जहर निकल आएगा।

सरोज : आप कैसी बातें करते हैं ? क्या मैं आपके खाने-पीने में जहर मिला दूँगी ?

राजेश : मुसद्दीलाल ने तार में कौन जहर मिला दिया था लेकिन हो गया मेरे लिए।

सरोज : (अन्यमनस्कता से) ठीक है, तो मैं अब कुछ बोलूँगी भी नहीं।

[बाहर दरवाजे पर आवाज होती है।]

सरोज : देखिए, कोई बाहर आया है ?

राजेश : अब मैं किसी से नहीं मिलना चाहता।

सरोज : मुमकिन है, कोई दूसरा तारवाला हो !

राजेश : (तीखे स्वर में) तुम फिर जले पर नमक छिड़कती हो सरोज ! किस्मत की तरह तुम भी मुझसे मजाक करती हो !

सरोज : मैं आपसे क्यों मजाक करूँगी ? आज तो मेरा बोलना भी मुश्किल हो रहा है !

[बाहर दरवाजे पर फिर आवाज होती है।]

राजेश : (झुंझला कर) आज चपरासी भी आफिस से नहीं आया। जो जाकर देखे कि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर कौन है ? (जोर से) कौन है ?

आवाज : मैं हूँ, रमेशचन्द्र ।

राजेश : अच्छा, क्लर्क ! (सरोज से) सरोज, रमेश आया है ।(सरोज भीतर चली जाती है) आओ रमेश !

[रमेशचन्द्र का प्रवेश । वह दुबला-पतला युवक है । आयु 26 वर्ष के लगभग । खाकी रंग का बन्द गले का कोट और सफेद पैजामा पहने हुए हैं । सिर पर किश्ती-नुमा टोपी, पैर में चप्पल । उसके हाथ में कुछ कागज और लिफाफे हैं । वह आकर राजेश को नमस्कार करता है ।]

राजेश : क्या बात है, रमेश ?

रमेश : जी, आज आप आफिस नहीं पहुंच सके । यह आपकी डाक है । मैंने सोचा, घर जाते समय आपकी यह डाक पहुँचा दूँ । मुमकिन है, कोई जरूरी चिट्ठी हो !

राजेश : ठीक किया । रख दो मेज पर । (रमेश डाक मेज पर रखता है) सब पेपर्स डिसपैच हो गए ?

रमेश : (नम्रता से) जी ।

राजेश : और कोई जरूरी बात ?

रमेश : जी नहीं !

राजेश : तो तुम जा सकते हो ।

रमेश : जी । (नमस्कार करके प्रस्थान)

[राजेश कुछ क्षणों तक शून्य में देखते रहते हैं । फिर गहरी साँस लेकर डाक हाथ में लेते हैं ।]

राजेश : (डाक देखते हुए) सरोज !

[नेपथ्य से सरोज : 'कहिए' !]

राजेश : तुम्हारी एक चिट्ठी है ।

सरोज : (आकर) कहाँ की है ?

राजेश : मैं तो तुम्हारे पत्र कभी खोलता नहीं । होगी तुम्हारी किसी सहेली की !

सरोज : क्या पोस्टमैन आया था ?

राजेश : नहीं, रमेश डाक दे गया है ।

[सरोज पत्र लेती है । डाक के पत्र देखते हुए एकाएक राजेश चौंक उठता है ।]

राजेश : (विह्वलता से) अरे, यह पत्र तो बम्बई से आया है । लाटरी-विभाग की ओर से ।

सरोज : (प्रसन्नता से) लाटरी-विभाग की ओर से !

राजेश : हाँ, मुहर तो वहीं की है—आल इण्डिया लाटरी ब्यूरो । देखो, इस कोने में सील है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरोज : (आतुरता से) खोलिए क्या लिखा हुआ है ? क्या कोई लाटरी ?

राजेश : (विकल और उद्भ्रान्त होकर टूटे स्वर में) लाटरी…ऐं…लाटरी तो नहीं…हो…सकती…ऐं…लाटरी ! (पत्र खोलते हुए हाथ काँपते हैं ।)

सरोज : क्यों ? कोई छोटी-मोटी लाटरी तो हो सकती है ! आप ही तो कहते थे कि बड़ी लाटरी की सूचना तार से दी जाएगी और छोटी लाटी की चिट्ठी से !

राजेश : (अस्फुट शब्दों में) हाँ…छोटी लाटरी…की सूचना…चिट्ठी से…तो लो फिर…तुम्हीं खोलो । न जाने…मेरा…दिल कैसा हो रहा है…कहीं कुछ…न निकला…तो ऐ तुम्हीं खोलो…

सरोज : लाइए…लाइए, मैं ही खोलूं (राजेश से पत्र ले लेती है ।)

राजेश : हाँ, मेरा दिल…न जाने…कैसा हो…रहा है ! जल्दी खोलो…जरा जोर से पढ़ना ।

[सरोज शीघ्रता से पत्र खोलकर पढ़ती है । राजेश स्तब्ध होकर सुनता है ।]

महानुभाव,

आप जानते हैं कि साम्प्रदायिक आग से पंजाब झुलस गया है । वहाँ करोड़ों की संपत्ति का विनाश हो गया है । जनता त्राहि-त्राहि कर उठी है । जिनके पास लाखों की संपत्ति थी वे दाने-दाने को मुहताज हो गए हैं । उनके पास न खाने को अन्न है और न शरीर ढकने को वस्त्र । संसार के इतिहास में इतनी भयानक दुर्घटना कभी नहीं घटी । हमारे बोर्ड आव् डायरेक्टर्स ने यह निश्चय किया है कि लाटरी के लिए जितना रुपया एकत्रित हुआ है वह पंजाब के शरणार्थियों की सहायता के लिए भारत सरकार की सेवा में भेज दिया जाए । यदि आप इस निश्चय से सहमत नहीं हैं तो कृपया लौटती डाक से हमें सूचित करें, आपके टिकट का रुपया आपकी सेवा में तुरन्त भेज दिया जाएगा । आशा है, आप देश के इस संकट-काल में सहायक होंगे । आपको इस सम्बन्ध में जो असुविधा हुई हो, उसके लिए हम सविनय क्षमा चाहते हैं ।

भवदीय,
जगदीशचन्द्र जौहरी
मैनेजिंग डायरेक्टर
आल इण्डिया लाटरी ब्यूरो, बम्बई-1

[कुछ क्षण तक दोनों मौन रहते हैं ।]

सरोज : (ठण्डी साँस लेकर) आखीर में यह नतीजा निकला !

राजेश : (विमूढ़ की भाँति) हूँ !

सरोज : मैं तो तारीफ करूंगी लाटरी वालों की कि अच्छे काम में रुपया लगाया है—शरणार्थियों की रक्षा में ।

राजेश : ठीक है (ऊपर की ओर अन्यमनस्क दृष्टि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरोज : अब तो आपको लाटरी न मिलने का कोई दुःख नहीं है ?

राजेश : क्या दुःख होगा ? मुझे नहीं मिली तो और किसी को भी तो नहीं मिली !

सरोज : हाँ, यही संतोष क्या कम है ? फिर शरणार्थियों की सेवा इस समय हमारा पहला कर्त्तव्य है ।

राजेश : अजीब बात तो यह है कि देश पर विपत्ति भी इसी समय आई । खूब मौका देखा !

सरोज : यह हमारे-आपके भाग्य की बात नहीं, सारे देश के भाग्य की बात है । इसके लिए कोई क्या करे ?

राजेश : हाँ, यही कहना पड़ता है ।

सरोज : तव तो मेरी राय है कि लाटरी वालों को लिख दिया जाए कि हमारे टिकट का रुपया वापस भेजने की जरूरत नहीं है । उसे शरणार्थियों की रक्षा में लगा दिया जाए ।

राजेश : (किंचित मुस्कुरा कर) ठीक है, पाँच लाख रुपये न मिले, पाँच लाख आशीर्वाद मिलेंगे !

सरोज : (हँसकर) तो फिर आपको लाटरी का पहला इनाम मिल कर ही रहा !

राजेश : और क्या ? पाँच लाख···! पूरे पाँच लाख···!

सरोज : (हँसकर वाक्य पूरा करते हुए हर अक्षर पर जोर देकर) आ···शी···र्वा···द

[परदा गिरता है ।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्नू की माँ

पात्र-परिचय

लच्छी
पारू
गन्नू
न्यायाधीश
धर्मू
कुछ व्यक्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय : संध्याकाल

[मुहल्ले में आसपास कुछ घर। पर मंच पर केवल दो ही घर दीख पड़ते हैं। सामने से रास्ता है। घर सामान्य प्रकार के हैं। घर के सामने उदास मुद्रा में लच्छी टहल रही है।]

लच्छी : (गहरी साँस लेकर) मैं कितनी अभागिन हूँ। मैंने ऐसे कौन-से पाप किए हैं जिससे अब तक मेरी गोद सूनी है। वे घर कितने धन्य हैं जिनमें बच्चों की किलकारियाँ गूँजती रहती हैं। मेरा घर ? (अपने घर की ओर देखकर) मेरा घर तो बस मिट्टी और चूने का घरौंदा है जिसमें हमेशा श्मशान का सूनापन छाया रहता है। दूसरी तरफ यह पारू का घर है (पारू के घर की ओर संकेत करके), जिसमें दो बच्चे चाँद और सूरज की तरह जगमगाते रहते हैं। हँसते हैं फूल बरसते हैं और रोते हैं तो मोती बिखरते हैं। कतकू और गन्नू—छोटे-छोटे हैं, पर जब खेलते हैं तो लगता है, दो फूल हवा की लहरों में झूल रहे हैं और···और गन्नू कैसा हँसता है ! बरस-भर का भी तो नहीं है पर ऐसे हाथ-पैर उछालता है जैसे आसमान के तारे तोड़ लेगा। कमबख्त मरता भी नहीं कि मेरा कलेजा ठंडा हो ! ···मैं क्या करूँ ? गन्नू को चुरा लूँ ?···(सोचते हुए) चुरा लूँ। चुराकर कहीं दूर चली जाऊँगी। पारू को कहीं पता भी नहीं चलेगा। जंगल में भी बच्चे के साथ मंगल छा जाएगा। पर चुराऊँ भी तो कैसे ? (सोचते हुए) कैसे चुराऊँ ? (फिर सोचती है) अच्छा··· (पुकारकर) पारू ! ओ पारू !

[नेपथ्य से : 'क्या है, लच्छी ?']

लच्छी : अरी, जरा सुन तो !

[नेपथ्य से : 'अरी, क्या कह रही है ?']

लच्छी : सुन तो ले री। तेरे भले की कह रही हूँ। थोड़ी देर के लिए सुन जा।

[पारू का प्रवेश।]

पारू : क्या है री, लच्छी ?

लच्छी : अरी, तेरे भले की कह रही हूँ। मैं अभी हाट से आ रही हूँ। गेहूँ-चावल जो सपना हो रहे थे वे अब बाजार में आ गए हैं और सो भी बहुत सस्ते बिक रहे हैं। तू भी जाकर ले आ। मैं तो बहुत-सा सामान ले आयी हूँ। एक बार चूक गयी तो फिर न जाने कब सामान आएगा। अच्छा मौका है, तू भी ले आ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारू : सामान बहुत सस्ता है ? कितना ?

लच्छी : अरी, जितने में सात दिन का सामान मिलता था उतने में महीने-भर का मिल रहा है। सब बिक जाएगा हो हाथ मलती रह जाएगी।

पारू : सचमुच ? कहाँ ? किस दूकान पर ?

लच्छी : अरी, आगे जो चौरास्ता है न, उसके दाहिने तरफ की दूकान है। लक्ष्मीनारायन की। अरे, मेरे ही नाम की तो है।

पारू : हाँ, हाँ, मैं उस दूकान को जानती हूँ। तो अभी चली जाऊँ ?

लच्छी : अरी, हाट तो सदा ऊपर ही उठता है। इस समय गिरा है तो फायदा उठा ले।

पारू : तो फिर जल्दी ही चली जाऊँ !

लच्छी : इसमें भी कोई सोचने की बात है ?

पारू : घर में कोई नहीं है, दोनों बच्चे सो रहे हैं।

लच्छी : अरी, मैं तो हूँ। मैं देखती रहूँगी।

पारू : अच्छा, बहन ! अभी जाती हूँ। मेरे बच्चों को देखती रहना। अगर रोएँ तो चुप कर लेना।

लच्छी : मैं यहीं हूँ। बच्चों के रोने की कुछ भी आहट मिली तो उन्हें तुरन्त सम्हाल लूंगी।

पारू : अच्छा, बहन ! तो मैं जाती हूँ। कपड़ा-झोला ले लूँ।

[पारू शीघ्रता से भीतर जाती है। लच्छी कुटिल मुसकान से उसे जाते हुए देखती है। फिर धीरे-धीरे गुनगुनाती है—]

जसोदा हरि पालने झुलावें···जसोदा हरि···
जसोदा हरि पालने···झुलावें···

पारू : (आकर) अच्छा, बहन जाती हूँ। तुम बच्चों को देखना। (प्रस्थान)

[लच्छी पारू के जाने की दिशा में देखती रहती है, फिर मुड़कर सोचती है।]

लच्छी : पारू तो गयी ! घर बिलकुल सूना है। यह अच्छा मौका है। मैं गन्नू को चुरा लूँ। लोगों से कह दूंगी कि यह बच्चा मेरा है। कुछ ही महीनों के बच्चे की क्या पहचान ? पारू अभी-अभी इस मुहल्ले में आयी है। लोग उसे ठीक तरह से जानते भी नहीं। जब उसे नहीं जानते तो बच्चे को क्या जानेंगे ! अगर न्यायाधीश के सामने बात पहुँची तो भी उन्हें मेरी ही बात माननी होगी। तो फिर जाऊँ घर के भीतर ?···गन्नू को चुरा लूँ ?···छोटे बच्चे को चुराने में आसानी होगी···तो फिर···तो फिर···जाऊँ भीतर ?···चुराऊँ ? अच्जा···अच्छा···अभी चुरा लेती हूँ।

[शीघ्रता से पारू के घर का द्वार खोलकर भीतर जाती है। दूसरे ही क्षण छोटे-से बच्चे गन्नू को लेकर अपने घर की ओर जाते हुए।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब···अब···यह बच्चा मेरा है···मेरा है। देखती हूँ इसे मुझसे कौन छीनता है। (अपने घर चली जाती है।)

[दो क्षण अँधेरे के बाद उजाला होता है। पारू का प्रवेश। खाली झोले लिए हुए आती है।]

पारू : लच्छी ! ओ लच्छी ! यहाँ तो कोई नहीं है। दूकान भी बन्द हो गयी। (लच्छी को न देखकर) लच्छी ! तू कहाँ है ? क्या घर के भीतर है ? क्या मेरा कोई बच्चा रोया ? कहाँ है तू ? (शीघ्रता से घर के भीतर आती है और दूसरे ही क्षण निकल आती है) न लच्छी है, न गन्नू ! गन्नू कहाँ है ? (पुकारकर) लच्छी ! ओ लच्छी ! हाय ! गन्नू कहाँ गया ? लच्छी कहाँ गयी ? (लच्छी का दरवाजा पीटते हुए) लच्छी ! ओ लच्छी ! यह दरवाजा भीतर से क्यों बन्द है ? हाय ! कोई बोलता भी नहीं ! लच्छी कहाँ गयी मेरे गन्नू को लेकर ? (करुण स्वर में) हाय ! मेरा गन्नू किधर गया ? हाय, मेरा गन्नू !···मेरा गन्नू ! (जोर से पुकारकर) लच्छी ! ओ लच्छी !

[एक व्यक्ति का प्रवेश।]

व्यक्ति : क्या बात है, बहन ?

पारू : लच्छी कहाँ है ? लच्छी को कहीं देखा है ? घर में मेरा गन्नू भी नहीं है।

व्यक्ति : गन्नू कौन ?

पारू : मेरा छोटा-सा बच्चा।

व्यक्ति : हाँ, मैंने थोड़ी देर पहले देखा कि एक स्त्री एक छोटे-से बच्चे को गोद में लेकर कहीं तेजी से भागी जा रही है।

पारू : वही है लच्छी ! वही है लच्छी ! कहाँ भागी जा रही थी ?

व्यक्ति : अब तो मैं नहीं जानता। वह कुछ डरी-डरी-सी, सहमी-सहमी-सी लम्बे डग बढ़ाकर पूरब की तरफ जा रही थी।

पारू : हाय ! मेरे बच्चे को चुराकर भाग गयी ! भाग गयी ! मेरा बेटा गन्नू !

व्यक्ति : वह तुम्हारे बेटे को क्यों चुराएगी ?

पारू : मैं क्या जानूँ ? कभी-कभी लगता था कि वह मेरे बच्चों से जलती है। उसके अपना कोई बेटा नहीं है।

व्यक्ति : बच्चे तो सभी को अच्छे लगते हैं। वह उनसे जलेगी क्यों ?

पारू : अब यह सब मैं क्या जानूँ ? भाई ! तुम बतलाओ वह लच्छी कहाँ गयी ? कहीं मेरे गन्नू को कुछ हो न जाए ! चलो भाई, कृपा करके उसे खोज दो।

व्यक्ति : (सोचते हुए) अच्छा, चलो। जिस तरफ वह गयी है, उसी तरफ चला जाए।

पारू : (हाथ जोड़कर) मैं तुम्हारा गुन जिन्दगी भर न भूलूँगी। चलो, मैं भी चलती हूँ। घर में ताला लगा दूँ, नहीं तो कोई दूसरा बच्चा भी ले जाएगा। (भीतर जाकर जल्दी से ताला लगाती है और उस व्यक्ति के साथ जाती है।)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[मंच पर थोड़ी देर के लिए अँधेरा । प्रकाश होने पर दीख पड़ता है कि सामने न्यायाधीश का कक्ष है । न्यायाधीश ऊँची कुर्सी पर बैठा हुआ है । दोनों ओर दो कठघरे हैं । एक में पारू खड़ी है, उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है । दूसरी ओर लच्छी खड़ी है । उसके मुख पर अभिमान की मुद्रा है । एक ओर एक स्टैंड पर गन्नू कपड़ों में ढँका लेटा हुआ है । न्यायाधीश का सहायक धर्मू बगल में खड़ा हुआ है । धर्मू एक बस्ते से कागज निकालकर पढ़ता है ।]

धर्मू : श्रीमन् ! ये दो स्त्रियाँ हैं । एक का नाम पारू है और दूसरी का नाम लच्छी । अभियोग यह है कि लच्छी ने पारू का बच्चा गन्नू चुरा लिया है । लेकिन लच्छी कहती हैं कि बच्चा उसका है । पारू जबरदस्ती उसे अपना कहकर छीनना चाहती है । निर्णय यह करना है कि सचमुच बच्चा किसका है ।

न्यायाधीश : कोई साक्षी है ?

धर्मू : साक्षी कोई नहीं है ।

न्यायाधीश : तब इन्हीं दोनों के बीच निर्णय करना है । (लच्छी से) तुम ईश्वर को साक्षी मानकर कहो कि सत्य ही कहूँगी ।

लच्छी : सत्य ही कहूँगी ।

न्यायाधीश : (धर्मू से) लिखते जाओ । (लच्छी से) तुम्हारा नाम है ?

लच्छी : लच्छी श्रीमन् !

न्यायाधीश : पूरा नाम बतलाओ । लच्छी तो पुकारने का नाम होगा ।

लच्छी : लक्ष्मी, श्रीमन् ?

न्यायाधीश : तुम्हारे पति का नाम ?

लच्छी : स्त्रियाँ पति का नाम नहीं लेतीं, श्रीमन् !

न्यायाधीश : तुम्हारे पिता का नाम ?

लच्छी : सिन्धुराज, श्रीमन् !

न्यायाधीश : सिन्धुराज ! कहाँ रहती हो ?

लच्छी : जगतगंज में, श्रीमन् !

न्यायाधीश : जगतगंज में । तुम्हें इस अभियोग के सम्बन्ध में क्या कहना है ?

लच्छी : श्रीमन् ! (गन्नू की ओर संकेत कर) यह बच्चा मेरा है । मेरे घर के भीतर पालने में यह सो रहा था । यह पारू आयी और कहने लगी कि तुम्हारा बच्चा मुझे बहुत अच्छा लगता है । भगवान करते कि यह बच्चा मेरा होता ! बहुत दिनों से इसकी नजर मेरे बच्चे पर थी । इसके एक बच्चा है पर उससे इसे सन्तोष नहीं होता । वह इतना ऊधमी है कि एक जगह पर नहीं रहता । है तो छोटा पर अपनी माँ को बहुत तंग करता है । इसी से पारू की आँख मेरे बच्चे पर लगी थी । वह उल्टी-सीधी बातें बनाकर मेरे बच्चे को छीनना चाहती है ।

न्यायाधीश : तुम्हें और कुछ कहना है ?

लच्छी : माँ अपने बच्चे को अपना बच्चा कहने के अतिरिक्त और क्या कह सकती है ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायाधीश : (पारू से) ईश्वर को साक्षी देकर कहो कि जो कुछ कहोगी सच कहोगी।

पारू : जो कुछ कहूँगी, सच कहूँगी, श्रीमन् !

न्यायाधीश : तुम्हारा नाम ?

पारू : पारू, श्रीमान् !

न्यायाधीश : अपना शुद्ध नाम बतलाओ।

पारू : पार्वती, श्रीमन्।

न्यायाधीश : तुम भी अपने पति का नाम नहीं लोगी। तुम्हारे पिता का नाम ?

पारू : गिरिनाथ, श्रीमन् ?

न्यायाधीश : कहाँ रहती हो ?

पारू : कैलासपुर में, कुछ दिनों के लिए जगतजंग चली आयी थी।

न्यायाधीश : तुम लच्छी को जानती हो ?

पारू : हाँ, श्रीमन् ! यह उसी मुहल्ले में रहती है जहाँ मैं रहती हूँ।

न्यायाधीश : तुम इसे कितने दिनों से जानती हो ?

पारू : बहुत दिनों से जानती हूँ किन्तु इसके मुहल्ले में कुछ ही दिन हुए आयी हूँ।

न्यायाधीश : तुम्हें अपने अभियोग के सम्बन्ध में क्या कहना है ?

पारू : श्रीमन् ! गन्नू मेरा बच्चा है। वह पालने में सो रहा था।

न्यायाधीश : गन्नू की आयु क्या है ?

लच्छी : दस महीने है, श्रीमन् !

न्यायाधीश : (लच्छी से) तुमसे नहीं पूछ रहा हूँ। (पारू से) आयु क्या है ?

पारू : मेरी, श्रीमन् ?

न्यायाधीश : तुम्हारी नहीं। स्त्रियों से उनकी आयु नहीं पूछना चाहिए। इसीलिए मैंने आरम्भ में न तुमसे आयु पूछी, न लच्छी से। मैं गन्नू की आयु पूछता हूँ।

पारू : गन्नू की आयु नौ महीने दस दिन है, श्रीमन् !

न्यायाधीश : (धम से) इस बात को ठीक तरह से लिखो। (पारू से) अच्छा, फिर ?

पारू : श्रीमन् ! मैं गन्नू को सुलाने के बाद लड्डू बना रही थी कि लच्छी ने कहा कि हाट में सामान सस्ता मिल रहा है। जाकर ले आओ। घर में कोई नहीं था। मैंने लच्छी से कहा कि तुम मेरे बेटों को देखती रहना, मैं हाट से सामान ले आऊँ। वह राजी हो गयी। मैं हाट चली गयी। जब मैं लौटकर आयी तो वहाँ न लच्छी थी, न गन्नू। मैं चारों तरफ खोजने लगी। जब मैं लच्छी और गन्नू को पुकार-पुकारकर थक गयी और रोने लगी तो मेरे एक धर्म-भाई आए और उन्होंने बतलाया कि एक स्त्री एक छोटे बच्चे को उठाकर भाग गयी है। मेरे धर्म-भाई ने उसका पीछा किया और उस बच्चे को लेना चाहा। इस पर लच्छी कहने लगी कि यह बच्चा तो मेरा है, पारू का नहीं। यह किसी तरह भी बच्चा देने के लिए तैयार नहीं हुई। इसी-लिए आपकी सेवा में अभियोग लायी।

न्यायाधीश : तुम्हारे धर्म-भाई कहाँ हैं ?

पारू : वह न जाने कहाँ चले गए। मैंने बहुत खोजा, वह मिले नहीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायाधीश : उनका नाम ?

पारू : मैं उनका नाम नहीं पूछ सकी।

न्यायाधीश : (लच्छी से) क्यों लच्छी ! क्या पारू का कथन ठीक है ?

लच्छी : नहीं, श्रीमन् ! यह बच्चा मेरा है। यह स्त्री सामान लेने गयी थी। मेरे घर में मेरा बच्चा गन्नू सो रहा था। जागकर वह रोने लगा। चुप कराने के बहाने इस पारू ने उसे उठा लिया। जब मैंने इससे अपना बच्चा माँगा तो कहने लगी—मैं क्यों दूँ ? यह बच्चा तो मेरा है। बच्चा पाने के लिए इसने आपके सामने झूठा अभियोग रखा है। इससे इसे और भी कठिन दंड मिलना चाहिए।

पारू : श्रीमन् ! लच्छी झूठ बोलती है। यह बच्चा मेरा है।

न्यायाधीश : यह बच्चा तुम्हारा है, इसका क्या प्रमाण है ?

पारू : मैं क्या प्रमाण दूँ ? छोटे बच्चे का क्या प्रमाण ? यही कह सकती हूँ कि इसका पेट शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा कुछ अधिक बड़ा है।

न्यायाधीश : (लच्छी से) तुम क्या प्रमाण दे सकती हो ?

लच्छी : जब यह किसी चूहे को देखता है तो बड़ा प्रसन्न होता है। अपने छोटे-छोटे हाथ फैलाकर चूहे को बुलाता है।

न्यायाधीश : यह कोई प्रमाण नहीं है। बच्चे हर चलती हुई छोटी चीज को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाते हैं। फिर यहाँ चूहा बुलाया भी नहीं जा सकता। कोई दूसरा प्रमाण दो।

लच्छी : इसे लड्डू बहुत अच्छा लगता है।

न्यायाधीश : छोटा बच्चा तो मीठी चीज पसंद करता ही है।

पारू : श्रीमन् ! इस लच्छी के कोई बच्चा नहीं है। गन्नू को देखकर यह जलती रही है। इसीलिए इसने इस बच्चे को चुरा लिया।

न्यायाधीश : तुम्हारे और बच्चे भी हैं, पारू !

पारू : हाँ, श्रीमन् ! इससे बड़ा एक बच्चा और है।

न्यायाधीश : क्या नाम है उसका ?

पारू : उसका नाम है कतकू।

न्यायाधीश : क्या आयु है उसकी ?

पारू : पाँच वर्ष, श्रीमन् !

न्यायाधीश : तो कतकू और गन्नू—तुम्हारे दो बच्चे हैं। क्या हानि है यदि तुम लच्छी को गन्नू दे दो ! एक बच्चा तो तुम्हारे पास रहेगा ही।

पारू : श्रीमन् ! आपसे हाथ में पाँच उँगलियाँ हैं। क्या एक उँगली काटकर आप किसी और को दे सकते हैं ? आपके पास चार उँगलियों तो रहेंगी ही। श्रीमन् ! क्षमा करें। आपके प्रश्न पूछ लिया।

न्यायाधीश : अभियोक्ता के स्थान पर तुम न्यायाधीश बन रही हो ! तो अब तुम दोनों स्पष्ट बतलाओ कि बच्चा किसका है ?

पारू : श्रीमन् ! मेरा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लच्छी : मेरा श्रीमन् !

न्यायाधीश : कोई साक्षी उपस्थित कर सकती हो, पारू ?

पारू : मैं तो अभी हाल ही जगतगंज आयी हूँ । लोग मुझे पहचानते ही नहीं ।

लच्छी : देखा, श्रीमन् ! जब इसका बच्चा है ही नहीं तब साक्षी कौन देगा ? और यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं हजारों आदमी साक्षी के रूप में उपस्थित कर सकती हूँ ।

पारू : लच्छी के पास बहुत पैसा है, श्रीमन् ! यह अपने पैसों के बल पर न जाने कितने भले आदमियों को झूठ बोलने पर विवश कर सकती है ।

लच्छी : मैं इस कथन पर आपत्ति करती हूँ, श्रीमन् !

न्यायाधीश : आपत्ति करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मैंने ऐसे अनेक उदाहरण देखे हैं जिनमें पैसों के बल पर सत्य को झुठलाने की चेष्टा की गई है। अच्छा, मेरे पास समय नहीं है । मैं शीघ्र ही निर्णय देना चाहता हूँ । अन्तिम वार मैं पूछता हूँ (जोर से) बच्चा किसका है ?

लच्छी : श्रीमन् ! मेरा ।

पारू : मेरा, श्रीमन् !

न्यायाधीश : तो मैं निर्णय देता हूँ कि वधिक को आज्ञा दी जाए कि वह इस बच्चे के दो टुकड़े कर दे । एक टुकड़ा लच्छी को दे दिया जाए और दूसरा पारू को ।

[पारू चीख उठती है ।]

पारू : नहीं, नहीं, श्रीमन् ! ···ऐसी···ऐसी आज्ञा न दीजिए ! न दीजिए ।

लच्छी : श्रीमन् ! बच्चा लेने के लिए प्यार का यह नाटक देखिए । इससे पारू को विश्वास है कि वह आप पर प्रभाव डाल सकेगी । किन्तु आप तो न्याय के अवतार हैं । यदि आप जैसे न्यायाधीश हों तो सत्य की सदैव विजय है ।

पारू : (सिसकते हुए) सत्य की सदैव विजय हो पर ऐसी आज्ञा न दीजिए ।

लच्छी : (दृढ़ता से) न्यायाधीश को न्याय से कौन रोक सकता है ?

पारू : (सिसकी भरकर) ऐसी आज्ञा न दीजिए, श्रीमन् ! मेरा प्यारा बच्चा यह समझ भी न सकेगा कि उसके दो टुकड़े क्यों किए जा रहे हैं ।

लच्छी : और मैं ? न्याय के नाम पर मैं अपने बच्चे की मृत्यु भी देख सकती हूँ । सच्ची माता वह है जो सत्य के लिए अपने बच्चे का भी वलिदान कर दे । मैं ऐसी ही वीर जननी हूँ, श्रीमन् ! कोई हानि नहीं । मेरे बच्चे का आधा भाग ही मुझे मिल जाए । ममतापूर्वक मैं उसका संस्कार तो कर सकूँगी । पूरा बच्चा न सही, आधा ही सही । मेरा मातृत्व तो सफल होगा । मैं करुणा से भीख नहीं माँगती, साहस से अधिकार लेती हूँ ।

पारू : हाय ! मेरे बच्चे के दो टुकड़े होंगे । हाय ! मेरे गन्नू ! क्या यह दिन भी मुझे देखने को था ? (सिसकियाँ लेती है ।)

लच्छी : श्रीमन् ! मुझे बच्चे का सिर ही कटवाकर दे दीजिए । उसका मुख ही देखकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं निहाल हो जाऊँगी।

पारू : नहीं, श्रीमन् ! बच्चे का कोई भी अंग न काटा जाए। मेरा बच्चा गन्नू ! उसे आप लच्छी को ही दे दीजिए। वह लच्छी के पास जाकर जीवित तो रहेगा। मैं अपना अधिकार छोड़ती हूँ।

लच्छी : (चिढ़ाते हुए) अधिकार छोड़ती हूँ ! (ताली बजाकर, न्यायाधीश से) देखा, श्रीमन् ! आपने इतना सुन्दर न्याय किया कि सत्य ही की विजय हुई। कपट कब तक चल सकता है ? अब तो संसार को विश्वास हो जाएगा कि सत्य कहाँ है।

पारू : (लच्छी से) बहन ! गन्नू सदैव आपकी गोद की शोभा बढ़ाए। इसे अच्छी तरह से रखना। बहन ! मेरे गन्नू को किसी प्रकार का कष्ट न हो। मेरा गन्नू ! हाय ! मैं अपने गन्नू को मन भर गोद में खिला भी न सकी। हाय री अभागिन माँ ! तेरा भी भाग्य ऐसा होने को था। मेरा गन्नू ! हाय ! मेरा गन्नू !

लच्छी : (न्यायाधीश से) श्रीमन् ! आपके निर्णय के बाद भी यह पारू अभी तक गन्नू को अपना बच्चा कहे जा रही है।

न्यायाधीश : (दृढ़ता से) यह बच्चा वास्तव में पारू का है।

लच्छी : (आश्चर्य से) पारू का ? पारू का ? यह कैसा निर्णय है, श्रीमन् ?

न्यायाधीश : हाँ, यह बच्चा निश्चय ही पारू का है, पार्वती का। जब मैंने बच्चे के दो टुकड़े करने की आज्ञा दी तो तुम्हारे मुख पर दुःख की एक रेखा भी नहीं दिखलाई दी। ऊपर से तुम उसका सिर माँगने लगीं। संसार में कौन ऐसी माता है जो अपने बच्चे के टुकड़े होते देख सकती है ? दूसरी ओर मेरे निर्णय पर पारू की आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली जो अभी तक बह रही है। पारू ने इसीलिए अपने अधिकार को छोड़ने की बात कही कि उसके बच्चे के टुकड़े न हों। वह कहीं भी रहे, जीवित तो रहे।

लच्छी : और आपने मुझ जैसी माता का वीर हृदय नहीं देखा, श्रीमन् !

न्यायाधीश : किसी ऊँचे आदर्श पर बलिदान होते हुए पुत्र की मृत्यु पर ही माता अभिमान और गौरव का अनुभव करती है। यहाँ तो माँ अपने स्वार्थ के लिए संघर्ष कर रही है।

लच्छी : तो गन्नू पारू का बेटा है, श्रीमन् ?

न्यायाधीश : निस्सन्देह।

पारू : श्रीमन् ! आप धन्य हैं। सत्य का निर्णय आप नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? मैं इसके आगे क्या कह सकती हूँ।

न्यायाधीश : तुम कुछ भी न कहो। मैं कहता हूँ कि तुम गन्नू की माँ हो और (लच्छी से) लच्छी ! तुमने जो मिथ्या अधिकार जतलाया है, उसके लिए तुम्हें दंड मिलेगा।

पारू : (न्यायाधीश से) लच्छी को क्षमा कर दीजिए, श्रीमन् ! बच्चे की लालसा किस स्त्री को नहीं होती ? यदि लच्छी के मन में गन्नू के लिए अभिलाषा हुई तो यह अस्वाभाविक नहीं है, श्रीमन् !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायाधीश : तुम बहुत उदार हो, पारू ! किन्तु लच्छी से अपराध तो हुआ ही है। तुमने उसे क्षमा कर दिया इससे उसके दंड में संशोधन हो सकता है। मैं उसे यही सामान्य-सा दंड देता हूँ कि वह मिथ्या भाषण करने के अपराध में सदैव संसार में घूमती ही रहे और उसे कभी स्थिरता प्राप्त न हो। (धर्मू से) धर्मनाथ ! गन्नू नाम के शिशु को पारू के हाथों में सौंप दो।

धर्मू : जैसी आज्ञा, श्रीमन् ! मैं अभी गन्नू को पारू के हाथों में सौंपता हूँ।

[धर्मू गन्नू को पारू के हाथों में सौंपता है। लच्छी शून्य नेत्रों से देखती है।]

न्यायाधीश : आज का कार्य समाप्त।

[पर्दा गिरता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्यवाणी

पात्र-परिचय

महाराज
मन्त्री
जयन्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय : प्रातःकाल

[मध्यकालीन राजसी वातावरण। दरबार कक्ष बड़े वैभव से सुसज्जित है। मखमल लगे हुए स्वर्ण-सिंहासन पर महाराज विराजमान हैं। उनकी अवस्था चालीस वर्ष के लगभग है। राजसी वस्त्रों से सुसज्जित हैं किन्तु मुख पर भारी उदासी छाई हुई है। कक्ष के द्वार पर रेशमी वस्त्र पड़े हैं और दीवार पर बड़े-बड़े चित्र हैं जिनमें स्वयं महाराज का एक चित्र है।

दो क्षण बाद महाराज शिथिल गति से उठते हैं और बेचैनी से कक्ष में टहलने लगते हैं। फिर अपने चित्र के सामने खड़े हो जाते हैं और देखते हुए गहरी साँस लेते हैं। इसके बाद दोनों हाथों से अपना मुख ढँक लेते हैं। उसी समय मंत्री का प्रवेश। मंत्री भी राजसी लिबास में है। उसकी आयु पंतीस वर्ष के लगभग है। उसके मुख पर उत्साह और आत्मविश्वास का तेज है।]

मंत्री : (आते ही हाथ उठाकर) महाराज की जय !

महाराज : (सहसा चौंककर) मंत्री ! तुम आ गए ? तुम्हें मैंने एक आवश्यक कार्य से बुलाया था।

मंत्री : आज्ञा दीजिए, महाराज ! आपकी आज्ञा ध्रुव नक्षत्र है और मेरे सारे कार्य सप्त ऋषियों की भाँति उस ध्रुव नक्षत्र की परिक्रमा करते हैं।

महाराज : (गहरी साँस लेकर) अब परिक्रमा का कष्ट न करना होगा।

मंत्री : (आगे बढ़कर) क्यों नहीं, महाराज ! उस परिक्रमा में मुझे कष्ट के बदले सुख और आनन्द मिलता है। किन्तु मैं देखता हूँ कि महाराज आज बहुत चिन्तित और उदास हैं। प्रभु का स्वास्थ्य तो ठीक है ?

महाराज : मंत्री ! शरीर में तो कोई कष्ट नहीं है किन्तु मन ? मन ऐसा अभिमन्यु बन गया है जिसे चिन्ताओं के महारथियों ने घेर लिया है। उसे कहीं शरण नहीं है।

मंत्री : महाराज ! कठिन से कठिन समय में आपने चिन्ता को कभी आश्रय नहीं दिया। आपने जैसे चिन्ता को अपने हृदय-राज्य से सदैव के लिए निर्वासित कर दिया। किन्तु वही चिन्ता···वही चिन्ता किसी शत्रु के आक्रमण की भाँति आपके मन को···

महाराज : नहीं, मंत्री ! यदि वह शत्रु की भाँति आती तो मैं उसे एक क्षण में समाप्त कर देता है। किन्तु वह आई है ऐसी विभीषिका बनकर कि···(कुछ बोल नहीं सकते)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्री : कैसी विभीषिका बनकर ? महाराज सदैव मुझसे अपने मन की बात कहते रहे हैं, इसे भी स्पष्ट करने की कृपा करें।

महाराज : मंत्री ! हमारा इतना बड़ा राज्य है, इसका उत्तराधिकारी कौन होगा ?

मंत्री : महाराज के चार पुत्र हैं। उनमें से जो सबसे अधिक योग्य होगा और जिसे आप आज्ञा देंगे, वही राज्य का उत्तराधिकार प्राप्त करेगा। किन्तु अभी से इस विषय पर सोचने की क्या आवश्यकता है ?

महाराज : (जैसे कुछ न सुनते हुए) मेरे चार पुत्र हैं। राज्याधिकार के लिए संघर्ष भी हो सकता है। बादशाह शाहजहाँ के भी चार पुत्र थे। उनमें कितना संघर्ष हुआ ! मृत्यु जैसे उनकी माँ बन गई अपनी गोद में सुलाने के लिए। भाई-भाई में घृणा की इतनी गहरी खाई खुद गई कि वह भाइयों के गरम रक्त से भी नहीं भरी जा सकी।

मंत्री : महाराज !...

महाराज : (अपनी ही भावना में) मुराद को शराब पिलाकर बेहोश कर दिया गया और उस बेहोशी में ही उसका कत्ल। शुजा को अराकान के जंगलों में खदेड़ दिया गया और दारा...बड़े भाई दारा को काले कपड़े पहनाकर एक अंधी-सी हथिनी पर बिठलाकर दिल्ली शहर में घुमाया गया जहाँ उसने गरीबों को प्रचुर दान देकर अमीर बना दिया था। जनता के आँसुओं से दिल्ली की गलियों में शोक-गीत की पंक्तियाँ लिखी गईं।

मंत्री : किन्तु महाराज ! आपके राजपुत्र तो कितने सुशील और मर्यादा मानने वाले हैं। वे एक-दूसरे को इतना प्यार करते हैं कि उनकी गाथा कवियों और चारणों के कंठों से शताब्दियों तक गूंजती रहेगी।

महाराज : कवि और चारण हमारे आश्रित हैं। वे हमारी प्रशंसा तो करेंगे ही किन्तु सत्य का रत्न कब तक धूल से धूमिल रहेगा ! आज भाइयों में प्रेम है—कल क्या होगा, यह कौन जानता है ! और राज्य का लोभ ऐसा खूंख्वार भेड़िया है जो चुपके से राजभवन में घुस आता है और भाइयों के कोमल शरीर में अपने तेज दाँत गड़ाकर उन्हें रक्त की नदी में बहा देता है।

मंत्री : तो महाराज ! क्या राम और भरत की कहानी असत्य समझी जाए ? दोनों वीर पुरुषों के बीच में राज्यश्री निराश्रित पड़ी रही और दोनों में से कोई भी उसे अंगीकार करने के लिए प्रस्तुत नहीं हुआ।

महाराज : वह त्रेता युग की कहानी है। अब न वैसा युग है, न वैसे भाई हैं। इन भाइयों में कोई झगड़ा न हो, इसलिए मैं अभी से अपना राज्य बाँट देना चाहता हूँ। देखो मंत्री, मेरे ज्येष्ठ पुत्र वीरसेन को उत्तर का भू-खंड, उससे छोटे उदयसेन को पूर्व का भू-खंड, उससे छोटे सूर्यसेन को दक्षिण का भू-खंड, और सबसे छोटे चन्द्रसेन को पश्चिम का भू-खंड दिया जाए।

मंत्री : ऐसा ही होगा, महाराज ! आप सदैव से अग्र-सोची रहे हैं किन्तु इतनी शीघ्रता की क्या आवश्यकता है ? अभी आपकी आयु भी अधिक नहीं हुई है। आप स्वस्थ और शक्तिशाली हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज : स्वस्थ और शक्तिशाली होने से क्या, मंत्री ? भाग्य के लेख को कोई मिटा नहीं सकता। हरिण हरी दूब चरता है, न जाने किस दिशा से सिंह उस पर आक्रमण करके उसे समाप्त कर देता है। यह भाग्य ही तो है कि मैं महाराजा हूँ और तुम मंत्री।

मंत्री : यह तो सत्य है, महाराज ! भाग्य के लेख अमिट हैं किन्तु भाग्य के भरोसे बैठे रहना भी तो पुरुषार्थ नहीं है।

महाराज : भाग्य के भरोसे कुछ न करना भी तो भाग्य है। (प्रश्नसूचक मुद्रा) नहीं है ? किन्तु यह तो मन का संतोष है कि मनुष्य अपनी रक्षा के लिए जो कुछ भी कर सकता है, करे। (रुककर) परिस्थिति ऐसी है कि मुझे भी अपनी रक्षा के लिए प्रयत्न करना है।

मंत्री : (आश्चर्य से) आपको ? महाराज ! क्या किसी शत्रु के आक्रमण करने की सूचना है ?

महाराज : वह सूचना तो पहले आपको होनी चाहिए।

मंत्री : किन्तु महाराज ! मुझे तो कोई सूचना नहीं है। और ऐसी सूचना है भी नहीं। फिर आप तो अजातशत्रु हैं, महाराज ! इस भू-तल में आपका कोई भी शत्रु नहीं है।

महाराज : है, मंत्री ! तुम भूल करते हो। और शत्रु ऐसा है कि सबसे बड़ी शक्ति, बड़ी-बड़ी अक्षौहिणी सेनाएँ उसका सामना नहीं कर सकतीं। वह शत्रु जानते हो, कौन है ? यम देवता—मृत्यु।

मंत्री : वाह महाराज ! आप तो राजनीति न कहकर धर्मनीति कहने लगे। महाकाल से कौन बच सकता है ? संसार में आज तक न जाने कितने शक्तिशाली नरेश हो गए, महाकाल ने किसी को नहीं छोड़ा।

महाराज : तो वह महाकाल मेरे सामने प्रत्यक्ष हो रहा है।

मंत्री : महाराज ! मैं आपकी बात समझने में असमर्थ हूँ।

महाराज : आप मंत्री होकर मेरी बात समझने में असमर्थ हैं ! और भृगुनाथ शर्मा समर्थ हैं।

मंत्री : भृगुनाथ शर्मा ? वह ज्योतिषी ?

महाराज : हाँ, ज्योतिषी भृगुनाथ। आज प्रातः मैंने भृगुनाथ ज्योतिषी को बुलाया था। मैंने उनसे अपना भविष्य पूछा। उन्हीं ने यह भयानक बात कही।

मंत्री : वह भयानक बात मुझसे कहने की कृपा करें।

महाराज : सुनना चाहते हो ? सुन सकोगे ? उसने कहा—छः महीने बाद आप संसार में नहीं रहेंगे। आपकी आयु समाप्त है।

मंत्री : महाराज ! ऐसी अशुभ बात अपने मुख से न निकालिए।

महाराज : जो होना है, वह होकर रहेगा। इसमें शुभ और अशुभ की क्या बात है ?

मंत्री : किन्तु महाराज ! उसने ऐसा कैसे कहा ?

महाराज : उसने कहा कि आपके कुंडली चक्र में शनि गोचर में आकर दशम दृष्टि से—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारक दृष्टि से आपके लग्न को देख रहा है। शनि की ही महादशा है, इसलिए आपके जीवन पर संकट है।

मंत्री : क्या जीवन-रक्षा का कोई उपाय नहीं है ?

महाराज : शायद नहीं। इसीलिए मैं अपना उत्तराधिकार बाँट रहा हूँ। उसने दबे कंठ से अवश्य कहा है कि शनि का पूजन कराने में पचास हजार रुपये लगेंगे। क्या तुम अपने महाराज के जीवन-संकट को टालने के लिए पचास हजार देने की मंत्रणा देते हो ?

मंत्री : महाराज ! यदि आपकी जीवन-रक्षा के लिए पचास लाख रुपये देने की बात हो, तो मैं कोई आपत्ति नहीं करूँगा।...पर महाराज ! उसके इस कथन में सन्देह है।

महाराज : क्यों ? पं० भृगुनाथ शर्मा बहुत बड़े ज्योतिषी हैं। उनके कथन में सन्देह कैसा ?

मंत्री : महाराज ! आकाश के नक्षत्रों की गति बड़ी सूक्ष्म होती है। किस ग्रह का प्रभाव किस सीमा तक पड़ेगा और किस दूसरे ग्रह का विरोधी स्वभाव उस प्रभाव को काट सकता है, इसकी गणना बड़े-बड़े मनीषी भी नहीं कर सकते। वे घटना की संभावना मात्र कहते हैं और मृत्यु के सम्बन्ध में केवल मरण-तुल्य कष्ट कहा जाता है, निश्चित रूप से मृत्यु नहीं कही जाती।

महाराज : यह तुम्हारा मत है किन्तु ज्योतिषी भृगुनाथ शर्मा निश्चित रूप से कहते हैं, इसीलिए मैंने आगे की व्यवस्था करने के लिए आपको बुलाया है।

मंत्री : मैं आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करने के लिए प्रस्तुत हूँ किन्तु महाराज ! जब वे मृत्यु की बात निश्चित रूप से कहते हैं तो पचास हजार रुपया क्यों चाहते हैं ? यों आपकी रक्षा के लिए बड़ी से बड़ी राशि व्यय की जा सकती है, पचास हजार तो कुछ भी नहीं है। लेकिन वे पचास हजार ही क्यों चाहते हैं ?

महाराज : ग्रह-शान्ति के लिए। वे कहते हैं कि शनि की शान्ति के लिए अतुल दान करना होगा, नहीं तो आपके जीवन के साथ अन्य परिजनों का जीवन भी नष्ट हो सकता है। इसलिए दान आवश्यक है। एक हजार भिखारियों को काले कम्बल दान में दिए जायेंगे। रोगियों के शरीर में मालिश करने के लिए मनों तिल का तेल क्रय किया जाएगा। पाँच हजार ब्राह्मणों को तिल का दान दिया जाएगा और अपाहिजों को लोहे की बैसाखियाँ दान में दी जाएँगी।

मंत्री : दान करना तो आपका भी स्वभाव है, महाराज ! किन्तु शनि की दशा आपके लिए इस भाँति मारक हो सकती है, इसमें सन्देह है।

महाराज : तुम सन्देह ही करते रहो और मैं संसार से चला जाऊँगा।

मंत्री : प्रभु ऐसा न करें, महाराज ! किन्तु देखा यह जाता है कि ज्योतिषी झूठ ही किसी व्यक्ति का अनिष्ट बतलाकर पूजा के बहाने या ग्रह-शान्ति के बहाने उस व्यक्ति से हजारों रुपया भेंट लेते हैं। अपने ऐशो-आराम का सामान जुटाते हैं और जब अपने-आप व्यक्ति पर से संकट टल जाता है तो उसे अपने द्वारा की गयी ग्रह-शान्ति का प्रभाव बतलाते हैं।

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

महाराज : क्या तुम समझते हो कि पं० भृगुनाथ शर्मा इस श्रेणी के ज्योतिषी हैं ?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिष में उनका अपार अनुभव है। चारों दिशाओं में उनका नाम है।

मंत्री : नहीं, महाराज ! मेरे मन में भी उनके प्रति आदर है पर मैं उनके कथन में सन्देह करता हूँ। मैं भी ज्योतिष जानता हूँ और आपके जन्म-चक्र को देखकर कह सकता हूँ कि आप दीर्घायु योग के धनी हैं। कम से कम शनि के छः महीने के मारक प्रभाव को मैं स्वीकार नहीं कर सकता।

महाराज : किन्तु तुम मंत्री हो, ज्योतिषी नहीं हो।

मंत्री : मैं पेशे से तो ज्योतिषी नहीं हूँ किन्तु ग्रहों की गति समझता हूँ। जो भी हो, आपकी आज्ञा से क्या मैं भृगुनाथ ज्योतिषी को बुला सकता हूँ ?

महाराज : बुलाने से क्या होगा ? भाग्य के अंक तो नहीं बदले जा सकते। किन्तु यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम उन्हें बुला सकते हो।

मंत्री : इस आज्ञा से मैं कृतार्थ हुआ। (पुकार कर) जयन्त !

[जयन्त का प्रवेश।]

जयन्त : महाराज की जय ? (मंत्री से) आज्ञा, श्रीमन् !

मंत्री : जयन्त ! तुम ज्योतिषी भृगुनाथ को जानते हो ?

जयन्त : जानता हूँ, श्रीमन् !

मंत्री : वह कहाँ रहते हैं ?

जयन्त : राजमहल के पास ही उनका निवास है, श्रीमन् ! वह महाराज की सेवा में आते रहते हैं।

मंत्री : तो तुम ज्योतिषी भृगुनाथ शर्मा के पास जाओ। उनसे कहो कि महाराज ने आपको स्मरण किया है। शीघ्र ही इस कक्ष में आने का कष्ट करें।

जयन्त : जो आज्ञा। (प्रस्थान के लिए तैयार)

मंत्री : और सुनो, उनसे कहना कि आपको पचास हजार रुपये देने की व्यवस्था है।

जयन्त : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

मंत्री : महाराज ! ज्योतिषशास्त्र झूठा तो नहीं कहा जा सकता किन्तु यह कैसे माना जा सकता है कि ज्योतिषी भृगुनाथ शर्मा ने जो गणना की है, वह सही है !

महाराज : वह कहते थे कि उन्होंने प्रत्येक ग्रह की गति की गणना करके ही भविष्यवाणी की है।

मंत्री : किन्तु ज्योतिषी की गणना में भूल भी हो सकती है, महाराज !

महाराज : (मुसकराकर) हाँ, कुछ लोग तो विधाता की गणना में भी भूल देखते हैं किन्तु मनुष्य को तो सभी परिस्थितियों में सतर्क रहना चाहिए।

मंत्री : यह तो सदैव ही आपकी विशेषता रही है, महाराज !

महाराज : तो मेरे बाद मेरे राज्य की जो व्यवस्था होगी, उसकी रूपरेखा बनाइए। पहली बात तो यह हो कि अन्तःपुर में इस भविष्यवाणी की कोई सूचना न हो, नहीं तो महारानियों की अश्रुधाराएँ मुझे छः महीने भी जीवित नहीं रहने देंगी। हाँ, उनकी व्यवस्था के लिए तुम्हें गुप्त रूप से योजना बनानी पड़ेगी। मेरे बाद मेरा शीश—

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महल अवन्तिकुमारी के लिए हो, रंगमहल विदर्भकुमारी के लिए और मदनमहल कोसलकुमारी के लिए हो। मेरा व्यक्तिगत कोष विकलांगों, लूले-लंगड़ों के लिए हो। राज्य···

[जयन्त का प्रवेश।]

जयन्त : महाराज की जय हो।

मंत्री : ज्योतिषीजी आए ?

जयन्त : वे द्वार पर हैं, श्रीमन् !

मंत्री : उन्हें भीतर भेजो।

जयन्त : (सिर झुकाकर) जो आज्ञा, श्रीमन् (प्रस्थान)

मंत्री : महाराज ? आपकी जैसी आज्ञा होगी वैसा ही किया जाएगा किन्तु मेरा निवेदन है कि आप अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें। जब तक मैं ज्योतिषीजी से बातें करूँ आप नेत्र बन्द कर पूर्ण विश्राम करें। श्रीमुख से कुछ भी बोलने का कष्ट न करें।

महाराज : कुछ भी नहीं बोलूँगा। विश्राम करूँगा। और अब पूर्ण विश्राम तो करना ही है।

[महाराज सिंहासन पर लेटकर विश्राम करते हैं। ज्योतिषी भृगुनाथ का प्रवेश। वह 'स' का उच्चारण 'श' की भाँति करते हैं।]

मंत्री : आइए, ज्योतिषीजी महाराज !

ज्योतिषी : महाराज की जय हो, नारायण।

मंत्री : 'जय' का क्या अर्थ होगा, ज्योतिषीजी ! जब आपने ऐसी भविष्यवाणी की है ?

ज्योतिषी : मेरी भविष्यवाणी नहीं है, नारायण। यह भविष्यवाणी तो गोचर में उपस्थित हुए ग्रहों की है, नारायण। वे जैशी आज्ञा देते हैं तिशी भांति शे मेरे कंठ शे शरश्वतीजी बोलती हैं।

मंत्री : ये सरस्वती जी कभी-कभी मिथ्या भी बोल सकती हैं ?

ज्योतिषी : देवी होके मिथ्या भाषण कैशे कर सकती हैं, नारायण ! और यदि मिथ्या भाषण भी करें तो भी वह शत्य हो जाता है क्योंकि वह देवी हैं, नारायण।

मंत्री : तो आपकी देवी जी ने महाराज के भविष्य के सम्बन्ध में क्या कहा है ?

ज्योतिषी : शो तो मैं बड़े कष्ट शे महाराज शे निवेदन कर चुका हूँ।

मंत्री : मुझे महाराज से अभी ज्ञात हुआ। तो आपकी गणना कैसी है ?

ज्योतिषी : शिरीमान ! महाराज के गोचर में मेख का शनी शंतरण करने को है, नारायण। और शनी का श्वभाव ऐशा है कि शमर्थ से शमर्थ शम्राटों को श्वर्ग के शिखर से नारायण, पाताल लोक में प्रवेश करा देता है।

मंत्री : अच्छा ?

ज्योतिषी : इश शमय नारायण हमारे शम्राट् पर शनी अपनी शर्वनाशी दृष्टि से अवलोकन कर रहा है, नारायण। शो एक तो शनी की दृष्टि बहुत भयानक है, दूशरे

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केतू उसमें जोग दे रहा है। किन्तु शिरीमान ! महाराज हमारे प्राणों शे भी अधिक प्रिय हैं, इसलिए जदि उनकी इच्छा का कुछ उपाय नारायण किया जा शके तो नारायण उशको करना चाहिए।

मंत्री : तो क्या उपाय करना चाहिए ?

ज्योतिषी : जे करना चाहिए नारायण कि शनी की भरपूर शेवा करना चाहिए। उशकी पूजा करनी चाहिए। जो ग्रह जितना प्रवल होता है उशकी उतनी ही प्रबल पूजा होनी चाहिए। वैशे तो शनी महाराज किसी की नहीं शुनते परन्तु अपने मंत्रों की शक्ति शे उशके क्रूर श्वभाव को कोमल बनाने का नारायण प्रजन्त करूँगा।

मंत्री : तो शनी की पूजा किस तरह होगी ?

ज्योतिषी : शब तरह से नारायण। मंत्र-पाठ शे, दान शे, लोहे-तेल और काले कम्वलों शे। मैं चाहता हूँ कि काले कम्बलों शे मैं शनि महाराज को इस प्रकार ढक दूँ कि उशकी क्रूर दृष्टि कम्वल में ही बन्द रह जाए। शम्राट् पर न पड़े, नारायण।

मंत्री : इन काले कम्वलों के लिए आपको कितनी धनराशि चाहिए ?

ज्योतिषी : वेशी नहीं, नारायण। शिर्फ पचाश हजार मुद्राएँ। और शम्राट् के लिए यह अत्यन्त शाधारण राशि है। शमुद्र से एक अंजुली जल लेने शे शमुद्र का क्या घट शकता है ? शशी की एक किरन लेने शे शशी तिशी भांति निर्मल है।

मंत्री : निर्मल तो रहेगा ही, ज्योतिषीजी ! और सम्राट् की रक्षा के लिए और भी धन व्यय किया जा सकता है। पर आप यह बतलाइए कि गोचर में शनि की स्थिति ठीक से जान ली है आपने ?

ज्योतिषी : शिरीमान ! अवलोकन कीजिए। (उँगलियों पर गिनते हुए) मेख, बृख, मिथुन, कर्क, शिंघ, कन्या, तुला···हाँ, तुला—जे नारायण शनी महाराज का उच्च अश्थान है और (फिर उँगलियों पर गिनते हुए) तुला, वृश्चीक, धन, मकर, कुंभ, मीन और मेख—जे नारायण शनी महाराज का नीच स्थान होता है।

मंत्री : हाँ, इसका मुझे ज्ञान है।

ज्योतिषी : अरे, आप तो शर्वगुण-निधान हैं, नारायण। तो इश शमय मेख का अर्थात् नीच का शनी गोचर में है। वह जन्म लग्न पर आशीन है जिशशे महाराज की आयु पर शंकट है और फिर केतूजी भी शप्तम दृष्टि से महाराज के शीरीचरनों में विहार कर रहा है। बड़ा भयंकर जोग है, नारायण।

मंत्री : और गोचर में गुरु जो अपनी नवम दृष्टि से देखकर महाराज की रक्षा कर रहा है, उसके सम्बन्ध में आपको क्या कहना है ?

ज्योतिषी : शो तो हई है, नारायण। जदि रच्छा होगी तो इशी गुरु महाराज के कारन। पर आप जानते हैं नारायण कि शज्जन की शज्जनता नहीं चलती और दुर्जन अपना काज कर ले जाता है। इशीलिए महाराज की रच्छा के लिए मैं पूजन का विधान नारायण करना चाहता हूँ और हचाश हजार—हं हें हें···

मंत्री : हाँ-हाँ, पचास हजार रुपये आपको दिये जायेंगे किन्तु पहले आप यह बतलाइए कि शनि की कुदृष्टि से महाराज की आयु केवल छः महीने ही शेष है, लेकिन आपकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयु कितनी लम्बी है ? आप अब से कितने वर्षों तक जीवित रहेंगे ?

ज्योतिषी : (खुशामद के स्वर में) हें हें हें—हमारा क्या है नारायण। हम तो शामान्य शज्जन हैं। महाराज के शमान हमारा जीवन थोड़े ही है। हमारा क्या है, जितने वरशों जी जाएँ।

मंत्री : फिर भी ज्योतिषी जी ! आप तो ग्रह नक्षत्रों की सब तरह की गति जानते हैं। आप तो अपनी आयु की अवधि जानते होंगे। आप जब दूसरों की आयु की गणना करते हैं तो अपनी आयु की गणना तो आपने की होगी ?

ज्योतिषी : हाँ-हाँ, शो तो मैंने गणना कर ली है, नारायण।

मंत्री : तो कृपा कर बतलाइए, आपने अपनी आयु की कैसी गणना कर ली है ?

ज्योतिषी : देखिए नारायण। चार ग्रह विशेष रूप शे मारक होते हैं—शनी, मंगल, राहू और केतू। शो जे शब ग्रह मेरी कुंडली में शुभ अश्थान में पड़े हैं। इस शमय मेरे ऊपर विशोत्तरी में शुक्र की महादशा चल रही है। शुक्र की महादशा बीश बर्शों तक रहती है और मेरे ऊपर अट्ठारह बर्श दश माश व्यतीत हो गए हैं, नारायण। अब रह गए एक बर्श दो माश, तो उसके पश्चात् शूर्य की दशा के छः बर्श और चन्द्र की दशा के दश बर्श। मंगल की दशा में शंभवतः मैं इश शंशार से प्रश्थान करूँ या न करूँ। फिर भी इश भाँति शुक्र, शूर्य और चन्द्रमा का योग है नारायण। शुक्र के शेष एक बर्श दो माश, शूर्य के छः बर्श और चन्द्रमा के दश बर्श। कुल मिलाकर शतरह बर्श दो माश की मेरी आयु शेख है। इसके पूर्व मैं मर नहीं शकता। कोई ग्रह मुझे मार नहीं शकता। (गर्व की मुद्रा)

मंत्री : (प्रसन्न होकर) बहुत अच्छा। सत्रह वर्ष दो मास। लगभग साढ़े सत्रह वर्ष।

ज्योतिषी : हाँ-हाँ, इशशे भी अधिक जी शकता हूँ।

मंत्री : बहुत अच्छा। बहुत अच्छा। आपके दीर्घ जीवन पर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। अब आप बाहर स्थान ग्रहण कीजिए। आपके लिए पचास हजार रुपयों का प्रबन्ध करता हूँ। महाराज ने भी मुझे आज्ञा दे दी है।

ज्योतिषी : (प्रसन्न होकर हाथ उठाते हुए) शदा शुखी रहिए, शदा शुखी रहिए। किन्तु महाराज के प्राणों की रच्छा होनी चाहिए, इशीलिए रुपयों का प्रबन्ध शीघ्र करा दीझिए, जिशशे नारायण मैं ग्रह-शान्ति की पूजा का प्रजत्न शीघ्रातिशीघ्र शम्पादन करूँ। तो···तो मैं बाहर आशन ग्रहण करूँ ?

मन्त्री : हाँ, आप शान्ति से बाहर आसन ग्रहण कीजिए।

ज्योतिषी : धन्न ! धन्न ! नारायण। महाराज की जय हो ! (देखकर) महाराज विशराम कर रहे हैं ? कैशे शुन्दर हैं महाराज ! वाह-वाह ! प्रभु ! (हाथ उठाकर) प्रभु ! रच्छा करो, रच्छा करो। महाराज की ग्रहों से रच्छा करो ?

मन्त्री : ग्रह रक्षा अवश्य करेंगे। महाराज को विश्राम करने दीजिए। आप बाहर शान्ति के साथ आसन ग्रहण करें।

ज्योतिषी : अच्छी बात है, नारायण। श्वश्तिरश्तु ! श्वश्तिरश्तु ! (प्रस्थान)

मन्त्री : (महाराज से) महाराज ! स्वस्थ होइए !

CC-0. Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज : (उठकर) हाँ, मन्त्री ! मैं स्वस्थ हूँ।

मन्त्री : महाराज ! आपने मेरी और ज्योतिषी की पूरी बातचीत शान्ति से सुनी। बीच में आपने कोई आज्ञा नहीं दी, इसलिए कृतज्ञ हूँ। मैं सोचता हूँ कि जीवन और मृत्यु संसार में फूल और काँटों की तरह निकला करते हैं किन्तु फूल के साथ कब काँटा निकलेगा यह किसी गणित के द्वारा निश्चित नहीं किया जा सकता। यह तो प्रकृति का एक नियम है और उसे हँसते हुए स्वीकार करना चाहिए। मेरा निवेदन है कि इस समय मैं जो भी करूँ उसमें आपकी अनुमति हो।

महाराज : (हाथ उठाकर) अनुमति है, मन्त्री ! मैं जानता हूँ कि तुम जो भी करोगे वह अनुचित नहीं होगा। और अब मेरे बाद तो सारी व्यवस्था तुम्हें ही करनी है।

मन्त्री : इस विश्वास के लिए मैं कृतार्थ हुआ। (पुकारकर) जयन्त !

[जयन्त का प्रवेश।]

जयन्त : आज्ञा, श्रीमान् !

मन्त्री : ज्योतिषी जी बाहर बैठे हुए हैं ?

जयन्त : हाँ, श्रीमन् ! जो आसन बाहर रखे हुए हैं उन्हीं पर वे बड़ी प्रसन्न मुद्रा में बैठे हैं।

मन्त्री : उनके लिए पचास हजार मुद्राओं का प्रबन्ध करना है। उन्हें वहाँ बैठे रहने दो। उन्हीं के सामने उनके ज्योतिष का निर्णय होगा। (एक ओर जाकर कागज पर कुछ लिखते हैं) जयन्त ! यह पत्र लेकर महाकाल के हाथ में देना और कहना वह शीघ्र ही इस पत्र के अनुसार कार्य करे।

जयन्त : (पत्र लेकर) जो आज्ञा। (प्रस्थान)

महाराज : मन्त्री ! तुमने यह पत्र महाकाल के लिए लिखा है। कोषाध्यक्ष को लिखना चाहिए। महाकाल के यहाँ आने की क्या आवश्यकता है ? वह तो बधिक है ?

मन्त्री : हाँ, महाराज ! बधिक को ही आना चाहिए।

महाराज : यहाँ किसलिए ? तुम्हें तो पचास हजार मुद्राएँ देने के लिए कोषाध्यक्ष को बुलाना चाहिए। इस समय कोषाध्यक्ष की आवश्यकता है।

मन्त्री : महाराज ! यदि उसको बुलाने की आवश्यकता होगी तो उसे ही बुलाया जाएगा।

महाराज : तो क्या बधिक का आना भी आवश्यक है ?

मन्त्री : हाँ, महाराज ! ज्योतिषी का ज्योतिष उसी के समक्ष सत्य होना चाहिए।

महाराज : सत्य तो होगा ही। किन्तु मैं तुम्हारी बुद्धि की प्रशंसा करता हूँ कि तुम मेरे कितने हितैषी हो। मुझे केवल छः मास ही जीवित रहना है, और इस अवधि के एक-एक दिन में मुझे मृत्यु का भय क्षण-क्षण विचलित करता रहेगा। यदि बधिक आकर इसी समय मेरे जीवन का अन्त कर दे तो छः मास के दुःखी जीवन के कष्ट से मैं मुक्ति पा जाऊँगा। तुम कितने बुद्धिमान हो, मन्त्री !

मन्त्री : यह आपकी कृपा है, महाराज ! जो ऐसा कहते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज : यद्यपि यह इतिहास में पहली घटना होगी कि राजा की सहमति से मन्त्री ने अपने राजा का सिर कटवा दिया जिससे उसे भविष्य का दुःख न हो। किन्तु क्या किया जाए ! स्थिति ही ऐसी है ! जो बधिक राज्य के अपराधियों का सिर काटता है वह अपने ही राजा का सिर काटे, यह भी एक स्मरणीय घटना होगी।

मन्त्री : स्मरणीय घटना अवश्य होगी किन्तु महाराज ! आपने अभी तक जिस साहस और उत्साह से शासन किया है वह भी तो इतिहास की एक स्मरणीय घटना है। आपका प्रत्येक कार्य प्रजाजनों के लिए एक आदर्श है।

महाराज : जितने कार्य मैंने सोचे थे वे अभी पूर्ण कहाँ हुए हैं ! कितनी योजनाएँ मैंने बनायी हैं। उनसे प्रजा वंचित रह जाएगी। मेरे राज्य से गरीबी सदैव के लिए हटा दी जाए। राज्य-भंडार से प्रजाजनों को सस्ता अन्न मिले। मिट्टी के तेल के लिए कोई कठिनाई न हो। राज्य में हरित क्रान्ति हो। नहरों की योजना से दूर-दूर के खेतों की भी सिंचाई हो। गाँव-गाँव विद्युत के प्रकाश से जगमगा उठें। उर्वरक की सुविधा हो, चीनी-चावल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों, ये सब योजनाएँ अधूरी रहेंगी।

मन्त्री : ये सब योजनाएँ पूरी होंगी किन्तु इन योजनाओं के पूरे न होने पर भी प्रजा आपका जय-जयकार मना रही है।

महाराज : यह प्रजा की उदारता है। अन्तःपुर के लिए भी मेरी योजनाएँ थीं। रानी कोसलकुमारी से कहा था कि मैं श्रावस्ती के खँडहरों का पुनरुद्धार करूँगा, रानी अवन्तिकुमारी के साथ श्री महाकाल के दर्शन करने तथा उनके मन्दिर को सुसज्जित करने की योजना थी। रानी विदर्भकुमारी से कहा था कि तुम्हारे साथ गोदावरी में स्नान करूँगा और उस पर एक बाँध बनाऊँगा। मेरी रानियाँ ! वे जिस भाँति वैभव के सुखों में मेरे साथ रही हैं क्या उसी भाँति मेरे मरने के बाद रह सकेंगी ?

मन्त्री : महाराज ! आपने अपने आश्रितों को जो वैभव प्रदान किया है, प्रभु की कृपा से वह उनके साथ सदैव रहेगा।

[नेपथ्य में भारी चीजों के गिरने का शब्द होता है। साथ ही एक तीखी कराह भी सुन पड़ती है।]

महाराज : (चौंककर) यह कैसा शब्द है, मन्त्री ? यह किसकी कराहभरी चीख है ?

[जयन्त का प्रवेश।]

जयन्त : महाराज की जय हो ! श्रीमान् की आज्ञानुसार बधिक महाकाल ने ज्योतिषी का सिर धड़ से जुदा कर दिया।

महाराज : (कुतूहल-भरे दुःख से) ज्योतिषी का सिर धड़ से जुदा कर दिया गया ? क्यों ? कैसे ? किस अपराध पर ?

जयन्त : श्रीमान् की ऐसी ही आज्ञा थी।

मन्त्री : वह आज्ञा मैंने महाराज की ओर से लिखकर दी थी। (जयन्त से) जयन्त ! तुम

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर जाकर ज्योतिषी के शरीर को ले जाने का प्रवन्ध करो।

जयन्त : (सिर झुकाकर) जो आज्ञा। (प्रस्थान)

महाराज : मृतक ज्योतिषी के शरीर का प्रवन्ध ? यह सब कैसे और क्यों ?

मन्त्री : महाराज ! क्षमा करें। मैंने आपसे सभी उचित कार्य करने की आज्ञा ले ली थी।

महाराज : अवश्य ले ली थी किन्तु यह सब किसलिए ?

मन्त्री : ज्योतिष की गणना की परीक्षा करने के लिए।

महाराज : परीक्षा करने के लिए ? वह बधिक तो इसलिए बुलाया गया था कि वह इसी समय मेरा सिर काट दे जिससे मुझे छः महीने के पहले ही आनेवाली मृत्यु के दुःख से छुटकारा मिल जाए !

मन्त्री : यह तो महाराज ! मैंने कभी नहीं कहा कि वह बधिक महाराज का मस्तक काटने के लिए बुलाया गया है। हाँ, वह आपकी चिन्ताओं को अवश्य काट देगा।

महाराज : मेरी चिन्ताओं को ? कैसे ? मन्त्री ! मेरा सिर घूम रहा है। कोई भी बात मेरी समझ में नहीं आ रही है।

मन्त्री : महाराज ! शान्त हों। देखिए, ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी कि आप केवल छः मास जीवित रहेंगे और अपने सम्वन्ध में कहा था कि उसकी आयु अभी साढ़े सत्रह वर्ष और रहेगी। मैं देखना चाहता था कि वह सत्रह वर्ष जीवित रह सकता है या नहीं।

महाराज : हाँ-हाँ, उसने ऐसा ही कहा था।

मन्त्री : यह भी कहा था कि साढ़े सत्रह वर्ष के पूर्व वह मर ही नहीं सकता। कोई भी ग्रह उसे मार नहीं सकता। किन्तु साढ़े सत्रह वर्ष क्या, वह साढ़े सत्रह घंटे भी जीवित नहीं रह सका !

महाराज : आपके आदेश के कारण···

मन्त्री : मेरे आदेश के कारण नहीं, महाराज ! उसके ग्रह-नक्षत्रों के कारण। अब उसकी गणना का क्या अर्थ है ? यदि उसकी गणना से उसके साढ़े सत्रह वर्ष मिथ्या हैं तो आपके लिए जो उसने केवल छः महीनें की आयु की बात कही थी, वह भी मिथ्या है। गणना तो एक ही व्यक्ति के द्वारा की गयी थी।

महाराज : (प्रसन्न होकर) वाह मन्त्री ! तुम्हारी बुद्धि ज्योतिष की गणना से अधिक श्रेष्ठ है। तब तो मैं छः महीने बाद नहीं मरूँगा ?

मन्त्री : बिलकुल नहीं, महाराज ! मैंने पहले ही कहा था कि ज्योतिष-शास्त्र भले ही सत्य हो, किन्तु ज्योतिष-शास्त्र के अर्थ-लोभी पण्डित अपने स्वार्थ के लिए गणना गलत करते हैं और यह आपके सामने प्रत्यक्ष हो गया।

महाराज : (गद्‌गद होकर) धन्य हो, मन्त्री ! तुमने मुझे कष्टों से उबार लिया। यह लो अपना पुरस्कार ! (गले से मोतियों की माला उतारते हैं।)

मन्त्री : नहीं, महाराज ! यह माला आपके कण्ठ में ही अधिक शोभा देती है। आप चिन्ता से मुक्त हुए, यही मेरा पुरस्कार है। आप तो अभी अनेक वर्षों तक जीवित रहेंगे किन्तु छः महीने में होने वाली मृत्यु की चिन्ता आपको और सारे राज्य को

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तव्यस्त बना देती। याप स्वस्थ और सुखी रहें, इसी में राज्य का कल्याण है।

महाराज : महामन्त्री ! तुमने मेरे जीवन की रक्षा कर ली। निस्सन्देह ये ज्योतिषी जीवित को भी मृतक बना सकते हैं किन्तु उस बेचारे ज्योतिषी की हत्या हो गयी।

मन्त्री : अपने महाराज के प्राण बचाने के लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ। और जो ज्योतिषी सत्य को असत्य और असत्य को सत्य बतलाते हैं, उनकी हत्या हो ही जानी चाहिए। आपके अतिरिक्त ये ज्योतिषी न जाने कितने व्यक्तियों का जीवन संकट में डाल सकते हैं। उनका संसार से चले जाना ही अच्छा है।

महाराज : ठीक है, तुम्हारी बुद्धि की थाह नहीं है, मन्त्री !

मन्त्री : महाराज ! सोचिए, आपके लिए छः महीने और अपने लिए साढ़े सत्रह वर्ष ! आपके छः महीने और उसके साढ़े सत्रहं वर्ष—दोनों ही असत्य !

महाराज : (हाथ उठाकर) धन्य हो, मन्त्री !

मन्त्री : (दोनों हाथ जोड़कर) महाराज की जय ! जय ! जय !

[परदा गिरता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्धकार

पात्र-परिचय

प्रजापति : सृष्टि के रचयिता
विद्याधर : प्रजापति का सहायक
मेनका : स्वर्ग की अप्सरा
माया : प्रजापति की शक्ति
अश्विनीकुमार : उर्वशी के प्रेमी और देवताओं के वैद्य
कश्यप : सप्तर्षियों के नेता
किन्नरियाँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[स्वर्ग का एक कक्ष। दिव्य प्रकाश। समस्त वातावरण जैसे चन्द्रकिरणों से निर्मित है। चारों ओर एक कोमल उज्ज्वलता छाई हुई है। कक्ष का रूप इन्द्रधनुष के छोटे-छोटे टुकड़ों से बना हुआ है। सामने दो वातायन मयूर के फैले हुए पुच्छाकार के ढंग के हैं। उनसे आकाश-गंगा की धवल राशि नेत्र-कोरकों की भाँति वक्र दीख रही है। स्फटिक-मणि के बने हुए दो-दो हंस वातायनों के दोनों ओर सजे हुए हैं, जिनकी अरुण चंचु में मानसरोवर से लाए हुए अरुण कमल हैं—उन पर ओस की भाँति मोतियों के दाने हैं। देव-शिल्पी विश्वकर्मा ने इस कक्ष के बीचोबीच एक सिंहासन बनाया है, जिसमें नीलम का फर्श और मूँगे का आसन है। वह सिंहासन आरती-पात्र की भाँति बना हुआ है। इन्द्रनीलमणि का गुंबज और हीरकों के स्तम्भ। सिंहासन भव्य है जैसे सौंदर्य और अनुराग घनीभूत हो गया है। समीप ही दो-तीन छोटी पीठिकाएँ हैं।

एक वातायन खुला हुआ, जिससे वायु-गति दीख रही है। दूसरे वातायन पर किरणों का धवल वस्त्र है, जो भैरव राग की भाँति मन्दगति से टहल रहा है। सम्भवतः इन्द्र की पुरी देवधानी में विवाह करती हुई देवांगनाओं के केशों से गिरे हुए तरुण कमलों की गन्ध से उठी हुई समीरण इस ओर प्रवाहित होकर वातायन-वस्त्र को गतिशील कर रही है। कक्ष के कोने से अगरु की गंधवाला श्वेत धूम्र धीरे-धीरे उठ रहा है। उसके साथ कक्ष में सूक्ष्म उल्लास फैल रहा है! तुलसी की मंजरी के साथ मन्दार, उत्पल, कुन्द और पारिजात की पुष्प-मालाएँ स्थान-स्थान पर सजी हुई हैं। उनके साथ ही मोतियों की मालाएँ हैं, जिनसे कांति-जल टपक रहा है। कोने में ध्वजा और पताका।

सिंहासन पर प्रथम प्रजापति मरीचि बैठे हुए हैं। तेज से परिपूर्ण, अत्यन्त सूक्ष्म और श्वेत परिधान हैं, जैसे किसी शैल-शृंग को स्थान-स्थान पर हिम-राशि ने आच्छादित कर लिया है। वे पुण्य की गरिमा में आसीन हैं। माथे पर पीत मलय की चित्ररेखा। कानों में कुण्डल। विशाल नेत्र, जिनमें तपस्या की स्वर्ग-श्री झाँक रही है। एक हाथ में नील-कमल, दूसरे हाथ में अधिकार का संकेत। कमर में माला, पाठ-वस्त्र गले में तुलसी और रुद्राक्ष की माला, जिसमें नीचे हीरक-पदिक है। यही हीरक-पदिक उनके प्रजापति होने का प्रमाण है। पैरों में पादुकाएँ।

प्रजापति के केश खुले हुए हैं। केशों के ऊपर धवल कुन्द की माला है, जिससे उनके केश बिखरते हुए भी एक विशेष सौंदर्य में कसे हुए हैं। वे एक क्षण बाद आँखें बन्द कर ध्यानावस्थित होते हैं। दोनों हाथों की अंजलि में नील-कमल आगे

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सरक जाता है, जैसे ईश्वर की वन्दना में नीलाकाश कमल का रूप लेकर आगे बढ़ा हो। कुछ देर बाद उनके ओंठों से ॐ की ध्वनि निकलती है, जैसे शून्य से वायु की सृष्टि हुई है। ॐ की ध्वनि के बाद एक क्षण रुककर प्रभु के स्तवन में धीरे-धीरे एक श्लोक कहते हैं :]

अन्तः प्रविश्य भूतानि या विमर्त्यात्म केतुभिः।
अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो युद्धशे स्फुटम् ॥

प्रजापति : (आँखें खोलते हुए) ध्रुवलोक! इतने लोकों का निर्माण कर चुकने के अनन्तर ध्रुवलोक! सर्वश्रेष्ठ, सर्वोपरि! जैसे मेरी निर्माण-कला की विजयश्री अन्तरिक्ष में मुस्करा उठे। लोकों के मस्तक पर रखा हुआ यह मुकुट ध्रुवलोक! (सिंहासन से उतरकर वातायन से झाँकते हुए) कितना सुन्दर! कितना गौरवपूर्ण! जैसे विश्वात्मा की पूजा में मैंने एक फूल शून्य में उछाल दिया हो और वहीं स्थिर रह गया हो। ऐसा शोभित हो रहा है मेरा ध्रुवलोक! महात्मा ध्रुव, तुम मेरी कल्पना में साकार होकर विश्व-शृंगार हो गए! अमरता के स्तम्भ! मेरे मन्वन्तर के सबसे यशस्वी निर्माण, सबसे यशस्वी·· एक लोक के अधिपति। ध्रुव···लोक (वातायन से फिर झाँकते हैं) किन्तु सूर्य और नक्षत्र आदि ज्योतिर्गणों की किरणें केवल ध्रुवलोक तक पहुँचती हैं। इसके आगे नहीं क्यों? क्यों नहीं पहुँचती? (सोचते हैं) इसलिए कि लोक और आलोक-प्रदेश के बीच एक विशाल पर्वत है, लोकालोक! तीनों लोकों की सीमा उसी पर्वत से बाँधी गई है, लोकालोक पर्वत के ऊँचे उठने से ही भूभाग के दूसरी ओर अन्धकार है! अन्धकार!! भयानक पाप, भीषण दुराचार (पुकार कर) विद्याधर!

[विद्याधर का प्रवेश। लम्बे गौरवपूर्ण केश-कलाप, अंगराग और पीत पट-वस्त्र। केश कुंचित और पुष्पों से सुसज्जित। आकर प्रणाम करता है।]

प्रजापति : विद्याधर, एक भूभाग में प्रकाश है, दूसरे में अन्धकार।

विद्याधर : किस प्रकार, प्रभु!

प्रजापति : लोकालोक पर्वत के अधिक ऊँचे होने के कारण सूर्य आदि नक्षत्रों की किरणें केवल ध्रुवलोक तक ही पहुँचती हैं! शेष में अन्धकार का ही शासन है। केवल अन्धकार, महान्धकार!

विद्याधर : सत्य है प्रभु!

प्रजापति : और विद्याधर, जानते हो, यह अन्धकार क्या है?

विद्याधर : क्या है प्रजापति?

प्रजापति : (हँसकर) कोई नहीं जानता। केवल मैं जानता हूँ और मेरे आठ भाई प्रजापति! इनके अतिरिक्त यह रहस्य कोई नहीं जानता।

विद्याधर : क्या रहस्य है प्रभु?

प्रजापति : तुम जानना चाहते हो, विद्याधर! गायकों के लिए रहस्य की बातें नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होतीं। वे रहस्य का गीत बना कर गा देंगे !

विद्याधर : किन्तु प्रभु, अब मैं गायक विद्याधर नहीं, अब तो विश्वात्मा की आज्ञा से प्रभु की सेवा में नियोजित हो गया हूँ। आपकी सेवा में।

प्रजापति : (नीलकमल को सामने रखते हुए) यह नील कमल विश्वात्मा को समर्पित होकर भी नील कमल रहेगा। उसी तरह तुम भी अपना स्वभाव तो नहीं छोड़ सकते। अवसर आने पर विद्याधर केवल गायक विद्याधर हो सकता है।

विद्याधर : प्रभु ऐसा नहीं हो सकेगा।

प्रजापति : विद्याधर, जल को यदि मैं हिम बना दूं तो क्या वह जल नहीं रहेगा। थोड़ी आँच पाते ही वही हिम फिर जल बनकर बहने लगेगा। तुम भी बहने लगोगे, विद्याधर ! तुम इन्द्र के सेवक हो। मायावी का सेवक क्या मायावी नहीं होगा ?

विद्याधर : प्रभु मैं अपना स्वभाव भूल गया हूँ। कहाँ मैं प्रेम की उपासना में लीन विद्याधर सोमरस के पान में अपने जीवन की तरलता समझता था; आज प्रभु के साधना-कक्ष में आकर तपस्वी हो गया हूँ। गायन के स्थान पर मंत्रोच्चारण करता हूँ। सोम-रस के स्थान पर प्रभु की मुख-श्री की शोभा का पान करता हूँ।

प्रजापति : उन्नति करो विद्याधर, यही विश्वात्मा की इच्छा है।

विद्याधर : प्रभु, आपके पथ-प्रदर्शन में उन्नति ही करूंगा। गायक अब साधक बन गया है, प्रेम अब उपासना बन गया है। मैं मधुरालाप के स्थान पर रहस्य सुनने का अधिकारी बन गया हूँ। प्रभु की सेवा में रहते हुए निर्माण-कार्य में सहायता पहुँचाते हुए मैं तो आपके सभी परामर्शों का पात्र बन गया हूँ, प्रभु !

प्रजापति : ठीक है विद्याधर, तुम प्रियंवद हो, कामरूप हो, इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हो। किन्तु अन्धकार का रहस्य बहुत बड़ी मर्यादा का रहस्य है !

विद्याधर : प्रभु, आप मेरी उत्सुकता बढ़ा रहे हैं। मैं सुनने के योग्य हूँ।

प्रजापति : अच्छा मैं तुम्हें सुनाऊँगा। तुम विदुष् हो—यह ज्ञान भी प्राप्त करो। किन्तु वह अत्यन्त विश्वस्त और गोपनीय है।

विद्याधर : प्रभु मेरे समीप आकर वह और भी गोप्य और विश्वस्त बन जाएगा।

प्रजापति : अच्छा, तब तुम्हें सुनाऊँगा। देखो, यहाँ कोई है तो नहीं ?

[विद्याधर द्वार तक झाँक कर लौटता है।]

विद्याधर : कोई नहीं, प्रभु !

प्रजापति : तब सुनो। वायु को प्रथम बार इन शब्दों का भार वहन करने का अवसर आ रहा है। यह रहस्य एकाकीपन से निकल कर आज वायुमंडल का स्पर्श करेगा।

विद्याधर : सत्य है, प्रभु !

प्रजापति : (कुछ निकट आकर) सुनो, मेरे पिता विश्वगुरु ब्रह्मा हैं। हम नव पुत्रों के अतिरिक्त उनके एक कन्या भी हुई। अत्यन्त सुन्दर कन्या ! उसका नाम जानते हो ? स···र···स्व···ती···। मेरी बहन सरस्वती के शरीर से रूप चन्द्रकला की भाँति आकाश के रोम-रोम में स्वर्ण की सृष्टि करता था। महात्मा ब्रह्मा सरस्वती

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पिता होकर भी उसके रूप की—अपनी कन्या के रूप की अवहेलना नहीं कर सके। वे उसे काम-भाव से चाहने लगे, विद्याधर! ओह···हृदय जल रहा है—विश्व में आग लग जाएगी! (नील कमल हाथ से फेंक देते हैं।)

विद्याधर : प्रभु, शान्त हो। अशान्ति के व्यूह से स्वतन्त्र हों, प्रभु!

प्रजापति : विद्याधर! पिता को इस अधर्म-पथ पर जाते देखकर हम लोगों ने प्रार्थना की—'विश्वगुरु यह कलंक-पथ है। उस पर अपने पवित्र हृदय को गतिशील कर आप भविष्य की सृष्टि को दूषित न कीजिए। हंस के वाहन पर आपका कलुष शरीर पुण्य पर पाप की तरह ज्ञात होगा।' विद्याधर, पिता जी लज्जित हुए और उन्होंने उस कामुक शरीर का परित्याग किया। वही परित्याग किया हुआ कलुष-शरीर अन्धकार है विद्याधर, वही कलंक-शरीर अन्धकार है। यह मेरे पिता के दुराचरण की कथा है। पुत्र मरीचि को पिता के कलंक को मिटाना है। मैं इस अन्धकार का नाश करना चाहता हूँ।

विद्याधर : आप धन्य हैं प्रभु! पिता के महान् पुत्र। किन्तु आप अन्धकार का नाश किस प्रकार कर सकेंगे?

प्रजापति : (कुछ रुक कर) सोच रहा हूँ किस प्रकार करूँ! स्वर्ग और पृथ्वी का मध्य भाग ब्रह्मांड कहलाता है। तुम भी वहाँ रहते हो और वहीं सूर्य की स्थिति भी है। तुम जानते होगे कि सूर्य इसीलिए तो मार्तण्ड कहलाता है कि वह अन्धकारमय मृत ब्रह्माण्ड में वैराट रूप से प्रविष्ट होता है और हिरण्यमय अण्ड से प्रकट होने के कारण उसका नाम हिरण्यगर्भ भी है। मैं चाहता हूँ कि सम्पूर्ण सृष्टि इस प्रकार पुनर्निमित करूँ कि समस्त अस्तित्व एक हिरण्यमय अंड हो और उसमें मार्तण्ड की स्थिति गतिशील न होकर स्थिर रहे; जिससे अन्धकार का अस्तित्व ही न हो।

विद्याधर : किन्तु प्रभु आप प्रजापति होकर भी मार्तण्ड को नहीं रोक सकते। सृष्टि का नियम ही गतिशीलता है। आप में भी गतिशीलता है। आप स्वयं गतिशील होकर सूर्य की गति कैसे रोक सकते हैं?

प्रजापति : मैं यदि एक गतिशील धूम्रकेतु होकर सूर्य से टकरा जाऊँ तो?

विद्याधर : प्रभु, सूर्य नष्ट हो जाएगा और अन्धकार ही अन्धकार चारों ओर व्याप्त हो जाएगा। उससे तो आपका उद्देश्य अपूर्ण ही न रहेगा वरन् उसका बीज ही नष्ट हो जाएगा।

प्रजापति : (हँसकर) तुम अन्ततः एक गायक हो विद्याधर। तुम्हारा संगीत नक्षत्रों में भले ही भर गया हो किन्तु नक्षत्रों की बात तुम्हारे संगीत में प्रवेश नहीं कर सकी। अरे, जो धूम्रकेतु वेग से गतिशील होकर सूर्य के मार्ग का अवरोध करेगा वह सूर्य से सहस्र गुना प्रकाशमान होगा और सूर्य गति में रुक न सका तो वह स्वयं शून्य में सहस्रों सूर्य बनकर कण-कण को प्रकाशित करेगा और तब वह धूम्रकेतु अपने ही केन्द्र पर घूमता हुआ स्थिर होगा।

विद्याधर : किन्तु प्रभु, स्थिरता में अन्त है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजापति : मुझे चिन्ता नहीं है। विद्याधर, यदि मैं स्थिर रह कर नष्ट हो जाऊँ तो मुझे भय नहीं है। पिता की कलंक-कालिमा तो दूर कर सकूँगा।

विद्याधर : किन्तु प्रभु, अपने पिता विश्वगुरु की कलंक-कालिमा रहने दीजिए न। वह आगामी सृष्टि के लिए व्यापक प्रमाण बनकर संसार के दुराचरण को रोकेगी।

प्रजापति : (सोचकर) तुम ठीक कहते हो विद्याधर, किन्तु इस दुराचरण को रोकने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होगी। मुझे बुद्धि का केन्द्र भी उत्पन्न करना होगा। (फिर कुछ सोचते हुए वातायन की ओर बढ़ते हैं।)

विद्याधर : आप क्या सोच रहे हैं?

प्रजापति : राजप्रधान प्रकृति को गतिशील कर उससे महत्तत्व उत्पन्न किया गया और महत्तत्व से अहंकार। वही अहंकार तत्वों में व्याप्त होकर तेजोमय ब्रह्मांड-कोष की रचना में समर्थ हो सका। ब्रह्मांड-कोष में चैतन्य की नाभि से कमल और उससे ब्रह्मा और देवी-देवताओं की सृष्टि···

विद्याधर : यह सत्य है प्रभु, किन्तु इससे क्या निष्कर्ष निकलेंगे?

प्रजापति : विद्याधर, मैं एक नवीन चक्र की सृष्टि करना चाहता हूँ।

विद्याधर : वह क्या?

प्रजापति : पुरुष और स्त्री का निर्माण।

विद्याधर : (आश्चर्य से) ओह, स्वर्ग की सृष्टि को भूमंडल में भी ले जाना चाहते हैं? यह देवी-देवताओं की सृष्टि आप भूमंडल में स्त्री-पुरुष के रूप में करेंगे?

प्रजापति : (दृढ़ता से) हाँ, करूँगा। अपने पिता के इस पाप-मोक्ष के लिए सब कुछ करूँगा।

विद्याधर : (कौतूहल से) पाप-मोक्ष कैसे होगा प्रभु?

प्रजापति : अन्धकार के नाश करने के लिए बुद्धि का केन्द्र चाहिए न? मैं बुद्धि का अक्षय केन्द्र पुरुष और स्त्री में स्थापित करूँगा। पाप की जड़ पुण्य से काटूँगा। विष का विनाश अमृत से करूँगा। दुराचार को सदाचार से नष्ट करूँगा।

विद्याधर : किन्तु स्वर्ग की सृष्टि भूमंडल में ले जाना अधर्म न होगा?

प्रजापति : विद्याधर, यदि यह अधर्म होगा तो मैं उसके लिए धर्म के नये सिद्धान्त बनाऊँगा। धर्म की परिभाषा तक में परिवर्तन करूँगा।

विद्याधर : प्रभु, कोई अनर्थ न होगा?

प्रजापति : मैं इसके लिए विश्वगुरु की सहायता माँगूंगा। उन्होंने पापमय शरीर त्याग कर पुण्य देह धारण की है। मैं उनसे उस पुण्य देह का त्याग करने की प्रार्थना करूँगा।

विद्याधर : उससे क्या होगा?

प्रजापति : उस देह के एक भाग से होगा पुरुष और दूसरे भाग से होगी स्त्री। मैं जीव को पुरुष और स्त्री शरीर धारण करने की आज्ञा दूंगा।

विद्याधर : क्या विश्वगुरु इसके लिए तैयार होंगे?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

प्रजापति : यदि वे कलंक से बचने के लिए एक शरीर छोड़ सकते हैं तो क्या अपने पुत्र

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की इस सदिच्छा के लिए दूसरा शरीर नहीं छोड़ सकते। वे फिर नया शरीर धारण करेंगे। तुम स्वयं कहते हो कि काल और अवस्था दोनों गतिशील हैं।

विद्याधर : सत्य है। यही कीजिए, प्रभु!

प्रजापति : मैं अभी विश्वगुरु से मिलने जा रहा हूँ। उनके पाप को अपनी सदिच्छा के पुण्य से दूर करूँगा। उनका जो दुराचार अहंकार बन कर फैला हुआ है उसे बुद्धि की किरण से नष्ट करूँगा। पुरुष और स्त्री की सृष्टि। मन्वन्तर समाप्त हो रहा है। जाते-जाते पिता के ऋण से उऋण होना चाहता हूँ विद्याधर! इससे पहले कि मैं प्रजापति का आसन छोड़ूँ, विश्वगुरु को दिखला दूँ कि मैं कितने कौशल से उनके उपचार को पुरुष-स्त्री के बुद्धि-केन्द्र में विनष्ट कर सकता हूँ।

विद्याधर : ठीक है, प्रभु!

प्रजापति : पुरुष और स्त्री। दोनों माया से निर्मित होंगे, किन्तु उनमें जो मर्यादा की रेखा होगी उससे वे व्यवस्थित होंगे। आग और सर्दी एक साथ प्रवाहित होंगे! किन्तु उनमें एक विभाजक रेखा होगी। इन्द्रधनुष के रंग साथ रहते हुए भी अलग रहते हैं। प्रत्येक रंग की एक-एक विभाजक रेखा है। इसी प्रकार पुरुष और स्त्री के सम्बन्धों की एक-एक विभाजक रेखा होगी। मैं उस बुद्धि की विभाजक रेखा के एक रंग को दूसरे से न मिलने दूंगा। पिता पुरुष, कन्या स्त्री को देखकर भी न देखे! छूकर भी न छुए। प्रेम करता हुआ भी प्रेम न करे!

विद्याधर : प्रभु, आप वहुत बड़ा कार्य करेंगे।

प्रजापति : माया, मोह और भ्रम से उत्पन्न मेरे ये खिलौने देवी-देवताओं की अपेक्षा अच्छा व्यवहार करें विद्याधर, मैं यह चाहता हूँ। जो कार्य देवताओं से नहीं हो सका, वह पुरुष और स्त्री के रूप कर सकें। मेरे ये क्षणिक रंग शाश्वत रंगों से अच्छे हो सकें!

विद्याधर : कल्पना अच्छी है, प्रभु!

प्रजापति : उस कल्पना को सत्य से आलोकित करना चाहता हूँ। अच्छा, अब मैं विश्वगुरु के समीप जाऊँगा। तुम तब तक यहीं रहो। मेनका इस समय अपनी पूजा समाप्त कर मुझसे आशीर्वाद लेने आई होगी। वह बाहर ही होगी। मेरे आने तक तुम उसे नृत्य करने की आज्ञा दो, जिससे यह समस्त वातावरण पुरुष और स्त्री का निर्माण करने की राग-रंजित भावनाओं से परिपूर्ण हो जावे।

विद्याधर : जो आज्ञा।

प्रजापति : अच्छा, मैं जाता हूँ। इस समय मैं मेनका से नहीं मिलूँगा। विलंब होगा। मैं इस दक्षिण द्वार से जाऊँगा। शुभमस्तु!

विद्याधर : प्रभु, आपका मार्ग प्रशस्त हो, आपका निर्माण-कार्य मंगलमय हो! प्रणाम!

[प्रजापति प्रणाम स्वीकार कर शीघ्रता से दक्षिण द्वार से जाते हैं।]

विद्याधर : (गहरी साँस लेकर) प्रजापति के मन्वन्तर के समाप्त होने के पूर्व यह महा-विधान क्या रूप धारण करेगा, वह विश्वात्मा के अतिरिक्त कौन कह सकेगा!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुभ हो, मंगलमय हो ! (पुकार कर) मेनका !

[मेनका का प्रवेश । अत्यन्त रूपवती नवयुवती । मुस्कान से ही जिसके शरीर की सृष्टि हुई है । चितवन से जिसकी गति बनी है और चुम्बन से ही जिसके अधरों का निर्माण हुआ है । इन्द्रधनुषी वस्त्र पहने आती है । विशाल नेत्र, जैसे प्रेम ने दो कमलों में निवास कर लिया है । माथे पर कुंकुम, कानों में कुण्डल, कपोलों पर श्याम अलकें । केश-पाश में रत्न-रेखा । कंठ में कोकनद का हार । वह गिरते हुए उत्तरीय को बायें हाथ से रोक रही है । कटि में किंकिणी, हाथों में वलय और पैरों में नूपुर । शरीर में सद्यः प्रस्फुटित कमलों की सुगंधि । उस पर अंगराग, जो आलिंगन का मौन निमन्त्रण है । शरीर में चंचलता और उन्माद । उसके हाथों में पूजा-पात्र है, जिसमें पुष्प-राशि और मलय सुसज्जित है । कपूर जल रहा है और अगरु का धूम है, मानो श्रृंगार के हाथ में भक्ति है । वह मंदगति से प्रवेश करती है, जैसे निर्मल जल-राशि में चंद्रकला का उदय हो रहा है ।]

विद्याधर : मेनका, प्रजापति विश्वगुरु से मिलने गए हैं ।

मेनका : (अत्यन्त मधुर शब्दों में) तब तुम अकेले हो विद्याधर ?

विद्याधर : हाँ, मेनका, मैं अकेला हूँ भाग्य की तरह, किन्तु प्रभु की शक्ति के साथ ।

मेनका : (विद्याधर की बातों को अनसुनी कर) सुनते हो, लतिकाओं ने क्या कहा है ? लतिकाओं ने कहा—'आज हम नहीं खिलेंगी, क्यों नहीं खिलेंगी ! (भौंहें सिकोड़ कर) नहीं खिलेंगी, क्योंकि समीर कहीं भटक गया है; दूर देश चला गया है ।'

विद्याधर : देवि, दूर देश नहीं गया होगा, यहीं कहीं पास होगा ।

मेनका : (हरिण की-सी चकित दृष्टि से) कहाँ है ? (चारों ओर देखती है ।)

विद्याधर : देवि, प्रतिदिन तो वह लतिकाओं से मिलता है । आज वह तुम्हारी मदिर साँस में भर कर तुम्हारे हृदय के स्पंदन का सुख ले रहा होगा । (सँभलकर) नहीं, वह प्रभु के कक्ष में···

मेनका : (हृदय स्पर्श करते हुए) स्पंदन का सुख (किंचित् मुस्करा कर) स्पंदन का सुख ! विद्याधर, स्पंदन का सुख ले रहा है ! और विद्याधर, वह तुम्हारी तरह निष्ठुर नहीं है ।

विद्याधर : देवि, मैं अब प्रजापति का सहायक हो गया हूँ । अब मैं प्रेमी विद्याधर नहीं, अब तपस्वी विद्याधर हूँ ।

मेनका : (हँसकर) ओहो, तपस्वी महाराज ! नेत्रों में तेज—कामदेव के बाणों की नोक नहीं; शरीर में भस्म—अंगराग नहीं; वाणी में मंत्र—प्रणय-निवेदन नहीं ! तपस्वी महाराज को प्रणाम ।

विद्याधर : देवि, अब मैं प्रजापति के समीप हूँ, मेनका के समीप नहीं । अब मेरी शक्ति विकास में लगेगी, विलास में नहीं ।

मेनका : विद्याधर, विलास में से ही सृष्टि का विकास होता है ।

विद्याधर : देवि, यह प्रभु प्रजापति का कक्ष है, इन्द्र का नन्दन-निकुंज नहीं । यहाँ की

CC-0. Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवित्रता में केवल नूपुर की झनकार हो सकती है, उसके साथ मन की झनकार नहीं। यहाँ बादल गरज सकते हैं, किन्तु पानी नहीं बरस सकता। फूल खिल सकते हैं पर वे कली की ओर नहीं देख सकते। यहाँ मेनका केवल नर्तकी है, विलासिनी नहीं।

मेनका : न मैं नर्तकी हूँ न विलासिनी। स्वयं मैं प्रभु प्रजापति का आशीर्वाद लेने के लिए आई थी।

विद्याधर : किन्तु मेनका, इस समय वे यहाँ नहीं हैं ? यह पूजा का पात्र रख दो और वातावरण को इस प्रकार रागरंजित करो कि···

मेनका : किस तरह ? (पूजा का पात्र पीठिका पर रख देती है।)

विद्याधर : (सँभलकर) मैं प्रभु प्रजापति के निर्माण-कार्य का भेद हर किसी से नहीं कह सकता। जो उनकी आज्ञा है, उसी का पालन होना चाहिए।

मेनका : विद्याधर, तुम्हारे हृदय से तो समाधि अच्छी है।

विद्याधर : मेनका, मैं धर्म के आचरण की बात के अतिरिक्त कुछ नहीं सोच सकता।

मेनका : विद्याधर, तुम वेद पढ़ते हो, लेकिन क्या यह बतला सकते हो कि कोकिल वसंत में क्यों कूजती है। सुगंधि किसे रिझाने के लिए फूल के द्वार खोलती है ? लहरें किसके हृदय-तट को छूना चाहती हैं ?

विद्याधर : विश्वात्मा के।

मेनका : (प्रजापति के हाथ से गिरा हुआ नील-कमल उठाकर) यह नील-कमल जो अपने बिखरे हुए शरीर को इस पतले मृणाल के छोर पर समेट कर बैठा है, किसकी प्रतीक्षा में सुगंधि के प्राण लिए हैं ?

विद्याधर : प्रभु प्रजापति की।

मेनका : (मुस्कराकर) तुम्हारे विश्वात्मा और प्रभु प्रजापति के हृदय के भीतर कौन है ?

विद्याधर : धर्म इस प्रश्न के पूछने की आज्ञा नहीं देता।

मेनका : विद्याधर, मैं बताऊँ कौन है ?

विद्याधर : मैं सुनना नहीं चाहता।

मेनका : विद्याधर, विश्वात्मा और प्रजापति के हृदय के भीतर तुम हो, पुरुष हो। सुनते हो। सुन सकते हो ?

विद्याधर : (आश्चर्य से) मैं हूँ ?

मेनका : हाँ विद्याधर, तुम अनेक रूपों से—वसंत बनकर, देवता बनकर, हृदय बनकर; तुम हो पुरुष, विद्याधर !

विद्याधर : (सोचते हुए) तुम ठीक कहती हो, देवि ! ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में ब्रह्मा की भावना में पुरुषत्व है। विश्वगुरु ने स्वयं मुझे सुनाया था—किन्तु मेनका···

मेनका : (तिरछी दृष्टि से) अब मेरी ओर देख सकते हो ?

विद्याधर : देवि, क्षमा करो, मैं तुमसे प्रेम करते हुए भी यहाँ तुमसे प्रेम की बातें करने में विवश हूँ। मैं प्रजापति की सेवा में हूँ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेनका : मैं भी अपने देवता कामदेव की पूजा कर अभी ही आ रही हूँ। मैं भी साधना-मंदिर से लौट रही हूँ।

विद्याधर : कामदेव भी पूजा का देवता है, मेनका ?

मेनका : सावधान, विद्याधर ! कामदेव ब्रह्मा के हृदय से उत्पन्न हुआ है। वह तो उसी समय से देवता मान लिया गया, जब से विश्वगुरु ने उसी देवता के संकेत से सरस्वती देवी···

विद्याधर : (रोककर) चुप मेनका ! एक शब्द भी नहीं। यह बात मुँह पर न लाना।

मेनका : विद्याधर, मुझे इस चर्चा का अवकाश भी नहीं। अमर हों विश्वगुरु ब्रह्मा के विचार। मैं यदि प्रेमवार्ताएँ सुनाने लगूँ तो विद्याधर, तुम्हारे साधना-कक्ष में कलियाँ भी देवियाँ बनकर नृत्य करने लगेंगी।

विद्याधर : शांत, मेनका। यह रहस्य केवल मेरे प्रभु प्रजापति को ज्ञात है, जो उन्होंने मुझे आज बतलाया था। तुम इसे कैसे जानती हो, देवि ?

मेनका : यदि तुम्हारे प्रभु प्रजापति मुझे न बतलाएँ तो क्या मुझे कुछ मालूम ही न होगा ? अन्य प्रजापतियों ने मुझ पर अनुग्रह किया था।

विद्याधर : ओह, सर्वविजयिनी मेनका, मैं तुम्हारा अनुचर हूँ।

मेनका : स्वयं अनंगरिपु भगवान शंकर मेरी सखी के अनुचर हैं; तो तुम्हारे अनुचर होने में क्या संतोष !

विद्याधर : भगवान शंकर भी अनुचर हैं ?

मेनका : हाँ, कैलास पर्वत पर विहार करने वाली मेरी सखी को देखकर भगवान शंकर भी मुग्ध हो गए। किन्तु पार्वती के भय से वे उसे स्पष्ट रूप से देख नहीं सकते थे। जब मेरी सखी भगवान की प्रदक्षिणा कर रही थी तो भगवान शंकर ने उसे प्रत्येक क्षण देखने के लिए चारों ओर अपने चार मुख और बना लिए।

विद्याधर : अच्छा, इसीलिए भगवान शंकर के पाँच मुख हैं।

मेनका : हाँ, किन्तु नारद को तुम जानते हो। विग्रह के सूत्रधार। उन्होंने पार्वती से यह भेद कह दिया तो पार्वती ने चारों मुखों की आँखें बन्द कर दीं।

विद्याधर : (हँसकर) ओह, पार्वती ने यह किया !

मेनका : तुम संभवतः स्त्री की ईर्ष्या नहीं जानते; केवल अप्सराओं से प्रेम कर सके हो न ? इसीलिए ! जब पार्वती ने किसी भाँति भी भगवान के नेत्रों को नहीं खुलने दिया तो भगवान ने अपने मस्तक पर तीसरे नेत्र की सृष्टि की !

विद्याधर : ओह, तीसरे नेत्र की !

मेनका : प्रिय विद्याधर, यह धर्म की जीत है कि प्रेम की ?

विद्याधर : मेरे लिए प्रेम ही धर्म है, मेनका। जो भावना-पक्ष में प्रेम है, वही साधना-पक्ष में धर्म। साधना-पक्ष में प्रजापति का सेवक हूँ, भावना-पक्ष में तुम्हारा अनुचर।

मेनका : यदि मेरे अनुचर होने में तुम्हें साधना-पक्ष छोड़ना पड़े तो !

विद्याधर : देवि, तुम मेरी परीक्षा ले रही हो।

मेनका : अच्छा जाने दो ! यही बहुत है कि भावना-पक्ष में विद्याधर मेनका के अनुचर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। किसलिए मुझे बुलाया था ?

विद्याधर : प्रजापति, अभी विश्वगुरु की सेवा में गए हैं, उनसे उसी समस्या का हल पूछने के लिए। उन्होंने मुझे आज्ञा दी है कि मैं तुमसे नृत्य करने के लिए निवेदन करूँ, जिससे यह समस्त वातावरण अनुराग के रंग से रंजित हो उठे।

मेनका : एक वात है विद्याधर, इस नृत्य के बाद नंदन-कुंज में मेरे हाथों से एक मधु-पात्र···!

विद्याधर : तुम्हारी इच्छा, देवि !

[मेनका वातायन की ओर जाती है।]

मेनका : मेरी किन्नरियाँ अलका से नवीन शरीर धारण कर आज ही आई हैं। उन्हें भी बुला लूँ ?

[संकेत करके दो किन्नरियों को बुलाती है। फिर आकर नृत्य-मुद्रा धारण करती है। इतने में ही किन्नरियाँ नूपुर-शब्द के साथ नृत्य में सम्मिलित हो जाती हैं। कुछ देर तक लास्य नृत्य होता है। विद्याधर तन्मय होकर देखता है।

गम्भीर मुद्रा में प्रजापति का प्रवेश। वे नीची दृष्टि किए हुए आते हैं। मेनका और किन्नरियों का नृत्य रुक जाता है। वे प्रजापति को हाथ जोड़ कर प्रणाम करती हैं।]

प्रजापति : (रूखे स्वर में) तुम लोग जाओ ! मैं अशांत हूँ !

[मेनका और किन्नरियों का प्रस्थान।]

विद्याधर : क्या हुआ प्रभु ?

प्रजापति : कुछ नहीं हो सका विद्याधर, कुछ नहीं हो सका !

विद्याधर : आपने विश्वगुरु के दर्शन किए ?

प्रजापति : किए, किन्तु कुछ फल नहीं हुआ !

विद्याधर : (आश्चर्य से) कुछ फल नहीं हुआ ?

प्रजापति : हाँ, विश्वगुरु मेरे मत से सहमत नहीं हैं।

विद्याधर : क्यों ?

प्रजापति : वे कहते हैं कि कलंक को छिपाने के लिए जो कार्य भी किया जाएगा वह भी कलंक होगा। मेरे कलंक को छिपाने की आवश्यकता नहीं। संसार में मेरी कलंक-कथा अन्धकार बनकर व्याप्त रहने दो।

विद्याधर : वे महात्मा हैं प्रभु, वे विश्वगुरु हैं।

प्रजापति : किन्तु मेरे हृदय को सन्तोष कैसे हो ? विद्याधर, उन्हें मेरी इच्छा-पूर्ति में सहायक होना ही होगा। यदि वे मेरा साथ न देंगे तो मैं अपनी शक्ति का प्रयोग करूँगा।

विद्याधर : जब उन्होंने एक बार अपनी सहमति नहीं दिखाई तो फिर वे आपके सहायक कैसे हो सकते हैं ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजापति : तो विद्याधर सुनो, मैं भी अपने योगबल से उनके शरीर का नाश करके उसके दो भागों से स्त्री-पुरुष बनाऊँगा। मैं अपने कर्तव्य-पथ से नहीं हट सकता। अन्धकार का नाश करूँगा ही।

विद्याधर : किन्तु यदि विश्वगुरु नहीं चाहते तो अन्धकार का नाश नहीं होगा।

प्रजापति : न हो, मैं यथाशक्ति उसको दूर करने का उपाय करूँगा।···(रुककर) ओह, मैं कुछ और बात देख रहा हूँ। मुझे इस वातावरण में कुछ वासना की दुर्गन्ध-सी मिल रही है!

विद्याधर : प्रभु! कैसी वासना?

प्रजापति : तुमने मेनका से प्रेम की बातें की हैं!

विद्याधर : (हाथ जोड़कर) प्रभु, क्षमा हो।

प्रजापति : मेरे साधना-गृह में तुम इंद्रियों की आग नहीं जला सकते। आत्मा के प्रकाश को तुम इंद्रियों के धूम्र से धुँधला करना चाहते हो? विद्याधर, तुमने मेनका से प्रेम की बातें की हैं।

विद्याधर : मैं बाध्य किया गया, प्रभु!

प्रजापति : पुरुष होकर यह कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? पुरुष बाध्य नहीं किया जा सकता, विद्याधर! आकाश को कोई खींच कर बढ़ा नहीं सकता। कल्पतरु को कोई दबा कर छोटा नहीं कर सकता। पुरुष को कोई खींच नहीं सकता, उसे कोई छोटा नहीं कर सकता। हाँ, इन्द्रियों के घड़े में आकाश को घटाकाश बनाया जा सकता है, कल्पवृक्ष के फूल को तोड़कर वेणी का श्रृंगार किया जा सकता है!

विद्याधर : (फिर हाथ जोड़कर) क्षमा हो प्रभु।

प्रजापति : मुझ से आकाश का शब्द कह रहा है कि तुम आज संध्या-समय नंदन-कुंज में मेनका के हाथ से मधुपात्र पी रहे हो। जाओ, पुरुष होकर नारी की कोमलता मधु-पात्र भरकर पिओ। (और सोचते हुए) मेनका, तू देवी होकर भी स्त्री ही है! अच्छा तुम दोनों के भविष्य का निर्माण भी मैं अपने समाप्त होते हुए क्षणों में करूँगा।

विद्याधर : प्रभु, मेरा अपराध भी···!

प्रजापति : मेरे साधना-गृह को तुम इस प्रकार अपवित्र नहीं कर सकते। आत्मा के पुण्य-गृह को तुम पाप की कालिमा में मलिन करना चाहते हो? विद्याधर, मेनका से तुम्हारा प्रेम है तो करने के लिए इन्द्र के नन्दन की भिक्षा माँगो। कलियों से कहो कि वे तुम्हारी इच्छा की आग में भी खिली रहें। पवन से कहो कि वह तुम्हारे संयोग में साँस बनकर सजीव हो जाए; किन्तु मेरे सहायक होकर मेरी पूजा में रौरव की दुर्गन्ध नहीं भर सकते! मैं जानता था कि गायक विद्याधर अंततः गायक ही है। जल हिम बनकर भी जल का गुण रक्खेगा। कमल सूख कर भी कमल ही रहेगा। तुम तपस्वी नहीं हो सके, विद्याधर। गायक भी कहीं विचारक हुआ है?

विद्याधर : प्रभु, गायिका सरस्वती देवि में विचार···।

प्रजापति : चुप रहो, विद्याधर। उफ् सरस्वती! फिर वही आग। फिर वही भयंकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतारणा ! विद्याधर, जाओ। मेरे वातावरण को और कलुषित मत करो। अभी पिता के कलंक-कृत्य से पीड़ित हूँ। कहीं धीरे-धीरे सेवक के कलंक-कृत्य से पीड़ित न हो जाऊँ। तुम आज से मेरी सेवा में नहीं रहोगे। घुँघराली अलकों की भाँति विधर्मी, विद्याधर !

[विद्याधर का नतमस्तक होकर प्रस्थान।]

प्रजापति : (अशांत चित्त से) सरस्वती गायिका होते हुए भी विचार कर सकती है। उसने यह विचार नहीं किया कि पिता के चंचल हृदय को ठोकर मारकर स्थिर कर दे ? (जोर से) सृष्टि, स्थिर हो ! मैं भी तेरी मर्यादा सुरक्षित रक्खूंगा। अपने पद के अन्तिम दिवस में भी तेरे लिए प्रबन्ध करके बिदा लूंगा।

[नेपथ्य में विद्याधर की कण्ठ-ध्वनि—मेनका, मुझे सहारा दो···सहारा दो !]

प्रजापति : (दुहराते हुए) सहारा दो ! मेनका और विद्याधर ! दोनों में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण जैसे जन्म-मृत्यु में परस्पर आकर्षण हो। जन्म और मृत्यु···मृत्यु और जन्म ! इनमें कौन जन्म है और कौन मृत्यु ?

[नेपथ्य में—प्रजापति की विजय हो !]

प्रजापति : (घूमकर) कौन ? माया ?

[माया का प्रवेश—सुन्दर युवती; श्वेत साड़ी, जिस पर लहरों के चित्र, जो अस्थिरता के द्योतक हैं। वासंती शृंगार, जिसमें नश्वरता का बोध होता है। नेत्र विशाल, जिनमें अंजन। कण्ठ में त्रिगुणमय तीन पुष्प-मालाएँ। मुक्त केश, जिनसे सुगन्ध शतमुखी होकर दिशाओं में वरदान की भाँति वितरित हो रही है। माथे में अरुण बिन्दी, जिसकी लालिमा में अपनी किरणों को डुबो कर बाल सूर्य प्रभात का चित्र खींचता है। हाथों में अंगराग और पुष्प वलय, किंकिणी और नूपुर। वह आकर प्रजापति को प्रणाम करती है।]

माया : प्रजापति के अनुसार पृथ्वी और चन्द्रमा का निर्माण हो गया।

प्रजापति : ठीक ! पृथ्वी में ऐसी कौन सी विशेषता रक्खी है ?

माया : वहाँ उत्साह से बने हुए पहाड़ हैं, प्रेम की गहरी नदियाँ हैं, रूप के चंचल झरने हैं ! लहर वहाँ अभिलाषा की तरह फैलती है। फूल कली के उभार में मुस्कराते हैं, इन्द्रधनुष आकाश में प्रेम की क्यारियाँ सप्त रंगों से सजाते हैं।

प्रजापति : और चन्द्र ?

माया : कल्पवृक्ष के कुसुम के आकार का मैंने एक चित्र बनाया था। उसकी पंखुड़ियाँ मिटाकर मैंने उसी को गतिशीलता दे दी है। वह मिलन और वियोग की कसौटी है, जिस पर हँसी और आँसू की रेखाएँ खींची जा सकेंगी। वह आशा की तरह घटता और निराशा की तरह बढ़ता है। संसार की परिवर्तनशीलता का आकाश में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे प्रतिबिम्ब पड़ रहा हो, ऐसा वह दिखाई देगा, किन्तु इस तरह से कोई समझेगा नहीं।

प्रजापति : माया, मेरी प्रेरणाओं को तुम इतना अच्छा आकार दे सकती हो! मेरा वरदान है कि तुम्हारे चित्र मिथ्या होते हुए भी सत्य के समान प्रतीत होंगे। अच्छा, तुम जाओ। अब मैं योग-साधन करूँगा। हाँ, तुम्हें एक बात मालूम है?

माया : क्या प्रजापति?

प्रजापति : मेनका और विद्याधर ने मेरे साधना-कक्ष को प्रणय-गृह बना लिया था।

माया : (विकृत स्वर से) यह धृष्टता, प्रजापति!

प्रजापति : हाँ, मैं जानता था कि इस प्रकार की घटना हो सकती है। मलय और पवन को एकसाथ रखने से सुगंधि का फैलना स्वाभाविक है, किन्तु मैं यह जानना चाहता था कि गायक विद्याधर तपस्वी हो सका है कि नहीं। यह उसकी छोटी-सी परीक्षा थी और वह उसमें सफल नहीं हो सका। माया प्रेम की भावना तो ऐसी होनी चाहिए कि उससे जीवन का अन्त जीवन के आदि से अच्छा बन जाए।

माया : किस प्रकार प्रभु?

प्रजापति : अजी तुम्हें ज्ञात हो जाएगा। मेनका के प्रणय की एक मनोरंजक विकृति होगी!

माया : प्रभु प्रणय तो मेरी सबसे बड़ी शक्ति है।

प्रजापति : जिसमें आँसू और हँसी साथ मिलकर जीवन का चित्र खींचते हैं। जिसमें विवशता का नाम आत्म-समर्पण हो जाता है। इच्छा ऐसे व्यूह में घूमकर बढ़ती है कि उसका नाम प्रेम हो जाता है! जहाँ दो निर्विकार प्राण शरीर के निकट स्पर्श की मादकता में फूल की सुगंधि पर बैठकर कोकिल के कंठ में गा उठते हैं और तब शरीर के प्रत्येक रोम की नोक पर सुख या दुःख ध्रुवलोक की भाँति स्थिर हो जाता है। और तब मुस्कान की रेखा में वसंत मचलने लगता है और कपोलों के हलके उभार की सीमा पर आँसू की रुकी हुई एक विकल बूंद में विषाद एक प्रलयंकारी वर्षा की सृष्टि कर देता है। यही है न तुम्हारा प्रणय?

माया : किन्तु प्रभु, इस क्रीड़ा में अमर सौंदर्य है।

प्रजापति : वह सौंदर्य मेरे कक्ष में देखा है। आज ही कुछ क्षण पहले—अब उसकी चर्चा संसार में होगी। मेनका और विद्याधर की प्रेम-चर्चा!

माया : प्रजापति, उनकी प्रेम-चर्चा तो इन्द्रलोक तक फैली हुई है। पुरंदर ने दोनों को प्रणय-क्रीड़ा के लिए नंदन-वन के कुंजों में पुष्पों को चिरकाल खिले रहने की शिक्षा दी है। घृताची और तिलोत्तमा ने अपने दृष्टि-पथ पर अनंग को चलने की आज्ञा दी है।

प्रजापति : क्यों?

माया : उर्वशी को विद्याधर की दृष्टि से बचाने के लिए पुरंदर और स्वर्ग की नव अप्सराओं ने मेनका को उससे प्रणय-निवेदन की आज्ञा दी है।

प्रजापति : पुरूरवा की उर्वशी?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माया : प्रभु, आपका व्यंग्य मैं समझती हूँ। पुरंदर सौंदर्य के सामने ग्राह्य और अग्राह्य में अन्तर नहीं समझते। गंधर्वों की सहायता से उन्होंने उर्वशी को फिर अपनी सभा में बुलवा लिया है अब पुरूरवा का जीवन परिताप की कहानी बन गया है !

प्रजापति : और अश्विनीकुमारों ने बाधा नहीं डाली ?

माया : प्रभु, अश्विनीकुमार दो हैं। उर्वशी ने अश्विनीकुमारों से कहा कि प्रेम केवल दो व्यक्तियों में होता है। सरिता के केवल दो किनारे होते हैं, तीन नहीं। आप दोनों परस्पर प्रेम कीजिए और मुझे छोड़ दीजिए। या फिर आप में से केवल एक मुझे प्रेम करे, दूसरा छोड़ दे। प्रेम केवल दो में होता है, तीन में नहीं। अश्विनीकुमार दो हैं। वे एक नहीं हो सके।

प्रजापति : (हँसकर) अश्विनीकुमारों को चाहिए कि वे ऐरावत के पैरों से दबकर एक हो जाते ! बेचारे दो ! तब माया उनकी बात का विश्वास क्या ? वे दो मुँह से बोलते होंगे।

माया : (हँसकर) प्रभु, उनसे कोई एकांत में बात नहीं कर सकता और उनसे तो प्रेम हो ही नहीं सकता। सूर्य और चन्द्र एकसाथ हों तो न दिन हो न रात।

प्रजापति : (स्मरण कर) ओह, रात ! अन्धकार ! माया तुम जाओ। मैं चिन्तन करूँगा।

माया : फिर प्रभु, विद्याधर और मेनका के सम्बन्ध में आपने कोई निर्णय नहीं दिया।

प्रजापति : हाँ, उनके सम्बन्ध में मेरा निर्णय है।

माया : आज्ञा।

प्रजापति : मेनका को पुरुष रूप में और विद्याधर को स्त्री रूप में संसार के क्रोड़ में भेजना होगा।

माया : यह रूप-परिवर्तन क्यों ?

प्रजापति : मेनका में विजय-गर्व है, यह पुरुष की विशेषता है, और विद्याधर में आत्म-समर्पण, यह स्त्री की विशेषता है। उनके इन चित्रों से पृथ्वी के चित्रपट पर कुछ प्रयोग करूँगा। उसमें मेरे दंड की व्यवस्था भी होगी, उनकी दुर्विनीतता के लिए।

माया : जो आज्ञा। मैं जाऊँ ?

प्रजापति : हाँ, विश्वात्मा की प्रार्थना के लिए पुष्प-हार लाओ।

माया : अभी लाई।

प्रजापति : (सोचते हुए) विश्वात्मा की इच्छा। स्त्री और पुरुष का निर्माण। पृथ्वी पर जीवन की सृष्टि। मेरी सदिच्छा की प्रेरणा से विश्वगुरु के शरीर का विभाजन।

[माया नीलकमल का हार एक स्वर्ण-थाल में प्रस्तुत करती है। प्रजापति कमल-हार स्वीकार करते हैं। माया प्रणाम करके जाती है। प्रजापति कुछ देर तक हार हाथों में फेरते हुए सोचते हैं। फिर दोनों हाथ उठाकर नतमस्तक हो आँखें बन्द कर खड़े रहते हैं।]

प्रजापति : (नेत्र बन्द किए हुए) सत्, चित्, आनन्द !

[कुछ क्षण शांति, फिर द्वार पर शब्द।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजापति : (आँखें खोलकर) कौन ? आओ !

[अश्विनी कुमारों का प्रवेश । दोनों का एक ही रूप । दोनों वटु वेश में हैं। पीत वस्त्र हैं । मुक्त केश । माथे पर पीत चन्दन । पैर में पादुकाएँ ।]

दोनों : (क्रम से) एक-दो…एक-दो ।

प्रजापति : उर्वशी का सिखलाया हुआ यह संख्या-पाठ ! विश्वात्मा का नाम लो । केवल एक ।

प्रथम अश्विनी : प्रभु ! उर्वशी का नाम । उर्वशी ।

द्वितीय अश्विनी : प्रभु ! उर्वशी का प्रेम । उर्वशी ।

प्रजापति : (प्रथम अश्विनी से) तुम कहते हो नाम (द्वितीय अश्विनी से) तुम कहते हो प्रेम ! एक बात कहो तो कुछ समझ में आए ।

प्रथम अश्विनी : नाम ।

द्वितीय अश्विनी : प्रेम ।

प्रजापति : अच्छा प्रेम का नाम । हाँ, कैसी उर्वशी ?

प्रथम अश्विनी : प्रभु, पुरंदर स्वार्थी है । वह उर्वशी से प्रेम करने के लिए मुझे मार्ग से हटाना चाहता है ।

द्वितीय अश्विनी : हटाना चाहता है, प्रभु !

प्रजापति : हाँ, अब एक बात कहते हो ।

प्रथम अश्विनी : पुरंदर ने उर्वशी को न जाने क्या सिखला दिया ? वह कहती है, सरिता के किनारे दो होते हैं, तीन नहीं ।

द्वितीय अश्विनी : मैंने कहा—चार किनारे कर लो । तालाब बन जाओ । हम अपने साथ प्रजापति को ले आएँगे । हम लोग तीन हो जाएँगे, तुम चौथी हो जाना ।

प्रजापति : मैं उर्वशी से प्रेम करूँ ?

द्वितीय अश्विनी : क्या हानि है !

प्रथम अश्विनी : कोई हानि नहीं ।

प्रजापति : (अधिकार के स्वर में) अश्विनी कुमार, तुम लोग यदि मेरा नाम लोगे तो योग-साधन से तुम्हें दंड दूंगा । सावधान ! तेल और पानी नहीं मिल सकते । मेरा प्रेम तरल है, किन्तु वह ईश्वर के स्नेह में है ! तुम्हारा प्रेम तरल है, किन्तु वह दैनिक जीवन में है । स्नेह और जीवन रहने दो मेरे लिए, केवल मेरे लिए ।

प्रथम अश्विनी : क्षमा कीजिए, प्रभु दोषी हूँ ।

द्वितीय अश्विनी : क्षमा कीजिए प्रभु ! मैं भी अदोषी नहीं हूँ ।

प्रजापति : एक ही बात किन्तु भिन्न शब्द । तुम लोग स्वभाव से रूखे हो, प्रेम नहीं कर सकते । प्रेम के लिए आवश्यकता है मुस्कान की, तुम मुस्करा नहीं सकते ।

प्रथम अश्विनी : प्रभु, मैंने उर्वशी को मोहित करने के लिए अश्व का मस्तक उतार कर फेंक दिया । देवताओं का मुख धारण किया और मुस्कान उत्पन्न की, फिर भी उर्वशी…

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अश्विनी : प्रभु, सुरों का मुख धारण किया, फिर भी उर्वशी···!

प्रजापति : घोड़े का मुख बदल जाए, किन्तु स्वभाव नहीं बदल सकता !

प्रथम अश्विनी : प्रभु, उर्वशी को आप घोड़ी बना दीजिए।

द्वितीय अश्विनी : अश्विनी बना दीजिए, प्रभु !

प्रजापति : (हँसकर) फिर तुम्हारी माँ भी अश्विनी और स्त्री भी अश्विनी ! देवताओं को अधिक लांछित मत करो, अश्विनी कुमार।

प्रथम अश्विनी : प्रभु, प्रेम में क्या स्त्री और क्या अश्विनी ?

द्वितीय अश्विनी : प्रेम में क्या···

प्रजापति : तुम लोग वीणा के दो तारों की तरह हो, मिलकर भी अलग हो। देखो, तुम ऐरावत को जानते हो।

प्रथम अश्विनी : हाँ, प्रभु, पुरंदर का हाथी। समुद्र-मन्थन का चौथा रत्न।

द्वितीय अश्विनी : हाँ, प्रभु, पाँचवें रत्न कौस्तुभ पद्मराग मणि के पूर्व का चौथा रत्न !

प्रजापति : उस ऐरावत के पैरों से दब कर दोनों एक नहीं हो सकते ? अमर होने से तुम लोग मर नहीं सकते, किन्तु एक हो सकते हो।

प्रथम अश्विनी : प्रभु यदि उसने हृदय पर पैर रख दिया तो प्रेम की भावना ही गई— उर्वशी तो दूर की बात है।

द्वितीय अश्विनी : प्रभु, फिर उर्वशी गई !

प्रथम अश्विनी : और पुरंदर हम लोगों से जलता है। उसने यज्ञ के देवों में हमें नहीं लिया। अकेला सोमरस पीता है और हम लोग मुँह देखते हैं।

द्वितीय अश्विनी : कभी इसका, कभी उसका।

प्रजापति : और उर्वशी का ?···

प्रथम अश्विनी : प्रभु, उर्वशी मिल जाए तो मैं अपने रथ पर बिठला कर सूर्योदय से पहले ही उसके मुख से प्रकाश फैला दूंगा। पक्षियों से खींचा जाने वाला हमारा रथ सदैव सूर्य के रथ से आगे रहता है।

द्वितीय अश्विनी : प्रभु, उर्वशी मिल जाए तो मैं अपने रथ पर बिठला कर चन्द्रोदय से पहले ही उसके मुख से प्रकाश फैला दूंगा। पक्षियों से खींचा जाने वाला हमारा रथ सदैव चन्द्र के रथ से आगे रहता है।

प्रजापति : तुम दोनों प्रकाश के पूर्व की धुंधली ज्योति हो, प्रकाश के बीज हो। मैं तुम्हारा हित कर सकता हूँ। किन्तु तुम यदि एक हो तो अच्छा है।

प्रथम अश्विनी : प्रभु, च्यवन ऋषि को युवक बनाने में हम दोनों का हाथ है।

द्वितीय अश्विनी : प्रभु, सिद्धिनिर्मित सरोवर में च्यवन को हम दोनों ने नहलाकर युवक बनाया। सती सुकन्या का आशीर्वाद हम दोनों को प्राप्त है। हम एक कैसे हो सकते हैं प्रभु !

प्रजापति : तुम दोनों नेत्रों की तरह हो। एक दृश्य देखते हो किन्तु रूप में अलग-अलग। अच्छा है, तुम लोग अलग ही रहो।

प्रथम अश्विनी : मैं प्रकाश का रूप हूँ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अश्विनी : मैं अन्धकार का रूप हूँ !

प्रजापति : ओह, अन्धकार ! तुम लोगों में से भी एक अन्धकार का समर्थक है। जाओ तुम लोग ! अन्धकार···अन्धकार, फिर याद दिला दी !

प्रथम अश्विनी : (जाते हुए करुण स्वर से) आह, उर्वशी···

द्वितीय अश्विनी : (जाते हुए करुण स्वर से) आह, उर्वशी···

प्रजापति : जाओ, वैद्यक से देवताओं को प्रसन्न करो पहले। फिर 'आह उर्वशी', 'आह उर्वशी' कहना।···ये भी अन्धकार के अग्रदूत हैं। मैं पुरुष और स्त्री के निर्माण से इस अन्धकार को अवश्य दूर करने की चेष्टा करूँगा।

[दरवाजे पर शब्द]

प्रजापति : कौन···? आओ। (सोचकर) ओह, मेनका···की···जीवात्मा···!

[एक जीवात्मा का प्रवेश। श्वेत वस्त्र से सुसज्जित।]

जीवात्मा : (अन्धे की तरह लड़खड़ाते हुए) सत्, चित्, आनन्द !

प्रजापति : आओ, आओ ! तुम जागे ?

जीवात्मा : (आँखें खोलकर) कौन ?

प्रजापति : मैं, प्रजापति। सृष्टि का रचयिता। अपने मन्वन्तर के अंत में मेरे द्वारा तुम्हारा निर्माण। तुम जीव हो। विश्वात्मा की इच्छा और मेरे सहयोग से उत्पन्न। विश्व-गुरु के शरीर का भाग ! विश्वात्मा के रूप।

जीवात्मा : (धीरे-धीरे दुहराता हुआ) विश्वात्मा···के···रूप···!

प्रजापति : (दृढ़ता से) तुम विश्वात्मा के रूप, उसके अंश हो।

जीवात्मा : जैसे प्रकाश की किरणों को विभाजित कर दिया। सागर की लहरों को स्थिर कर तट पर रख दिया। वैसे ही अनुभव हुआ, जागृति की एक लहर आई और मुझमें समा कर लौट गई। यह जागृति, यह स्पन्दन ! (हृदय छूता है) देखो प्रजापति।

प्रजापति : (जीवात्मा का हृदय स्पर्श करते हुए) हाँ, स्पन्दन हो रहा है। विश्वात्मा की अनन्त शक्ति से तुम जागे हो।

[जीवात्मा चकित होकर शून्य में देखता है।]

प्रजापति : विस्मित होकर क्या देख रहे हो ?

जीवात्मा : (विह्वल होकर) प्रकाश, आनन्द, उल्लास, सौंदर्य। सीमा नहीं है। प्रत्येक का एक आकाश है। उसमें वही, सब कुछ वही। और वह आकाश मुझसे निकलकर मुझी में समा रहा है !

प्रजापति : (मुस्करा कर) इतना अधिक !

जीवात्मा : बहुत अधिक, असह्य !

प्रजापति : तो भूमंडल में चले जाओ। संभव है, यह उल्लास, यह सौंदर्य कुछ कम हो

CC-0. Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जावे। भूमंडल में देखना—इतना प्रकाश, इतना आनन्द—इतना उल्लास है या नहीं।

जीवात्मा : (आश्चर्य से) भूमंडल।

प्रजापति : हाँ, भूमंडल।

जीवात्मा : कहाँ है ?

प्रजापति : इधर आओ। (दक्षिण द्वार की ओर ले जाकर शून्य में संकेत करते हुए) देखो इधर क्या है ?

जीवात्मा : (आश्चर्यचकित होकर) अनेक प्रकाश-पिंड, बड़े और छोटे। कितनी गति से घूम रहे हैं! (प्रसन्नता से) अरे, यह कितने पास आ रहा है। ओहो, यह! (प्रजापति से) प्रजापति, बचो। अरे, यह घूम कर उधर चला गया! (प्रजापति की ओर देखकर आश्चर्यचकित) प्रजा···पति ?

प्रजापति : ये अनेक सौरमंडल हैं। सहस्रों सूर्य और उनकी प्रदक्षिणा करने वाले अनेक ग्रह और उपग्रह, देखो! यह सूर्य देखो! यह अंतरिक्ष के मध्य भाग में स्थित है। भूगोल के मध्य स्थान का नाम अंतरिक्ष है। उसी में सूर्य गतिशील होता है।

जीवात्मा : (जिज्ञासा से) सूर्य से क्या होता है ?

प्रजापति : जीवन का प्रकाश, आनन्द-उल्लास। उत्तरायण, दक्षिणायन विषुवत् गतियों में जैसे सूर्य का उत्थान, पतन और समत्व होता है।

जीवात्मा : (उँगली से संकेत करके) और वह स्तूप क्या है ?

प्रजापति : वह मेरु पर्वत है। उसी के चारों ओर सूर्य प्रदक्षिणा करता है। उस मेरु के उत्तर में इन्द्र की नगरी देवधानी है, दक्षिण में यमराज की नगरी संयमिनी है, पश्चिम में वरुण की नगरी निम्लोचनी है और उत्तर में कुबेर की नगरी विभावरी है।

जीवात्मा : इनमें से ही किसी स्थान पर मुझे भेज दीजिए।

प्रजापति : नहीं तुम्हें भूमंडल में जाना होगा, पृथ्वी पर।

जीवात्मा : पृथ्वी कहाँ है ?

प्रजापति : (दिखलाते हुए) देखो, उस कोने में जो सबसे छोटा सूर्य है, उसके चारों ओर बिन्दु घूम रहे हैं, उन्हें देखते हो ?

जीवात्मा : (भौंहें सिकोड़कर झुकते हुए) ओह, बहुत छोटे-छोटे हैं।

प्रजापति : उन्हीं में एक बिन्दु है, जिसकी प्रदक्षिणा एक और छोटा बिन्दु कर रहा है। उसे चन्द्र कहते हैं। वही भूमंडल है। दिखा ?

जीवात्मा : (देखते हुए) हाँ, कुछ-कुछ दीख रहा है। बहुत छोटा है। यह तो मेरा अणु मात्र भी नहीं है। मैं उसमें समाऊँगा कैसे ?

प्रजापति : मैं तुम्हें कल्पना का शरीर दूँगा। उसी में संचित होकर तुम जाओगे।

जीवात्मा : मैं समझ ही नहीं सकता, प्रजापति। जहाँ इतने बड़े आकाश मुझमें मिल रहे हैं, भूमंडल में मैं अपने को किस प्रकार बन्द करूँगा ?

प्रजापति : एक चंचल स्वप्न के पंख पर उड़ कर तुम वहाँ पहुँच जाओगे और तब तुम्हें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही भूमंडल अपनी आशा से भी बड़ा ज्ञात होगा। और जिस शरीर में तुम जाओगे वह एक नगर में किसी भाँति भी कम न होगा। उसमें एक राजा होगा पुरंजय की तरह। उसकी एक सुन्दर स्त्री होगी। उसकी रक्षा एक बड़ा भारी साँप करेगा। उस नगर के दस दरवाजे होंगे !

जीवात्मा : तुम मुझे आश्चर्य में डाल रहे हो, प्रजापति।

प्रजापति : नहीं, वह भूमंडल बहुत मनोरंजक स्थान है। आओ, बैठो तुम्हें सुनाऊँ।

[दोनों छोटी पीठिकाओं पर बैठते हैं।]

जीवात्मा : (बैठते हुए) बहुत मनोरंजन स्थान है वह !

प्रजापति : हाँ, यहाँ एक ठोस चमकदार मिट्टी होगी। उसका नाम होगा 'सोना'। वहाँ का जीव उस मिट्टी की परिधि में बिंदु बनकर बैठेगा और उसी में चक्कर लगाएगा। वह मिट्टी का सिंहासन बनाकर उस पर ईश्वर को बिठलाने के बदले स्वयं बैठ जाएगा। और अपने साथियों से कहेगा कि वे उस सिंहासन को उठाकर चलें। स्वाभाविकतः वह उस मिट्टी के रंग से पाप को पुण्य बना देगा। हाँ, पाप को भी पुण्य !

जीवात्मा : असंभव बातें मत कहो, प्रजापति !

प्रजापति : ये असंभव बातें नहीं हैं, जब तुम वहाँ जाओगे तो उसी 'सोने' से अपने साथियों में भेद उत्पन्न करोगे। कोई होगा राजा, कोई होगा किसान। कोई स्वामी होगा, कोई श्रमजीवी। यह सुनहली मिट्टी जिसके पास जितनी अधिक होगी वह उतना ही बड़ा होगा, हाँ उतना ही बड़ा। वह अपने को ब्रह्मा से भी बड़ा समझेगा। राजा कहेगा—अन्न उत्पन्न करो और मेरा कोष भरो, किसान अन्न उत्पन्न करेगा और राजा का कोष भरेगा ! स्वामी कहेगा—काम करो और भूखे रहो। सेवक काम करेगा और भूखा रहेगा।

जीवात्मा : (आश्चर्य से) बड़ी विचित्र बात होगी। ऐसे 'सोने' को जरूर देखूँगा।

प्रजापति : हाँ, जाओ। मैं तुम्हें पुरुष बनाकर भेजूँगा।

जीवात्मा : पुरुष क्या ?

प्रजापति : शक्ति के संचित कोष का नाम 'पुरुष' है। किंतु वहाँ प्रायः एसे अवसर आवेंगे जहाँ पुरुष शक्ति के प्रयोग से अपना ही नाश करेगा। वह ऐसे यंत्र निकालेगा जो दैत्य बनकर उसे खा जाएँगे। वह अपने विनाश के बीज बोकर कहेगा कि मैं अमर हूँ। किंतु तुम ! तुम्हें मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम वहाँ जाकर जहाँ तक हो सके अन्धकार से युद्ध करोगे। उसका विनाश करोगे। यही मेरी आज्ञा है। मैं समस्त पापाचार का अन्त देखना चाहता हूँ।

जीवात्मा : पापाचार मैं नहीं जानता प्रजापति !

प्रजापति : पापाचार ? जब तुम अपने उस कल्पना के शरीर से अपनी आत्मा पर बैठ जाओगे तो पापाचार होगा। अपने सेवकों को जब तुम स्वामी बनाकर स्वयं उनके सेवक होगे तो पापाचार होगा। इच्छा के ऐश्वर्य पर बैठ कर तुम आत्मा को

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदचर बना लोगे तो पापाचार होगा। जब तुम अपनी पवित्र भावनाओं के पिता होते हुए स्वयं उत्पन्न की हुई निधियों से प्रेम करोगे तो पापाचार होगा।

जीवात्मा : यह तो बड़ी भयानक बात होगी प्रजापति !

प्रजापति : तुम्हें इस भयानकता का विनाश करना होगा। मैं यह उत्तरदायित्व तुम्हें देता हूँ।

जीवात्मा : स्वीकार करता हूँ। अब मैं जाऊँ ?

प्रजापति : तुम्हें तीस वर्ष की आयु देता हूँ। तुम मेरे पास केवल तीस क्षणों में आ जाओगे, क्योंकि मेरा एक क्षण तुम्हारे एक वर्ष के समान होगा। तुम मेरे और अपने बीच में साँस की दीवाल उठाओगे।

जीवात्मा : जो आज्ञा ! मैं भूमंडल का रास्ता तो नहीं भूलूंगा ?

प्रजापति : तुम वायु का रूप रखकर बह जाओ। तुम्हारे लिए पुरुष का शरीर प्रस्तुत हो चुका है। माया के द्वारा तुम साँस बनकर उसी शरीर में प्रवेश कर जाओगे। मेरी शक्ति तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेगी।

जीवात्मा : बहुत अच्छा। सत्...चित् आनंद...।

[जीवात्मा का प्रस्थान]

प्रजापति : (सोचते हुए) आज मेरे मन्वन्तर का अन्तिम दिन है। मैं चाहता हूँ कि दूसरे प्रजापति के आने के पूर्व मैं भूमंडल में पुरुष-स्त्री की सृष्टि कर दूँ। मैं गतिशीलता में प्राण भरना चाहता हूँ। मैं पुरुष में सुगंधि भरना चाहता हूँ। अन्धकार का विनाश मेरे जीवन का उद्देश्य होगा। हाँ, अन्धकार का विनाश। पिता के पापाचार की स्मृति-रेखा का कालचिह्न उज्ज्वलता में लीन होकर मार्तंड की भाँति चमकने लगेगा।

[दरवाजे पर शब्द]

प्रजापति : कौन ? (स्मरण कर) ओह, विद्याधर की आत्मा ? मेरे अभिशाप की पूर्ति (जोर से) आओ।

[विद्याधर की आत्मा का प्रवेश।]

प्रजापति : तुम कहाँ से आ रहे हो ?

जीवात्मा : जागृति के अथाह सागर से।

प्रजापति : (व्यंग्य से) नन्दन-कुंज से नहीं ? देखो वत्स, क्या तुम ऐसी लहर बनना चाहते हो, जिसमें किसी इन्द्रधनुष का प्रतिबिंब पड़े।

जीवात्मा : (आश्चर्य से) कैसे इन्द्रधनुष का ?

प्रजापति : भूमंडल में प्रेम का।

जीवात्मा : प्रेम क्या ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

प्रजापति : (हँसकर) ओह, प्रेम ? उससे लोग दिन में हँसते और रात में रोते हैं।
जीवात्मा : (आश्चर्य से) रात में रोते हैं।
प्रजापति : हाँ, भूमंडल में दो प्रकार के व्यक्ति होंगे। भूमंडल जानते हो, कहाँ है ?
जीवात्मा : कहाँ है ?
प्रजापति : देखो, उस सौरमंडल में। किंतु तुम चिंता मत करो। तुम्हें अभी वहाँ पहुँचा दूँगा।
जीवात्मा : बहुत अच्छा।
प्रजापति : मैं प्रजापति हूँ। मैं तुम्हें वहाँ अभी भेजूँगा—स्त्री बना कर। हाँ, उस भू-मंडल में दो प्रकार के व्यक्ति होंगे। एक का नाम है पुरुष, दूसरे का स्त्री। कभी पुरुष कठोर और स्त्री कोमल और कभी स्त्री कठोर पुरुष कोमल !
जीवात्मा : दोनों कोमल नहीं होते ?
प्रजापति : होते हैं किंतु दोनों की कोमलता का अर्थ प्रेम न होकर विवाह होता है। स्त्री को पुरुष के लिए कोमल बनना पड़ता है और पुरुष को स्त्री के लिए। इसी आत्म-बलिदान का नाम 'विवाह' है।
जीवात्मा : विवाह ?
प्रजापति : हाँ, विवाह और प्रेम में अन्तर है। विवाह कहते हैं ऐसी हँसी को जिसमें रोना छिपा रहता है और प्रेम कहते हैं ऐसे रोने को जिसमें हँसी छिपी रहती है। संसार के लोग प्रायः ऐसे रोने को विशेष पसन्द करेंगे जिसमें हँसी छिपी रहती है !
जीवात्मा : और जो लोग रोना और हँसना नहीं जानते वे लोग ?
प्रजापति : ऐसे लोग पत्थर की तरह होंगे। कोई ठोकर मार दे तो ठीक है, कोई ईश्वर बनाकर पूज ले तो ठीक है। संसार के लोगों के लिए रोना और हँसना आवश्यक है।
जीवात्मा : आवश्यक है ?
प्रजापति : हाँ, अन्यथा वे लोग संसार छोड़ दें। बहुत से ज्ञानी लोग रोना और हंसना छोड़कर वन में प्रवेश करेंगे, किन्तु ऐसा करने से वे मनुष्य नहीं रहेंगे। वे हो जाएँगे वन के पेड़, पहाड़ के पत्थर।
जीवात्मा : मैं क्या करूँगा ?
प्रजापति : तुम ! तुम स्त्री बनकर पहले तो रोना सीखोगे। बाद में तुम्हें रोने को हँसी बनाना होगा। मैं चाहता हूँ कि तुम स्त्री होकर भी वैसी बनो ! पतिव्रता होना [सी]खो !
जीवात्मा : पतिव्रता क्या ?
प्रजाप[ति] : विवाह में मिले हुए पति की छाया में समा जाना होगा। उसके काँटों को गूँथ[क]र कहो कि यह कमल की माला है। उसके चरणों का नाम हो तुम्हारा मस्त[क]। उसकी अन्धी आँख तुम्हारी दृष्टि हो, उसका लँगड़ा पैर तुम्हारी गति हो। उसके बधिर कान तुम्हारी श्रवण-शक्ति हों। उसकी दीनता तुम्हारी सम्पत्ति हो और वत्स, उसकी विरह-रात्रि में मिलन का प्रभात झाँकता हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्मा : विरह-रात्रि किसे कहते हैं, प्रजापति ?

प्रजापति : विरह-रात्रि ओह, विरह-रात्रि उसे कहते हैं जिसमें तारों में अंगार के अंकुर निकलते हैं, चन्द्रमा एक ज्वालामुखी का मुख दीख पड़ता है और कली के विकास में तीर खिलता है; सुगंधि चुपचाप आकर डस लेती है।

जीवात्मा : तो वहाँ मैं नहीं जाऊँगा, प्रजापति !

प्रजापति : अनुभव प्राप्त करो, वत्स। सुगंधि से डसे जाने पर यहाँ के कल्पवृक्ष में तुम्हें सच्ची शान्ति मिलेगी। चन्द्रमा अपने अमृत से तुम्हारे पैर धो देगा।

जीवात्मा : सचमुच !

प्रजापति : निस्सन्देह !

जीवात्मा : अच्छा, तब चला जाऊँगा। किन्तु मैं किस प्रकार वहाँ पहुँचूँ ?

प्रजापति : सोकर। तुम जागकर वहाँ नहीं पहुँच सकते। तुम्हें सोना ही होगा। वेश बदल कर तुम वहाँ जाओगे—सोते हुए। तभी तुम वहाँ के अनुभव प्राप्त करोगे—अपनी नींद में स्वप्न की भाँति।

जीवात्मा : फिर जगूँगा कैसे ?

प्रजापति : विश्वात्मा की इच्छा से ! इस नींद को भू-मण्डल में जीवन कहते हैं।

जीवात्मा : (आश्चर्य से) जीवन कहते हैं ! वड़े विचित्र व्यक्ति है वहाँ के ! तब तो सत्य को मिथ्या और मिथ्या को सत्य कहने वाले ही व्यक्ति वहाँ होंगे ?

प्रजापति : तभी तुम्हारे अनुभव यहाँ से भिन्न होंगे। तुम यहाँ के अनुभवों से भिन्न नवीन अनुभव प्राप्त करोगे।

जीवात्मा : (सोचते हुए) नींद को कहते हैं जीवन ! आनन्द को कहते होंगे पीड़ा और प्रकाश को कहते होंगे अन्धकार !

प्रजापति : हाँ, अन्धकार। तुमने अच्छा स्मरण दिलाया। तुम्हें वहाँ अन्धकार का नाश करना होगा।

जीवात्मा : कैसे अन्धकार का ?

प्रजापति : वह अन्धकार जो पाप से उत्पन्न है। जिसके तामसी रहस्य में पाप के विकास की सीमाएँ बहुत दूर तक फैल जाती हैं।

जीवात्मा : किस प्रकार नाश करूँगा ?

प्रजापति : अपने मस्तिष्क की शक्ति से अन्धकार को प्रकाश में परिवर्तित करना होगा, मैं तुम्हें स्त्री का रूप दूँगा। ऐसी स्त्री जो अपने क्रोध में ज्वालामुखी शक्ति के साथ जीवित रहेगी। वह चाहेगी तो आग में जल की शीतलता उत्पन्न करेगी और यदि चाहेगी तो जल की शीतलता से आग उत्पन्न करेगी।

जीवात्मा : उसे प्रेम करने का अधिकार तो होगा ही ? आपने अभी कहा था।

प्रजापति : सब से अधिक। किन्तु वह अपने प्रेम को भाषा में प्रकट न कर सकेगी। एक मुस्कान और दो आँसू ही उसके प्रेम की भाषा होगी।। प्रेम की आशा में मौन और प्रेम की निराशा में भी मौन ! लेकिन इस प्रेम की निराशा में उसका जीवन आँसू बनकर बहेगा···

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस आकाशगंगा की भाँति। करुण, किन्तु शब्दहीन !

जीवात्मा : मैं ऐसे प्रेम को निबाह सकूँगा ?

प्रजापति : यदि आत्महत्या या प्राणदंड से बचे रहे तो !

जीवात्मा : अच्छा, तो अब जाऊँ ? आपकी आज्ञा है ?

प्रजापति : सत्, चित्, आनन्द !

[जीवात्मा का प्रस्थान]

प्रजापति : (पुकार कर) माया !

[माया का प्रवेश।]

प्रजापति : माया ! मैंने विद्याधर को स्त्री और मेनका को पुरुष बनाकर संसार में भेज दिया है। इनके द्वारा मैं अन्धकार का नाश करूँगा। प्रतिभा, मेधा और वाक्-शक्ति से अज्ञान एक क्षण में नष्ट हो जाएगा।

माया : प्रभु, अन्धकार का रहना आवश्यक है।

प्रजापति : क्यों ?

माया : अन्धकार में ही मेरा निर्माण-कार्य होगा। रात को कली सोएगी, अन्धकार के बाद वह फूल बनकर उठेगी ! सन्ध्या समय वृद्ध सूर्य अस्त होकर अन्धकार के बाद बाल-रवि होकर तेज-सम्पन्न होगा। अन्धकार के भीतर ही चन्द्र के शीश पर कला का अभिषेक होगा या प्रेमी की भाँति वह कलाहीन होगा। अन्धकार में ही स्वप्न होंगे और उन स्वप्नों में ही व्रीड़ा की उषा में स्नात मौन निमन्त्रण साकार होगा। प्रतीक्षा के वृन्त पर मिलन का फूल धीरे से लपनी पंखुड़ी में पराग-रेखा का बाहु-पाश बनाएगा। ज्योत्स्ना में उमंगों के हिंडोले पर कितने हृदयों की ध्वनि प्रेम का वृत्त बनाएगी। प्रभु, अन्धकार का रहना आवश्यक है ! अन्धकार तो जैसे प्रकृति का विश्राम होगा।

प्रजापति : विश्राम !

माया : हाँ, प्रभु, विश्राम ही में रहस्य का निर्माण होता है। फिर एक बात और भी है। यौवन का विकास छिप कर होता है। यदि वह प्रकाश में नेत्रों के सामने हो तो उसका सारा रहस्य, सारा कौतूहल, सारा आकर्षण वैसा हो जाएगा जैसे किरणों का स्पष्ट रूप से बढ़ता हुआ उत्ताप। तब यह यौवन किरणों की भाँति गरम होकर सारी पृथ्वी को झुलसा देगा। उसमें अनुराग के उभार की कोमल उष्णता न रहेगी।

प्रजापति : माया, मैं इस यौवन से ही संसार को जलाना चाहता हूँ। इस तरह जलाऊँ कि संसार जलता हुआ अंगार बना रहे और उसकी उन विनाशकारी किरणों से अन्धकार प्रकाश में परिवर्तित हो जाए।

माया : जैसी आज्ञा प्रभु, किन्तु जिस प्रकार उज्ज्वल फूल के विकास के लिए काली मिट्टी की आवश्यकता है, पुष्प के विकास के लिए प्राण की पृष्ठभूमि है, उसी प्रकार

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश के विकास के लिए अन्धकार की भूमि भी चाहिए।

प्रजापति : ठीक है, किन्तु मेरा निर्णय ऐसा नहीं होगा। जाओ सप्तर्षियों से कहना कि वे एक क्षण को मुझे दर्शन दें।

माया : जो आज्ञा। (जाती है, किन्तु रुककर) किन्तु प्रभु सप्तर्षि धर्म की व्यवस्था के सिद्धान्त सोच रहे हैं। केवल कश्यप समाधि से जागे हैं। वे अपनी धर्मपत्नी अदिति की उदासी दूर करने की चेष्टा में हैं।

प्रजापति : अच्छा ! कश्यप से कहना कि भगवान के अवतार से अदिति की उदासी दूर होगी। और सप्तर्षि इतनी शीघ्रता से मेरी आज्ञा के पालन में प्रवृत्त हो गए ?

माया : आपकी आज्ञा प्रमाण है प्रभु !

प्रजापति : अच्छा, मेरे पुत्र कश्यप ही को भेजो।

माया : जो आज्ञा।

प्रजापति : अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज, तुम सब धर्म की व्यवस्था करो। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। ऐसा धर्म बनाऊँगा जिससे अन्धकार कहीं रहेगा भी नहीं। वत्स कश्यप, तुम मेरे सहयोगी बनो। (द्वार पर शब्द होता है)

प्रजापति : वत्स कश्यप, चले आओ !

[कश्यप का प्रवेश। ऊँचा कद। कमल के समान आँखें। सिर पर लम्बी जटाएँ। वल्कल वस्त्र। बिना खरादी हुई मणि के सदृश रूखे शरीर में कांति। कुश और कास का लिपटा हुआ आसन कक्ष-भाग में दबा हुआ है। वे उसी भाँति प्रवेश करते हैं जैसे लकड़ियों के संघर्ष से आग उत्पन्न होती है।]

प्रजापति : वत्स कश्यप, क्या कर रहे थे ?

कश्यप : अग्निहोत्रशाला में हवन कर···।

प्रजापति : मैं जानता हूँ। अदिति को पुत्र की इच्छा है। स्वयं ब्रह्मा उनमें अवतार लेंगे। किन्तु कश्यप, तुम जानते हो—किन्तु कश्यप, तुम जानते हो—मेरी ही आज्ञा से पवन चलता है, सूर्य तपता है, मेघ बरसते हैं, आग जलती है। मैं प्रजापति हूँ। मैंने अपनी शक्ति से स्त्री और पुरुष का निर्माण किया है। क्या पुरुष और स्त्री मेरे मन से अन्धकार का नाश नहीं करेंगे ! मैं इस समय विश्वात्मा की शक्ति का प्रतीक हूँ। पृथ्वी जल, तेज वायु और आकाश महाभूतों के साथ मैंने गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द का निर्माण किया है। क्या ये विषय पुरुष और स्त्री के लिए पर्याप्त न होंगे !

कश्यप : क्या आपने स्त्री और पुरुष का निर्माण कर दिया है ?

प्रजापति : कुछ क्षण पहले। अपने मन्वन्तर में नवीन ढंग से।

कश्यप : पितृदेव स्त्री और पुरुष की सृष्टि अपूर्ण हुई।

प्रजापति : भौंहें (सिकोड़ कर) क्यों ?

कश्यप : क्योंकि वे प्रलय के अन्धकार में समा जाएँगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजापति : किन्तु स्त्री और पुरुष के निर्माण के बाद अन्धकार में कैसे रह सकेगा ?

कश्यप : यक्षों और राक्षसों के पालनार्थ ! रात्रि यक्षों और राक्षसों की है। उन्हीं की भूख-प्यास अन्धकार में शान्त होती है। यक्षों और राक्षसों के जीवन के लिए अन्धकार आवश्यक है।

प्रजापति : ठीक है कश्यप किन्तु···।

कश्यप : प्रभु, देवताओं की सात्विक भावनाओं के साथ राक्षसों की तामसिक भावनाएँ भी रहेंगी। ब्रह्मा तो सबका पालन करते हैं और इसी प्रकार सृष्टि संतुलित करते हैं।

प्रजापति : तुम भी अन्धकार का पक्ष ग्रहण करते हो कश्यप ? तुम कच्छप रूप से उत्पन्न हुए थे। अतः तुम्हें भी अपने पूर्व स्वभाव से अन्धकार और कच्छप का काला रंग अच्छा लगता है।

कश्यप : प्रभु मुझे तो सभी रंग अच्छे लगते हैं। सब रंगों में प्रभु की कान्ति है। किन्तु यह सोचिए प्रभु, यदि अन्धकार न होगा तो पुरुष और देवताओं में अन्तर ही क्या रह जाएगा ? (एकाएक चौंककर) प्रभु, यह क्या ! अरे, परिवर्तन कैसा ?

प्रजापति : कश्यप, कुछ मत कहो, मैं जानता हूँ।

कश्यप : किन्तु प्रभु, अब आपकी नवीन सृष्टि क्या होगी ? आप उसे कार्यशील होते देख भी नहीं सके प्रभु !

प्रजापति : मुझे चिन्ता नहीं है, कश्यप !

कश्यप : प्रभु, आपका हीरक-पदिक धूमिल दीख रहा है। आप दुर्बल होते जा रहे हैं। आपका मन्वन्तर समाप्त हो गया ज्ञात होता है।

प्रजापति : हाँ, मन्वन्तर समाप्त हो गया। इसलिए प्रजापति का यह चिह्न धूमिल होता जा रहा है। (कंठ का हीरकपदिक दिखलाते हैं)

कश्यप : इसी के मलीन होने से आप क्षीण होते जा रहे हैं। (कुछ प्रकाश बुझ जाता है) आपकी शक्ति शेष होती जा रही है। आपके कक्ष में अन्धकार होता जा रहा है।

प्रजापति : कश्यप, मैं मन्वन्तर की समाप्ति के साथ समाप्त हो जाऊँगा ! यही इच्छा थी कि मैं पुरुष और स्त्री के निर्माण का परिणाम देख लेता, किन्तु मुझे चिन्ता नहीं है। परिणाम कुछ भी हो, मेरी सृष्टि का इतिहास तो सुरक्षित रहेगा ही। (शिथिल स्वर में) कश्यप, अब मैं शेष हो रहा हूँ। (अन्धकार हो जाता है)

कश्यप : पिताजी, कहाँ आप अन्धकार का नाश करना चाहते थे और कहाँ आप स्वयं ही अन्धकार में लीन होते जा रहे हैं !

प्रजापति : (शिथिल स्वर में) विश्वगुरु की इच्छा !

कश्यप : मैं विश्वगुरु को इसकी सूचना दूं ?

प्रजापति : वे जानते हैं कि मैं समाप्त हो रहा हूँ।

कश्यप : मैं अपने सहयोगी अन्य छः ऋषियों को सूचित करूँ कि वे आपका स्तवन करें। मैं उनमें सम्मिलित हो जाऊँगा।

[नेपथ्य में भयानक कोलाहल होता है।]

कश्यप : यह यया ?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
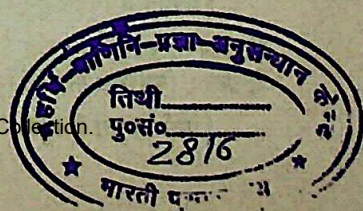
प्रजापति : अन्धकार का आगमन ! (कुछ प्रकाश और बुझ जाता है।)

कश्यप : ओह; मैं आपकी शांति के लिए स्तवन करने जाऊँगा। प्रणाम, प्रभु !

[प्रजापति प्रणाम स्वीकार करते हैं। कश्यप का प्रस्थान]

प्रजापति : (विकृत स्वर में) अन्धका···अन्धकार···विश्वगुरु, तुमने अपने-आपको जीवित रक्खा। क्या महापुरुषों को पाप भी पुण्य हो जाता है ?

[नेपथ्य से फिर भयानक शब्द। विद्याधर और मेनका का जीव रूप में प्रवेश।]

मेनका : (कर्कश स्वर में) प्रजापति, तीस वर्षों में मैंने अनुभव किया है कि तुम्हारे अस्तित्व की भावना मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है। तुम्हारा धर्म जीवन का विष, वही धर्म जीवन का सबसे बड़ा अन्धकार है।

विद्याधर : (कर्कश स्वर में) प्रजापति; प्रेम हो नहीं सकता यदि वासना न हो। बिना शरीर की आसक्ति के प्रेम कंकालवत् ऋषियों की असफल वासना है। प्रेम में चुंबन है और चुंबन में प्रेम। तुम पतिव्रता के मन और शरीर दोनों को बाँधना चाहते हो ? मैं अन्धकार फैलाऊँगी, प्रजापति।

प्रजापति : (शान्ति से) तुम दोनों संसार के संस्कारों से भरे हुए हो। पवित्र बनो।

मेनका : (जोर से) मैं तुम्हारा नाश करूँगा। मैंने आत्महत्या की है। (वक्रदृष्टि)

विद्याधर : (जोर से) मैं तुम्हारा नाश करूँगी। मैंने प्राणदण्ड पाया है। (क्रोध-दृष्टि)

प्रजापति : (शान्ति से) मैं स्वयं समाप्त होने जा रहा हूँ विद्याधर, मैं स्वयं नष्ट हो रहा हूँ, मेनका ! (पुकारकर) माया !

[माया का प्रवेश।]

माया : आज्ञा प्रभु, मैं केवल बारह क्षणों तक ही आपकी आज्ञाकारिणी हूँ।

प्रजापति : (आदेश-स्वर किन्तु क्षीण) इसी काल में मेनका और विद्याधर की आत्माओं को पवित्र करो और अपना प्रभाव इन पर से हटा लो।

माया : जो आज्ञा !

[माया मेनका और विद्याधर की ओर देखती है। दोनों के श्याम आच्छादन गिर जाते हैं। उनके गिरते ही माया चली जाती है। विद्याधर और मेनका पूर्ववत् हो जाते हैं।]

प्रजापति : विद्याधर।

विद्याधर : (हाथ जोड़कर) प्रभु प्रजापति को प्रणाम।

प्रजापति : मेनका !

मेनका : (हाथ जोड़कर) प्रभु प्रजापति का अभिनन्दन।

प्रज ापति : विद्याधर और मेनका ! अब तुम दोनों एक-दूसरे से प्रेम कर सकते हो।

मेजका, विद्याधर : (परस्पर देखकर) प्रभु की कृपा।

प्रनापति : (क्रमशः क्षीण होते हुए स्वर में) विद्याधर, मेरी सृष्टि अपूर्ण रही। मेनका, मैंने पुरुष और स्त्री के निर्माण की कल्पना व्यर्थ की। विश्वगुरु की कथा की भाँति मेरी भी यह पाप-कथा अमर रहेगी। विद्याधर, (लड़खड़ाते हैं) मेनका, (सँभलते हुए) मेरे विनाश में आज पुरुष और स्त्री की सृष्टि अमर हो।

[प्रजापति गिरते हुए सिंहासन का सहारा लेते हैं। क्षीण प्रकाश रह जाता है।]

विद्याधर : ओह, प्रजापति ! (दौड़कर प्रजापति को सँभालता है)

मेनका : (स्तंभित स्वर में) अं···ध···का···र !

[पर्दा गिरता है।]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अंक की बात

पात्र-परिचय

हेमचन्द्र : एक नवयुवक (आयु 20 वर्ष)
कामिनीलता : एक नवयुवती (आयु 16 वर्ष)
मैनेजर

तिथि 2816
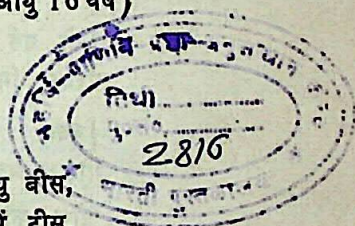
पात्र हेमचन्द्र, एक नवयुवक आयु बीस,
और कामिनी लता, वियोगिनी हृदय में टीस,
बाल बिखरे हैं, नेत्र नीचे, साँस गहरी,
एक लट आकर कपोल पर है ठहरी,

संध्या काल, चार तारे गंध मकरंद की,
इस समय अकेली एक पंक्ति किसी छंद की।

"आह हेमचन्द्र, तुम—आए नहीं अब तक।
आ गए हैं व्योम में ये चार-चार तारे!"...

(हेमचन्द्र का प्रवेश) "देवि! आ गया हूँ आज।
पा गया हूँ जागते ही प्रेम स्वप्न सारे।"

[दोनों मिलते हैं। नाट्य हँसने की ध्वनि का।
साथ - साथ प्रस्थान। गिरती यवनिका।]

दूसरा दृश्य

स्थान—अध्ययन-कक्ष। समय—रात

बैठी हुई कामिनी। हो जैसे प्रश्नवाली बात ॥
खिड़की खुली है। अर्द्धचन्द्र दिशा द्वार से।
झाँकता है जैसे झुका प्रेम ही भार से ॥
बाहर सुनसान—कोई पक्षी बोल उठता।
और कभी वायु झोंका आ के डोल उठता ॥
पढ़ रही है कामिनी, टेक्स्ट बुक मेज पर।
जाने कब से लगी है दृष्टि एक पेज पर ॥
"अध्ययन बीच हाय! प्रेम का मचलना।
खद्दर के साथ जैसे रेशम का सिलाना।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पुस्तक तो सामने है किन्तु दूसरा है ध्यान।]
हाय! इन पुस्तकों में प्रेम का न कोई गान!!
रातें बीती हैं, दीप—मेरे साथ जलता!
देखूं, क्या परीक्षा - फल मेरा है निकलता!!
हाय! हेम! यदि तुम, होते पुस्तकों के बीच!
तो मैं तुम्हें नित्य पढ़ लेती! प्रिय! आँखें मीच!!"

[सो गई थी कामिनी। शिथिल हाथ सरका।]
परदा गिराओ। शब्द गूँजा मैनेजर का।]

[दृश्य तीसरा। मलीन वसना है कामिनी।
तीसरा प्रहर। बीत जाने को है यामिनी।]
"प्रेम का यही परिणाम दुख झेल कर।
क्या मिला परीक्षक को। हाय, मुझे फेल कर!
जागतीं रही हूँ, हाय! दीपक-सी रात भर!
फेल हो गई! थी एक अंक की ही बात भर!"

[हेम का प्रवेश। करता है वह भौंहें वंक।]
"एक अंक की है बात! मेरे पास है वह अंक!"

[अंक पर हाथ—हँसी ओंठों पर—बढ़ता—।
रंगमंच का है यही परदा गिर पड़ता।]

उपसंहार

परदा गिरते ही—स्टेज मैनेजर—काला पेंट!
व्हाइट शर्ट मुख में सिगार और 'एक्सलेंट'।
"जेंटिल मैन! उत्सुक हैं जानने को परिणाम?
लीडर में निकला है कामिनी लता का नाम!
उसने गो प्रेम किया तो भी पास हो गई।
अध्ययन और प्रेम—आधुनिक काल के।
दो हैं ये फूल इस सेंचुरी की डाल के।
दोनों फूलते हैं, चाहे उसमें न गंध हो।
हारता है गार्जियन, चाहे जरासंध हो।
एक अंक की थी बात, उसको मिले हैं दो।
एक यहाँ है, एक वहाँ! थैंक्स नाउ यू मे गो।"

□□

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
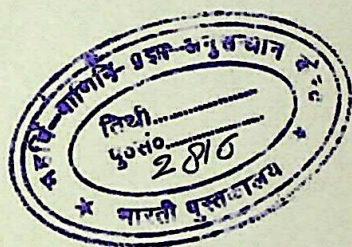
डॉ० चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा

हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में पिछले तीन दशकों से स्तरीय लेखन करने वाले डॉ० चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा के नाम से साहित्य संसार परिचित है। अब तक उनकी बीस कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'डॉ० रामकुमार वर्मा की साहित्य साधना' शीर्षक उनकी पुस्तक की हिन्दी के आचार्यों ने बहुत सराहना की है। रेखाचित्र तथा यात्रा-वृत्तान्त लेखक के रूप में उन्होंने अपनी निराली पहचान बना ली है। उनकी कई कृतियाँ पुरस्कृत भी हो चुकी हैं। देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में उनकी कृतियाँ पाठ्यक्रम में स्थान प्राप्त कर चुकी हैं। हिन्दीतर प्रदेशों के नवलेखकों के वे मान्य मार्गदर्शक हैं।

धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, नवनीत, इन्द्रप्रस्थ भारती, हिन्दुस्तानी, आजकल, भाषा तथा अतएव जैसी श्रेष्ठ तथा स्तरीय पत्रिकाओं में डॉ० शर्मा की रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। दिवंगत लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों के जन्मस्थानों पर जाकर वहाँ की रपट प्रस्तुत करने के कार्य में उन्हें बहुत प्रशंसा मिली है। देश के सभी तीर्थस्थलों का उन्होंने दो बार भ्रमण किया है। मॉरिशस और नेपाल की सांस्कृतिक-साहित्यिक यात्राएँ भी की हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकुमार वर्मा
एकांकी
रचनावली

CC-0.Panini Kanya M[illegible] Collection